हदीस सौरभ

भाग–3

मौलाना मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

विषय-सूची

कुछ आवश्यक प्रतिबन्ध

सम्बन्धों के व्यापक क्षेत्र

इस्लामी सभ्यता एवं संस्कृति

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।

प्राक्कथन

हदीस सौरभ, भाग–3 प्रस्तुत करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। हम सर्वोच्च और महान ख़ुदा के अत्यन्त आभारी हैं कि उसने अपने एक तुच्छ बन्दे को अपने दीन की इस सेवा का सौभाग्य प्रदान किया।

हदीस सौरभ, भाग–1 में मौलिक धारणाओं और इबादतों तथा हदीस सौरभ, भाग–2 में नैतिकता से सम्बन्धित हदीसों और उनकी व्याख्याओं को प्रस्तुत करने की कोशिश की गई थी। हदीस सौरभ, भाग–3 का सम्बन्ध सामाजिकता से है। इसमें उन हदीसों का चयन और उनकी व्याख्या करने की कोशिश की गई है जिनका सम्बन्ध सामाजिकता के सिद्धान्तों एवं समस्याओं से है। अतएव इस भाग में सामाजिक संगठन, सामाजिक मूल्य, परिवार-निर्माण, सम्बन्धों की व्यापक परिधि, सामूहिक हित–चेतना, सामाजिक जीवन के आचार और इस्लामी सभ्यता व संस्कृति से सम्बन्धित हदीसों को प्रस्तुत किया गया है और इस सम्बन्ध में चित्रकारी, संगीत, ज्योतिषविद्या और दवा-इलाज या वैद्यक इत्यादि के विवरण भी आए हैं। हमें उम्मीद हैं कि हदीस सौरभ के दूसरे भाग की तरह तीसरे भाग को भी हमारे पाठक पसन्द करेंगे और इसे उपयोगी पाएँगे।

आर्थिक एवं राजनीतिक तथा धर्म के प्रचार–प्रसार से सम्बन्धित हदीसें और उनकी व्याख्याएँ अल्लाह ने चाहा तो हदीस सौरभ के भाग–4 तथा 5 में प्रस्तुत की जाएँगी। मेरे प्रयास की सफलता अल्लाह की अनुकम्पा पर ही निर्भर है।

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

1353, चितली क़ब्र, दिल्ली–6

इस्लामी समाज

प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी समाज का एक सदस्य होता है और किसी भी समाज के निर्माण में धारणाओं और विचारधाराओं का मुख्य योगदान होता है। किसी भौतिकवादी समाज के व्यक्तियों पर भौतिकवादिता का प्रभुत्त्व एक स्वाभाविक बात है। फिर उसके जो दुष्परिणाम सामने आते हैं उसकी क़ीमत हर एक को चुकानी पड़ती है। लार्ड स्नेल (Lord Snell) ने 1947 ई० में लिखा था कि इस समय सभ्यता एक ऐसे दोराहे पर खड़ी है कि यहाँ से एक पग भी यदि वह ग़लत दिशा में मुड़ी तो फिर बरबादी और विनाश ही उसकी नियति है। स्नेल ने कहा है कि यूँ तो मानव-इतिहास दुर्घटनाओं से भरा हुआ है, लेकिन वर्तमान परिस्थिति सर्वाधिक चिन्ताजनक है। इसके अन्धकार को मानव-हृदय की गहराइयों में देखा जा सकता है। वांशिक दम्भ, अधिक्रमण और प्रभुत्त्व की भावनाएँ और राज्य एवं राष्ट्र के विषय में भ्रष्ट दर्शन किसी भी अन्धकार से कम नहीं। संगठित बुराई की शक्तियाँ सबसे अधिक इस वर्तमान युग में सशक्त हुई हैं और उनसे सुरक्षित रहने का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता। स्नेल ने आगे चलकर लिखा है कि यदि हमने अपने जीवन की टूटी-फूटी इमारत को मज़बूत बुनियादों पर स्थापित न किया तो हमारा भाग्य दुर्भाग्य में बदलता चला जाएगा।

एक आदर्श समाज वह हरगिज़ नहीं है जिसमें भोग-विलास के भौतिक साधनों ही को सब कुछ समझा जाता है और जहाँ जीवन की पराकाष्ठा यह समझी जाती है कि मानव की भौतिक आवश्यकताएँ और इच्छाएँ पूरी होती हों, अपितु आदर्श समाज उसे कहा जाएगा जिसमें मानवता भौतिक परिधि के अन्दर आबद्ध होकर न रहे, बल्कि वह उस परिधि से आगे बढ़ चुकी हो। केवल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही उसे शान्ति प्रदान करने के लिए पर्याप्त न हो, बल्कि उसके समक्ष जीवन के वे मूल्य भी हों जो उसे भौतिकता के स्तर से उच्च रखते हों।

एक आदर्श समाज की क्या विशेषताएँ होती हैं, इस विषय में पाश्चात्य

विचारकों को भी यह स्वीकार करना पड़ा है कि आदर्श समाज उसी समाज को कहा जा सकता है जिसके व्यक्तियों में परस्पर सहयोग की भावना काम कर रही हो और जिनकी दृष्टि के समक्ष एक ऐसा उद्देश्य हो जिसकी आधारशिलाएँ एक मात्र भौतिकता पर स्थित होने के बजाय ईश-धारणा पर स्थित हों। अतएव ब्राइट मैन (Bright Man) ने ऐसे समाज के बारे में स्पष्ट शब्दों में लिखा है—

"यह समाज ऐसे स्वतंत्र लोगों से निर्मित होगा जो एक बुद्धिसंगत और मूल्यवान एकाकी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सहयोग और पारस्परिक सहायता से काम लेते हों, एक ऐसे एकाकी लक्ष्य के लिए जिसकी आधारशिलाएँ ईश-धारणा पर स्थित हुई हों।"

(देखें A Philosopy of Religion, P146)

आदर्श समाज की रूपरेखा को स्पष्ट करते हुए जोड (Joad) ने लिखा है—

"आदर्श समाज उसे कहेंगे जिस समाज के व्यक्ति वह काम करने का संकल्प रखते हों जिसको वे सत्य समझते हों, और समाज का हर व्यक्ति उसी को सत्य समझता हो जो वास्तव में सत्य है। दूसरे शब्दों में आदर्श समाज वह है जिसके व्यक्ति उन कामों को सत्य समझें और व्यवहारतः उन्हें अपनाए हुए भी हों जो सर्वोत्तम परिणाम की ज़मानत देते हों अर्थात् जो सौन्दर्य, सत्यता, आनन्द और नैतिक गुण आदि अटल मूल्यों के प्रतीक हों। जिस समाज के लोग भी उन मूल्यों को अधिक से अधिक महत्त्व देंगे और अपने व्यवहार और चरित्र में उनका पूर्ण ध्यान रखेंगे उसी समाज को सर्वोत्तम समाज कहा जा सकेगा।"

(Guide to the Philosophy of Morals and Politics, P. 467-469)

विचारकों ने व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों को ठीक रखने के लिए भावनाओं की एकात्मकता को भी आवश्यक ठहराया है। अतएव औस्पेंस्की (Ouspensky) ने लिखा है—

"लोग विभिन्न भावनाओं के अन्तर्गत जीवन व्यतीत करते हैं। इसलिए एक-दूसरे को समझने में ग़लतफ़हमियाँ पैदा होती हैं।

यदि उनकी भावनाओं में एकात्मकता पैदा हो जाए तो वे एक-दूसरे को ठीक रूप में समझने की स्थिति में आ जाएँगे।"

(देखें Tertium Organum, P- 198)

विचारकों के ये विचार और मनोभाव इसलिए उद्धृत किए गए हैं ताकि इस बात का भलीभाँति अनुमान लगाया जा सके कि आज दुनिया को मानवता की पीड़ा और दुख के जिस उपचार की तलाश है वह पूर्णतः इस्लाम की शिक्षाओं में मौजूद है। ईश्वरीय प्रकाशना (वह्य-ए-इलाही) ने इस सम्बन्ध में हमारा भरपूर मार्गदर्शन किया है।

इस्लाम ईश-परायणता की वह प्रणाली प्रस्तुत करता है जिसमें सिर्फ़ यही नहीं कि मानव-जीवन के हर क्षेत्र के लिए स्पष्ट और सत्य पर आधारित आदेश दिए गए हैं, बल्कि इसके साथ ही उसके सारे ही आदेश चाहे उनका सम्बन्ध जीवन के किसी भी क्षेत्र और विभाग से हो, परस्पर एक-दूसरे के साथ सामंजस्य पाया जाता है और पूरी ही जीवन-व्यवस्था में ईश-बन्दगी और ईश-चाह की आत्मा ठीक उसी प्रकार क्रियाशील दिखाई देती है जिस प्रकार किसी जीवित शरीर में आत्मा क्रियाशील दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त इस्लाम, समाज में उत्पन्न होनेवाली सारी ही बुराइयों और उपद्रवों (फ़ितनों) का द्वार भी बन्द करता है। वह इनको किसी स्थिति में भी अनदेखा नहीं करता।

इस्लाम की दृष्टि में मानव और मानव के सम्बन्ध का मूल आधार वर्ण, वंश, भाषा, राष्ट्रीयता और स्वदेशता नहीं, बल्कि सम्बन्ध का मूल और वास्तविक आधार एक ईश्वर (ख़ुदा) पर ईमान और एक आस्थापूर्ण नैतिक संहिता है। यह नैतिक संहिता ईमान से अलग कोई चीज़ नहीं है, बल्कि यह नैतिक संहिता वास्तव में ईमान की एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में हमारे सामने आती है। और इस नैतिक संहिता का सम्बन्ध जीवन के किसी विशिष्ट क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि यह मानव-जीवन को इस प्रकार अपने घेरे में ले लेती है कि जीवन का कोई क्षेत्र भी उससे अलग होकर नहीं रह सकता, क्योंकि मानव का कल्याण इसी में है कि वह हर मामले में और हर हालत में ईश्वर ही का दास (बन्दा) बनकर रहे। उससे विमुखता उसके लिए पथभ्रष्टता, गुमराही और तबाही के सिवा कुछ और नहीं हो सकती।

फिर यह नैतिक संहिता अपने अन्दर यह गुण भी रखती है कि उसके अंतर्गत संसार के सारे मानव एक हो सकते हैं, और इस प्रकार मानवों का एक सार्वभौमिक बंधुत्व का निर्माण हो सकता है। रहे वे लोग जो इस संहिता को, जिसकी बुनियाद ईश–बन्दगी और ईश–मिलन की चाह है, न मानें तो इस्लामी समाज में वे सम्मिलित तो नहीं हो सकते लेकिन मानवता के अधिकारों से उन्हें वंचित नहीं रखा जा सकता। संयुक्त मानवता के आधार पर इस्लामी समाज ने ग़ैर–इस्लामी समाज के जो अधिकार स्वीकार किए हैं उनमें संकीर्णता (तंग–नज़री) के बजाय विशाल हृदयता ही दिखाई देती है।

किसी भी समाज का आधारभूत अंग वास्तव में 'परिवार' होता है। पुरुष और स्त्री के मिलाप से ही एक नस्ल अस्तित्त्व में आती है और फिर उससे विभिन्न रिश्ते–नातों और कुटुम्बों के विविध संपर्क उत्पन्न होते हैं। फिर यही चीज़ फैलकर एक समाज का निर्माण करती है।

संस्कृति का आधार 'परिवार' ही है। यही कारण है कि इस्लाम परिवार की संस्था को ठीक और सुदृढ़ आधारों पर स्थापित करना चाहता है। वह 'निकाह' (विवाह) को एक नेकी (पुण्यकर्म) और इबादत ठहराता है। संसार–त्याग उसकी दृष्टि में अल्लाह की निर्मित प्रकृति के विरुद्ध एक मनगढ़त चीज़ के सिवा और कुछ नहीं है।

फिर पारिवारिक व्यवस्था को अनुशासित करने के उद्देश्य से पति को एक ज़िम्मेदार और उत्तरदायी व्यवस्थापक की हैसियत दी गई है। पत्नी को पति की आज्ञा का पालन करना चाहिए और सन्तान का कर्त्तव्य है कि वह माँ–बाप दोनों की सेवा और उनके आज्ञापालन को अपने लिए प्रतिष्ठा और गौरव की बात समझे।

इस्लाम प्रेम और दयाशीलता को दाम्पत्य जीवन की मूलात्मा ठहराता है। पति–पत्नी के सम्बन्ध में प्रेम और सहचारिता की भावना क्रियाशील हो, यह इस सम्बन्ध की स्वभावतः अपेक्षा (माँग) भी है।

फिर परिवार से हटकर निकट के नातेदार होते हैं। इस्लाम की शिक्षा यह है कि वे परस्पर एक–दूसरे के प्रति सहानुभूति और दर्दमन्दी का भाव रखें। नातेदारों के सम्बन्ध के बाद पड़ोस के सम्बन्ध को भी इस्लाम ने विशेष महत्त्व दिया है। पड़ोसी अपना नातेदार भी हो सकता है और अजनबी भी। एक

पड़ोसी वह भी है जिसका पड़ोस सामयिक होता है। जैसे किसी के साथ कुछ देर के लिए बैठना हुआ या सफ़र में किसी का साथ हो जाए। इस्लाम की शिक्षा यह है कि हमारे सारे ही पड़ोसी, चाहे वे किसी भी प्रकार के हों, हमारी सहानुभूति और अच्छे व्यवहार के पात्र होते हैं।

जो चीज़ें समाज में बिगाड़ पैदा करनेवाली हैं, समाज के लिए उसकी हैसियत प्राणघातक रोग की है। इन रोगों से समाज़ को सुरक्षित रखने की ओर इस्लाम विशेष ध्यान देता है। यही कारण है कि वह ईर्ष्या, द्वेष, पीठ पीछे बुराई करना, सन्देह, दुर्भावना, बदगुमानी और टोह आदि से परहेज़ करने की ताकीद करता है और चाहता है कि इस्लामी समाज के सदस्य ख़ुदा के बन्दे और परस्पर एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति रखनेवाले और दर्दमन्द भाई बनकर रहें। इस्लाम में अपेक्षित यह है कि लोग एक-दूसरे से लड़ने-झगड़ने के बजाय एक-दूसरे के हमदर्द, सहयोगी और सुख-दुख में साथ देनेवाले बनकर रहें। एक को दूसरे पर भरोसा हो और वे परस्पर एक-दूसरे को अपने प्राण, धन और मर्यादा एवं प्रतिष्ठा का रक्षक समझें।

निकटवर्ती समाजी सम्बन्धों के बाद सामूहिक जीवन का वह विस्तृत और व्यापक क्षेत्र हमारे सामने आता है जिसका सम्बन्ध पूरे ही समाज से है। इस सम्बन्ध में इस्लाम ने जो हिदायतें दी हैं, वे अत्यन्त स्वाभाविक और न्याय पर आधारित हैं और उनमें मानवता की प्रतिष्ठा और गौरव का पूरा ध्यान रखा गया है। विश्व-कल्याण की चिन्ता और नेकी के कामों में सहयोग, बुराई से असहयोग और परस्पर घृणा के स्थान पर निकटता एवं प्रेम का वातावरण निर्मित करना और उसे शेष रखने के लिए कार्यरत रहना इत्यादि ऐसे सिद्धान्त हैं जिनको सदैव अपने समक्ष रखना इस्लामी समाज के सदस्यों का प्रथम कर्तव्य है।

समाज

समाज का मूलाधार

(1) हज़रत अनस (रज़ि०) और हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "समस्त मनुष्य ईश्वर का कुटुम्ब (कुंबा) है, अतः समस्त लोगों में ईश्वर की दृष्टि में सबसे प्रिय व्यक्ति वह है जिसका व्यवहार ईश्वर के कुटुम्ब के साथ अच्छा है।"

(हदीस : बैहक़ी)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि ईश्वर ने मनुष्य को प्रतिष्ठा प्रदान की है। ईश्वर की दृष्टि में अच्छे लोग वही हो सकते हैं जो उसके बन्दों को आदर की दृष्टि से देखें और उनके साथ अच्छा व्यवहार करें।

इस हदीस और आगे आनेवाली दूसरी हदीसों से उन मौलिक आधारों का पता चलता है जिनपर स्थापित समाज ही ऐसा समाज है जिसे एक आदर्श समाज कहा जा सकता है। ये आधार वास्तव में जीवन के वे उदात्त एवं उच्च मूल्य (Values) हैं जिनके अभाव में जीवन वास्तव में सुखमय और शान्तिमय कदापि नहीं होता।

(2) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है, वे कहती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कभी दीन (धर्म) के सिवा किसी अन्य चीज़ से किसी को निस्बत देते हुए नहीं सुना। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मानव को प्रतिष्ठा और उच्च पद प्रदान करनेवाली चीज़ वास्तव में दीन ही है। वास्तविकता की दृष्टि में मानव को केवल उसी दशा में उच्च माना जा सकता है जबकि धार्मिक दृष्टि से कोई उच्च पद प्राप्त करने में सफल रहा हो।

पैग़म्बर (सल्ल०) किसी का सम्बन्ध या नाता उसके बाप-दादा से जोड़ने या इस तरह की दूसरी चीज़ों से निस्बत देने के बजाय हमेशा दीन से

निस्बत देते थे। जो व्यक्ति दीन में उच्च होता, आप (सल्ल०) के यहाँ उसी को उच्चता प्राप्त होती, चाहे वह दूसरे पहलुओं से निम्न ही क्यों न होता। आप (सल्ल०) व्यावहारतः अज्ञान जनित विचार एवं दृष्टि को निस्सार ठहराते और वास्तव में लोगों के दिलों में दीन के महात्म्य का एहसास पैदा करने का उत्तरदायित्व निभाते थे।

(3) हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह क़ियामत के दिन कहेगा : कहाँ हैं वे लोग जो मेरे प्रताप के कारण परस्पर एक-दूसरे से प्रेम करते थे? आज मैं उन्हें अपनी छत्रछाया में रखूँगा। आज मेरी छाया के अतिरिक्त कोई छाया नहीं।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यहाँ यह शिक्षा दी जा रही है कि मित्रता और प्रेम की बुनियाद गहरी से गहरी होनी चाहिए। ज्ञात हुआ कि वही प्रेम विश्वसनीय और टिकाऊ और सही अर्थों में सुखद परिणामों का कारण होता है जिसके पीछे ईशनमिलन की चाह और ईश्वर की महानता का एहसास निहित हो। समाज में यदि कुछ लोग ऐसे पाए जाते हैं जिनसे प्रेम करना स्वयं ईश्वरीय महानता को अपेक्षित है तो इसकी उपेक्षा ईश-मिस्मरण का पर्याय होगा। उदाहरणस्वरूप समाज में यदि कुछ लोग ऐसे हैं जो चाहते हैं कि समाज हर प्रकार की बुराइयों से मुक्त हो और समाज का निर्माण ईश-भक्ति की बुनियादों और भक्ति-भावना के आधार पर हो और वे इसके लिए प्रयत्नशील हैं तो ऐसे पवित्रात्मा लोगों से विरक्ति और विमुखता और शुभ कार्य में उनके साथ सहयोग न करना धार्मिक दृष्टि से जड़ता और निर्लज्जता ही कहा जाएगा, जो लोग लौकिक जीवन में ईश्वर की महानता और उसकी प्रतिष्ठा का आदर करते हैं, ईश्वर भी परलोक में उनकी अनेदखी नही करेगा। वह निश्चय ही उन्हें अपनी रहमत (दयालुता) और कृपा की छाया में जगह प्रदान करेगा।

(4) हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह या ईश दूत के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिस किसी ने प्रेम किया तो ईश्वर ही के लिए और वैमनस्यता अपनाई तो ईश्वर ही के लिए और दिया तो ईश्वर ही के लिए, और रोका तो ईश्वर ही के लिए, उसने अपने ईमान को पूर्ण कर लिया।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : यह हदीस भी बताती है कि हमारे जीवन में मूल प्रेरक प्रभु-प्रसन्नता प्राप्ति की कामना के सिवा कुछ और नहीं होना चाहिए। हमारी पसन्द और नापसन्द, दोस्ती और दुश्मनी, हमारे देने और रोकने तथा कुछ करने या न करने के पीछे वास्तविक प्रेरक प्रभु-प्रसन्नता की प्राप्ति की अभिलाषा हो। दूसरे शब्दों में हमारे जीवन और जीवन के सारे क्रिया-कलापों में मात्र ईश-चाहत की भावना काम कर रही हो। ईमान वास्तव में इसी गुण की अपेक्षा (तक़ाज़ा) करता है। ईमान की अपेक्षाओं को पूरा किए बिना ईमान में किसी उच्च पद की प्राप्ति किस प्रकार सम्भव हो सकती है? ईमान इनसान की ज़िन्दगी को एक विशिष्ट प्रकार के साँचे में ढाल देना चाहता है। जब तक हम उस साँचे में ढल जाने के लिए तैयार नहीं होते, ईमान का हमारे जीवन से जीवन्त और सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। ईमान की अपेक्षाओं को विस्मृत कर देने के पश्चात तो ईमान की रक्षा करनी भी मुश्किल हो जाएगी, यह तो बहुत दूर की बात है कि कोई इस स्थिति में ईमान के उच्चतर पद पर आसीन हो यदि वह ऐसा समझता है तो यह उसका निरा भ्रम होगा।

(5) हज़रत अबू-ज़र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "सबसे श्रेष्ठ कर्म यह है कि (किसी से) प्रेम हो तो अल्लाह ही के लिए हो और नफ़रत व शत्रुता हो तो वह भी अल्लाह ही के लिए हो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : दीन में इस बात को बुनियादी महत्त्व प्राप्त है कि हमारे हर कर्म के पीछे ईश-प्रसन्नता और उसकी ख़ुशनूदी की चाहत ही क्रियाशील हो। अत: निश्चय ही ऐसा कर्म वास्तविक रूप से श्रेष्ठ होगा, जो ईश्वर ही के लिए किया गया हो।

(6) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा है और हज़रत इब्ने हातिम (रज़ि०) की हदीस में भी है कि पैग़म्बर (सल्ल०) ने कहा, "जब तुममें से कोई अपने भाई से लड़े तो उसके मुँह को बचाए (मुँह पर चोट न करे), क्योंकि अल्लाह ने मनुष्य को अपनी सूरत पर बनाया है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह हदीस इस बात का प्रमाण है कि मानव को अल्लाह ने अत्यन्त उच्च्व पद प्रदान किया है। मनुष्य के रूप में उसने अपनी विशेषताओं

को प्रकट किया। उसने मनुष्य को चेतना, ज्ञान और संकल्प एवं अधिकार आदि गुणों से विभूषित किया। मनुष्य के व्यक्तित्व का दर्पण वास्तव में उसका अपना चेहरा होता है। इसलिए उसका हर हाल में आदर करना अनिवार्य है।

(7) हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "बदगुमानी से बचो, क्योंकि बदगुमानी सबसे झूठी बात है। किसी की भलाई–बुराई को जानने के इच्छुक न बनो, न टोह में पड़ो, न दूसरे से बढ़कर बोली बोलो, न परस्पर ईर्ष्या करो, न आपस में क्रोध–भाव रखो, न परस्पर शत्रुता–भाव या सम्बन्ध विच्छेद करो, और ख़ुदा के बन्दे तथा आपस में भाई–भाई बनकर रहो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस में सामाजिक अधिकारों का उल्लेख किया गया है और कहा गया है कि लोगों को परस्पर भाई–भाई बनकर रहना चाहिए। सभी एक ख़ुदा के बन्दे हैं। इस नाते और रिश्ते की अपेक्षा (तक़ाज़ा) यह है कि लोगों में आपस में किसी प्रकार की घृणा और नफ़रत न हो, बल्कि उनमें आत्मीयता पाई जानी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति लोगों के अधिकारों की उपेक्षा करता है तो इसका अर्थ इसके सिवा और क्या होगा कि उसे ख़ुदा का बन्दा बनने से इनकार है। ख़ुदा के सच्चे बन्दे वही होते हैं जिनकी दृष्टि ख़ुदा ही पर नहीं होती, बल्कि वे ख़ुदा के बन्दों के अधिकारों का भी आदर करते हैं।

(8) हज़रत उसामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह अपने दयालु बन्दों पर ही दया करता है।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : आदमी की प्रतिष्ठा और सफलता पूर्णतः इस बात पर निर्भर करती है कि वह ईश्वर का कृपापात्र हो और वह उसके प्रकोप से महफ़ूज़ और सुरक्षित हो। यह हदीस बताती है कि ख़ुदा की दयालुता के पात्र वही होते हैं जिनके हृदय दया–भाव से परिपूर्ण हों। इसके विपरीत जिन लोगों में स्वयं दया का अभाव पाया जाता है, भला वे ईश्वर की दया और उसके अनुग्रह के पात्र कैसे ठहराए जा सकते हैं ? बुख़ारी (हदीस शास्त्र) ही की एक अन्य हदीस है कि "जो दया नहीं करता उसपर दया नहीं की जाती।"

(9) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "तुममें से जिस किसी में इसकी सामर्थ्य हो कि वह अपने

भाई को लाभ पहुँचा सके तो उसे यह काम करना चाहिए।" (हदीस :मुस्लिम)

व्याख्या : इस्लाम आदर्श मानव उसी व्यक्ति को ठहराता है जो समाज के सारे व्यक्तियों को अपना भाई समझता हो, उनसे हार्दिक लगाव रखता हो और यथा सम्भव उन्हें लाभ पहुँचाने से बचता न हो।

संगठन (इज्तिमाइयत) का महत्त्व

(1) हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जो व्यक्ति बित्ता भर भी संघ (जमाअत) से अलग हुआ उसने इस्लाम का पट्टा अपनी गरदन से निकाल फेंका।"

(हदीस : अहमद, अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस्लाम में सुसंगठित जीवन का क्या महत्त्व है? इसका भली-भाँति अनुमान इस हदीस से किया जा सकता है। इस्लाम के महान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जीवन में संगठन (इज्तिमाइयत) अनिवार्य है। इसके बिना वास्तविक रूप में-इस्लामी आदेशों की पाबन्दी सम्भव नहीं है। इस्लाम स्वामाविक रूप से संगठित रहना पसन्द करता है। संगठन की व्यवस्था की थोड़ी भी विचलित होना एक अत्यन्त गंभीर बात है क्योंकि यह इस्लाम के महान उद्देश्यों की उपेक्षा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सामूहिकता से अपने को विलग करनेवाला वास्तव में इस्लाम के स्पष्ट आदेशों की पाबंदी से मुँह मोड़ता है, जो इस्लाम की दृष्टि में किसी महा अपराध से कम नहीं।

(2) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "सत्य यह है कि अल्लाह ऐसा नहीं करेगा कि मेरे पूरे समुदाय को— या यह कहा कि मुहम्मद (सल्ल०) के पूरे समुदाय (उम्मत) को पथभ्रष्ट नहीं करेगा।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्यास्या : इसलिए आवश्यक है कि ईमानवाले एक समुदाय और एक व्यस्थित संगठन के रूप में दुनिया में रहें। कोई व्यक्ति भी वृहद समुदाय से अलग होकर ख़ुदा के संरक्षण से स्वयं को वंचित न करे।

(3) हज़रत मुआज़ बिन-जबल (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "वास्तव में शैतान आदमी का भेड़िया है, जिस प्रकार बकरी का भेड़िया होता है जो उस बकरी को पकड़ लेता है जो रेवड़ से

भाग निकली हो, और रेवड़ से दूर पड़ गई हो और रेवड़ से जुदा होकर एक कोने में हो। और तुम पहाड़ की घाटियों से बचो और संगठन और समूह के साथ रहने को अपने लिए अनिवार्य कर लो।" (हदीस : अहमद)

व्याख्या : मालूम हुआ कि जिस प्रकार रेवड़ से अलग होने पर बकरी को वह सुरक्षा प्राप्त नहीं होती जो रेवड़ के साथ मिलकर रहने में उसे प्राप्त होती है, ठीक इसी प्रकार भले लोगों के समूह से किसी के अलग होते ही इसकी संभावना बढ़ जाती है कि शैतान, जो इनसान के लिए एक भेड़िया जैसा है, आसानी से उसे अपना शिकार बना ले और गुमराहियों की विनाशकारी घाटियों में उसे फेंक दे। जिस प्रकार मंज़िल (गन्तव्य) तक पहुँचानेवाले सीधे और साफ़ मार्ग को छोड़कर पहाड़ी दर्रों और घाटियों को पार करने की कोशिश साधारणतया प्राणघातक सिद्ध होती है, उसी प्रकार इस्लाम के दिखाए हुए स्पष्ट राजमार्ग और सीधे मार्ग को छोड़कर दूसरे अनजाने मार्गों को अपनाने के बाद आदमी की नियति तबाही और बरबादी ही बन जाती है। इसलिए उससे बचना अनिवार्य है।

वास्तविक संघीय जीवन (इज्तिमाइयत)

(1) हज़रत नोमान बिन-बशीर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "परस्पर एक-दूसरे पर दयालुता दर्शाने और प्रेम व स्नेह करने में मोमिनों (ईमानवालों) को तुम एक शरीर के सदृश देखोगे कि जब शरीर के एक अंग को पीड़ा होती है तो उसका सम्पूर्ण शरीर अनिद्रा और ज्वर में उसके साथ हो जाता है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : तात्पर्य यह है कि ईमानवालों का पारस्परिक सम्बन्ध और रिश्ता कोई औपचारिक नहीं होता, बल्कि करुणा, प्रेम और स्नेह का भाव उन्हें आपस में इस प्रकार जोड़े रखता है, जैसे मानो वे अलग-अलग नहीं हैं बल्कि एक शरीर की तरह हैं। शरीर के किसी अंग में भी तकलीफ़ होती है तो उससे सारा शरीर प्रभावित होता है। ठीक इसी प्रकार ईमानवाले परस्पर एक-दूसरे के सुख-दुख में साथ रहते हैं। अपने किसी भाई को भुला कर और उसकी उपेक्षा करके जीवन व्यतीत करना उनकी नीति नहीं होती।

(2) हज़रत नोमान बिन-बशीर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह

के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "तमाम मोमिन एक व्यक्ति के सदृश हैं। यदि उसकी आँख दुखती है तो उसका सारा ही शरीर पीड़ा-ग्रस्त हो जाता है और यदि उसके सिर में पीड़ा होती है तो भी उसका सारा शरीर पीड़ा-ग्रस्त हो जाता है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस में उदाहरण देकर समझाया गया है कि जिस प्रकार आँख या सिर की पीड़ा सिर्फ़ आँख और सिर की पीड़ा नहीं होती, बल्कि यह पीड़ा पूरे शरीर को बेचैन और विकल रखती है, ठीक यही हाल समाज में ईमानवालों का होना चाहिए कि एक मोमिन की तकलीफ़ और दर्द को सारे ही मोमिन अपने अन्दर महसूस करें और उसे दूर करने के लिए चन्तित हों।

(3) हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "मोमिन मोमिन के लिए ऐसा है जैसे एक भवन, जिसका एक भाग दूसरे भाग को मज़बूत करता है।" फिर आप (सल्ल०) ने अपने एक हाथ की उँगलियाँ दूसरे हाथ की उँगलियों में डाल दीं। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : जिस प्रकार किसी इमारत की ईंटें या उसमें लगे हुए पत्थर परस्पर जुड़े हुए होते हैं और एक को दूसरे से बल मिलता रहता है, इस प्रकार पूरी इमारत मज़बूत और सुदृढ़ दिखाई देती है, उसी प्रकार ईमानवालों को भी परस्पर एक-दूसरे के साथ सहयोग करना चाहिए, इसके बिना किसी सुदृढ़ और स्थिर समाज की कल्पना नहीं की जा सकती।

सामाजिक मूल्य

(1) हज़रत इयाज़ बिन-हिमार मुजाशिई (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह ने मेरी ओर प्रकाशना की है कि विनम्रता अपनाओ यहाँ तक कि कोई किसी व्यक्ति के मुक़ाबले में गर्व न करे और न कोई व्यक्ति किसी पर ज़ुल्म और अत्याचार करे।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् यह अल्लाह का आदेश है कि परस्पर विनम्रता अपनाई जाए। यह उदारता के विपरीत है कि कोई व्यक्ति समाज में अभिमानी बनकर रहे। विनम्रता इस सीमा तक अपेक्षित है कि कोई भी व्यक्ति किसी के

मुक़ाबले में गर्व न करे और न किसी पर किसी प्रकार का ज़ुल्म और अत्याचार करे। घमण्ड और ग़ुरूर के कारण किसी के मुक़ाबले में बड़ाई ज़ताने की इस्लामी समाज में कोई गुंजाइश नहीं रखी गई है।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह बिन बुस्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह ने मुझे विनम्र बन्दा (दास) बनाया है, उद्दण्ड और दुराग्रही नहीं बनाया।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : यह एक लम्बी हदीस का एक अंश है। इसमें बताया गया है कि अल्लाह ने पैग़म्बर को दयालु एवं विनम्र स्वभाववाला, अपना दास और सबके प्रति उदार बनाकर भेजा है। दुराग्रह और उद्दण्डता की नीति पैग़म्बर को किसी रूप में भी शोभनीय नहीं।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "लोगों में पाई जानेवाली दो बातें कुफ्र की हैं—कुल और वंश के सिलसिले में ताना मारना और मुर्दों पर विलाप करना।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अपने वंश और कुल पर गर्व करना अरब अज्ञान-काल में अपनी शान और प्रतिष्ठा के प्रदर्शनों में से था। दूसरों के कुल और गोत्र के सिलसिले में ताना मारना कुफ़्र के लक्षणों में से है, इसका इस्लाम से कोई सम्बन्ध नहीं।

किसी के मरने पर रोना-पीटना और विलाप करना अरब अज्ञान-काल में प्रतिष्ठा और महानता के प्रदर्शन की रीतियों में से था। किसी के मरने पर शोक और दुख का होना एक स्वाभाविक बात है, लेकिन स्वाभाविक शोक से आगे बढ़कर विलाप करना और रोना-पीटना इस्लाम में वर्जित है। इस प्रकार की चीज़ें अधर्मियों के लिए तो शोभनीय हो सकती हैं लेकिन किसी मुसलमान व्यक्ति के लिए इनको किसी प्रकार वैध नहीं ठहराया जा सकता।

(4) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "सौगन्ध है उस ईश-सत्ता की जिसके हाथ में मेरे प्राण हैं! बन्दा उस समय तक मोमिन नहीं होता जब तक उसे अपने भाई के लिए वही कुछ पसन्द न करे जो वह अपने लिए पसन्द करता है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : आदमी के ईमान की अपेक्षा यह है कि वह जिन चीज़ों को ख़ुद अपने लिए पसन्द करता है, अपने दूसरे भाइयों के लिए भी उन्हीं चीज़ों को पसन्द करे। वह यदि लोक और परलोक के कल्याण और सफलता का इच्छुक है तो अपने दूसरे भाइयों के लिए भी उसके दिल में यही कामना तरंगित होनी चाहिए कि उन्हें भी लोक और परलोक में सफलता और प्रसन्नता प्राप्त हो।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "मुसलमान, मुसलमान का भाई होता है, वह न तो उसपर ज़ुल्म करे और न उसकी सहायता और सेवा से हाथ खींचे और न उसको हेच समझे, ईशपरायणता यहाँ है।"— आप (सल्ल०) ने अपने हृदय की ओर तीन बार संकेत करके यह बात कही— "आदमी के लिए इतनी ही बुराई काफ़ी है कि वह अपने मुसलमान भाई को हेच समझे। प्रत्येक मुसलमान पर हराम है मुसलमान का ख़ून, उसका माल और उसकी इज़्ज़त व आबरू।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह एक संग्राहक हदीस है। जिसके द्वारा एक इस्लामी समाज का वास्तविक चित्र दृष्टि में उभरकर हमारे सामने आता है। मुसलमान के लिए अनिवार्य है कि वह अपने मुसलमान भाई को पराया नहीं, बल्कि अपना भाई समझे। एक हदीस में है, "मोमिन मोमिन का दर्पण होता है" (हदीस : अहमद, अबू-दाऊद)। दर्पण में किसी और का नहीं, अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। भाई में यदि कोई सुन्दरता है तो उसे देखकर उसी प्रकार प्रसन्नता होनी चाहिए जिस प्रकार दर्पण में अपने अच्छे रूप को देखकर ख़ुशी हासिल होती है। और यदि भाई में कोई दुर्बलता और दोष दिखाई दे तो समझे कि यह दोष मानो स्वयं हमारे अन्दर उत्पन्न हो गया है। फिर अपने भाई के सुधार के लिए उसी प्रकार चिन्तित होना चाहिए जिस प्रकार हमें अपने स्वयं के सुधार की चिन्ता होती है।

भाई का यह अधिकार है कि हम उसपर ज़ुल्म और अत्याचार न होने दें और न कभी उसे असहाय और बेसहारा छोड़ें। भाई का अपमान किसी रूप में भी वैध नहीं हो सकता। हमें क्या पता जिसका हम निरादर और अपमान करने चले हैं वह हमसे अच्छा हो। किसी के अच्छे होने का वास्तविक निर्णय तो

ईशपरायणता से होता है जिसका सम्बन्ध मानव हृदय से होता है जो साधारणतया लोगों की दृष्टि में नहीं होता।

आचरण और चरित्र का मामला बहुत नाज़ुक होता है। नबी (सल्ल०) कहते हैं— "आदमी के बुरे होने के लिए इतनी सी बात काफ़ी है कि वह अपने मुसलमान भाई को हेच समझता हो।" मुसलमान का कर्त्तव्य यह है कि वह भाई की इज़्ज़त व प्रतिष्ठा और उसकी जान और उसके माल, हर चीज़ का रक्षक हो। वह लुटेरा कदापि न हो। वह अपने भाई की किसी चीज़ को भी नुक़सान न पहुँचने दे। भाई का आदर और सम्मान हर पहलू से उसके लिए अनिवार्य है।

(6) हज़रत अबू-मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "किसी बूढ़े मुसलमान का सम्मान और ऐसे क़ुरआन-क़ुरआन के आलिम का सम्मान जो उसमें किसी प्रकार के घटाव-बढ़ाव से काम न लेता हो, वास्तव में अल्लाह के सम्मान में से है और इसी प्रकार न्यायप्रिय शासक का सम्मान भी (अल्लाह के सम्मान में से है)।"

(हदीस : अबू-दाऊद, बैहक़ी)

व्याख्या : इस्लामी समाज इस बात की भी अपेक्षा करता है कि समाज के सदस्यों का पद और मर्तबे के अनुसार आदर किया जाए। समाज का कोई व्यक्ति भी अपना अधिकार पाने से वंचित न रहे। अधिकारों का सम्बन्ध सिर्फ़ जान और माल व हिस्सा और संपत्ति से ही नहीं है, बल्कि अधिकारों में यह भी सम्मिलित है कि समाज के लोगों का, जो हमारे आदर-सत्कार के पात्र हैं, उनका आदर किया जाए। हम उनके साथ करुणा का व्यवहार करें। जो वात्सल्य और प्रेम के पात्र हों उनसे हमारा सम्बन्ध प्रेम और वात्सल्य का हो। इस हदीस में उदाहरण के रूप में तीन ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है जो इसका हक़ रखते हैं कि हम उनका आदर-सम्मान करें। एक बूढ़ा व्यक्ति, अपनी वृद्धावस्था के कारण इसका पात्र और हक़दार है कि उसके आदर और सम्मान का ध्यान रखा जाए। दूसरा क़ुरआन का आलिम अर्थात् वह व्यक्ति जो क़ुरआन का ज्ञान रखता हो, और क़ुरआन के आलिम के लिए आवश्यक है कि क़ुरआन के विषय में किसी प्रकार के घटाव-बढ़ाव से काम न ले। वह क़ुरआन की तिलावत या पाठ भी करे और उसके आदेशों और क़ानूनों के

प्रचार-प्रसार के लिए भी प्रयत्नशील रहे और इस सिलसिले में सन्तुलित मार्ग का कभी उल्लंघन न करे। क़ुरआन ने जिस सीधे मार्ग का ज्ञान कराया है उसपर चलता रहे। ग़लत भावनाओं के प्रभाव में आकर वह क़ुरआन की आयतों के अर्थ-निर्धारण में ग़लत नीति कदापि न अपनाए।

फिर शासक या अधिकारी यदि न्यायप्रिय है और वह न्याय की स्थापना करनेवाला है तो उसका भी यह हक़ है कि उसका आदर और सम्मान किया जाए तथा उसके काम की सराहना की जाए।

परिवार की बुनियाद

निकाह की प्रेरणा

(1) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि तीन आदमी पैग़म्बर (सल्ल०) की पत्नियों के घर पैग़म्बर (सल्ल०) की इबादत का हाल मालूम करने के लिए आए। जब उन्हें उसके बारे में बताया गया तो उन्हें आप (सल्ल०) की इबादत बहुत कम महसूस हुई। उन्होंने कहा कि हम पैग़म्बर (सल्ल०) की बराबरी भला कैसे कर सकते हैं। आप (सल्ल०) के तो अगले-पिछले सारे गुनाह (कोताहियाँ) क्षमा कर दिए गए हैं। एक ने कहा : मैं तो रात भर नमाज़ पढ़ूँगा। दूसरे ने कहा : मैं हमेशा रोज़ा रखूँगा और रोज़ा कभी तोड़ूँगा नहीं। और तीसरे ने कहा : मैं स्त्रियों से हमेशा अलग रहूँगा, मैं कभी भी निकाह नहीं करूँगा। फिर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) आए और कहा, "तुम ही लोग हो जिन्होंने ऐसी और ऐसी बात कही है?— ख़ुदा की क़सम! मेरे अन्दर तुमसे कहीं बढ़कर ख़शीयत (ईश-भय) है और मैं तुमसे बढ़कर अल्लाह का डर रखता हूँ, फिर भी मैं रोज़ा भी रखता हूँ और इफ़तार भी करता हूँ। नमाज़ भी पढ़ता हूँ और सोता भी हूँ और औरतों से निकाह भी करता हूँ। याद रखो, जो मेरी रीति (सुन्नत) से मुँह मोड़ेगा और उसको पसन्द नहीं करेगा, वह मेरे तरीक़े पर कदापि नहीं है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मालूम हुआ कि ईश-ज्ञान, जिसके परिणामस्वरूप हृदय में ख़शीयत और अल्लाह का डर पैदा होता है, दीन का मूलाधार है। अतएव बुख़ारी की एक अन्य रिवायत में ये शब्द आए हैं कि आप (सल्ल०) ने कहा, "मैं उन लोगों से बढ़कर अल्लाह को जानता हूँ और उनसे बढ़कर अल्लाह का भय मेरे अन्दर है।"

आप (सल्ल०) कहते हैं कि अल्लाह का ख़ौफ़ और ख़शीयत मुझमें सबसे अधिक है फिर भी अल्लाह की इबादत के सिवा मैं आराम भी करता हूँ और शादी भी करता हूँ। जो दीन लेकर मैं आया हूँ वह संसार-त्याग का दीन कदापि नहीं है। अर्थात् दुनिया में रहते हुए और सामाजिक और घरेलू

उत्तरदायित्वों को स्वीकार करते हुए पवित्र और ईशपरायणता का जीवन व्यतीत करना ही अल्लाह को पसन्द है। जो व्यक्ति पैग़म्बर के तरीक़े को त्याग कर कोई दूसरा तरीक़ा अपनाएगा वह मेरा अनुयायी कदापि नहीं है।

(2) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जब बन्दे ने निकाह किया तो उसने आधे दीन को पूरा कर लिया। अब उसे चाहिए कि शेष आधे (दीन की पूर्णता) के सम्बन्ध में अल्लाह का भय रखे।" (हदीस : बैहक़ी)

व्याख्या : दीन वास्तव में अल्लाह के हक़ को पहचानने और उसे अदा करने का नाम है। लेकिन यह हक़ इस तरह हरगिज़ अदा होनेवाला नहीं कि आदमी अपनी प्राकृतिक इच्छाओं की माँगों को भुलाकर जीवन व्यतीत करे। अपने आपको कुचलने के बाद आदमी का व्यक्तित्त्व आहत होकर रह जाता है। आहत व्यक्तित्त्व का मनुष्य इस स्थिति में नहीं रहता कि उसके जीवन से अल्लाह की महानता पूर्ण रूप से प्रकाशित हो सके। अतः अपने जीवन में दीन की पूर्णता के लिए आवश्यक है कि आदमी अपने व्यक्तित्त्व को आघात न पहुँचने दे। निकाह का अर्थ यह है कि इनसान ने अपने मन की इच्छाओं की अपेक्षाओं को ठुकराया नहीं। उसने अपनी स्वाभाविक काम-इच्छाओं की तृप्ति के लिए वैध तरीक़े को अपनाया। शैतान के लिए अब यह कोई आसान बात नहीं कि वह उसे मानसिक बिखराव या यौन पथभ्रष्टता के मार्ग पर डालने में सफल हो सके। अब उसका हृदय भी पवित्र रह सकेगा और उसकी दृष्टि की पवित्रता के लिए भी कोई भय शेष न रहेगा। इसके बाद उसके लिए अब आवश्यकता सिर्फ़ इस बात की रहती है कि वह अपने जीवन में अल्लाह को शामिल और दाख़िल कर ले। अल्लाह से डरता रहे और प्रभु-बन्दगी की अपेक्षाओं की किसी भी स्थिति में उपेक्षा न करे।

(3) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जो चाहता हो कि वह अल्लाह से पाक और पवित्रता की स्थिति में मिले तो उसे चाहिए कि वह स्वतंत्र औरतों से निकाह करे।"

(हदीस : इब्ने-माजा)

व्याख्या : लौंडी या दासी की तुलना में स्वतंत्र औरतों से पवित्रता, उच्चता, स्वाभिमान और सज्जनता की अधिक आशा होती है। पत्नी यदि सभ्य, सज्जन और सुशील है तो अनिवार्यतः उसका प्रभाव पति पर भी पड़ेगा

और ऐसी स्त्री अपनी सन्तान को भी शिष्टाचार, सभ्यता और पवित्रता की शिक्षा देगी।

(4) हज़रत अबू–उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह की ईशपरायणता के बाद सबसे उत्तम चीज़ जो मोमिन अपने लिए चुनता है वह नेक पत्नी है कि वह जब उसे आदेश दे तो वह उसकी आज्ञा का पालन करे और यदि वह उसकी ओर देखे तो वह उसका दिल ख़ुश कर दे, उसको क़सम दे तो वह उसे पूरा करे और यदि वह मौजूद न हो तो वह स्वयं अपने सतीत्व के विषय में और उसके धन के प्रति उसकी हितैषी सिद्ध हो।" (हदीस : इब्ने–माजा)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि जीवन में दो चीज़ें सर्वोत्तम धन की हैसियत रखती हैं। पहली चीज़ तो ईशपरायणता है कि आदमी अल्लाह को किसी स्थिति में भी विस्मृत न करे, बल्कि अपने जीवन में हमेशा उसके डर और भय को बाक़ी रखे। इसके बाद दुनिया की चीज़ों में सबसे बेहतर चीज़ सुशील (सालेह) और नेक पत्नी होती है। नेक पत्नी के लक्षण यह बताए गए हैं कि वह पति की आज्ञा का पालन करती हो, उसे देखकर पति को प्रसन्नता हो, पति को प्रसन्न रखने में उसे भी प्रसन्नता प्राप्त होती हो। वह पति की इच्छाओं को प्राथमिकता देती हो, यहाँ तक कि यदि उसका पति किसी काम के लिए उसे क़सम दे तो वह उसको पूरा करे। और फिर यह भी कि वह पति के धन को नष्ट न होने दे और अपने सतीत्व के विषय में किसी प्रकार का विश्वासघात न करे। अश्लीलता और व्यभिचार के वह निकट भी न जाए। आप स्वयं सोच सकते हैं कि ऐसी सुशील और नेक पत्नी पति के लिए प्रभु का एक उत्तम उपहार है जिसे देखकर सुख, शान्ति और प्रसन्नता ही प्राप्त होगी।

(5) हज़रत इब्ने–अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "तुमने निकाह के सदृश कोई दूसरी ऐसी चीज़ न देखी होगी जो दो प्रेमियों के मध्य इतना अधिक प्रेम का कारण हो।"

(हदीस : इब्ने–माजा)

व्याख्या : निकाह एक ऐसी चीज़ है जो दो दिलों को एक कर देती है और इसके कारण उन दोनों के बीच ऐसा गहरा और सशक्त प्रेम उत्पन्न हो जाता है जो अपनी मिसाल आप है।

इस हदीस से मालूम हुआ कि पति–पत्नी का पारस्परिक सम्बन्ध वास्तव

में प्रेम और स्नेह का सम्बन्ध होता है। उसको मात्र एक क़ानूनी रिश्ता समझना उसकी कोमलता एवं पवित्रता से अनभिज्ञ होने के सिवा और कुछ नहीं।

(6) हज़रत अबू-सईद (रज़ि०) और हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जिस किसी के यहाँ बच्चा पैदा हो तो उसे चाहिए कि उसका अच्छा नाम रखे और उसे शिष्टाचार सिखाए, फिर जब वह युवावस्था को पहुँच जाए तो उसकी शादी कर दे। यदि शादी की अवस्था को पहुँचने के बाद भी उसने उसकी शादी नहीं की और वह गुनाह में पड़ गया तो उसका बाप उसके गुनाह का ज़िम्मेदार होगा।" (हदीस : अल-बैहक़ी फ़ी शोबिल ईमान)

व्याख्या : सन्तान के सम्बन्ध में बाप पर क्या उत्तरदायित्व हैं, इस हदीस से इसका भलीभाँति अनुमान किया जा सकता है। एक स्वस्थ्य और आदर्श समाज में बच्चों और नवोदित मानस का पोषण माता-पिता के स्नेह और प्रेम भरी गोद में होता है। माता-पिता की यह कामना होती है कि उनकी सन्तान सुशील, चरित्रवान और सद्गुणों से सम्पन्न हो। लेकिन जिस समाज में पिता अपने बच्चे का अच्छा नाम भी न रख सके उससे और अधिक की क्या आशा की जा सकती है! बाप का यह कर्तव्य है कि वह अपनी सन्तान का अच्छे से अच्छा नाम रखे। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि नाम का प्रभाव पूरे जीवन पर पड़ता है। सन्तान की शिक्षा-दीक्षा की उपेक्षा करना भी सही नहीं। अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा पर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता होती है। उन्हें जीवन के उच्च सिद्धान्त और इस्लामी शिष्टाचार एवं सभ्यता से परिचित न कराना उनको विनाश और हलाकत के सुपुर्द कर देना है।

लड़का बालिग़ (व्यस्क) हो जाए तो उसके विवाह की शीघ्र चिन्ता होनी चाहिए। समय पर शादी न करने के कारण यदि लड़का यौन-पथभ्रष्टता और व्यभिचार में पड़ गया तो बाप इस गुनाह की आपदा से बच न सकेगा। लड़के के अलावा लड़की के सम्बन्ध में भी यही ताकीद है कि शादी के योग्य होने के बाद उसकी शादी में विलम्ब उचित नहीं।

(7) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-उमर (रज़ि०) से उल्लेख किया गया है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "दुनिया की हैसियत एक धन

सामग्री (मताअ़) की है और दुनिया की धन सामग्री में सर्वोत्तम वस्तु नेक स्त्री है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अबू-दाऊद में है कि आप (सल्ल०) ने कहा, "क्या मैं तुझे बताऊँ जो सबसे उत्तम ख़ज़ाना है, वह नेक स्त्री है।" एक हदीस में नेक स्त्री को इनसान का सौभाग्य कहा गया है। (हदीस : अहमद)

स्त्री को सर्वोत्तम धन सामग्री कहने का तात्पर्य यह है कि अल्लाह ने उसे इसलिए कदापि नहीं पैदा किया कि उसका अनादर किया जाए और उसे उसके अपने वैध अधिकारों से वंचित रखा जाए और पुरुष अपने को उससे उच्चतर समझकर उसपर अत्याचार करे और उसके साथ अन्याय करता रहे। स्त्री को घृणित चीज़ समझना मूर्खता है। वह पुरुष की जीवन-साथी और जीवन में दुख हरनेवाली है। किसी समाज में स्त्री यदि महाउपद्रव का कारण बनती है तो इसमें स्त्री का दोष नहीं, बल्कि उस सभ्यता और संस्कृति और तथाकथित 'कल्चर' का दोष है जिसमें स्त्री को बेपरदा, अर्धनग्न और महफ़िल की रौनक़ बनाकर रखा जाता है, ताकि कामवासना की तृप्ति हो। जबकि स्त्री का वास्तविक कार्य-क्षेत्र उसका अपना घर है, न कि कहीं और।

निकाह का उद्देश्य

(1) हज़रत उतबा बिन-मुंज़िर (रज़ि०) बयान करते हैं कि हम अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित थे कि आप (सल्ल०) ने ता सीन-मीम (क़ुरआन, सूरा अल-क़सस) पढ़ी, यहाँ तक कि जब हज़रत मूसा (अलैहि०) के वृत्तांत पर पहुँचे तो कहा, "मूसा ने अपने गुप्तांग को (बुरे कर्म से) बचाने के उद्देश्य से और अपने पेट को (हलाल खाने से) भरने के लिए आठ या दस वर्ष तक मज़दूरी की।" (हदीस : अहमद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : यह वृत्तांत सूरा क़सस में बयान हुआ है कि हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम किस तरह मदयन पहुँचे और वहाँ एक सज्जन पुरुष की बेटी से आपने इस शर्त पर निकाह कर लिया कि आप उनकी सेवा 8 या 10 वर्ष तक करेंगे। (सूरा अल-क़सस, आयत 23-28)

हज़रत मूसा (अलैहि०) मदयन में असहाय अवस्था में पहुँचे थे। आपने वहाँ 8 या 10 वर्ष मज़दूरी करने की शर्त इसलिए क़बूल कर ली ताकि वे

अपना पेट हलाल कमाई से भर सकें और निकाह करके वैध रूप से अपनी स्वाभाविक कामेच्छा पूरी कर सकें और अपने आपको व्यभिचार से सुरक्षित रख सकें।

इससे मालूम हुआ कि पाकदामनी और पवित्र जीवन को वह महत्व प्राप्त है कि उसकी सुरक्षा के लिए यदि मेहनत–मज़दूरी भी करनी पड़े तो इसमें लज्जा की कोई बात नहीं।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह बिन–मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ऐ नौजवानो! तुममें से जिस किसी को निकाह की ज़िम्मेदारियों का बोझ उठाने की सामर्थ्य प्राप्त हो उसे शादी कर लेनी चाहिए, क्योंकि शादी निगाह को बचाती और गुप्तांग की रक्षक है। और जिस किसी में निकाह की ज़िम्मेदारियों का बोझ उठाने की सामर्थ्य न हो वह रोज़े रखे क्योंकि रोज़ा काम–वासना को तोड़ता है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस में निकाह के एक प्रमुख गुण एवं विशेषता का उल्लेख किया गया है। वह यह कि मनुष्य की पाकदामनी और उसकी निगाह की पवित्रता में निकाह को बड़ा हिस्सा प्राप्त है। यदि आदमी चाहता है कि वह पाकदामन रहे तथा उसकी निगाहें पाक रहें तो उसे शादी से हरगिज़ मुँह नहीं मोड़ना चाहिए, अन्यथा वह हमेशा ख़तरे में घिरा रहेगा। इस स्थिति में इसकी आशंका शेष रहेगी कि वह किसी समय कामवासना के वशीभूत हो जाए और ग़लत दिशा में उसके क़दम उठ जाएँ। पत्नी की उपस्थिति में अपनी पाकदामनी की रक्षा करना और अपनी निगाहों को आवारगी से बचाना उसके लिए कठिन न होगा। किसी कारणवश यदि किसी व्यक्ति को निकाह करने की सामर्थ्य प्राप्त न हो तो इस स्थिति में भी उसे आत्मशुद्धि की चिन्ता तो करनी ही होगी। निकाह न करने की स्थिति में उसे चाहिए कि रोज़े रखे। रोज़े के द्वारा वह अपनी कामवासनाओं को नियंत्रित रख सकता है। रोज़े से वासना–शक्ति टूट जाती है और इस प्रकार आदमी आसानी से अपने आपको पथभ्रष्टता से बचा सकता है।

(3) हज़रत अबू–हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "ऊँटों पर सवार होनेवाली औरतों (अर्थात अरब औरतों) में सर्वोत्तम क़ुरैश की नेक स्त्रियाँ हैं जो छोटे बच्चों से अत्यधिक प्रेम और स्नेह

करती हैं और जो अपने पति के माल (धन) की संरक्षक और भरोसे के लायक़ होती हैं।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि सर्वोत्तम बीवी (पत्नी) उसे कहेंगे जिसका वात्सल्य बच्चों के प्रति बढ़ा हुआ हो और पति के माल को बरबाद न होने दे। क़ुरैश की औरतों में यह गुण पाया जाता था, इसलिए आप (सल्ल०) ने उनकी प्रशंसा की।

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "तीन व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी सहायता अल्लाह पर (उसके वादे के मुताबिक़) अनिवार्य है, एक तो वह ग़ुलाम जो अपना मूल्य अपने मालिक को चुकाने का इरादा रखता हो (जितना दोनों के बीच तय हो चुका हो, ताकि वह आज़ाद हो सके)। दूसरा निकाह करनेवाला वह व्यक्ति जिसका इरादा अपनी पाकदामनी की रक्षा करना हो और तीसरा अल्लाह की राह में जिहाद करनेवाला।" (हदीस : तिर्मिज़ी, नसई, इब्ने-माजा)

व्याख्या : ग़ुलामी से आज़ाद होने की इच्छा एक स्वाभाविक इच्छा है। हौसलामन्द और ज़िन्दादिल इनसान ग़ुलामी का जीवन व्यतीत करना पसन्द नहीं कर सकता। अल्लाह भी इनसान की इस नैसर्गिक इच्छा की क़द्र करता है। इसलिए वह वादा करता है कि वह निश्चित रूप से ऐसे ग़ुलामों की मदद करेगा। अर्थात् वह ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देगा कि आज़ादी प्राप्त करनेवाला ग़ुलाम निर्धारित मूल्य अदा करके आज़ादी हासिल कर सके।

इसी प्रकार वह व्यक्ति जो व्यभिचार से बचने के इरादे से निकाह करना चाहता है अल्लाह को इतना प्रिय है कि वह उसकी मदद अपने ज़िम्मे ले लेता है और उसकी कठिनाइयों को दूर करता है। तीसरा व्यक्ति जिसका वर्णन इस हदीस में किया गया है जिहाद करनेवाला वह पुरुष है जो अल्लाह का बोल ऊँचा करने की कामना में अपनी जान हथेली पर रखकर अल्लाह की राह में संघर्षरत रहता है। अल्लाह उसकी मदद से कभी ग़ाफ़िल नहीं हो सकता।

(5) हज़रत मअक़िल-बिन-यसार (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "तुम ऐसी स्त्री से शादी करो जो (अपने पति से) अधिक प्रेम करनेवाली हो और अधिक सन्तान उत्पन्न करनेवाली हो, क्योंकि मैं दूसरी उम्मतों की तुलना में तुम्हारी अधिकता पर गर्व करूँगा।"

(हदीस : अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : निकाह का एक उद्देश्य यह है कि उसके द्वारा आदमी की नस्ल दुनिया में बाक़ी रहती है। नेक औलाद से आदमी को ज़िन्दगी ही में नहीं बल्कि मरने के बाद भी लाभ पहुँचता है। इस हदीस से मालूम हुआ कि औलाद ही नहीं, प्रेम की प्राप्ति भी निकाह का एक मुख्य उद्देश्य है। जिस व्यक्ति को पत्नी का प्रेम प्राप्त न हो उसके जीवन की नीरसता का अनुमान करना कोई कठिन कार्य नहीं।

नबी (सल्ल०) ने यह जो कहा कि मैं तुम्हारी अधिकता पर गर्व करूँगा, तो अपने समुदाय के बाहुल्य पर ख़ुशी और हर्ष का होना एक स्वाभाविक बात है।

निकाह के शिष्टाचार

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "औरत से विवाह करने में सामान्यत: अपने समक्ष चार बातें रखी जाती हैं : उसका धन, उसके वंश की श्रेष्ठता, उसकी सुन्दरता और उसका दीन। तेरे दोनों हाथ धूल-धूसरित हों, तुझे तो दीनदार (स्त्री) को हासिल करना चाहिए।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : धन तो वास्तव में धर्म और नैतिकता का धन है। मालदार, ख़ूबसूरत और उच्च ख़ानदानवाली स्त्री से निकाह किया और यह न देखा कि उसमें दीनदारी और नैतिक गुण भी हैं या नहीं, अब यदि वह असभ्य और धर्म के प्रति बेपरवाह निकली तो यह सफलता नहीं, असफलता की बात होगी। जीवन आनन्दमय होने के बजाय कटुता से भर जाएगा। ऐसी पत्नी से इसकी भी आशा नहीं की जा सकती कि वह दीन की राह में आपकी सहायक सिद्ध होगी।

धर्म और नैतिक गुणों से सुशोभित होने के साथ यदि स्त्री मालदार और श्रेष्ठ परिवार की और सुन्दर भी हो तो क्या कहना। किन्तु यदि धन, वंश, सुन्दरता और धार्मिकता में से किसी को प्राथमिकता देनी हो तो सदैव निस्संकोच दीन और नैतिक गुण को प्राथमिकता देनी चाहिए अर्थात् उस स्त्री से निकाह करे जो दीनदार और नेक हो। धन और बाह्य सौंदर्य की कमी कोई कमी नहीं

होती। दीन से सब्र की आपूर्ति हो जाती है। लेकिन दीन नहीं है तो उसकी आपूर्ति न वंश द्वारा सम्भव है और न धन और सौन्दर्य से यह कमी पूरी हो सकती है।

नबी (सल्ल०) का कथन है कि "दुनियादारों की दृष्टि में श्रेष्ठता का आधार धन है, जिसकी ओर वे दौड़ते हैं।" (हदीस : नसई) अर्थात् धन ही उनकी निगाह में श्रेष्ठ गोत्र है। जबकि वास्तविक गोत्र तो वह नैतिक गुण और उच्च चरित्र है जो किसी परिवार में पाया जाता हो चाहे वह परिवार धन-दौलत में बढ़ा हुआ न हो।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने इस बात से मना किया कि तुम एक-दूसरे के सौदे पर सौदा करो, और कोई व्यक्ति अपने भाई की मंगनी पर मंगनी का पैग़ाम न भेजे जब तक कि पहला मंगेतर अपनी मंगनी छोड़ न दे या उसे इसकी इजाज़त न दे दे।

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् एक-दूसरे के ग्राहक से अपने सौदे की बात न करो। किसी के कारोबार में बाधक बनना किसी तरह जाइज़ नहीं।

इसी प्रकार जब एक मुसलमान ने शादी का पैग़ाम कहीं दिया हो तो वहाँ पैग़ाम देना उचित नहीं, क्योंकि इससे अपने भाई का स्पष्ट रूप से हक़ मारा जाता है, जो सही नहीं। इसके अतिरिक्त यह शालीनता और सज्जनता के भी विरुद्ध है कि कोई व्यक्ति ऐसी जगह पैग़ाम भेजे जहाँ किसी भाई का पैग़ाम पहुँच चुका है। हाँ, यदि वह पैग़ाम किसी कारणवश क़बूल न किया जाए तो फिर दूसरा व्यक्ति पैग़ाम दे सकता है। या मंगेतर ख़ुद हट जाए और उसकी ओर से इजाज़त मिल जाए तो वहाँ पैग़ाम देने में कोई बुराई नहीं है।

(3) हज़रत उक़बा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "सभी वे शर्तें जो तुम्हें पूरी करनी होती हैं, उनमें सबसे ज़्यादा पूरा करने का हक़ तुमपर उस शर्त का है जिसके द्वारा गुप्तांगों को तुमने अपने लिए वैध किया हो।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यूँ तो सारी ही अपेक्षित माँगे (Demands) जो किसी इनसान के ज़िम्मे हों, पूरी करने के लिए होती हैं लेकिन पति अपनी पत्नी से जिस शर्त पर उसका सहवास प्राप्त करता है वह कई दृष्टि से महत्व रखता है। इसी का

एहसास दिलाने के उद्देश्य से नबी (सल्ल०) ने ये शब्द प्रयोग किए हैं, "जिसके द्वारा गुप्तांगों को तुमने अपने लिए वैध किया हो।" इसलिए 'मह्र' के अदा करने में किसी प्रकार की सुस्ती और लापरवाही उचित नहीं और न ही पत्नी के दूसरे अधिकरों की उपेक्षा की जा सकती है।

पुरुष और स्त्री की हैसियत वास्तव में एक-दूसरे के लिए पूरक की है। दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे होते हैं और अपनी पूर्णता के लिए व्याकुल। दोनों में एकता और समरसता अपेक्षित है। सामाजिक जीवन में इस्लाम ने पुरुष और स्त्री के बीच कार्य-विभाजन का ध्यान रखा है। घर के अन्दरूनी मामलों की ज़िम्मेदारी मूलतः स्त्री पर डाली गई है। बाहरी मामलों और धन अर्जित करने का ज़िम्मेदार वास्तव में पुरुष को ठहराया गया है। यह विभाजन दोनों की प्रकृति और क्षमता के ठीक अनुकूल है। पुरुष चूँकि मूलतः स्त्री के ख़र्चो का ज़िम्मेदार होता है, इसलिए जब वह किसी स्त्री से निकाह करता है तो इसका मतलब यह होता है कि वह उस स्त्री के आवश्यक ख़र्चों की ज़िम्मेदारी भी अपने ऊपर ले रहा है। 'मह्र' के रूप में सम्मान जनक धन इस बात का एक प्रत्यक्ष प्रतीक है कि मह्र की रक़म अदा करके व्यावहारिक रूप से मानो पुरुष इस बात का वचन देता है कि वह पत्नी के समस्त ख़र्चों का बोझ उठाएगा।

(4) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है, वह बयान करती हैं कि मैंने निवेदन किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! क्या औरतों से शादी के बारे में इजाज़त ली जाती है? आप (सल्ल०) ने कहा, "हाँ।" मैंने निवेदन किया, कुँवारी से जब इजाज़त ली जाती है तो वह शरमाती है और चुप रहती है। आप (सल्ल०) ने कहा, "उसका चुप रहना ही उसकी अनुमति है।"

(हदीस : बुख़ारी)

(5) हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जब तुममें से कोई किसी स्त्री की तरफ़ निकाह का पैग़ाम भेजना चाहे तो यदि उसके लिए यह सम्भव हो कि वह उनको (स्त्री के मुँह-हाथ को) देख सके जो उसे निकाह की ओर आकर्षित करते हैं, तो वह देख ले।" (हदीस : अबू-दाऊद)

(6) हज़रत मुग़ीरा-बिन-शुअ्बा (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के समय में एक स्त्री को निकाह का पैग़ाम दिया। नबी (सल्ल०) ने कहा, "क्या तुमने उसे देखा भी?" मैंने कहा कि नहीं। आपने कहा, "तुम उस स्त्री को एक नज़र देख लो! क्योंकि तुम दोनों के बीच लगाव और प्रेम पैदा हो इसके लिए उसे देखना बहुत ही उचित और अच्छा है।" (हदीस : नसई)

व्याख्या : जिस स्त्री के साथ आदमी को ज़िन्दगी बितानी है, उसे एक नज़र देख लेने की शिक्षा इसलिए दी जा रही है कि पुरुष इस पहलू से संतुष्ट हो जाए कि वह जिस स्त्री से शादी करने जा रहा है उसमें कोई ऐब नहीं है और वह उसके लिए हर पहलू से स्वीकार करने के योग्य है। इससे पति और पत्नी के बीच आत्मीयता और प्रेम का वातावरण उत्पन्न होता है। इसके विपरीत पुरुष यदि स्त्री की ओर से सन्तुष्ट हुए बिना शादी कर लेता है और 'ईश्वर न करे!' पत्नी में कोई ऐब निकल आया तो प्रेम और स्नेह की बात तो अलग रही, पछतावा और पत्नी से सख़्त नफ़रत हो सकती है और यह दोनों के जीवन को कडुआहट से भर देने के लिए काफ़ी है।

अगर पुरुष के लिए यह संभव न हो कि वह अपनी होनेवाली पत्नी को देख सके तो किसी विश्वसनीय स्त्री ही को भेजकर उसके विषय में इत्मीनान हासिल कर ले।

(7) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जो स्त्री अपने वली (अभिभावक) की अनुमति के बिना निकाह कर ले तो उसका निकाह सही न होगा।" यह बात आपने तीन बार दुहराई। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : यहाँ वली से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो किसी लड़की या स्त्री की शादी का ज़िम्मेदार होता है। निकाह के सम्बन्ध में अभिभावकता (Guardianship) के अधिकार क्रमशः निकट के रिश्तेदार को प्राप्त होते हैं। अभिभावक या वली से यही आशा की जाती है कि लड़की के मामले में उसका फैसला हितैषी का होगा। बुद्धि और विवेक और अपने अनुभवों के आधार पर वह लड़की की शादी किसी ऐसी जगह नहीं करेगा जिसको वह बेहतर न पा रहा हो। अप्रौढ़ता और अनुभवहीनता के कारण लड़की अपने

भविष्य के बारे में ठीक ढंग से नहीं सोच सकती। इसलिए अभिभावक के समर्थन और अनुमति को शरीअत ने आवश्यक ठहराया है।

बालिग़ और समझवाली स्त्री या ऐसी स्त्री को जिसका निकाह पहले कभी हो चुका हो, अपने बारे में ख़ुद फ़ैसला करने का अधिकार प्राप्त है। उसका निकाह उसके वली की इजाज़त के बिना वैध है। एक हदीस में ये शब्द आए हैं— "ऐसी स्त्री जिसका विवाह पहले कभी हो चुका हो उसे अपने वली या अभिभावक से बढ़कर अपने बारे में अधिकार प्राप्त है। बल्कि कुँवारी लड़की से भी उसका बाप उसके निकाह के विषय में अनुमति प्राप्त करे और उसकी अनुमति (रज़ामन्दी) उसका चुप रहना है।"

(8) हज़रत समुरा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "जिस स्त्री का निकाह उसके दो वली (दो अलग-अलग व्यक्तियों से) कर दें तो वह स्त्री उसे मिलेगी जिसके साथ पहले निकाह हुआ है, और जो व्यक्ति कोई चीज़ दो आदमियों के हाथ बेच दे तो वह चीज़ उस व्यक्ति को मिलेगी जिसके हाथ उसने पहले बेची है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

(9) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक कुँवारी नबी (सल्ल०) के पास आई। उसने बताया कि उसके बाप ने उसका निकाह कर दिया, हालाँकि यह विवाह उसे पसन्द नहीं है। नबी (सल्ल०) ने उसको अधिकार दे दिया (कि वह चाहे तो इस निकाह को बाक़ी रखे और चाहे तो इस निकाह को तोड़ दे)। (हदीस : अबू-दाऊद)

(10) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि) से उल्लेख किया गया है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जिसका विवाह पहले हो चुका हो उस स्त्री पर वली को कोई अधिकार नहीं है और कुँवारी से इजाज़त ली जाएगी और उसके चुप रहने को उसकी स्वीकृति समझी जाएगी।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

(11) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "विधवा जवान स्त्री को अपने विषय में फ़ैसला करने का हक़ अपने वली के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा हासिल है। रही कुँवारी तो उसके निकाह के सिलसिले में उससे इजाज़त ली जाएगी और उसका चुप रहना उसकी अनुमति है।" (हदीस : नसई)

(12) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने

कहा, "बहुत ही बरकतवाला निकाह वह है जो मेहनत व मशक़्क़त के लिहाज़ से ज़्यादा आसान हो।" (हदीस : बैहक़ी)

व्याख्या : अर्थात् ऐसा निकाह जिसमें कोई कठिनाई न हो। न पति से महर के रूप में भारी धन की माँग की जाए और न इस सिलसिले में दूसरे प्रकार की माँगें पूरी करनी पड़ती हों। पत्नी सन्तोषी हो। पति की हैसियत से बढ़कर न वह धन व सामान की माँग करनेवाली हो और न विविध प्रकार की फ़रमाइशें करके पति को परेशान करना जानती हो।

(13) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लेख किया गया है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जो स्त्रियाँ अपना निकाह गवाह के बिना कर लें वे भ्रष्ट और व्यभिचारिणी हैं।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : अर्थात् दूसरों की उपस्थिति और गवाह के बिना चोरी-छुपे निकाह करना वैध नहीं है। यह रिवायत तिर्मिज़ी में अन्य विधि से भी आई है, अर्थात् नबी (सल्ल०) से सीधे उल्लिखित नहीं हुई है जिसका मतलब यह है कि उपर्युक्त बात नबी (सल्ल०) का कथन नहीं है बल्कि यह ख़ुद हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि) का कथन और फ़तवा है। अगर इसे हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि) का कथन भी माना जाए तब भी यह स्पष्ट है कि उन्होंने नबी (सल्ल०) से सुनकर ही यह फ़तवा दिया होगा। ऐसा नहीं हो सकता कि ऐसी बात नबी (सल्ल०) से सुने बिना अपनी ओर से कहें। उम्मत के सभी मुज्तहिद इमामों की इसपर सहमति है कि गवाही के बिना निकाह सम्पन्न नहीं होता। गवाही निकाह की शर्तों में से एक प्रमुख शर्त है।

निकाह का ख़ुतबा

(1) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हमें नमाज़ में पढ़ा जानेवाला 'तशह्हुद' भी सिखाया है और किसी आवश्यकता के समय जो तशह्हुद पढ़ना चाहिए, उसकी शिक्षा भी दी है। नमाज़ का तशह्हुद तो इस प्रकार बयान फ़रमाया, "अत्-तहिय्यातु लिल्लाहि वस्-सलवातु वत्-तैयिबातु अस्-सलामु अलै-क ऐयुहन्-नबिय्यु व रह्मुतुल्लाहि व बरकातुहू अस्-सलामु अलैना व अला इबादिल्लाहिस्-सालिहीन। अश्हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाहु व अशहदु अन-न मुहम्मदन

अब्दुहू व रसूलुहू। [सब मौखिक व शारीरिक और धन सम्बन्धी इबादतें अल्लाह के लिए हैं। ऐ नबी, आपपर सलाम हो और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकत हो। और हमपर और अल्लाह के सभी नेक बन्दों पर सलाम हो। मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं, और मैं इस बात की भी गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल हैं।]

और किसी आवश्यकता के समय पढ़ा जानेवाला तशह्हुद यह है : अलहम्दु लिल्लाहि नसतईनुहू व नसतग़फ़िरुहू व नऊज़ु बिल्लाहि मिन शुरूरि अनफ़ुसिना मैंयहदिहिल्लाहु फ़ला मुज़िल-ल लहू व मैंयुज़लिलहु फ़ला हादि य लहू व अशहदु अल-ला इला-ह इल्लल्लाहु व अशहदु अन्न मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुहू। [सभी तारीफ़ें अल्लाह के लिए हैं, हम उससे मदद चाहते हैं और उसी से क्षमा याचना करते हैं और हम अपने नफ़्स (मन) की बुराइयों से बचने के लिए अल्लाह की पनाह चाहते हैं। जिस किसी का अल्लाह मार्गदर्शन करे, उसे कोई पथभ्रष्ट करनेवाला नहीं और जिसको वह पथभ्रष्टता में छोड़ दे उसका कोई मार्गदर्शन करनेवाला नहीं। मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं और मैं इसकी भी गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (सल्ल०)अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल हैं।"]

फिर आप (सल्ल०) तीन आयतें पढ़ते : या ऐयुहल्-लज़ी-न् आ-मनुत्तक़ुल्ला-ह हक़्-क़ तुक़ातिही व ला तमूतुन-न इल्ला व अन्तुम मुसलिमून। [ऐ ईमान लानेवालो! अल्लाह का डर रखो जैसा कि उससे डरने का हक़ है, और मरना तो फ़रमांबरदार ही रहकर मरना।] या ऐयुहल-लज़ी-न आ-मनुत्तक़ुल्लाहल-लज़ी तसाअलू-न बिही वल-अरहाम, इन्नल्ला-ह का-न अलैकुम रक़ीबा। [ऐ ईमान लानेवालो! अल्लाह का डर रखो जिसका हवाला देकर तुम एक-दूसरे के सामने अपनी माँगें रखते हो और नाते-रिश्तों का भी तुम्हें ध्यान रखना है, निश्चय ही अल्लाह तुम पर निगराँ है।] या ऐयुहल-लज़ी-न आ-मनुत्तक़ुल्ला-ह व क़ूलू कौलन् सदीदन युंसलिह लकुम आमा-लकुम व यग़फ़िर लकुम ज़ुनू-बकुम व मैंयुतिइल्ला-ह व रसूलहू फ़क़द फ़ा-ज़ फ़ौज़न अज़ीमा। [ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अल्लाह का डर रखो और बात दुरुस्त कहो, वह तुम्हारे कर्मों को ठीक कर देगा

और तुम्हारे गुनाहों को क्षमा कर देगा। और जो कोई व्यक्ति अल्लाह और उसके रसूल की आज्ञा का पालन करेगा, तो उसने बड़ी सफलता प्राप्त की।]

(हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद, नसई, इब्ने-माजा)

व्याख्या : 'शरहुस-सुन्नह' की रिवायत में हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि०) से यह भी उल्लेख किया गया है कि ज़रूरत के समय पढ़े जानेवाले तशहहुद का मतलब वह ख़ुतबा है जो निकाह के समय पढ़ा जाता है। यह इस्लामी शिआर (निशानी) में से है कि ख़ुतबे में अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाने का एलान व इज़हार किया जाए। तशह्हुद शब्द में इसी ईमान की गवाही और उसके इज़हार की तरफ़ इशारा पाया जाता है।

आवश्यकता के समय पढ़े जानेवाले तशह्हुद में 'इब्ने-माजा' की रिवायत में "अल्हम्दु लिल्लाहि" के बाद "नह्मदुहू" (हम उसकी तारीफ़ करते हैं) और "मिन शुरूरि अन्फ़ुसिना" के बाद "व मिन् सैयिआति आमालिना" (और अपने कर्मों की बुराइयों से बचने के लिए) के अतिरिक्त शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

अबू-दाऊद की एक रिवायत में इसके ये शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं, "अर्-स-लहू बिल् हक़्क़ि बशीरौं व नज़ीरन बै-न य-दयिस्सा अति मैंयुतिइल्ला-ह व रसू-लहू फ़-क़द् र-श-द व मैंयअसिहिमा फ़-इन्नहू ला यज़ुरु इल्ला नफ़्सहू व ला यज़ुर-रुल्ला-ह शैआ।" [उसने अपने रसूल को क़ियामत की घड़ी से पहले हक़ के साथ ख़ुशख़बरी देनेवाला और डरानेवाला बनाकर भेजा। जिस किसी ने अल्लाह और उसके रसूल की आज्ञा का पालन किया, वह राह पा गया। और जिसने अल्लाह और रसूल की अवज्ञा की उसने ख़ुद अपना ही बिगाड़ा और वह अल्लाह का कुछ न बिगाड़ सकेगा।]

ख़ुतबे में जो आयतें पढ़ते थे वे सूरा-4 अन-निसा और सूरा-33, अहज़ाब से उद्धृत हैं। "या ऐयुहल्-लज़ी-न आ- मनुत्-तक़ुल्लाहल-लज़ी" के बजाए सूरा अन-निसा की आयत में "वत्तक़ुल्ला-हल लज़ी" के शब्द आए हैं।

निकाह के इस ख़ुतबे को ध्यान से पढ़ने पर यह मालूम होता है कि नबी (सल्ल०) ने निकाह के अवसर पर यह ज़रूरी समझा कि लोगों पर यह सच्चाई पूरी तरह स्पष्ट हो कि शादी या निकाह मात्र मनोरंजन नहीं है, बल्कि

निकाह एक बड़ी ज़िम्मेदारी है। शादी करके आदमी वास्तव में जीवन का बड़ा भारी बोझ उठा रहा होता है। वह लोगों के सामने जीवन के प्रति एक महत्वपूर्ण प्रतिज्ञा कर रहा होता है। इसलिए शादी के अवसर पर आदमी को पूरे एहसास और चेतना के साथ यह संकल्प करना चाहिए कि वह जीवन में इस प्रतिज्ञा का पूर्ण रूप से आदर करेगा। वचन भंग–करके वह कदापि अपने प्रभु को अप्रसन्न नहीं कर सकता। वह अच्छी तरह समझता है कि अल्लाह से कोई चीज़ छुपी नहीं रह सकती। वह हर मामले को देख रहा है। आदमी जो कुछ कह रहा है और जिस बात का इक़रार कर रहा है उसमें उसकी ज़बान का साथ उसका दिल भी दे रहा है।

अल्लाह और उसके रसूल की नाफ़रमानी करके न वह दुनिया में इज़्ज़त पा सकता है और न आख़िरत (परलोक) में कोई सफलता उसके हिस्से में आ सकती है। वास्तविक सफलता और कल्याण तो अल्लाह और उसके रसूल के आदेशों की पाबन्दी पर निर्भर करता है। वह अल्लाह और रसूल पर सिर्फ़ मौखिक रूप से ईमान लाने तक ही मुसलमान नहीं हुआ है, बल्कि जीवन के सारे ही मामलात में उसे एक मुसलमान का कर्तव्य निभाना है और इस कर्तव्य–पालन पर जीवन के अंतिम क्षण तक क़ायम रहना है।

दावते–वलीमा (विवाह के उपलक्ष में प्रीतिभोज)

(1) हज़रत अबू–हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "सबसे बुरा भोजन उस विवाह–भोज का भोजन है जिसमें धनवानों को बुलाया जाए और मुहताजों को छोड़ दिया जाए। और जिस किसी ने (बिना किसी मजबूरी के) दावत क़बूल न की, उसने अल्लाह और उसके रसूल की अवज्ञा की।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : जहाँ और बहुत–से निकृष्ट भोजन हैं, उनमें से उस विवाह–भोज का भोजन भी निकृष्ट भोजन है जिसमें केवल धनवानों और सुसम्पन्न लोगों को ही बुलाया जाए और मुहताजों व ग़रीबों को छोड़ दिया जाए। विवाह के अवसर पर जो प्रीतिभोज दिया जाता है उसे 'वलीमा' कहते हैं। यह सुन्नत है। नबी (सल्ल०) ने ख़ुद वलीमा की दावत दी है। लेकिन ख़ुशी के मौक़े पर सिर्फ़ मालदारों को याद करना और सिर्फ़ उन्हीं को अपनी ख़ुशियों में

शामिल करना और ग़रीबों व मुहताजों को भुला देना नितांत निर्दयता है और एक गिरी हुई बात है जिसको दीन में कभी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

यह अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की अवज्ञा है कि कोई व्यक्ति किसी विवशता के बिना वलीमा की दावत को स्वीकार न करे। दीन में यह अपेक्षित है कि ईमानवालों के मध्य आत्मीयता और प्रेम का सम्बन्ध हो। बिना किसी मजबूरी के भाई की दावत को क़बूल न करना वास्तव में उस सम्बन्ध व रिश्ता को आघात पहुँचाता है जिसका आदर करना धर्म में आवश्यक ठहराया गया है।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जब तुममें से किसी को वलीमा की दावत दी जाए तो उसे चाहिए कि वह दावत क़बूल करे और आए।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

(3) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने परस्पर मुक़ाबला करनेवालों का खाना खाने से रोका है।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस हदीस से ज्ञात हुआ कि ऐसे लोगों के खाने में शरीक होने से बचना चाहिए जो लोगों की दावतें इसलिए करते हैं कि दूसरों के मुक़ाबले में उनकी शान बढ़े। ऐसे लोगों की दावत में शरीक होने का मतलब इसके सिवा और कुछ नहीं होता कि हम उनके इस मानसिक रोग पर ख़ुश और सन्तुष्ट हैं और उसे अधिक बढ़ाना चाहते हैं।

निकाहे-शिग़ार
(बिना महर के अदले-बदले की शादी)

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने 'निकाहे-शिग़ार' से मना किया है। इब्ने-नुमैर की रिवायत में इतना और अधिक है कि शिग़ार यह है कि आदमी किसी से कहे कि तुम अपनी बेटी की शादी मुझसे कर दो, मैं अपनी बेटी से तुम्हारी शादी कर दूँ, य तुम अपनी बहन की शादी मुझसे कर दो मैं अपनी बहन की शादी तुमसे कर दूँ

(महर के लेने-देने की बात ही शेष न रहे।) (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : बिना महर के अदले-बदले की शादी को परिभाषा में शिग़ार कहते हैं। जैसे कोई अपनी बहन या बेटी देकर दूसरे की बेटी या बहन से निकाह बिना महर के करने की व्यवस्था करे। इस प्रकार की शादी में औरतों के महर का हक़ मारा जाता है। इसलिए इस प्रकार के बदले के निकाह से रोका गया है। निकाह के लिए महर अनिवार्य शर्त है, इससे स्त्री को वंचित नहीं किया जा सकता।

(2) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "इस्लाम में 'शिग़ार' नहीं है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् इस्लाम में शिग़ार अवैध है। स्त्री को महर से वंचित नहीं किया जा सकता। सहीह बुख़ारी में है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने निकाहे-शिग़ार से रोका है। और शिग़ार यह है कि कोई व्यक्ति अपनी बेटी का निकाह इस शर्त पर किसी से करे कि वह भी अपनी बेटी का निकाह उसके साथ कर दे और दोनों में महर कुछ भी न हो।

मुतआ

(1) हज़रत उमर-बिन-अब्दुल अज़ीज़ (रह०) बयान करते हैं कि मुझसे रबीअ-बिन-सबरा अलजुहनी ने रिवायत की और उन्होंने अपने बाप से कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मुतआ से रोका है, "सुन रखो, वह आज के दिन से क़ियामत के दिन तक हराम (अवैध) है और जिस किसी ने कुछ (मुतआ के महर में) दिया हो वह उसको वापस न ले।"(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : एक निश्चित रक़म (राशि) के बदले में एक निश्चित अवधि तक के लिए किसी औरत से निकाह करने को 'मुतआ' कहते हैं। इस्लाम के आरम्भिक काल में मुतआ की गुंजाइश थी लेकिन अन्ततः हमेशा के लिए इसके बिल्कुल हराम होने का एलान कर दिया गया।

मुतआ के अन्दर वास्तव में निकाह और शादी की वास्तविक आत्मा और स्प्रिट नहीं पाई जाती। इसमें दोनों पक्ष के लिए शान्ति की अपेक्षा कष्ट, दुख और आत्मिक व मानसिक परेशानी की सम्भावना अधिक रहती है। इस्लाम में निकाह का उद्देश्य मात्र कामवासना की तृप्ति नहीं है। पत्नी और

पति का सम्बन्ध इससे कहीं अधिक गहरा, मधुर, कोमल और पवित्र होता है। पत्नी और पति को एक-दूसरे के सान्निध्य और सहचारिता में जो मानसिक और हार्दिक शान्ति और सुख प्राप्त होता है, वह अपने आप में बड़ा महत्त्व रखता है। मुतआ में पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध मात्र सामयिक होता है और इसमें मात्र अस्थाई उद्देश्य और ज़रूरत उनके सामने होती है। इसलिए मुतआ के द्वारा जो सम्बन्ध स्थापित होगा वह स्वभावतः उथला होगा और उथले सम्बन्ध और सम्पर्क से कभी भी वह चीज़ हासिल नहीं की जा सकती जो शरीअत में वस्तुतः निकाह से अपेक्षित होती है। और यदि इस अस्थाई सम्बन्ध के परिणामस्वरूप पुरुष और स्त्री में गहरे प्रकार के सम्बन्ध और भावात्मक आत्मीयता पैदा हो गई तो आप ख़ुद सोच सकते हैं कि दोनों की एक-दूसरे से जुदाई किसी क़ियामत से कम नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त मुतआ में दूसरी और भी बहुत-सी ख़राबियाँ हैं जिनको आप थोड़ा-सा विचार करके ख़ुद समझ सकते हैं।

जिनसे निकाह वैध नहीं

(1) हज़रत आइशा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "ख़ानदानी रिश्ते से जो निकाह हराम हैं वे दूध के रिश्ते से भी हराम हैं।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : निकाह वैध और दुरुस्त होने के लिए ज़रूरी है कि स्त्री मुहर्रमात (जिनसे निकाह हराम है) में से न हो। मुहर्रमात के नौ प्रकार फ़ुक़हा (इस्लाम के विधि-शास्त्र के इमामों) ने बयान किए हैं। दूसरे शब्दों में निकाह के अवैध होने के 9 कारण हैं, जिनमें से कुछ को यहाँ संक्षिप्त रूप से बयान किया जाता है—

(i) कुछ स्त्रियाँ नस्ली और ख़ानदानी रिश्तों के कारण हराम ठहराई गई हैं। इसके अन्तर्गत माँ, बेटी, बहन, फूफी, ख़ाला, भतीजी और भाँजी आती हैं। अतः इनमें से किसी से भी निकाह करना अवैध है।

माँ के वर्ग में दादी, नानी, परनानी इत्यादि शामिल हैं। बेटी के वर्ग में अपनी बेटी, बेटे की बेटी (पोती), और बेटी की बेटी (नवासी, नतनी) और इस तरह नीचे तक सब शामिल हैं। इसी तरह बहन से भी निकाह नहीं हो

सकता, चाहे दोनों का बाप एक हो या बाप एक तो न हो लेकिन माँ एक हो।

(ii) कुछ स्त्रियाँ ससुराली रिश्ते के कारण हराम ठहराई गई हैं। इसके अन्तर्गत पत्नी की माँ, पत्नी की दादी, पत्नी की नानी और पत्नी के बाप और माँ की दादी इत्यादि आती हैं।

इसी प्रकार पत्नी की बेटी और पत्नी के बेटों की बेटियाँ, पत्नी की नवासी की बेटियाँ इत्यादि। ये सब हराम हैं जबकि पत्नी से सम्भोग कर लिया हो। फिर इसी प्रकार बेटे की पत्नी, पोते की पत्नी और नवासे (नाती) की पत्नी से भी निकाह हराम है। सौतेली माँ और सौतेली दादी व सौतेली नानी से भी निकाह वैध नहीं हैं।

यदि किसी व्यक्ति ने किसी स्त्री से अवैध रूप से सम्भोग (व्यभिचार) किया तो इस स्थिति में उस स्त्री की माँ, नानी, दादी और उस स्त्री की बेटी, पोती, नवासी सब उसपर हराम हो जाएँगी और इसी तरह स्त्री के लिए व्यभिचार करनेवाले पुरुष के बाप, दादा, नाना और उसके लड़के, पोते और नवासे सभी हराम हो जाएँगे। अर्थात् इनसे उसका निकाह नहीं हो सकता।

(iii) कुछ स्त्रियाँ दूध पिलाने (रज़ाअत) के कारण हराम क़रार पाती हैं। वे सारे रिश्ते जो नस्ली और ससुराली होने के कारण हराम हैं, वे दूध पिलाने की वजह से भी हराम ठहरेंगे। उदाहरणस्वरूप अगर किसी स्त्री ने किसी बच्चे को उसकी दूध पीने की अवस्था में दूध पिलाया है, तो उन दोनों में माँ और औलाद का सम्बन्ध ठहरेगा और उस स्त्री का पति उस बच्चे का रज़ाई बाप होगा। रज़ाई माँ और रज़ाई बाप के वे सारे ही रिश्ते उस बच्चे के लिए हराम होंगे जो सगे माता-पिता के रिश्ते के कारण हराम क़रार पाते हैं।

(iv) आज़ाद व्यक्ति के लिए शरीअत में इसकी गुंजाइश है कि वह एक समय में चार औरतों से निकाह कर ले। लेकिन वह एक समय में चार से अधिक औरतों से निकाह नहीं कर सकता। अगर वह चार के बाद पाँचवीं स्त्री से निकाह करता है तो यह पाँचवाँ निकाह अवैध ठहरेगा।

जिस तरह चार औरतों से अधिक को अपने निकाह में रखना जाइज़ नहीं, ठीक उसी तरह किसी व्यक्ति के लिए 'ज़वातुल-अरहाम' को इकट्ठा करना भी जाइज़ नहीं है। अर्थात् वह ऐसी दो औरतों को एक समय में अपने निकाह में नहीं रख सकता जो आपस में सगी या एक माँ के पेट से और

'नस्बी' रिश्तेदार हों। अतः दो बहनों को एक साथ अपने निकाह में रखना शरीअत में हराम क़रार दिया गया है। इस सम्बन्ध में नियम यह है कि ऐसी दो स्त्रियाँ जिनमें ऐसा रिश्ता पाया जाता हो कि उनमें से एक अगर पुरुष होती तो उनका आपस में निकाह वैध न होता, तो ऐसी दो औरतों को एक समय में अपने निकाह में रखना किसी के लिए वैध न होगा। जिस तरह दो बहनों को (चाहे वे सगी बहनें हों या दूध शरीक बहनें) एक साथ निकाह में नहीं रखा जा सकता इसी तरह किसी लड़की और उसकी सगी या दूध शरीक फूफी को भी एक समय में अपने निकाह में रखना अवैध है और इसी प्रकार किसी लड़की और उसकी सगी या दूध शरीक ख़ाला या इसी प्रकार की किसी और रिश्तेदार स्त्री को एक साथ अपने निकाह में रखना वैध नहीं है।

(v) उन औरतों से भी निकाह नहीं किया जा सकता जो किसी के निकाह में पहले से हों।

(vi) मुशरिक (बहुदेववादी) औरतों से निकाह करना भी शरीअत में हराम क़रार दिया गया है।

(vii) किसी स्त्री को यदि तीन तलाक़ें दे दी गई हों तो उससे दोबारा निकाह नहीं हो सकता, अलबत्ता उस स्त्री का किसी व्यक्ति से निकाह हो जाए और दोनों में सम्भोग भी हो जाए, फिर अगर वह व्यक्ति उस स्त्री को तलाक़ दे देता है तो 'इद्दत' (एक निश्चित निर्धारित समय) गुज़रने के बाद उस स्त्री का उसके अपने पति से पुनः निकाह हो सकता है।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अपनी पत्नी को उसकी फूफी के साथ निकाह में न रखा जाए और न अपनी पत्नी को उसकी ख़ाला के साथ अपने निकाह में रखा जाए।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

(3) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि मेरे रज़ाई (दूध के रिश्ते के) चाचा आए और उन्होंने मेरे पास आने की इजाज़त माँगी। मैंने जवाब दिया कि जब तक अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछ न लूँ उनको आने की इजाज़त नहीं दे सकती। अतः अल्लाह के रसूल (सल्ल०) आए तो मैंने आपसे इसके बारे में पूछा। आप (सल्ल०) ने कहा, "वे तो तुम्हारे चचा हैं, उन्हें अपने पास आने की इजाज़त दे दो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि औरतों को परदे का कितना ध्यान रखना चाहिए और बेपरदा पुरुषों के सामने आने में उनको शरीअत का आदर करना कितना ज़रूरी है।

(4) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक बार नबी (सल्ल०) उनके पास आए। उस समय उनके पास एक व्यक्ति बैठा हुआ था। आपको यह अप्रिय लगा। हज़रत आइशा फ़रमाती हैं कि मैंने कहा कि ये तो मेरे दूध शरीक भाई हैं। आप (सल्ल०) ने कहा, "देखो तुम्हारा भाई कौन हो सकता है, क्योंकि रज़ाअत (दूध पीने) का एतिबार भूख के समय है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मतलब यह है कि रज़ाअत के आदेश उस स्थिति में लागू होंगे जबकि दूध पीने की अवस्था के समय में ख़ुराक के रूप में दूध पिया गया हो और भूख दूर की गई हो। बच्चे के दूध पीने की अवधि अधिकतर उलमा के नज़दीक दो साल है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह०) के नज़दीक यह अवधि ढाई साल तक रहती है। इससे मालूम हुआ कि दूध पीने की अवधि समाप्त होने के बाद बड़ी उम्र में किसी स्त्री का दूध पी लेने से हुरमते-रज़ाअत का हुक्म लागू नहीं होता।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इससे रोका है कि फूफी के साथ भतीजी को, या भतीजी के साथ फूफी को निकाह में इकट्ठा किया जाए। या ख़ाला के साथ भाँजी को या भाँजी के साथ ख़ाला को निकाह में इकट्ठा किया जाए। फिर आप (सल्ल०) ने यह भी फ़रमाया कि बड़े रिश्तेवाली की मौजूदगी में छोटे रिश्तेवाली से और छोटे रिश्तेवाली की मौजूदगी में बड़े रिश्तेवाली से निकाह न किया जाए।

(हदीस : तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद, दारमी)

व्याख्या : बड़े रिश्तेवाली से तात्पर्य फूफी और ख़ाला हैं और छोटे रिश्तेवाली से तात्पर्य भतीजी और भाँजी हैं। अगर किसी के निकाह में किसी लड़की की ख़ाला है तो उसकी मौजूदगी में उस लड़की का निकाह उस व्यक्ति से नहीं हो सकता। इसी तरह किसी व्यक्ति के निकाह में यदि किसी लड़की की फूफी हो तो उस लड़की से उसकी फूफी की मौजूदगी में वह व्यक्ति निकाह नहीं कर सकता।

इसी तरह अगर किसी के निकाह में ऐसी लड़की है जो किसी स्त्री की भाँजी या भतीजी होती है तो वह उस स्त्री को अपने निकाह में नहीं ला सकता।

(6) हज़रत नौफ़ल बिन-मुआविया (रज़ि०) बयान करते हैं कि जब मैंने इस्लाम स्वीकार किया तो मेरे निकाह में पाँच स्त्रियाँ थीं। अतः मैंने नबी (सल्ल०) से पूछा तो आप (सल्ल०) ने कहा, "एक को अलग कर दो और चार को बाक़ी रखो।" (हदीस : शरहुस्-सुन्नह)

व्याख्या : इसलिए कि किसी के लिए शरीअत ने इसे जाइज़ नहीं रखा कि वह एक समय में चार से अधिक औरतों को अपने निकाह में रखे।

दुआ और मुबारकबाद

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) किसी आदमी को जिसने शादी की होती जब मुबारकबाद देते तो कहते : "अल्लाह तुम्हें मुबारक करे और तुम दोनों पर बरकत उतारे और तुम दोनों को ख़ैर और भलाई में इकट्ठा और सहमत रखे।"

(हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : शादी के अवसर पर मुबारकबाद देने के विविध तरीक़े दुनिया की क़ौमों और जातियों में प्रचलित हैं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) इस अवसर पर मुबारकबाद के जो बोल इरशाद फ़रमाते वे अत्यन्त पवित्र, संग्राहक और नेकी व भलाई की दुआ पर आधारित होते। इससे मालूम होता है कि इस्लाम शादी और निकाह को केवल इनसान की वासना-पूर्ति का साधन नहीं क़रार देता, बल्कि वह इसे दुनिया व आख़िरत की भलाइयों और नेकी का साधन तथा एक पवित्र कर्म ठहराता है।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-अम्र-बिन-अल-आस (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से उल्लेख करते हैं कि आप (सल्ल०) ने कहा, "तुममें से जब कोई व्यक्ति किसी स्त्री से शादी करे या कोई सेवक ख़रीदे तो कहे : ऐ अल्लाह! मैं इसके भलाई की और जो भलाई तूने इसकी प्रकृति में रखी है उसकी, तुझसे माँग करता हूँ और इसकी बुराई से और जो बुराई तूने इसकी प्रकृति में रखी है उससे बचने के लिए मैं तेरी शरण चाहता हूँ।"

(हदीस : अबू–दाऊद)

व्याख्या : मोमिन हर चीज़ में भलाई चाहता और बुराई से हमेशा बचने के उपाय करता है। लेकिन इसके साथ ही उसे इस सिलसिले में अपने उपाय से बढ़कर भरोसा अल्लाह ही पर होता है। इसलिए हर अवसर पर वह अल्लाह की पनाह ढूँढता और उससे मदद और सहयोग का इच्छुक होता है। फिर यह भी एक तथ्य है कि सारी भलाई और सलामती अल्लाह के सान्निद्ध से संबंध रखती है। जो चीज़ हमें अपने अल्लाह से दूर कर दे उसे कभी भी भलाई नहीं कह सकते। ठीक सांसारिक मामलों में भी अल्लाह के सान्निध्य का पहलू पाया जाता है, शर्त यह है कि हमें सम्यक ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हो।

सम्भोग के शिष्ट–नियम

(1) हज़रत इब्ने–अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुममें से जब कोई अपनी पत्नी के पास जाने का इरादा करे तो कहे— 'बिस्मिल्लाहि अल्लाहुमम जन्निब्नश–शैता–न व जन्निबिश–शैता–न मा रज़क़तना' (अल्लाह के नाम से, ऐ अल्लाह तू हमें शैतान से दूर रख और शैतान को उस चीज़ से दूर रख जो तूने हमको दी।) तो अगर उन दोनों के भाग्य में बच्चा मिलना होगा तो शैतान कभी भी उसे हानि नहीं पहुँचा सकता। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : आम तौर पर आजकल की नस्ल जो अच्छे स्वभाव और नैतिकता से दूर दिखाई देती है तो उसका एक कारण यह भी है कि अधिकतर लोग नबी (सल्ल०) की सिखाई हुई दुआ नहीं पढ़ते। अल्लाह से ग़ाफ़िल और बेपरवा रहकर आदमी अगर मात्र पशुओं की तरह वासनात्मक इच्छाएँ पूरी करने लग जाए तो ऐसी स्थिति में जो औलाद पैदा होगी वह शैतान की बुराई से कैसे सुरक्षित रह सकती है।

(2) हज़रत इब्न–अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है उन्होंने कहा कि अब्दुल्लाह बिन–उमर (रज़ि०) को अल्लाह माफ़ करे, उनको भ्रम हो गया। अस्ल क़िस्सा इस तरह है कि अनसार का एक क़बीला बुतपरस्त (मूर्ति–पूजक) था। उसके साथ यहूदियों का एक क़बीला था जो अहले–किताब थे, और वे अनसार उन (यहूदियों) को ज्ञान में अपने से श्रेष्ठ समझते थे। अतः

अपने बहुत-से कामों में वे यहूदियों का अनुसरण करते थे। अह्ले किताब की एक बात यह थी कि वे अपनी औरतों से सम्भोग सिर्फ़ एक परिचित आसन पर करते थे। उसमें स्त्री का गुप्त अंग अच्छी तरह छुपा रहता है। इस सिलसिले में भी इस क़बीले के अनसार, यहूद की रीति का अनुसरण करते थे। मगर क़ुरैश अपनी औरतों को तरह-तरह से नग्न करते थे और उनसे विभिन्न तरीक़ों से सम्भोग का आनन्द लेते थे, क़भी आगे से, कभी पीछे से और कभी चित लिटाकर। जब (मक्का से) हिजरत करनेवाले मदीना आए तो उनमें से एक व्यक्ति ने एक अनसारी स्त्री से शादी की और अपने तरीक़े के अनुसार उससे सम्भोग करने लगा। उस स्त्री ने उसे बुरा माना और कहा कि हमारे यहाँ सिर्फ़ एक ही आसन से सम्भोग होता है। अतः तुम भी उसी तरह करो अन्यथा मुझसे अलग हो जाओ। उनका यह झगड़ा चर्चा में आया और यह बात अल्लाह के रसूल (सल्ल०) तक पहुँची तो प्रतापवान ईश्वर ने यह आयत अवतरित की : "निसाउकुम हर-सुल-लकुम-फ़अ्तू हर-सकुम अन्ना शिअ्तुम।" (तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारी खेती हैं, तो तुम अपनी खेती में जिस तरह जी चाहे आओ।) अर्थात् चाहे आगे से आओ या पीछे से या चित लिटाकर, मगर प्रविष्ट उस स्थान (अर्थात् योनि) में करो जहाँ से बच्चा पैदा होता है।

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : आयत "निसाउकुम हरसुल-लकुम....." (तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारी खेती हैं तो तुम अपनी खेती में जिस तरह जी चाहे आओ) के वास्तविक अर्थ के समझने में अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) से ग़लती हुई है। अल्लाह उन्हें माफ़ करे।

यह जो कहा कि बातचीत जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) तक पहुँची तो अल्लाह ने यह आयत नाज़िल फ़रमाई तो इसका यह अर्थ नहीं है कि ख़ास इसी घटना के सम्बन्ध में उपर्युक्त आयत अवतरित हुई है, बल्कि अभिप्रेत यह है कि अल्लाह ने यह आयत उतार करके इसका और इस तरह के दूसरे झगड़ों का निपटारा कर दिया।

(3) हज़रत जाबिर बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) बयान करते है कि यहूदी कहते थे कि जब स्त्री से योनि में पीछे की ओर से सम्भोग किया जाता है और गर्भ ठहर जाता है तो उसका बच्चा भैंगा पैदा होता है, तो यह आयत उतरी :

"निसॉउकुम् हर्सुल् लकुम् फ़अ्तू हर्-सकुम् अन्ना शिअ्तुम्।" (तुम्हारी औरतें तुम्हारी खेती हैं, तो तुम अपनी खेती में जिस तरह जी चाहे आओ।)

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् यहूदियों का सोचना सही नहीं है। जिस आसन से चाहो सम्भोग कर सकते हो, खड़े, बैठे, पहलू के बल (करवट), चित लिटाकर या इसके विपरीत। इसमें बड़ी गुंजाइश है, कोई तंगी नहीं है। लेकिन इसका ध्यान रहे कि प्राकृतिक विधि के विरुद्ध व्यवहार न हो, अर्थात् प्रविष्टि योनि में हो न कि कहीं और।

नोअ्मान की रिवायत में यह भी आया है कि ज़ुहरी से रिवायत है कि "पति चाहे तो इस स्थिति में कि पत्नी औंधी हो और चाहे तो इस स्थिति में कि पत्नी औंधी न हो सम्भोग करे, मगर सम्भोग एक ही छिद्र में करे अर्थात् योनि में।"

इस सिलसिले में हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि) की रिवायत में है— "अनसार अपनी स्त्रियों से सम्भोग पीछे से विभिन्न आसनों में करते थे।" रसूल (सल्ल०) तक जब एक स्त्री की शिकायत पहुँची तो आपने क़ुरआन की आयत 'निसाउकुम् हर्सुल्-लकुम् फ़अ्तू हर्-सकुम् अन्ना शिअ्तुम्' तिलावत फ़रमाई और इतना और अधिक फ़रमाया 'समामन वाहिदन' अर्थात् प्रविष्टि एक ही छिद्र (योनि) में वैध है।

(4) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जब तुममें से कोई व्यक्ति अपनी पत्नी से सम्भोग करे, फिर वह दुबारा करना चाहे तो उसे वुज़ू कर लेना चाहिए।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : वुज़ू कर लेने से सुस्ती दूर हो जाती है और एक प्रकार की ताज़गी और ख़ुशी हासिल होती है। सम्भोग के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि आदमी प्रसन्नचित्त और आनन्द की हालत में हो। स्वास्थ्य और चिकित्सा की दृष्टि से भी इसका बड़ा महत्व है।

(5) हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जब सम्भोग-क्रिया किए होते और खाना या सोना चाहते तो वुज़ू कर लेते जैसे नमाज़ के लिए वुज़ू करते थे। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् सम्भोग के बाद ज़रूरी नहीं कि आदमी तुरन्त ही स्नान करे। लेकिन सोना या कुछ खाना-पीना चाहे तो इससे पहले उसे वुज़ू कर लेना चाहिए। आदमी को यथासम्भव इस हालत और इस भाव के साथ रहना चाहिए जिससे शैतानों को उसपर प्रभावी होने का अवसर न मिले और अल्लाह की पवित्र सृष्टि फ़रिश्ते उससे दूर न रहें।

(6) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान फ़रमाती हैं कि हममें से जब कोई हैज़ से होती (मासिक धर्म की अवस्था में होती) तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) उसे तहबन्द बाँधने का आदेश देते। फिर उसके साथ घुलते-मिलते थे। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मासिक धर्म की अवस्था में स्त्री से सम्भोग करना जाइज़ नहीं है, लेकिन उसके साथ रहने-सहने, साथ लेटने इत्यादि में कोई दोष नहीं है।

इस हदीस में घुलने-मिलने (मुबाशिरत) से तात्पर्य सम्भोग नहीं है, बल्कि उससे अभिप्रेत है शरीर का स्पर्श , मिलना-जुलना आदि। सम्भोग से बचते हुए हैज़वाली स्त्री के बदन से आनन्दित होने में कोई बुराई नहीं है।

(7) हज़रत आइशा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) रोज़े से होते थे और उनका चुम्बन लेते थे और उनकी ज़बान चूसते थे।

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अबू-दाऊद की एक अन्य रिवायत में है कि हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) मेरा चुम्बन लेते थे और आप और मैं दोनों रोज़े से होते थे।

इन रिवायतों से मालूम होता है कि रसूल (सल्ल०) को अपनी पत्नियों से कितना प्यार था। साथ ही इससे यह भी मालूम होता है कि पत्नियों के साथ प्रेम और सघन सम्बन्ध का प्रदर्शन दीनदारी और धर्म-परायणता के विरुद्ध हरगिज़ नहीं है। रोज़े की हालत में भी पत्नी का चुम्बन लेने और ज़बान आदि चूसने में कोई दोष नहीं है, लेकिन इसके लिए यह शर्त है कि आदमी को स्वयं पर नियंत्रण प्राप्त हो, इसलिए कि रोज़े की हालत में सम्भोग की अनुमति नहीं है।

(8) हज़रत जाबिर (रज़ि०) बयान करते हैं कि हम लोग 'अ़ज़्ल'

करते थे और क़ुरआन उतरता था। इसहाक़ की रिवायत में यह भी आया है कि सुफ़यान ने कहा कि अगर 'अ़ज़्ल' बुरा होता तो क़ुरआन इससे हमें रोक देता।
(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मतलब यह है कि 'अ़ज़्ल' की अगर सिरे से कोई गुंजाइश न होती तो क़ुरआन में उसके निषेध का आदेश उतर जाता।

कभी ऐसा होता है कि आदमी पत्नी के स्वास्थ्य इत्यादि को देखते हुए यह नहीं चाहता कि पत्नी को गर्भ ठहर जाए। उसके लिए वह वीर्य-स्खलन के समय अपने को पत्नी से अलग कर लेता है ताकि वीर्य का स्खलन बाहर हो। इसी क्रिया को 'अ़ज़्ल' कहते हैं। रसूल (सल्ल०) के समय में लोग अ़ज़्ल करते थे। आप (सल्ल०) से उसके सम्बन्ध में पूछा भी गया। आप (सल्ल०) ने इस सम्बन्ध में जो उत्तर दिए हैं, उनसे मालूम होता है कि अ़ज़्ल निषिद्ध या हराम तो नहीं है लेकिन यह क्रिया सराहनीय भी नहीं है। अगर कोई व्यक्ति अपनी विशेष परिस्थितियों और अनिवार्य निहित हितों के अन्तर्गत अ़ज़्ल करता है तो इसकी गुंजाइश है, इसे गुनाह नहीं कहा जा सकता। हाँ, अपनी आज़ाद पत्नी से उसकी अनुमति के बाद ही अ़ज़्ल किया जा सकता है। अ़ज़्ल से सिर्फ़ यह नहीं कि गर्भ नहीं ठहरता, बल्कि उसके कारण स्त्री के सम्भोग-सुख में भी कमी हो जाती है। आज़ाद पत्नी का यह हक़ है कि बच्चे की कामना करे या सम्भोग-सुख की कमी को पसन्द न करे। इसलिए अ़ज़्ल के लिए उसकी इजाज़त हासिल करनी ज़रूरी है। हदीस में आया है कि आज़ाद पत्नी के साथ उसकी अनुमति के बिना अ़ज़्ल करने से अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने रोका है। (हदीस : इब्ने-माजा)

(9) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह की दृष्टि में लोगों में सबसे बुरा क़ियामत के दिन वह व्यक्ति होगा जो अपनी स्त्री के पास जाए और स्त्री उसके पास जाए (अर्थात् सम्भोग करें) और फिर वह व्यक्ति उसका राज़ (दूसरों पर) ज़ाहिर करता फिरे।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् क़ियामत के दिन, जो वास्तव में सारे मामलों के अस्ल फ़ैसले का दिन है, ऐसा व्यक्ति बहुत ही बुरा माना जाएगा जो अपने और पत्नी के बीच होनेवाले यौन सम्बन्धी (Sexual) मामलों और अत्यन्त निजी बातों को

दूसरों से बयान करता फिरे। पत्नी से सम्भोग के बाद उसके ऐब व हुनर या उसके यौन-क्रीड़ा के गुणों को दूसरों से बयान करना और पत्नी के राज़ को फ़ाश करना अत्यन्त निर्लज्जता की बात है। निर्लज्जता को बुरा न समझनेवाला व्यक्ति क़ियामत के दिन अच्छा व्यक्ति कैसे कहा जा सकता है!

(10) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "सबसे बड़ी अमानत (में ख़ियानत) अल्लाह के नज़दीक क़ियामत के दिन यह है कि पुरुष अपनी स्त्री से संभोग करे और स्त्री पुरुष से, फिर वह पुरुष उसका राज़ खोल दे।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : एकान्त में पत्नी और पति के बीच सम्भोग और दूसरी घनिष्टता की जो बातें होती हैं, उनकी हैसियत एक बड़ी अमानत की है। अमानत में ख़ियानत दुरुस्त नहीं है। अगर कोई व्यक्ति इस अमानत की हिफ़ाज़त नहीं करता तो क़ियामत के दिन वह एक ऐसे ख़ियानत करनेवाले के रूप में उठेगा जिसने सबसे बड़ी अमानत में ख़ियानत की हो। पति की यह ज़िम्मेदारी होती है कि एकान्त में जो कुछ पत्नी के साथ मामलात होते हैं उनको किसी से बयान न करे। इस सिलसिले में पत्नी के शब्दों और क्रियाओं को दूसरों के सामने प्रकट न करें, क्योंकि एक तो यह निर्लज्जता की बात है दूसरे कोई स्त्री इस चीज़ को कभी पसन्द नहीं कर सकती कि एकान्त में जो कुछ हुआ है उसे बाज़ार में आम किया जाए। पति और पत्नी दोनों ही को इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि पति-पत्नी के बीच एकान्त और सम्भोग की स्थिति में जो कुछ होता है, उसकी हैसियत अमानत की है और दोनों में से किसी के लिए यह वैध नहीं है कि वह अमानत में ख़ियानत करे।

(11) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "उस (अल्लाह) की क़सम जिसके हाथ में मेरी जान है, जो कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को अपने बिस्तर पर बुलाए और वह इनकार कर दे तो निश्चय ही वह (अल्लाह) जो आसमान में है उस समय तक अप्रसन्न रहता है जब तक पति उससे प्रसन्न न हो जाए।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : "वह जो आसमान में है।" अर्थात् वह अल्लाह जिसकी सत्ता और शासन धरती ही में नहीं आसमान में भी है। आसमान से ऊँचाई की

कल्पना मन में उभरती है, इसलिए आसमान का उल्लेख किया गया अन्यथा अल्लाह देश और काल से परे है, वह अपने अस्तित्त्व के लिए किसी स्थान का मोहताज नहीं है।

इस हदीस से मालूम हुआ कि अल्लाह को यह बात पसन्द नहीं है कि पति को अप्रसन्न करके पत्नी उससे अलग रहे और पति की जाइज़ इच्छा पूरी करने से इनकार कर दे।

बुख़ारी व मुस्लिम की एक रिवायत में आया है कि अगर कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को अपने बिस्तर पर बुलाए और वह स्त्री इनकार कर दे और पति रात ग़ुस्से की हालत में गुज़ारे तो फ़रिश्ते उस स्त्री पर सुबह तक लानत भेजते (शापते और निन्दा करते) रहते हैं।

ये और इस प्रकार की हदीसें इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि इस्लाम संन्यास की शिक्षा नहीं देता और न उसकी दृष्टि में उच्च आत्मिक स्थान की प्राप्ति के लिए संन्यास कोई आवश्यक चीज़ है।

(12) हज़रत अबू–हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "वह व्यक्ति तिरस्कृत है जो पत्नी के साथ अप्राकृतिक यौन सम्बन्ध स्थापित करे।" (हदीस : अहमद, अबू–दाऊद)

(13) हज़रत अब्दुल्लाह बिन–अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जो व्यक्ति किसी पुरुष या किसी स्त्री के साथ अप्राकृतिक लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करे तो अल्लाह उसकी ओर (दया की) दृष्टि न डालेगा।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

(14) हज़रत ख़ुज़ैमा बिन–साबित (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह सत्य बात कहने से नहीं शरमाता, तुम औरतों से अप्राकृतिक रूप से सम्भोग न करो।"

(हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी, इब्ने–माजा, दारमी)

व्याख्या : उपर्युक्त रिवायतों से स्पष्ट है कि यह अल्लाह की शिक्षा के विरुद्ध है कि तुम औरतों से सम्भोग इस तरह करो कि लिंग–प्रवेश योनि में करने के बजाय पिछले भाग (गुदा) में करो। ऐसा कुकर्म करनेवाला व्यक्ति तिरस्कृत और कोप–भाजन है। वह अल्लाह की रहमत का अधिकारी नहीं हो सकता। अल्लाह हरगिज़ उसपर कृपा–दृष्टि न डालेगा। अप्राकृतिक कर्म

करके ऐसा व्यक्ति अल्लाह के प्रकोप को आमंत्रित करता है। अगर कोई व्यक्ति इस घिनौने कर्म का अभ्यस्त है तो उसे तत्काल तौबा करनी चाहिए। या फिर उसे अपने बुरे परिणाम के लिए तैयार रहना चाहिए।

(15) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिस किसी व्यक्ति ने हैज़ (मासिक धर्म) वाली स्त्री से सम्भोग किया, या स्त्री से अप्राकृतिक रूप से सम्भोग किया या काहिन (भविष्यवक्ता ज्योतिष) के पास आया तो उसने उस (दीन, धर्म) का इनकार किया जो मुहम्मद पर उतरा है।" (हदीस : तिर्मिज़ी, इब्ने-माजा, दारमी)

व्याख्या— जिस प्रकार स्त्री से अप्राकृतिक रूप से सम्भोग करना वैध नहीं है, उसी प्रकार स्त्री से उसके हैज़ की हालत में सम्भोग करना भी वैध नहीं है। क़ुरआन में भी है— "अतः हैज़ में औरतों से अलग रहो और उनके पास न जाओ (अर्थात् सम्भोग न करो) जब तक कि वे पाक न हो जाएँ।" काहिन (भविष्यवक्ता, ज्योतिषी) की बातों पर यक़ीन करना भी सही नहीं है। भविष्य और परोक्ष का सही और वास्तविक ज्ञान तो अल्लाह के सिवा किसी को नहीं हो सकता।

अब अगर कोई व्यक्ति इन वर्जित बातों से नहीं रुकता तो इसका मतलब इसके सिवा और क्या हो सकता है कि वह अल्लाह के आदेशों का कुछ भी आदर नहीं करता? आदेश और मार्गदर्शन के रूप में अल्लाह ने उसे जो उपकृत किया है वह उसका आभार स्वीकार नहीं करता है।

बहुपत्नित्व

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि ग़ैलान बिन-सलमा सक़फ़ी (रज़ि०) ने जब इस्लाम ग्रहण किया, उस समय उनकी दस पत्नियाँ थीं। जिनसे अज्ञानकाल में उन्होंने विवाह किया था। इन सब पत्नियों ने भी उनके साथ इस्लाम ग्रहण कर लिया तो नबी० (सल्ल०) ने कहा, "चार पत्नियाँ रखो और शेष को अलग कर दो।" (हदीस : अहमद)

व्याख्या : यह हदीस इस बात का प्रमाण है कि ग़ैर-मुस्लिम अपने कुफ़्र की हालत में जो विवाह करते हैं, शरीअत ने उसे वैध ठहराया है। ईमान लाने के बाद फिर से निकाह करने की ज़रूरत नहीं होती। अलबत्ता शरीअत यह

ज़रूर देखेगी कि निकाह ऐसे रिश्ते की औरतों से न हुआ हो जिनसे निकाह करना इस्लाम में हराम है या निकाह में ऐसी रिश्तेवाली स्त्रियाँ न हों जिनको एक साथ निकाह में रखना शरीअत में वैध नहीं है।

कुफ़्र की स्थिति में होनेवाले विवाह को वैध क़रार देना इस्लामी शरीअत का अत्यन्त बुद्धिसंगत फ़ैसला है। शरीअत में अनावश्यक संकीर्णता को पसन्द नहीं किया गया है। अगर शरीअत उन विवाहों को जो कुफ़्र के दिनों में संपन्न हुए हों अवैध घोषित कर देती तो फिर इसका यह अर्थ होता कि ग़ैर-मुस्लिम इस्लाम क़बूल करने से पहले हरामकारी और व्यभिचार में पड़े रहते हैं। इससे उनकी नैतिक प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचता।

इस हदीस से यह भी मालूम हुआ की आदमी अधिक से अधिक चार औरतों को एक समय में अपने निकाह में रख सकता है। चार औरतों से ज़्यादा एक समय में निकाह में रखना जाइज़ नहीं है। बहुपत्नित्व का मतलब यह कदापि नहीं है कि अनिवार्यतः हर मुसलमान को एक साथ कई विवाह करने चाहिएँ। बहुपत्नित्व की इजाज़त सीमित भी है और सशर्त भी। सीमित इस अर्थ में कि आदमी एक समय में चार से अधिक स्त्रियों को अपने निकाह में नहीं रख सकता और यह इजाज़त सशर्त इस अर्थ में है कि पति को अपनी पत्नियों के बीच न्याय और समानता का बरताव करना होगा। अगर वह उनके बीच हक़ की अदायगी में न्याय नहीं कर सकता तो फिर उसे कई विवाह करने का अधिकार नहीं। इस्लाम ने पुरुषों को ज़रूरत के समय या आवश्यकता पड़ने पर बहुपत्नित्व की इजाज़त दी है। इस इजाज़त में जो भलाई और अन्तर्निहित उद्देश्य पाया जाता है, उसे थोड़े सोच-विचार से भी समझा जा सकता है।

पुरुष साधारणतया औरतों के मुक़ाबले में ज़्यादा शक्ति और सामर्थ्य रखता है। औरतों को हैज़ (मासिक धर्म), निफ़ास (प्रसूति के पश्चात् एक अवधि तक ख़ून का आना), और बच्चे को जन्म देने जैसी घटनाओं और परिस्थितियों से जूझना पड़ता है, जिनमें वे पति की कामेच्छाओं की पूर्ति करने में असमर्थ रहती हैं। ऐसी स्थिति में कमेच्छा के वेग में पुरुष आख़िर क्या करेगा। अगर उसे बहुपत्नित्त्व की इजाज़त न हासिल हो तो उसके ग़लत मार्ग पर पड़ जाने की सम्भावनाओं से कौन इनकार कर सकता है। ऐसी स्थिति में

वह अवैध रूप से चोरी-छुपे अपनी इच्छा की पूर्ति करेगा और समाज की पवित्रता को हानि पहुँचाएगा। जिस समाज में बहुपत्नित्त्व को क़ानून के द्वारा अवैध घोषित किया गया है, वहाँ व्यभिचार, बलात्कार और यौन-स्वच्छन्दता का बाज़ार गर्म दिखाई देता है। फिर पुरुष और स्त्री के अवैध सम्बन्धों के परिणामस्वरूप लावारिस अवैध बच्चों की ऐसी खेप तैयार हो गई है जिसने बहुत-सी जटिल समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं।

कभी-कभी स्त्री किसी ऐसी बीमारी या रोग में ग्रस्त हो जाती है जो उसे हमेशा के लिए रोगी बनाकर रख देता है। ऐसी स्थिति में वह इस योग्य नहीं रहती कि पुरुष की कामेच्छा की पूर्ति कर सके। ऐसी स्थिति में अगर पुरुष को उस पत्नी की उपस्थिति में आप दूसरी शादी की इजाज़त नहीं देते तो वह आख़िर क्या करेगा? अब या तो वह दूसरी शादी की वैधता के लिए अपनी रोगी पत्नी को तलाक़ देकर उसे विलग कर देगा, जिसे मानवता की मौत के सिवा कोई दूसरा नाम नहीं दिया जा सकता। इसलिए कि बीमार और असमर्थ पत्नी तो उसके सहयोग और सहारे की मुहताज होती है, उसे बेसहारा और लावारिस छोड़ देना नैतिक दृष्टि से कैसे दुरुस्त हो सकता है!

या वह उसे तलाक़ तो नहीं देगा लेकिन कामेच्छा की पूर्ति के लिए घर से बाहर की ओर देखेगा और दूसरी औरतों को अपनी वासना का निशाना बनाएगा, और यह ऐसा अन्याय होगा जिसके भयानक दुष्परिणामों का अनुमान हर बुद्धि और विवेकशील व्यक्ति सहज ही कर सकता है। कभी-कभी पत्नी के बाँझ होने के कारण उससे सन्तान की आशा नहीं होती। अब अगर पुरुष संतान के लिए अपनी इच्छा से, जो उसकी जाइज़ इच्छा है, दूसरी शादी करने का इरादा करता है और यह इजाज़त उसे हासिल नहीं होती तो वह निश्चित रूप से अपनी पत्नी को तलाक़ देने पर मजबूर होगा। लेकिन अगर बहुपत्नित्त्व की क़ानूनी गुंजाइश हो तो उसे अपनी प्रिय पत्नी को जुदा करने की कोई आवश्यकता न होगी। वह उसकी उपस्थिति में दूसरी शादी करके अपने भाग्य को आज़मा सकता है।

इनसानी दुनिया में कभी यह भी होता है कि पत्नी की उपस्थिति में पुरुष को किसी दूसरी अविवाहिता स्त्री से ऐसा प्रेम हो जाता है कि वह उसके बिना अपने जीवन की कल्पना नहीं कर सकता और वे दोनों विवाह कर लेने के

इच्छुक होते हैं। अगर पहली पत्नी की उपस्थिति में उसे इसकी अनुमति प्राप्त न हो तो इसका परिणाम व्यभिचार या आत्म–हत्या के सिवा और क्या हो सकता है ?

विधवा, तलाक़ पाई हुई स्त्री, यतीम (अनाथ) या लावारिस लड़कियों की समस्या एक विचारणीय सामाजिक समस्या है जिसकी उपेक्षा किसी महापाप से कम नहीं हो सकती। हम सब जानते हैं कि ऐसी लड़कियों या औरतों को साधारणतया कुँवारे लड़के नहीं मिल पाते। उनकी शादी की समस्या का हल इस प्रकार निकाला जा सकता है कि ऐसी स्त्रियाँ उन पुरुषों से शादी कर लें जिनके पास पत्नी हो लेकिन वे किसी उचित कारण से दूसरी शादी करने की इच्छा रखते हों, अगर ऐसी स्त्रियों को अविवाहित रहने दिया जाए तो समाज भयानक यौन–पथभ्रष्टता से ग्रसित हो जाएगा।

दुनिया के अधिकतर देशों में औरतों की संख्या पुरुषों की तुलना में अधिक है, जिसके कारण समाज में एक बड़ी जटिलता पैदा हो जाती है कि अनुपात से अधिक लड़कियों का क्या हो ? इस समस्या का इसके सिवा और क्या उचित समाधान होगा कि पुरुषों को एक से अधिक विवाह करने की अनुमति दी जाए, अन्यथा समाज को अश्लीलता और विकृति से सुरक्षित रखना सम्भव न होगा।

फिर युद्ध में कभी–कभी इतने पुरुष मारे जाते हैं कि पुरुष और स्त्री के मध्य का अनुपात सन्तुलित नहीं रहता। स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में एक पत्नित्व पर आग्रह करना स्त्रियों की एक बड़ी संख्या को शादी से वंचित कर देगा। स्त्रियों की एक बड़ी संख्या को शादी के सौभाग्य से वंचित रखने का कोई औचित्य नहीं हो सकता। सारी भौतिक सुख–सुविधाओं की उपलब्धि के बावजूद शादी के बिना वास्तविक शान्ति और सुख से इनसान वंचित ही रहता है। शादी के सिवा इसकी पूर्ति का कोई उपाय नहीं।

सन्तान की इच्छा भी स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। माँ बनने के बाद ही सही अर्थों में नारी का नारीत्त्व परिपूर्ण होता है।

फिर युद्ध की स्थिति में उन जवानों और प्राण न्योछावर करनेवालों की पत्नियों और उनके बच्चों के प्रति सहानुभूति और उनके दुख बाँटने की चिन्ता

न करना, जिन्होंने देश की सुरक्षा के लिए अपनी जानें न्योछावर की हों, अत्यंन्त अकृतज्ञता दिखलाना है। उनके साथ सर्वोत्तम सहानुभूति और सहयोग यह है कि समाज के लोग विधवाओं को बेसहारा न रहने दें, बल्कि उनसे शादी करके उनकी और उनके अनाथ बच्चों की देखभाल, भरण-पोषण और संरक्षण का दायित्त्व स्वीकार कर लें। चाहे उन्हें इसके लिए कुछ कठिनाइयाँ ही क्यों न झेलनी पड़ें।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी में पुरुषों की कमी और औरतों के असाधारण बाहुल्य ने एक समस्या उत्पन्न कर दी थी। इस समस्या पर विचार-विमर्श के लिए सेमिनार हुआ। विचार-विमर्श और गम्भीर चिन्तन एवं वाद-विवाद के पश्चात् सभा में भाग लेनेवाले विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस समस्या का बुद्धिसंगत और मर्यादापूर्ण हल सिर्फ़ बहुपत्नित्त्व को वैध ठहराना है। जर्मनी सरकार ने बहुपत्नित्त्व के विषय में विस्तृत जानकारी के लिए शैख़ुल्-अज़हर, मिस्र (अज़हर विश्वविद्यालय के कुलपति) के नाम पत्र लिखा और फिर एक प्रतिनिधिमण्डल भी भेजा।(अल-मरातु बैनल-फ़िक़्हते वल-क़ानून, पृष्ठ 75)

बर्नार्ड शॉ ने भी लिखा है कि अगर मानव-जगत में कोई बड़ी दुर्घटना घटित हो जाए जिसके कारण तीन चौथाई पुरुष मारे जाएँ, उस समय अगर मुहम्मद की शरीअत को व्यवहार में लाया जाए और प्रत्येक पुरुष के लिए चार पत्नियों की गुंजाइश से लाभ उठाया जाए तो बहुत थोड़े समय में पुरुषों की कमी को दूर करना सम्भव है।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "जब किसी व्यक्ति के पास दो पत्नियाँ हों और वह उनके बीच न्याय और समानता का व्यवहार न करे तो क़ियामत के दिन वह इस हालत में आएगा कि उसका आधा धड़ भंग होगा।"

(हदीस : तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद, नसई, इब्ने-माजा, दारमी)

व्याख्या : पत्नी वास्तव में पति के अपने ही शरीर का एक अंग होती है। अब अगर वह उसके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं करता तो यह अन्याय ख़ुद अपने शरीर को आघात पहुँचाना है। इस बात को अगर कोई इस दुनिया में नहीं समझता तो आख़िरत (परलोक) में तो सत्य प्रकट और व्यक्त होकर रहनेवाला है।

यहाँ यह बात ध्यान में रहे कि शरीअत का जो आदेश दो पत्नियों के बारे में है वही आदेश उस स्थिति में भी है जबकि पत्नियाँ दो से अधिक हों। पति का अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह न्याय की नीति किसी हालत में भी न छोड़े।

(3) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) अपनी पत्नियों के मध्य बारी निर्धारित करते और न्याय और समानता से काम लेते और यह दुआ माँगा करते थे, "ऐ अल्लाह यह मेरा विभाजन इस मामले में है जो मेरे अधिकार में है, अतः उस मामले में मुझे मलामत (दोषी) न करना, जो तेरे अधिकार में है, मेरे अधिकार में नहीं है।"

(हदीस : तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद, नसई, इब्ने-माजा, दारमी)

व्याख्या : मतलब यह है कि सामान्य अधिकार और व्यवहार में तो मैं अपनी पत्नियों के साथ समानता का व्यवहार करता हूँ। लेकिन दिल का झुकाव और प्रेम अगर किसी के साथ अधिक हो तो इसपर मुझे न पकड़ना। इसलिए कि हृदय के झुकाव और प्रेम-भाव पर बन्दे का अपना कोई अधिकार नहीं होता।

पति के अधिकार

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "ऊँटों पर सवार होनेवाली औरतों में बेहतरीन स्त्रियाँ क़ुरैश की नेक स्त्रियाँ हैं जो छोटे बच्चों पर अत्यन्त कृपालु होती हैं और पति के माल (सम्पत्ति) की रक्षा करती हैं।"(हदीस :बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : ऊँटों पर सवार होनेवाली औरतों से अभिप्रेत अरब की औरतें हैं। अरब की औरतें साधारणतः ऊँटों की सवारी करती थीं। इसी लिए उन्हें 'ऊँटों पर सवारी करनेवाली औरतों' कहा गया।

इस हदीस से मालूम हुआ कि सबसे अच्छी औरतों की पहचान यह है कि एक तरफ़ बच्चों के प्रति उनके मन में वात्सल्य का बाहुल्य हो दूसरी तरफ़ वे अपने पति के धन को नष्ट न होने दें, बल्कि उसकी सुरक्षा करने में तत्पर रहें।

(2) हज़रत माक़िल-बिन-यसार (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "तुम ऐसी स्त्री से शादी करो जो (पति से) अत्यन्त प्रेम करनेवाली और अधिक बच्चे पैदा करनेवाली हो। क्योंकि मैं

दूसरी उम्मतों (समुदायों) के मुक़ाबले में तुम्हारी अधिकता पर गर्व करूँगा।"

(हदीस : अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : इस हदीस से यह मालूम हुआ कि स्त्री का एक वांछित गुण यह है कि उसके अन्दर प्रेम-भाव अधिक से अधिक पाया जाए और उसका पति उसे प्रिय हो। किसी स्त्री का दूसरा बड़ा गुण यह है कि वह बाँझ न हो, बल्कि उससे अधिक बच्चे पैदा हों। अपनी उम्मत (समुदाय) की बहुसंख्या पर इस्लाम के पैग़म्बर (सल्ल०) गर्व करेंगे। सत्यमार्ग के पथ-प्रदर्शकों की यही शान होती है। वे धन-सम्पत्ति की अधिकता पर नहीं बल्कि सत्यमार्ग के अनुयायियों की अधिकता पर गर्व करते और प्रसन्नता प्रकट करते हैं। वे उन एकान्तवासी लोगों की तरह नहीं सोचते जिन्हें सिर्फ़ अपने ज्ञान व ध्यान की चिन्ता होती है। दुनिया में क्या हो रहा है इससे वे कोई विशेष मतलब नहीं रखते।

(3) हज़रत अब्दुर्रहमान बिन-सालिम बिन-उतबा बिन-उवैम बिन-साइदा अनसारी अपने पिता (हज़रत सालिम) से और वे अब्दुर्रहमान के दादा (हज़रत उतबा 'ताबई') से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का कथन है, "तुम कुँवारी औरतों से निकाह करो क्योंकि वे मुँह की मीठी, अधिक बच्चे पैदा करनेवाली और थोड़े पर भी राज़ी रहनेवाली होती हैं।"

(हदीस : इब्ने-माजा)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि मधुर-भाषिता और प्रिय वाणी बोलना एक अभीष्ट गुण है जो स्त्री में होना चाहिए। इसी तरह स्त्री अगर थोड़े पर राज़ी रहती है और उससे अधिक बच्चे पैदा होने की आशा हो तो यह भी उसके अभीष्ट व वांछित गुणों और विशेषताओं में से है। कुँवारी स्त्री में इन गुणों के पाए जाने की सम्भावना अधिक होती है। कुँवारी स्त्री, विधवा या तलाक़ पाई हुई स्त्री की तुलना में अधिक मासूम और भोली-भाली होती है। इसलिए कि वह पति से पहली बार परिचित होती है, वह एक ऐसे जीवन से परिचित होती है जिसका उसे पहले से कोई अनुभव नहीं होता। यह जीवन उसे सम्मोहित कर देनेवाला होता है। अब पति उसके लिए सब कुछ होता है। पति उससे प्रसन्न हो तो समझिए उसे सब कुछ मिल गया। वह थोड़े पर भी संतोष कर सकती है। अधिक धन संसाधन की माँग वह नहीं करती।

(4) हज़रत अबू-उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "मोमिन ईशपरायणता के बाद सबसे अच्छी चीज़ जिस से लाभ उठाता है, नेक पत्नी है कि वह (पति) अगर आदेश दे तो वह उसके आदेश का पालन करे और अगर वह उसकी तरफ़ देखे तो वह उसको (पति को) ख़ुश कर दे और अगर वह क़सम दे तो वह उसे पूरा करे और अगर वह (पति) मौजूद न हो तो अपने सतीत्व के सम्बन्ध में भी और उसके धन के सम्बन्ध में भी पति की हितैषी सिद्ध हो।" (हदीस : इब्ने-माजा)

व्याख्या : इस हदीस से पहली बात तो यह मालूम हुई कि ईश-परायणता जीवन की सबसे बड़ी निधि है। ईशपरायणता के बिना जीवन अपने वास्तविक अर्थ और आशय से अपरिचित ही रहता है। ईशपरायणता का अर्थ यह है कि हमारे जीवन का मूल केन्द्र बिन्दु और आधार अल्लाह की सत्ता हो। अपने अस्तित्त्व में हम स्वयं अपना उद्देश्य नहीं हैं। जीवन का वास्तविक ध्येय वह जगत्-प्रभु (विश्व का पालनहार) है जो समग्र सौन्दर्य और परिपूर्णता से संपन्न एवं अस्तित्व और जीवन का मूल स्रोत है। जीवन का यह ध्येय जीवन को उस के जिस उच्च और सुन्दर अभिप्राय से परिचित कराता है, उससे बढ़कर किसी उच्चतर और चित्ताकर्षक जीवन-लक्ष्य की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता।

इस हदीस में स्त्री के जिन उत्तम गुणों का वर्णन किया गया है, उनसे अच्छी तरह समझा जा सकता है कि एक स्त्री पर उसके पति के अधिकार क्या और किस प्रकार के होते हैं।

बेहतर स्त्री वह है जो अपने पति की आज्ञाकारिणी हो लेकिन इस आज्ञापालन में अल्लाह के आदेशों की अवहेलना न होती हो। उसका पति जब उसकी ओर देखे तो वह अपने सौन्दर्य और पवित्र आचरण तथा अपनी प्रेम-भाव दृष्टि से उसके हृदय में स्थान बना ले और उसे प्रसन्न कर दे। पति की क़सम को पूरा करने में उसे कोई झिझक न हो, अर्थात् वह पति की इच्छा और उसकी प्रसन्नता को अपनी प्रसन्नता और इच्छा पर प्राथमिकता दे। अगर उसका पति किसी काम के करने की उसे क़सम दे तो वह उसे पूरा कर दे, चाहे वह काम उसकी अपनी मरज़ी और इच्छा के अनुकूल हो या न हो। पति की ख़ुशी के मुक़ाबले में अपनी इच्छा की उसे कोई चिन्ता न हो। पति अगर कुछ

दिन के लिए कहीं बाहर गया हो तो उससे इसकी वफ़ादारी और आज्ञाकारिता के भाव में कोई अन्तर न आए। पति की अनुपस्थिति में भी वह अपने सतीत्व और पति के धन–सम्पत्ति की रक्षा का पूरा ध्यान रखे।

(5) हज़रत अबू–हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा गया कि कौन–सी स्त्री बेहतर है? आप (सल्ल०) ने कहा, "वह स्त्री जिसका पति उसकी तरफ़ देखे तो वह उसे प्रसन्न कर दे, और जब पति उसे कोई आदेश दे तो वह उसका पालन करे, और अपने और अपने माल के विषय में उसके विरुद्ध कोई ऐसी बात न करे जो उसे नापसन्द हो।" (हदीस : नसई, बैहक़ी)

व्याख्या : 'अपने माल' का अर्थ उस पत्नी का माल भी हो सकता है जिसकी वह मालिक हो और इसका तात्पर्य उस माल से भी हो सकता है जो उसकी मिलकियत न हो। मिलकियत तो उसके पति की हो, लेकिन वह पत्नी के प्रयोग में हो।

अच्छी पत्नी का एक गुण यह है कि वह पति के माल को ही नहीं अपने माल को भी इस तरह ख़र्च नहीं करती कि वह उसके पति की नाराज़ी का कारण बन सके। वह पति के दिए हुए माल को अमानत समझती है। उसमें किसी प्रकार के अनुचित हस्तक्षेप को वैध नहीं समझती। अगर वह पति का माल ख़र्च करती है तो उसमें पति की मरज़ी अनिवार्यतः शामिल होती है। पति की मरज़ी के विरुद्ध वह एक पैसा भी ख़र्च करना नहीं चाहती।

(6) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "तीन व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी न तो नमाज़ स्वीकृत होती है और न उनकी कोई नेकी ऊपर जाती है। एक तो भागा हुआ ग़ुलाम (दास), जब तक कि वह अपने मालिकों के पास वापस आकर अपना हाथ उनके हाथ में न दे दे, दूसरी वह स्त्री जिसका पति उससे अप्रसन्न हो, और तीसरा नशाबाज़, जब तक कि होश में न आए।" (हदीस : बैहक़ी)

व्याख्या : एक हदीस में यह भी है कि जिस स्त्री का पति उससे नाराज़ हो उसकी नमाज़ उस समय तक क़बूल नहीं होती और न उसकी कोई नेकी ऊपर चढ़ती (अल्लाह के यहाँ क़बूल की जाती) है जब तक कि उसका पति उससे राज़ी और ख़ुश न हो जाए।

(7) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "चार चीज़ें ऐसी हैं कि वे जिस किसी को प्राप्त हो जाएँ उसे लोक-परलोक की भलाई मिल गई—कृतज्ञता दिखानेवाला हृदय, (ईश्वर को) याद करनेवाली ज़बान, विपत्तियों पर धैर्यवान शरीर और ऐसी पत्नी जो अपने सतीत्व और पति के बारे में विश्वासघात करनेवाली न हो।"

व्याख्या : यह हदीस बड़ी अर्थ-संग्राहक है। इसमें शिक्षा इस बात की दी गई है कि मनुष्य अगर लोक-परलोक की भलाइयों का इच्छुक है तो उसे दुनिया में किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना होगा। अल्लाह की असीम कृपाओं और अनुग्रहों के उपरान्त हृदय में अगर कृतज्ञता का भाव नहीं उभरता तो वास्तव में यह हृदय नहीं, मांस का मात्र एक लोथड़ा है जो किसी भी पशु के शरीर में देखा जा सकता है।

इसी प्रकार ज़बान से अगर हम सब कुछ बयान करते हैं, और इसको अल्लाह के स्मरण और उसकी महानता के वर्णन के लिए इस्तेमाल नहीं करते, तो इसका अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं कि हम जीवन के वास्तविक कल्याण और उसके आस्वादन से अनभिज्ञ रहकर जीवन गुज़ारते हैं। सांसारिक जीवन की एक बड़ी वांछित वस्तु से हमने अपने आपको वंचित कर रखा है। यहाँ का यह अभाव पारलौकिक अभाव का एक स्पष्ट लक्षण है।

इसी प्रकार धैर्यवान शरीर जो कष्टों को सहन कर सके, ईश्वर की बड़ी देन है। अगर शारीरिक रूप से हम कठिनाइयों को सहन नहीं कर सकते तो क़दम-क़दम पर हमें दुश्वारियों का सामना करना पड़ेगा। सत्य-मार्ग में संघर्ष करने का हक़ अदा करने में हम असमर्थ रह जाएँगे। दुनिया की ज़िन्दगी भी मुश्किल हो जाएगी और पारलौकिक पूँजी संचित करने की क्षमता और शक्ति भी हममें न होगी।

लोक और परलोक की भलाई की उपलब्धि के लिए जहाँ कृतज्ञतापूर्ण हृदय, (ईश्वर को) स्मरण करनेवाली ज़बान और धैर्यवान शरीर की आवश्यकता है वहीं इस भलाई की उपलब्धि में वह स्त्री भी सहायक सिद्ध होती है जो नेक और पति की वफ़ादार हो। ऐसी स्त्री दुनिया की स्वयं एक भलाई है और साथ

ही परलोक की उपलब्धि में भी पति की सहयोगिनी और सहायक भी होती है।

(8) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर मैं किसी को यह आदेश देता कि वह किसी व्यक्ति को सज्दा करे तो निश्चय ही मैं स्त्री को आदेश देता कि वह अपने पति को सज्दा करे।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : एक आदर्श पति मात्र एक प्रिय पति ही नहीं बल्कि वह पत्नी का अभिभावक और उसका ग़म बाँटनेवाला और शुभचिन्तक भी होता है। वह पत्नी को अपनी सेविका नहीं समझता, दिल से उसे चाहता है। पत्नी को भी चाहिए कि उसके प्रति समर्पण और प्रेम का सम्बन्ध रखे। वह उसका हक़ पहचाने, उससे प्रेम ही न करे बल्कि उसका दिल से आदर भी करे। इसी से उसका अपना नारीत्त्व भी पूर्ण होता है। इसके विपरीत पत्नी अगर कोई दूसरी नीति अपनाती है तो इससे स्वयं उसकी अपनी प्रकृति को आघात पहुँचेगा। यह नीति उसके लिए क़दापि शांतिदायक सिद्ध न होगी।

यह हदीस बताती है कि पत्नी की दृष्टि में पति का क्या दर्जा होना चाहिए और उसे अपने पति की कितनी अधिक़ आज्ञाकारिणी होनी चाहिए।

(9) हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिस स्त्री की इस दशा में मृत्यु हो कि उसका पति उससे प्रसन्न हो तो वह जन्नत में प्रवेश करेगी।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : पति को प्रसन्न रखना स्त्री के लिए एक बड़ी नेकी है। पति का पत्नी से प्रसन्न रहना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उसकी पत्नी अपने रब के आदेशों का हृदय से आदर करती है। विदित है कि ऐसी नेक स्त्री का ठिकाना जन्नत के सिवा दूसरा नहीं हो सकता।

(10) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो स्त्री पाँचों वक़्त की नमाज़ अदा करे, रमज़ान के महीने के रोज़े रखे, अपनी शर्मगाह (गुप्तांग) की हिफ़ाज़त करे और अपने पति की आज्ञा का पालन करे तो वह जिस द्वार से चाहे जन्नत में प्रवेश करे।"

(अबू-नुऐम)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि अल्लाह के हक़ को अदा करने के बाद स्त्री पर सबसे बड़ा हक़ उसके पति का होता है। अगर वह

अल्लाह के हक़ को अदा करने के साथ अपने पति के हक़ को भी पहचानती है और उसे अदा करने से मुँह नहीं मोड़ती तो उसके लिए जन्नत के सारे ही दरवाज़े खुले हैं। वह किसी भी दरवाज़े से जन्नत में दाख़िल हो सकती है। हक़ों को अदा न करना ही वास्तव में वह रुकावट है जिसके कारण जन्नत में प्रवेश असम्भव होता है।

(11) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि आपका कथन है कि "औरत उस समय जबकि उसका पति (घर पर) मौजूद हो उसकी इजाज़त के बिना (नफ़्ली) रोज़ा न रखे।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या - अबू दाऊद की रिवायत में है— "औरत, जबकि पति उसका मौजूद हो, उसकी अनुमति के बिना (नफ़्ल) रोज़ा न रखे सिवाय रमज़ान के रोज़े के। और उसकी मौजूदगी में उसकी अनुमति के बिना किसी को उसके घर में आने की अनुमति न दे।"

यह हदीस बताती है कि स्त्री को अपने पति की आवश्यकताओं और उसकी भावनाओं का पूरा आदर करना चाहिए। सम्भव है कि पति उससे सहवास का इरादा रखता हो। अब अगर पत्नी ने रोज़ा रख लिया है तो यह चीज़ पति के लिए तकलीफ़ और अप्रियता का कारण होगी।

इसी प्रकार पति की मौजूदगी में पत्नी अगर किसी दूसरे को अन्दर आने की इजाज़त देती है तो यह चीज़ एकान्त में बाधक होगी। यह एक प्रकार से पति का हक़ मारना होगा। हाँ, अगर पति की अनुमति प्राप्त है तो पत्नी पति की मौजूदगी में नफ़्ल रोज़े भी रख सकती है और दूसरों को, जिनसे परदा न हो, अन्दर बुला भी सकती है। रमज़ान का रोज़ा चूँकि फ़र्ज़ है, इसके लिए पति से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं, जिस तरह फ़र्ज़ नमाज़ पढ़ने के लिए स्त्री पति की अनुमति की पाबन्द नहीं है। किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं दिया गया है कि वह अल्लाह के किए हुए अनिवार्य आदेश के पालन से किसी को रोके।

(12) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "अपने पति की अवज्ञा करनेवाली और अपने पति से ख़ुला (सम्बन्ध-विच्छेद) चाहनेवाली स्त्रियाँ मुनाफ़िक़ (मिथ्याचारिणी) हैं।" (हदीस : नसई)

व्याख्या : उनका यह कृत्य ईमान से मेल नहीं खाता, चाहे वह अपने मोमिन और मुस्लिम होने का कितना ही दावा क्यों न करें। पति को नाराज़ करना या उसे किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाना धार्मिक प्रकृति के कदापि अनुकूल नहीं। अगर स्त्री अकारण और बिना किसी वास्तविक कारण के पति से तलाक़ या ख़ुला चाहती है तो उसका यह व्यवहार ईमान के प्रतिकूल माना जाएगा, क्योंकि यह बात तो उसी स्त्री को शोभा दे सकती है जो मोमिन न हो, मुनाफ़िक़ (मिथ्याचारिणी) हो, जो इस्लाम का कुछ भी आदर न करती हो। इसलिए मोमिन स्त्रियों को इस प्रकार की अनुचित हरकतों से परहेज़ करना चाहिए, और अगर ऐसी ग़लती हो चुकी हो तो उससे तुरन्त तौबा करके दुनिया ही में अपने पति को राज़ी और ख़ुश कर लेना चाहिए।

(13) हज़रत सौबान (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जो स्त्री बिना ज़रूरत अपने पति से तलाक़ माँगे, उसपर जन्नत की सुगन्ध हराम है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस हदीस से पूर्वोल्लिखित हदीस का स्पष्टीकरण होता है। बिना ज़रूरत पति से तलाक़ की माँग करना अपने आप को जन्नत से वंचित करना है। ऐसी स्त्री जन्नत के निकट भी नहीं फटक सकती। वह इस बात को भली-भाँति समझ ले कि उसे अगर ख़ुद पर किसी वजह से नाज़ है और वह ख़ुद को पति से दूर करना चहती है तो अल्लाह भी अपनी जन्नत को उससे दूर कर लेगा। अपनी अनुचित हरकतों से जन्नत का अधिकार खोना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है।

(14) हज़रत इयास-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह की बन्दियों (अर्थात् अपनी पत्नियों) को न मारो।" फिर (कुछ दिनों के बाद) हज़रत उमर (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए और कहा कि (आपने चूँकि स्त्रियों को मारने से रोका है, इस कारण) स्त्रियाँ अपने पतियों पर दिलेर हो गई हैं। इसपर आप (सल्ल०) ने स्त्रियों को मारने की अनुमति दे दी। इसके बाद बहुत सारी स्त्रियाँ अल्लाह के रसूल की पत्नियों के

पास इकट्ठा हुईं और उन्होंने अपने पतियों की शिकायत की (कि वे उन्हें बहुत मारते हैं)। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने (यह सुनकर) कहा, "मुहम्मद (सल्ल०) की पत्नियों के पास बहुत-सी स्त्रियाँ अपने पतियों की शिकायत करने आई हैं। तुममें से वे लोग बेहतर नहीं हैं।"

(हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा, दारमी)

व्याख्या : पति को उन मामलों में पत्नी को अपने आदेश का पाबन्द बनाने का अधिकार है, जिन मामलों में शरीअत ने उसे अधिकार प्रदान किया है। इसी प्रकार उन मामलों में भी जिनका सम्बन्ध शरीअत द्वारा फ़र्ज़ व वाजिब ठहराए हुए आदेशों के पालन से है, पति को अधिकार है कि वह पत्नी को उनका पाबन्द बनाए। अगर कोई स्त्री उन मामलों में पति के आदेश का उल्लंघन करती है और पति की नसीहत का असर क़बूल नहीं करती तो उसके सुधार के लिए पति उसे मार भी सकता है, लेकिन कोशिश इस बात की होनी चाहिए कि यथासम्भव इसकी नौबत न आए।

स्त्री को अदब सिखाने और सुधारने के लिए मारने की इजाज़त अगर दी गई है तो इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं होता कि पुरुष अपनी औरतों को निर्ममता के साथ मारना शुरू कर दें और उनके साथ निर्दयता के व्यवहार को वैध समझें। कोशिश यह होनी चाहिए कि पत्नी को समझा-बुझाकर सही मार्ग पर लाया जाए। सब्र और सहनशीलता का दामन किसी हालत में भी न छोड़ा जाए। अगर मारना ही पड़ जाए तो यह ध्यान रहे कि कहीं इसमें ज़्यादती न हो जिसके कारण अच्छे लोगों की सूची से स्वयं पति महोदय का नाम ख़ारिज हो जाने की नौबत आ जाए।

पत्नी के अधिकार

(1) हज़रत हकीम-बिन-मुआविया क़ुशैरी अपने पिता से रिवायत करते हैं कि उन्होंने कहा, मैंने निवेदन किया कि ऐ अल्लाह के रसूल ! हममें से किसी की पत्नी का उसके पति पर क्या हक़ है ? आप (सल्ल०) ने कहा, "यह कि जब तुम खाओ तो उसे भी खिलाओ, जब पहनो तो उसे भी

पहनाओ, उसके मुँह पर न मारो और न उसको बुरे और बद्दुआ (शाप) के शब्द कहो। और उससे अलग रहने का फ़ैसला करो तो सिर्फ़ घर के अन्दर ही उससे अलग रहो।" (हदीस : अहमद, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : पत्नी को खिलाने-पिलाने और कपड़ा पहनाने में किसी प्रकार की कमी नहीं होनी चाहिए। किसी उचित कारण से अगर सुधार के उद्देश्य से पत्नी को मारने की ज़रूरत पड़ ही जाए तो उसके मुँह पर हरगिज़ न मारो। मुँह शरीर का बहुत ही कोमल अंग है। शरीअत के फ़र्ज़ और वाजिब के अदा करने से अगर पत्नी मुँह मोड़ती है, और किसी नसीहत व चेतावनी का कोई प्रभाव उसपर नहीं होता तो उसे सही मार्ग पर लाने के उद्देश्य से पति उसे थोड़ा मार भी सकता है। लेकिन उसमें औचित्य की सीमा से आगे न बढ़े। ऐसा न हो कि पत्नी की पिटाई इस प्रकार करने लग जाए जैसे कोई किसी जानवर को मारता है। उसके लिए बुरे शब्दों का भी प्रयोग न करे। अबू-दाऊद की एक रिवायत में "उसके मुँह को बुरा न ठहरा" के शब्द भी आए हैं।

किसी नाफ़रमानी या किसी नाराज़ी की वजह से पत्नी से अलग होने में ही कोई भलाई हो तो अपना बिस्तर उससे अलग रखो। उसके साथ लेटना छोड़ दो ताकि उसे चेतावनी मिले और वह सीधे रास्ते पर आ जाए और तलाक़ की नौबत न आए।

क़ुरआन में भी है, "और वे स्त्रियाँ जिनकी सरकशी और उद्दण्डता की तुम्हें आशंका हो उन्हें समझाओ और बिस्तरों में उन्हें अकेली छोड़ दो, और उन्हें मार भी सकते हो।" (क़ुरआन, 4:34)

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो वह अपने पड़ोसी को न सताए और औरतों के हक़ में भलाई की वसीयत स्वीकार करो, इसलिए कि वे पसली से पैदा की गई हैं जो टेढ़ी होती है, और सबसे बढ़कर टेढ़ पसली में उसके ऊपरवाले भाग में होता है। अतः यदि तुम पसली को सीधी करनी चाहोगे तो उसको तोड़ दोगे। और अगर उसको उसके अपने हाल पर छोड़ दोगे तो उसका टेढ़ापन दूर न होगा। अतः औरतों के हक़ में भलाई की वसीयत स्वीकार करो। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : "औरत पसली से पैदा की गई है" यह एक मुहावरा है,

जैसे क़ुरआन में है, "इनसान उजलत (जल्दबाज़ी) के ख़मीर (सत्व) से बना है।" (अल्-अबिंया : 37) बुख़ारी की एक रिवायत में है कि आप (सल्ल०) ने कहा, "औरत पसली के सदृश है। अगर तुम उसे सीधी करनी चाहोगे तो उसे तोड़ दोगे। और अगर उससे अधिक लाभ उठाना चाहो तो उसके टेढ़ेपन की हालत ही में लाभ उठा सकते हो।" (हदीस : बुख़ारी, रिवायत अबू-हुरैरा)

फिर इसपर भी नज़र रहे कि पसली अगर टेढ़ी होती है तो यह उसका ऐब नहीं, उसका गुण है। पसली अगर टेढ़ी न होती तो छाती और उसके अन्दर के प्रमुख अंगों की सुरक्षा न हो पाती। स्त्री भी घर की रक्षिका होती हैं और इसमें उसके स्वभाव का भी बड़ा योगदान होता है। उसके स्वभाव के टेढ़ेपन पर न जाओ। उसको उसके स्वभाव पर बाक़ी रखते हुए उससे लाभ उठाने की कोशिश करो।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "औरत पसली से पैदा की गई है। अतः वह तुम्हारे लिए कभी किसी एक राह पर हरगिज़ सीधी नहीं होगी। इसलिए यदि तुम उससे लाभ उठाना चाहते हो तो उसके टेढ़ेपन ही की हालत में उससे लाभ उठा लो। और अगर तुम उसे सीधा करना चाहोगे तो उसे तोड़ डालोगे। और उसका तोड़ना उसे तलाक़ देनी है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : स्वभाव में विविधता एवं अस्थिरता स्त्री की प्रकृति है। तुम चाहो कि वह हमेशा एक ही हालत पर रहे तो यह सम्भव नहीं है। उसके स्वभाव की वक्रता नारीत्व का एक महत्वपूर्ण अंश और उसका सौन्दर्य है। वह अगर कभी भोली-भाली दिखाई दे और कभी चंचल और शोख़ तो इससे परेशान होने की ज़रूरत नहीं।

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "कोई मोमिन पुरुष किसी मोमिन स्त्री से द्वेष न रखे। अगर उसकी निगाह में स्त्री का कोई स्वभाव नापसन्दीदा होगा तो कोई दूसरा स्वभाव पसन्दीदा भी होगा।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : हदीस का आशय स्पष्ट है। आदमी को मोमिन स्त्री के सिर्फ़ अप्रिय स्वभाव पर निगाह नहीं रखनी चाहिए क्योंकि उसमें प्रिय और सराहनीय गुण-स्वभाव भी तो हो सकते हैं। अतः स्त्री की प्रिय बातों को दृष्टि में रखते

हुए उसकी अप्रिय बातों पर सब्र और धैर्य से काम लेना और उनकी अनदेखी करना ही बुद्धिमानी है। संसार में बेऐब पुरुष या स्त्री का मिलना सम्भव नहीं। इस सम्बन्ध में तत्त्वदर्शिता और सूझ-बूझ का तक़ाज़ा यह है कि सहनशीलता और समझौते से काम लिया जाए। यह एक सत्य है कि दोष रहित यार ढूँढनेवाले हमेशा बिना यार के ही रह जाते हैं।

(5) हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि मैं नबी (सल्ल०) के यहाँ खेला करती थी और मेरी हमजोलियाँ भी मेरे साथ खेलती थीं। फिर जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) आ जाते तो मेरी सहेलियाँ आप (सल्ल०) से लज्जा के कारण छिप जाती थीं, लेकिन आप उन्हें मेरे पास भेज दिया करते थे और वे मेरे साथ खेलने लगती थीं। (हदीस : बुखारी, मुस्लिम)

व्याख्या— इस हदीस से मालूम हुआ कि पत्नी की भावनाओं और उसके स्वाभाविक और वैध शौक़ का लिहाज़ रखना ज़रूरी है। क्योंकि उसके बिना किसी आनन्दमय जीवन की हम कल्पना नहीं कर सकते। जिस व्यक्ति को अपनी पत्नी के साथ हँसी-ख़ुशी रहने का सलीक़ा न हो उसे चैन व सुकून की दौलत नसीब नहीं हो सकती।

(6) हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं कि ख़ुदा की क़सम, मैंने देखा कि नबी (सल्ल०) मेरे हुजरे (कमरे) के दरवाज़े पर खड़े हैं और हब्शी लोग मस्जिद में अपने भालों से खेल रहे हैं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपनी चादर से मेरे लिए परदा कर लिया ताकि मैं भी आपके कान और मोंढे (कन्धों) के बीच से उनका खेल देखूँ। फिर आप (सल्ल०) मेरे लिए उस समय तक खड़े रहे जब तक कि मैं ख़ुद वहाँ से हट नहीं गई। अब तुम ख़ुद उस समय का अन्दाज़ा कर लो जिसमें एक कम-उम्र लड़की जो खेल-तमाशे का शौक़ रखती है, खड़ी रहेगी। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि मैं काफ़ी देर तक हबशियों का यह खेल देखती रही जैसा कि कम-उम्र और खेल की शौक़ीन लड़की से इसी की आशा भी थी। लेकिन नबी (सल्ल०) मेरे लिए उस समय तक खड़े रहे जब तक मैं ख़ुद वहाँ से हट नहीं गई।

(7) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है। वे कहती हैं कि मैं पानी पीकर बरतन नबी (सल्ल०) को देती। आप उसी स्थान पर अपना मुँह

रखते जहाँ मैंने अपना मुँह लगाकर पानी पिया था, हालाँकि मैं हैज़ से होती थी। मैं हड्डी मुँह से नोचती फिर उसे नबी (सल्ल०) को देती, आप उसी जगह मुँह लगाते जहाँ मैंने अपना मुँह लगाया होता, हालाँकि मैं हैज़ की हालत में होती। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इससे अन्दाज़ा होता है कि नबी (सल्ल०) को उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ि०) से कितना प्रेम था और आप कितना उनका दिल रखते थे।

इस हदीस से यह भी मालूम हुआ कि हैज़ की हालत में स्त्री सर्वथा अपवित्र नहीं हो जाती कि आदमी उसके साथ रहना-सहना सब त्याग दे। हैज़ के दिनों में सिर्फ़ सम्भोग करना निषिद्ध है।

(8) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मैं भली-भाँति जान लेता हूँ जब तुम मुझसे ख़ुश होती हो और जब तुम मुझसे नाख़ुश होती हो।" मैंने अर्ज़ किया कि आप यह किस तरह पहचान लेते हैं? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुम मुझसे ख़ुश होती हो तो कहा करती हो कि यह बात नहीं है, मुहम्मद के रब की क़सम! और जब तुम मुझसे ख़फ़ा होती हो तो कहती हो कि यह बात नहीं है, इबराहीम के रब की क़सम!" मैंने अर्ज़ किया कि यह बात ठीक है। लेकिन ख़ुदा की क़सम, मैं तो मात्र आपका नाम ही छोड़ती हूँ (दिल में आपका वही प्रेम रहता है)। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अपने प्रिय पति से अपनी नाराज़ी की यह अदा भी कितनी सुन्दर और मोहक है। इससे जहाँ उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) की सुभाषिता की प्रवीणता का पता चलता है, वहीं यह भी मालूम होता है कि शरीअत में यह हरगिज़ अभीष्ट नहीं है कि पति-पत्नी के सम्बन्ध फीके, नीरस और शुष्क हों। प्रेम में अगर किसी के रूठने और नाज़-नख़रे उठाने का सिरे से कोई मौक़ा ही न हो तो वह प्रेम ही क्या हुआ, लेकिन इसकी भी कुछ मर्यादाएँ हैं। ये नाज़-नख़रे अगर विमुखता और घृणा का पर्याय बन जाएँ तो यह चीज़ प्रेम के लिए किसी घातक विष से कम नहीं।

(9) हज़रत ख़ुवैलिद-बिन-अम्र (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ऐ अल्लाह, मैं इन दो कमज़ोरों अर्थात्

अनाथ और स्त्री के हक़ मारने को महापाप ठहराता हूँ।" (हदीस : नसई)

व्याख्या : अनाथ बच्चा और स्त्री दोनों कमज़ोर और निर्बल होते हैं। उनपर अत्याचार करना लोगों के लिए बहुत आसान बात है। यही कारण है कि समाज ने साधारणतया उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया है। उनपर हमेशा ज़ुल्म व ज़्यादती होती रही है। हालाँकि कमज़ोर होने के कारण ये दोनों ही हमारी करुणा और विशेष देख-रेख के मुहताज होते हैं। इसी लिए नबी (सल्ल०) इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि अनाथों और औरतों का हक़ मारना और उनके अधिकारों का हनन बहुत बड़ा गुनाह है। उसे कोई साधारण बात समझने की ग़लती नहीं करनी चाहिए।

(10) हज़रत अनस (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास मधुर स्वर में गीत गाकर ऊँटों को तेज़ चलानेवाला एक चालक था। आप (सल्ल०) ने कहा, "आहिस्ता चलो ऐ अंजशा! शीशों को न तोड़ो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि ऊँट पर आपकी पत्नियाँ सवार थीं। ऊँट चालक के गाने के कारण ऊँट की रफ़्तार तेज़ हो जाती है। इसलिए आप (सल्ल०) ने उसे सावधान किया कि कहीं ऊँट के तेज़ चलने के कारण स्त्रियाँ ऊँट से गिर न पड़ें और उन्हें चोट आ जाए। स्त्रियाँ चूँकि कोमलांगिनी होती हैं इसलिए आप (सल्ल०) ने उनके लिए शीशे का रूपक प्रयुक्त किया।

(11) हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि अबू-सुफ़यान की पत्नी हिन्द बिन्ते उतबा (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास आईं और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! सुफ़यान कंजूस व्यक्ति हैं। मुझे इतना ख़र्च नहीं देते जो कि मेरे और मेरे बच्चों के लिए काफ़ी हो। मगर मैं उनके माल में से उनकी जानकारी में लाए बिना कुछ ले लेती हूँ, तो क्या मुझ पर इसका गुनाह होगा? अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "उनके माल से दस्तूर के मुताबिक़ उतना ले लो जो तुम्हारे और तुम्हारे बच्चों के लिए पर्याप्त हो।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि पत्नी और बच्चों के पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी उठाना पुरुष पर अनिवार्य है। उसे इसकी तरफ़ से लापरवाह

नहीं होना चाहिए।

(12) हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं कि जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) सफ़र का इरादा करते तो अपनी पत्नियों के बीच 'क़ुरआ' (पर्ची) डालते। उनमें से जिसका नाम निकल आता उसे अपने साथ (सफ़र में) ले जाते। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस से स्पष्ट है कि अगर किसी व्यक्ति की एक से अधिक पत्नियाँ हों तो उसके लिए आवश्यक है कि वह अपनी पत्नियों के साथ न्यायपूर्ण और समानता का व्यवहार करे। इस हदीस से यह भी मालूम हुआ कि विवादास्पद मामलों में जहाँ पक्षपात के आरोप का भय हो क़ुरआ-अन्दाज़ी के द्वारा फ़ैसला करें तो इसमें कोई बुराई नहीं है।

इस रिवायत से इस बात का भी भली-भाँति अन्दाज़ा किया जा सकता है कि नबी (सल्ल०) को अपनी पवित्रात्मा पत्नियों का दिल रखना कितना प्रिय था कि सफ़र में भी उनको अपने साथ रखते थे।

(13) हज़रत जाबिर बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुममें से किसी को घर से बाहर रहते हुए एक लम्बा समय बीत जाए तो रात को अचानक अपने घर न आए।" (हदीस : बुख़ारी)

(14) हज़रत जाबिर बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुम रात में आओ तो तुरन्त अपने घर में प्रवेश न करो ताकि, स्त्री जिसका पति मौजूद नहीं था, सफ़ाई करके और बिखरे बालों में कंघी करके (अपने आपको) दुरुस्त कर ले।"

व्याख्या : स्त्री को इसका अवसर देना चाहिए कि वह पति के आने पर बालों की सफ़ाई, सर में कंघी और श्रृंगार आदि कर सके ताकि उससे मिलकर पति को किसी प्रकार की अप्रियता और घृणा न हो।

(15) हज़रत जाबिर बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अन्तिम हज के अवसर पर (अपने ख़ुतबे में) फ़रमाया — "(लोगो!) औरतों के मामले में अल्लाह का डर रखो, तुमने उनको अल्लाह की अमान (संरक्षण आश्रय) के साथ लिया है और उनके गुप्तांगों को अल्लाह के आदेश से अपने लिए हलाल किया है। औरतों पर

तुम्हारा यह ह.क़ है कि वे तुम्हारे बिस्तरों पर किसी ऐसे व्यक्ति को न आने दें जिसका आना तुम्हें अप्रिय लगे। फिर अगर वे इस मामले में तुम्हारी बात न मानें तो तुम उन्हें मारो, किन्तु वह अधिक कड़ी और कष्ट पहुँचानेवाली मार न हो। और तुमपर उनका हक़ यह है कि तुम उन्हें रीति के अनुसार खाना और कपड़ा दो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह जो कहा गया कि 'तुमनें उनको अल्लाह की अमान (संरक्षण आश्रय) के साथ लिया है।' तो इसका अर्थ है कि तुमने ईश्वर को वचन दिया है कि तुम उनके हक़ अदा करोगे और उन्हें आदरपूर्वक साथ रखोगे।

एक रिवायत में आया है कि आप ने फ़रमाया, "सावधान! औरतों के मामले में अच्छा सुलूक करने की वसीयत क़बूल करो, क्योंकि वे तुम्हारे पास क़ैदी की तरह हैं। तुम्हें उनपर इससे भिन्न किसी चीज़ का अधिकार प्राप्त नहीं है सिवाय इसके कि वे खुली अश्लीलता अपनाएँ। अगर वे ऐसा करती हैं तो इस स्थिति में तुम उन्हें अपने बिस्तरों पर अकेला छोड़ दो। और उन्हें मारो, लेकिन मार अधिक कड़ी और हानि पहुँचानेवाली न हो। फिर अगर वे तुम्हारी बात मानने लगें तो फिर उनके विरुद्ध उन्हें सताने के लिए कोई बहाना तलाश न करो। सुन लो, निश्चय ही तुम्हारी औरतों पर तुम्हारा हक़ है और तुमपर तुम्हारी औरतों का हक़ है। तुम्हारा हक़ उनपर यह होता है कि तुम्हारे बिस्तरों पर किसी ऐसे व्यक्ति को (चाहे वह पुरुष हो या स्त्री) आने न दें जिसका आना तुम्हें अप्रिय लगे और तुम्हारे घरों में किसी ऐसे व्यक्ति को आने की अनुमति न दें जिसका आना तुम्हें पसन्द न हो। सुन लो, उनका हक़ तुमपर यह है कि तुम उन्हें पहनाने और खिलाने में भली रीति अपनाओ।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

तलाक़

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वैध चीज़ों में अल्लाह की दृष्टि में सबसे बुरी चीज़ तलाक़ है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस हदीस की सनद में कुछ त्रुटि है, लेकिन इसमें जो बात कही गई है वह शरीअत की आत्मा के ठीक अनुकूल है। शरीअत में तलाक़ का प्रावधान यद्यपि रखा गया है तथापि है यह अत्यन्त अप्रिय। इसलिए

शरीअत द्वारा दिए गए तलाक़ के अधिकार को अत्यन्त मजबूरी की हालत ही में इस्तेमाल करना चाहिए। एक हदीस में है, "अल्लाह ऐसे पुरुषों और औरतों को पसन्द नहीं करता जो भौरों की तरह फूल-फूल का मज़ा चखते फिरें।" (हदीस : बज़्ज़ाज़)

एक और हदीस में है : "अल्लाह ने धरती पर जितनी चीज़ें पैदा कीं उनमें उसके निकट सबसे ज़्यादा पसन्दीदा चीज़ लौण्डी-ग़ुलाम को आज़ाद करना है, और अल्लाह ने जितनी चीज़ें धरती पर पैदा की हैं उनमें उसके निकट सबसे अधिक अप्रिय चीज़ तलाक़ है।" (हदीस : दारे-क़ुत्नी)

दाम्पत्य ज़ीवन का उद्देश्य सुकून और चैन की प्राप्ति है। लेकिन किसी कारणवश अगर दाम्पत्य जीवन कष्ट और पीड़ा का कारण बनकर रह जाए तो वैवाहिक सम्बन्ध को समाप्त किया जा सकता है। निकाह वास्तव में शरई अनुबन्ध है। यह अनुबन्ध समाप्त भी हो सकता है लेकिन इसके नियम और सिद्धान्त हैं जिनका आदर करना अत्यन्त आवश्यक है।

पति-पत्नी के बीच विवाद की स्थिति में दोनों को आपस में ख़ुद सुलह-सफ़ाई कर लेने की कोशिश करनी चाहिए। अगर इसमें उन्हें कामयाबी नहीं मिलती तो मामले को आगे बढ़ाया जा सकता है। अदालत को चाहिए कि वह दोनों के परिवार में से एक-एक मध्यस्थ नियुक्त कर दे। वे मध्यस्थ दोनों पक्षों के बयानों को सुनकर कोशिश करेंगे कि जिसकी ओर से ज़्यादती हो रही है, उसको समझा-बुझाकर रास्ते पर लाएँ और उन दोनों के बीच सुलह करा दें। लेकिन अदालत अगर इस नतीजे पर पहुँचती है कि उनके बीच निर्वाह नहीं हो सकता तो मजबूर होकर वह उनके बीच सम्बन्ध-विच्छेद (तलाक़) करा देगी। इस स्थिति में अगर ज़्यादती पति की ओर से है तो फिर उसे मह्र की पूरी रक़म अदा करनी होगी। और अगर ज़्यादती स्त्री की सिद्ध होती है तो फिर वह मह्र का कुछ भाग छोड़कर तलाक़ हासिल कर सकती है, जैसा कि इस सम्बन्ध में क़ुरआन में विस्तृत आदेश पाए जाते हैं। इन दोनों चरणों से, जिनका यहाँ वर्णन किया गया, गुज़रे बिना तलाक़ देना ठीक नहीं है। नबी (सल्ल०) ने ग़लत तरीक़े से तलाक़ देने पर हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) को तलाक़ वापस लेने का आदेश दिया है।

निकाह तोड़ना कोई प्रिय चीज़ नहीं है। इसी लिए तोड़ने के बाद भी इसकी गुंजाइश रखी गई है कि पति इद्दत की अवधि में स्त्री से दाम्पत्त्य सम्बन्ध पुनः स्थापित कर सकता है, और इद्दत गुज़र जाने के बाद भी उसको यह अधिकार प्राप्त है कि फिर से निकाह करके और दोबारा दाम्पत्य-सम्बन्ध स्थापित करके आनन्दमय वैवाहिक जीवन व्यतीत करने की कोशिश करे। लेकिन अगर फिर निर्वाह न हो सका और दोबारा तलाक़ की नौबत आ गई तो पहले की तरह इद्दत के दौरान रुजू कर सकता है, और इद्दत गुज़र जाने (तीन माह की अवधि पूर्ण होने) पर फिर से निकाह करके नए सिरे से दाम्पत्य जीवन की शुरुआत कर सकता है। लेकिन अब यह उसके लिए अंतिम अवसर है। इसके बाद फिर अगर जुदाई और तलाक़ की नौबत आ गई तो यह जुदाई स्थायी हो जाएगी। इसके बाद न रुजू की गुंजाइश बाक़ी रहती है और न फिर से निकाह की।

अब अगर तलाक़ पाई हुई स्त्री का विवाह किसी अन्य व्यक्ति से होता है, लेकिन कुछ समय बीतने के बाद उन दोनों में भी निर्वाह असम्भव हो जाता है और दोनों चरणों (जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है) से गुज़रने के बाद पति और पत्नी के बीच जुदाई की नौबत आ गई या उसके दूसरे पति का निधन हो गया तो अब फिर इसकी गुंजाइश होगी कि उस स्त्री का निकाह उसके पहले पति से कर दिया जाए, जबकि दोनों इस निकाह के लिए सहमत हों। इसलिए कि ठोकर खाने के बाद अब इसकी आशा की जा सकती है कि वे परस्पर निर्वाह की नीति अपनाएँगे।

तलाक़ देने का सही तरीक़ा यह है कि पत्नी को सिर्फ़ एक तलाक़ दी जाए। दूसरी बार या तीसरी बार दोहराने की ज़रूरत नहीं। तलाक़ का उद्देश्य जुदाई है जो एक तलाक़ से पूरा हो जाता है। एक ही समय में और एक ही तुह्र (पाकी की हालत अर्थात् स्त्री हैज़ की हालत में न हो) में तीन तलाक़ें देनी नियम के प्रतिकूल है। हनफ़ी विचारधारा का प्रसिद्ध मत यह है कि इस तरह तलाक़ देनी अवैध और नियम के प्रतिकूल है, फिर भी तीन तलाक़ें लागू हो जाती हैं और पत्नी अपने पति के लिए बिलकुल हराम हो जाती है। न पति रुजू (वापस) कर सकता है और न दोबारा उससे निकाह कर सकता है। स्त्री का

किसी दूसरे व्यक्ति से निकाह हो जाता है और फिर दूसरा पति मर जाए या तलाक़ दे दे तो इस स्थिति में स्त्री का निकाह पहले पति से दोबारा हो सकता है जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह०) के अलावा यही मशहूर मत इमाम मालिक (रह०) और इमाम शाफ़ई (रह०) का भी है। इमाम अहमद बिन-हंबल (रह०) के बारे में इमाम इब्ने-तैमिया (रह०) ने साबित किया है कि इमाम अहमद बिन-हंबल (रह०) का मत भी वही था जो दूसरे इमामों का मत है। लेकिन उन्होंने अपने कथन से रुजू कर लिया। उनका मत यह है कि तीन तलाक़ें एक समय में नहीं दी जा सकतीं। अगर कोई देता है तो एक ही तलाक़ मानी जाएगी। पति को रुजू करने या नए सिरे से निकाह करने की पूरी गुंजाइश होगी। मुहम्मद इब्ने-मुक़ातिल के बयान से मालूम होता है कि इमाम अबू-हनीफ़ा (रह०) के दो कथनों में से एक कथन यही है कि तीन तलाक़ जो एक साथ हों वह एक रजई तलाक़ (वह तलाक़ जिसमें रुजूअ करने की गुंजाइश हो) मानी जाएगी। इमाम मालिक (रह०) के दो कथनों में से एक कथन यही है। इमाम अहमद (रह०) के कुछ साथी और दाऊद ज़ाहिरी का मत भी यही है।

(उम्दतुर-रिआया, भाग-2, पृ० 67-71)

कुछ सहाबा (रज़ि०) और कुछ ताबिईन (रह०) के कथन भी इसी मत के पक्ष में हैं। क़ुरआन के शब्द "अत्-तलाक़ु मर्रतान" (अल्-बक़रा, आयत 229) अर्थात् 'तलाक़ दो बार हो सकती है' से भी यह मालूम होता है कि तलाक़ों के मध्य अन्तराल होना ज़रूरी है। एक समय में तीन तलाक़ों की स्थिति में कोई अन्तराल नहीं पाया जाता। क़ुरआन में है, "ल तुफ़सिदुन्न फ़िल-अरज़ि मर्रतैन" (क़ुरआन, 17:4) अर्थात् 'ऐ बनी-इसराईल, तुम धरती में अवश्य ही दो बार फ़साद बरपा करोगे।' यहाँ जिन दो फ़सादों की ओर इशारा किया गया है, उनके बीच सदियों का अन्तराल पाया जाता है।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि

---

1. इशारा है क़ुरआन की इस आयत की ओर, "जब तुम औरतों को तलाक़ देनी चाहो तो उन्हें इद्दत के हिसाब से तलाक़ दो और इद्दत की गिनती करते रहो।" (क़ुरआन, 65 : 1)

उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के ज़माने में अपनी पत्नी को हैज़ की हालत में तलाक़ दे दी। हज़रत उमर बिन-ख़त्ताब (रज़ि०) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से इस विषय में पूछा तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उसे आदेश दो कि वह रुजू कर ले, फिर वह उसे रोके रखे, यहाँ तक कि स्त्री पाक हो जाए। फिर हैज़ आए, फिर पाक हो जाए, फिर अगर चाहे तो इसके बाद अपने पास रहने दे और अगर चाहे तो सम्भोग करने से पहले तलाक़ दे। यही वह इद्दत है जिसके हिसाब से औरतों को तलाक़ दिए जाने का आदेश अल्लाह ने दिया है।[1]" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यह हदीस इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि स्त्री को हैज़ की हालत में तलाक़ देनी अवैध और बड़ा गुनाह है। अगर किसी ने तलाक़ दे दी हो तो उसे तुरन्त रुजू कर लेना चाहिए। फिर अगर तलाक़ देने ही का फ़ैसला हो तो उसे पाकी की हालत में तलाक़ दे जिसमें पत्नी से सम्भोग न किया हो।

हैज़ की हालत में औरत चूँकि विवश होती है, पति की इच्छा पूरी नहीं कर सकती। इसलिए पुरुष के लिए अधिक आकर्षण-योग्य नहीं रहती। इसलिए हैज़ की हालत में तलाक़ देने में इसकी सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि तलाक़ देने में चित्ताकर्षण न होने का कारक भी काम कर रहा हो और वास्तव में इसके पीछे कोई ऐसा कारण न हो कि आदमी तलाक़ देने पर मजबूर हो।

हैज़ की हालत में तलाक़ देनी हराम है। लेकिन अगर कोई इस हालत में तलाक़ दे देता है तो तलाक़ पड़ जाती है। इसी लिए नबी (सल्ल०) ने हज़रत अब्दुल्लाह को आदेश दिया कि वह उससे रुजू कर लें और अगले मासिक धर्म तक की पाक रहने की अवधि गुज़र जाने दें और अगर तलाक़ देनी अपरिहार्य ही हो तो फिर दूसरे मासिक धर्म से गुज़र जाने के बाद तलाक़ दें। इसका कारण यह है कि जब पति और पत्नी पाकी की हालत में एक साथ रहेंगे तो उनके सम्बन्ध सुधरने और उसके अच्छे हो जाने की आशा की जा सकती है। अगर उनमें मेल-मिलाप हो जाता है फिर तो तलाक़ की ज़रूरत ही बाक़ी न रहेगी।

दूसरे हैज़ के बाद पाकी की हालत तक तलाक़ को स्थगित रखने का

कारण यह समझ में आता है कि इस तरह तलाक़ देने के अपने फैसला पर पुनरविचार का पूरा अवसर मिलता है। तलाक़ देने में 'सम्भोग से पहले' की शर्त लागू करने में भी यह भेद है कि नापाकी के दिन बीतने पर स्वाभाविक रूप से संभोग की प्रेरणा और इच्छा होती है। इस प्रकार यह पाबन्दी भी तलाक़ की राह में रुकावट का कारण बन सकती है।

यह हदीस बताती है कि शरीअत ने इनसान के कल्याण, उसकी शान्ति और भलाई का कितना अधिक ध्यान रखा है।

शरीअत के सिद्धान्त और उसके शिष्ट नियमों का अगर ध्यान रखा जाए तो इसकी सम्भावना नहीं रहती कि इनसान मानसिक चिन्ताओं और उलझनों में ग्रस्त हो और उसके जीवन का सुख-चैन जाता रहे।

'यही वह इद्दत है' से संकेत सूरा-65, अत-तलाक़ की आयत-1 की ओर है, जिसमें कहा गया है कि "जब तुम औरतों को तलाक़ देना चाहो तो उन्हें इद्दत के हिसाब से तलाक़ दो और इद्दत की गणना करो।"

(3) हज़रत महमूद बिन-लबीद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को एक व्यक्ति के बारे में सूचना दी गई कि उसने अपनी पत्नी को एक साथ तीन तलाक़ें दी हैं। इसपर आप (सल्ल०) क्रुद्ध होकर खड़े हो गए और कहा, "क्या अल्लाह प्रतापवान की किताब के साथ खिलवाड़ किया जाता है, हालाँकि मैं तुम्हारे बीच मौजूद हूँ।" यह सुनकर एक व्यक्ति खड़ा हुआ और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! क्या मैं उस व्यक्ति को क़त्ल न कर दूँ। (हदीस : नसई)

व्याख्या : क्या अल्लाह की किताब के साथ खिलवाड़ किया जाता है? इससे यह इशारा सूरा अल-बक़रा, आयत 229-231 की ओर है, जिसमें बयान हुआ है : "तलाक़ दो बार हो सकती है। दो बार से ज़्यादा तलाक़ देकर रुजू करने की गुंजाइश बाक़ी नहीं रहती। उसके बाद तो पति-पत्नी के बीच स्थायी जुदाई हो जाती है। अब तलाक़ के सिद्धान्त और नियमों का पालन किए बिना अगर कोई व्यक्ति एक साथ तीन तलाक़ें दे देता है तो इसे अल्लाह की किताब के साथ खेल या मज़ाक़ ही कहा जाएगा। इसलिए तलाक़ के सिद्धान्त और नियम बयान करते हुए सूरा अल बक़रा आयत 231 में ये शब्द प्रयोग किए गए हैं— "अल्लाह की आयतों का मज़ाक़ न बनाओ।"

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०)ने फ़रमाया, "तीन चीज़ें ऐसी हैं जो निश्चय और इरादे से बात करने से घटित हो जाती हैं, और हँसी-मज़ाक़ के तौर पर कहने से भी घटित हो जाती हैं। वे हैं— निकाह, तलाक़ और रजअत।"(हदीस :तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : आशय यह है कि ये तीन चीज़ें ऐसी हैं कि मुँह से बोलते ही घटित हो जाती हैं चाहे वास्तविक इरादे से बात ज़बान पर लाई जाए या सिर्फ़ हँसी-मज़ाक़ के तौर पर ज़बान से अदा की जाएँ। अगर कोई व्यक्ति हँसी-मज़ाक़ में निकाह करता है या मज़ाक़ में पत्नी को तलाक़ देता है या तलाक़ दी हुई पत्नी से हँसी-मज़ाक में रजअत (तलाक़ वापस लेने की बात) करता है तो निकाह वैध हो जाएगा, तलाक़ पड़ जाएगी और रजअत मान ली जाएगी। ये तीनों ही चीज़ें इतनी नाज़ुक हैं कि इनमें हँसी-मज़ाक़ की गुंजाइश नहीं है। इनके बारे में जो कुछ ज़बान से कहा जाएगा उसे वास्तविक अर्थ में लिया जाएगा।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०)ने फ़रमाया, "प्रत्येक तलाक़ को वैध और लागू समझा जाएगा सिवाय उस व्यक्ति की तलाक़ के जो बुद्धि-विक्षिप्त और पागल हो।"

(हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : जिसकी अक़्ल किसी रोग या शोक से या किसी और कारण से ठिकाने न हो, जिसको अपनी बातों का पता न हो कि वह क्या कह रहा है, जो ऐसी बातें करने लगता हो जिनको वह सूझ-बूझ की हालत में कभी न करता। ऐसा व्यक्ति अगर अपनी पत्नी को तलाक़ देता है तो तलाक़ नहीं पड़ेगी।

एक हदीस में है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तीन व्यक्ति 'मरफ़ूउल-क़लम' हैं(अर्थात् उनके कर्म लिखे नहीं जाते, उनकी पकड़ न होगी), एक तो सोया हुआ व्यक्ति, जब तक कि वह जाग न जाए। दूसरा नाबालिग़ (अव्यस्क) बच्चा, जब तक कि बालिग़ (व्यस्क) न हो जाए। और तीसरा बुद्धि-विक्षिप्त, जब तक कि उसकी बुद्धि ठीक न हो जाए।" (हदीस : तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद)

(6) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना, "ज़बरदस्ती की तलाक़ और ज़बरदस्ती के इताक़ (आज़ादी) की कोई मान्यता नहीं।" (हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : अगर किसी को विवश करके उससे तलाक़ दिलाई जाए

(जिसे तलाक़े-मुकरह कहते हैं) या उसके ग़ुलाम को ज़बरदस्ती आज़ाद कराया जाए तो शरीअत में इन्हें मान्यता प्राप्त न होगी। इमाम शाफ़ई (रह०), इमाम मालिक (रह०) और इमाम अहमद बिन-हंबल (रह०) का मत यही है। लेकिन इमाम अबू-हनीफ़ा के निकट ये चीज़ें ज़बरदस्ती की स्थिति में भी घटित हो जाती हैं। फ़िक़ह (इस्लामी-धर्मविधान) की किताबों में इनके प्रमाण देखे जा सकते हैं। इमाम अबू-हनीफ़ा के मत के अनुसार ग्यारह चीज़ें ऐसी हैं जिनका हुक्म ज़बरदस्ती की हलात में भी लागू हो जाता है। तलाक़े-मुकरह और इताक़ के अलावा नौ चीज़े ये हैं :— निकाह, रजअत (वापसी), ईला, ईला से रजअत, ज़िहार, अफ़्वे-क़िसास (जान के बदले जान लेने से माफ़ी), क़सम, नज़्र (मनौती) और इस्लाम धर्म की स्वीकृति।

(7) हज़रत आइशा (रजि०) से रिवायत है कि एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी को तीन तलाक़ दे दीं। उस स्त्री ने दूसरा विवाह कर लिया। फिर उसके दूसरे पति ने भी तलाक़ दे दी। नबी (सल्ल०) से इसके बारे में पूछा गया कि क्या वह स्त्री अपने पहले पति के लिए वैध है ? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नहीं, जब तक कि उसका पति उससे सुख-भोग न ले जिस प्रकार पहला पति सुख-भोगा था।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : क़ुरआन में है— "तीसरी बार पत्नी को तलाक़ देने के बाद स्त्री पहले पति के लिए उस समय तक वैध नहीं होगी जब तक कि वह किसी दूसरे पति के निकाह में न रही हो।" (अल-बक़रा, 230) अब यह दूसरा पति अगर मर जाता है या उसे तलाक़ दे देता है तो इद्दत के बाद उसका निकाह पहले पति से हो सकता है। इस हदीस से मालूम हुआ कि दूसरे पति से केवल निकाह काफ़ी नहीं समझा जाएगा, बल्कि दूसरे पति से सम्भोग भी आवश्यक है। समस्त इमामों का मत भी यही है।

(8) हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने-अब्बास (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के ज़माने में और हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में और हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के आरंभिक दो सालों में भी ऐसा था कि कोई एक साथ तीन तलाक़ देता तो उसे एक ही गिना जाता था। फिर हज़रत उमर इब्ने-ख़त्ताब (रज़ि०) ने फ़रमाया कि लोग इस मामले में जल्दबाज़ी से काम लेने लगे जिसमें उन्हें मुहलत मिली थी, तो

काश हम इसे उनपर लागू कर देते! अतएव उन्होंने इसको उनपर लागू कर दिया।

व्याख्या : हज़रत उमर (रज़ि०) ने विशेष परिस्थिति को सामने रखकर यह क़दम उठाया था। इतिहास से इस बात का साक्ष्य मिलता है कि एक समय ऐसा आया कि इराक़ और शाम (सीरिया) से गिरफ़्तार होकर आनेवाली औरतों की संख्या में जब वृद्धि होने लगी। ये स्त्रियाँ अपनी ख़ूबसूरती में बढ़ी हुई थीं, अरबवासी उनपर कुछ ऐसे दीवाने हो रहे थे कि अपनी पत्नियों को तीन तलाकें इकट्ठी देने लग गए ताकि अपनी पसन्द की औरतों को सन्तुष्ट कर सकें। बाहर की स्त्रियाँ ही नहीं बल्कि अरबी स्त्रियाँ भी ऐसी होतीं जिनकी शादी के लिए यह शर्त होती थी कि अपनी पत्नी को तीन तलाक़ दे दो ताकि वह तुम्हारे लिए हलाल न रहे और सुख-भोग केवल अपने हिस्से में रहे। उन औरतों को साधारणतया मसले और क़ानून की बारीकियों का ज्ञान न होता। वे संतुष्ट होकर शादी कर लेतीं। वे इससे बेख़बर होतीं कि पुरुष तलाक़ से रुजू भी कर सकता है। जब पुरुष रुजू कर लेते तो यह चीज़ उनके बीच झगड़े और विवाद का कारण बन जाया करती थी। फिर परस्पर ऐसा कलह और खिन्नता पैदा होती कि जीवन की शान्ति और सुकून सब भंग होकर रह जाता। अरब जाति के लोग अपनी पिछली ख़ानदानी पत्नियों को छोड़ भी नहीं सकते थे। वह कुछ महीनों बाद वांशिक सुरक्षा के उद्देश्य से ख़ानदानी अरब पत्नियों से रुजू करके उन्हें वापस लाने लगते।

हज़रत उमर (रज़ि०) को इन परिस्थितियों में ख़राबियों पर क़ाबू पा लेने का उपाय यह दिखाई दिया कि एक साथ दी जानेवाली तीन तलाक़ों को अन्तराल के साथ दी जानेवाली तीन तलाक़ों का दर्जा दे दिया जाए ताकि अरब अपनी ख़ानदानी पत्नियों को तलाक़ देने से रुक जाएँ। हज़रत उमर (रज़ि०) ने यह क़दम वास्तव में विशेष परिस्थिति में प्रबन्ध और व्यवस्था सम्बन्धी कारणों के अन्तर्गत उठाया था। समय के ख़लीफ़ा को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अस्थायी व सामयिक रूप से विशिष्ट परिस्थिति को देखते हुए किसी विशेष आदेश को स्थगित कर दे। ख़िलाफ़ते-राशिदा के दौर में इस प्रकार के दूसरे उदाहरण भी मिल सकते हैं। ख़ुद हज़रत उमर (रज़ि०) ने अकाल के समय में चोरी की सज़ा को कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दिया था। हज़रत

उमर (रज़ि०) ने अपने फ़ैसले को स्थायी क़ानून नहीं बनाया था, जिसका पालन करना सदैव आवश्यक होता है। उसकी हैसियत एक अध्यादेश (Ordinance) की थी। फिर अपने इस फ़ैसले पर उनको पछतावा भी हुआ है।

(देखें : ग़ासतुल-लहफ़ान, (अरबी), जिल्द-1, पृष्ठ 351)

ख़ुला (ख़ुलअ्)

(1) हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि साबित-इब्ने-क़ैस (रज़ि०) की पत्नी नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुईं और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! साबित-इब्ने-क़ैस (रज़ि०) के किसी नैतिक दोष के कारण मुझे उनपर क्रोध नहीं है और न दीन (में किसी कोताही) की वजह से; लेकिन मैं इस्लाम की हालत में किसी नाशुक्री को पसन्द नहीं करती।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क्या तुम उसका बाग़ उसे लौटा दोगी?" जवाब दिया कि हाँ। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने साबित (रज़ि०) से कहा, "तुम अपना बाग़ ले लो और उसे एक तलाक़ दे दो।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : बुख़ारी की एक रिवायत में है, "लेकिन मैं उनके साथ नहीं रह सकती।" इस कथन का अर्थ यह है कि मैं अपने पति से जुदाई चाहती हूँ। लेकिन इसका कारण यह नहीं है कि मेरे पति के दीन और सदाचार में किसी प्रकार का कोई खोट है, बल्कि वास्तविक कारण यह है कि मुझे स्वभावतः वह पसन्द नहीं है। लेकिन चूँकि वह मेरे पति हैं, मुझे आशंका है कि सामाजिकता की दृष्टि से अपना कर्तव्य निभाने में मुझसे कोई कोताही न हो जाए और मैं ख़ुदा की निगाह में गुनहगार (दण्ड की भागी) ठहरूँ।

हज़रत साबित-बिन-क़ैस (रज़ि०) रंग-रूप की दृष्टि से बहुत अच्छे न थे, लेकिन पत्नी बहुत सुन्दर और रूपवती थीं। दोनों का यह सम्बन्ध बेमेल-सा था। हज़रत साबित (रजि०) की पत्नी उन्हें पसन्द नहीं करती थीं। इसी लिए उन्होंने नबी (सल्ल०) से यह निवेदन किया कि मैं अपने पति से जुदा होना चाहती हूँ। आप (सल्ल०) ने इस निवेदन पर हज़रत साबित (रज़ि०) से फ़रमाया कि वह अपनी पत्नी को तलाक़ दे दें और अपना बाग़ वापस ले लें।

जिस तरह पुरुष को शरीअत ने तलाक़ का अधिकार दिया है, उसी तरह स्त्री को ख़ुला का हक़ हासिल है। अगर पुरुष के साथ उसका निर्वाह असम्भव हो रहा है तो स्त्री पति को कुछ देकर या मह्‌र लौटाकर उससे छुटकारा हासिल कर सकती है।

ख़ुला की नौबत अगर पुरुष के अत्याचारों के कारण पेश आती है तो पुरुष को ख़ुला के बदले कुछ माल (धन) लेना उचित नहीं है, और अगर अत्याचार स्त्री की ओर से है तो इस स्थिति में उसे बस मह्‌र के बराबर माल लेना चाहिए। उससे अधिक माँग करना अशोभनीय है। यह हनफ़ी विद्वानों का मत है।

स्त्री अगर पुरुष से ख़ुला चाहती है और पुरुष ने कहा कि मैंने इतने माल के बदले तुझसे ख़ुला किया, पत्नी ने कहा कि मैंने स्वीकार किया तो दोनों के बीच जुदाई हो जाएगी।

(2) हज़रत सौबान (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो स्त्री अपने पति से अकारण तलाक़ माँगे उसपर जन्नत की सुगन्ध हराम होगी।"

(हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : इसमें बड़ी चेतावनी पाई जाती है कि जब तक कोई ठोस कारण और मजबूरी न हो पुरुष से जुदाई चाहना अत्यन्त घृणित कार्य है। बिना किसी वास्तविक कारण के पुरुष से तलाक़ चाहनेवाली औरतों को चेतावनी दी गई है कि वे जान लें कि उनका यह अशिष्ट आचरण नैतिकता की दृष्टि से अत्यन्त अपराधजनक और विध्वंसक है। अकारण तलाक़ की माँग करके वे ख़ुदा की एक बड़ी नेमत को ठुकराती और सामाजिक सुदृढ़ता को असाधारण क्षति पहुँचाती है। स्त्री के लिए पति हर सुख-शांति और अल्लाह की ओर से विशिष्ट अनुग्रह की हैसियत रखता है। अब अगर स्त्री ख़ुदा के इस विशिष्ट वरदान का तिरस्कार करती है, तो फिर उसे क्या हक़ पहुँचता है कि वह ख़ुदा की जन्नत की नेमतों से लाभान्वित होने की कामना करे?

हलाला

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हलाला करनेवाले पर और जिसके लिए हलाला किया जाए दोनों पर लानत की है।

(हदीस : तिर्मिज़ी, दारमी, इब्ने-माजा)

व्याख्या : इब्ने-माजा में यह रिवायत हज़रत अली, हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने-अब्बास और हज़रत उक़बा-बिन-आमिर से उल्लिखित है और मुसनद अहमद में यह रिवायत हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है। हलाला यह है कि कोई व्यक्ति किसी से कहे कि वह उसकी तलाक़ पाई हुई पत्नी से निकाह करके उसे उसके लिए हलाल कर दे। अर्थात् उसकी तलाक़ पाई हुई पत्नी से इस शर्त पर निकाह कर ले कि सम्भोग के बाद वह उसे तलाक़ दे देगा ताकि वह दोबारा अपने पहले पति के निकाह में आ सके। नबी (सल्ल०) हलाला करने और करानेवाले दोनों ही व्यक्तियों पर लानत करते हैं। अर्थात् आपकी दृष्टि में यह काम अत्यन्त घृणित और निकृष्ट है। इसमें स्त्री की इज़्ज़त और सम्मान को आघात पहुँचता है।

निकाह का उद्देश्य यह होता है कि पति और पत्नी दोनों सदा के लिए परस्पर एक-दूसरे के सहयोगी और जीवन-साथी रहेंगे। अब अगर कोई व्यक्ति तलाक़ देने के इरादे से निकाह करता है तो स्पष्ट है कि यह कार्य निकाह की मूल आत्मा और उद्देश्य के विपरीत होगा।

ईला

(1) हज़रत सुलैमान बिन-यसार (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के दस, बल्कि इससे भी अधिक सहाबियों को पाया है, हर एक का क़ौल यही था कि ईला करनेवाले को रोका जाए (कि वह फ़ैसला कर ले)। (हदीस : शरहुस्सुन्नह)

व्याख्या : फ़िक़्ह (धर्मशास्त्र) की परिभाषा में ईला यह है कि आदमी क़सम खा ले कि वह पत्नी के पास न जाएगा या चार महीने या उससे अधिक अवधि के लिए पत्नी के पास न जाने की वह क़सम खा ले।

अब अगर चार महीने गुज़र गए और वह पत्नी के पास नहीं गया तो अधिकांश सहाबा (रज़ि०) का कथन इस बारे में यह है कि ईला करनेवाले को मौक़ा दिया जाएगा और हाकिम या क़ाज़ी उससे कहेगा कि या तो अपनी

पत्नी से रुजू करो अर्थात् उससे सहवास करो या फिर उसे तलाक़ दे दो। इमाम मालिक, इमाम शाफ़ई, इमाम अहमद-बिन-हंबल (रह०) का मत भी यही है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह०) का मत यह है कि अगर पुरुष ने चार महीने के भीतर पत्नी से सहवास (सम्भोग) कर लिया तो उसका ईला समाप्त हो जाएगा। मगर उसपर लाज़िम होगा कि क़सम पूरी न करने का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) अदा करे। और अगर चार महीने बीत गए और उसने पत्नी से सम्भोग न किया तो पत्नी पर एक तलाक़ बाइन पड़ जाएगी।

क़ुरआन में है, "जो लोग अपनी पत्नियों से दूर रहने की क़सम खा लेते हैं उनके लिए चार महीने तक इन्तिज़ार करने का हक़ है। फिर अगर वे रुजू कर लें तो अल्लाह क्षमा करनेवाला, अत्यन्त दयावान है। और अगर वे तलाक़ ही की ठान लें तो अल्लाह सुननेवाला और जाननेवाला है।"

(क़ुरआन, 2:226-227)

इससे मालूम हुआ कि पत्नी से चार माह से अधिक सम्बन्ध-विच्छेद की गुंजाइश नहीं है। इसलिए अगर कोई व्यक्ति पत्नी के पास न जाने की क़सम खा ले और चार माह से अधिक समय तक सम्बन्ध-विच्छेद को बरक़रार रखे तो उसे पत्नी से स्थायी तौर पर सम्बन्ध-विच्छेद ही कर लेना चाहिए। शान्ति, परितोष और प्रेम एवं करुणा के अतिरिक्त निकाह के दो मुख्य उद्देश्य और भी हैं : पाकदामनी की रक्षा तथा वंश की वृद्धि। कामेच्छा एक नैसर्गिक और स्वाभाविक इच्छा है। पुरुष को इसकी अनुमति किस प्रकार दी जा सकती है कि वह इस सम्बन्ध में अपनी पत्नी को आज़माइश में डाल दे। मर्द को बस चार माह की छूट है। इससे अधिक अवधि तक उसे पत्नी से अलग रहने की इजाज़त नहीं दी जा सकती। पुरुष को चार महीने से पहले-पहले अपनी क़सम तोड़कर पत्नी से सम्भोग कर लेना चाहिए या फिर पत्नी को विधिवत रूप से अपने से अलग कर देना चाहिए।

ज़िहार

(1) हज़रत इक्रमा, हज़रत अब्दुल्लाह बिन-अब्बास (रज़ि०) के माध्यम से उल्लेख करते हैं कि एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी से ज़िहार किया और फिर कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) अदा करने से पहले उससे सम्भोग कर

लिया। इसके बाद उसने नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित होकर आप (सल्ल०) से इस घटना की चर्चा की। आप (सल्ल०) ने कहा, "तुम्हें किस चीज़ ने ऐसा करने के लिए प्रेरित किया?" उसने अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! चाँदनी में उसके पाज़ेब की सफ़ेदी पर मेरी निगाह पड़ गई। फिर मुझे अपने पर क़ाबू न रहा कि उससे सम्भोग करने से अपने आपको रोकता। इसपर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) हँस पड़े और उसे हुक्म दिया कि "जब तक कफ़्फ़ारा अदा न कर दो उसके पास न जाना।"

(हदीस : इब्ने-माजा, तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : 'ज़िहार' शब्द 'ज़-ह-र' से व्युत्पन्न है। 'ज़-ह-र' का शाब्दिक अर्थ 'पीठ' है। अगर कोई व्यक्ति अपनी पत्नी से कहता है कि तू मेरे लिए माँ की पीठ की तरह है। या यह कहे कि तू मेरी माँ या मेरी बहन की तरह मेरे लिए हराम है और उसकी नीयत तलाक़ देने की न हो तो इसे 'ज़िहार' कहते हैं। अब वह अपनी पत्नी से उस समय तक सम्भोग नहीं कर सकता जब तक कि ज़िहार का कफ़्फ़ारा न अदा कर दे। अगर कफ़्फ़ारा अदा करने से पहले उसने पत्नी से संभोग कर लिया तो वह बड़ा गुनहगार होगा। वह तौबा भी करे और कफ़्फ़ारा भी अदा करे। ज़िहार एक अनुचित कर्म है। कुरआन में है, "तुममें से जो लोग अपनी औरतों से ज़िहार करते हैं, उनकी माएँ वे नहीं हैं। उनकी माएँ तो वही हैं जिन्होंने उनको जन्म दिया है। यह ज़रूर है कि वे एक अप्रिय और झूठ बात कहते हैं।" (क़ुरआन, 38:2)

ज़िहार का कफ़्फ़ारा वही है जो रोज़ा का कफ़्फ़ारा है। अतः क़ुरआन में उल्लेख हुआ है, "जो लोग अपनी औरतों से ज़िहार करते हैं फिर जो बात उन्होंने कही थी उससे रुजू करते हैं तो इससे पहले कि दोनों एक-दूसरे को हाथ लगाएँ एक गरदन (ग़ुलाम या लौंडी) आज़ाद करनी होगी। यह वह बात है जिसकी तुम्हें नसीहत की जाती है और अल्लाह ख़बर रखता है जो कुछ तुम करते हो। मगर जिसे ग़ुलाम न मिले तो इससे पहले कि दोनों एक-दूसरे को हाथ लगाएँ वह लगातार दो महीने के रोज़े रखे और जिसको इसकी भी क्षमता न हो तो साठ मिस्कीनों को खाना खिलाना लाज़िमी है।"

(क़ुरआन, 38:3-4)

रोज़े लगातार दो माह तक रखने होंगे। अगर एक रोज़ा भी बीच में छूट

गया तो फिर नए सिरे से साठ रोज़े रखने होंगे और अगर रोज़ा नहीं रख सकता तो साठ मिसकीनों को दोनों वक़्त खाना खिलाए। या एक मिसकीन को साठ दिन तक दोनों वक़्त खाना खिलाए। या सदक़-ए-फ़ित्र के बराबर यानी पौने दो सेर गेहूँ या साढ़े तीन सेर जौ या इनकी क़ीमत साठ मिसकीनों को दे दे या एक मिसकीन को साठ दिनों तक देता रहे।

ज़िना (व्यभिचार)

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फरमाया, "(ग़ाफ़िल) आदमी के हिस्से में ज़िना का जो हिस्सा लिखा है वह उसे पाकर रहेगा। आँखो का ज़िना (कामुकता की दृष्टि से) देखना है, कानों का ज़िना (कामुकता को भड़कानेवाली बातों का) सुनना है, ज़बान का ज़िना इस विषय की बातचीत में भाग लेना है, हाथ का ज़िना पकड़ना है, पैर का ज़िना इसके लिए चलकर जाना है, दिल का ज़िना इच्छा और कामना करना है। और शर्मगाह (गुप्तांग) या तो उसको सत्यापित कर देगी या झुठला देगी। (हदीस : बुख़ारी, नसई)

व्याख्या : दिल का ज़िना इच्छा करना है। सही मुस्लिम और अबू-दाऊद में यह भी आया है कि चुम्बन लेना मुँह का ज़िना है। इस हदीस का उद्देश्य वास्तव में यह बताना है कि आँख, कान, ज़बान और हाथ-पैर सभी अंगों को गुनाह के कामों से दूर रखने की ज़रूरत है। अगर हम आँखों को ग़लत नज़ारा करने से और कान को कामुक बातों के सुनने से और अपनी ज़बान को ऐसी बातचीत से नहीं रोकते जो वासनात्मक भावना को उभारनेवाली होती हैं और इसी प्रकार अपने हाथ को अनुचित गतिविधियों और अपने क़दम को ग़लत दिशा में उठने से नहीं रोकते तो मानो हम वास्तविक ज़िना और बदकारी की राह को प्रशस्त कर रहे हैं। इस प्रकार की चीज़ों और चुम्बन एवं आलिंगन की हैसियत ज़िना (व्यभिचार) की भूमिका की है। अगर इस सम्बन्ध में आदमी असावधानी से काम लेता है तो बहुत सम्भव है कि वह वास्तविक रूप से एक दिन ज़िना कर बैठे।

(2) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब अपने पिता से और वे अपने दादा हज़रत अब्दुल्लाह बिन-अम्र-बिन-अल-आस (रज़ि०) से रिवायत करते हैं कि

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम आपस में हुदूद को माफ़ और मिटा दिया करो अलबत्ता अगर जुर्म (अपराध) की सूचना मुझ तक पहुँच जाएगी (और उसका प्रमाण उपलब्ध हो गया) तो फिर हद जारी करना वाजिब (अनिवार्य) हो जाएगा।" (हदीस : अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : हुदूद वास्तव में 'हद' का बहुवचन है। हद का मूल अर्थ 'निषिद्ध' या 'वर्जित' है। इसके अतिरिक्त उस चीज़ को भी हद कहते हैं जो दो चीज़ों के बीच रोक हो, शरीअत की परिभाषा में हुदूद उन सज़ाओं (दण्डों) को कहते हैं जो किताब व सुन्नत से साबित और निर्धारित हैं। जैसे ज़िना और चोरी की सज़ाएँ। ये सज़ाएँ लोगों को गुनाहों में पड़ने से रोकती हैं और इन सज़ाओं का भय गुनाह और आदमी के बीच आड़े आता है।

'हुदूदुल्लाह' की परिभाषा हराम की गई चीज़ों के अर्थ में भी प्रयुक्त है, जिनका ध्यान रखना हर मुसलमान के लिए अनिवार्य है। मक़ादीरे शरई अर्थात् तीन तलाक़ आदि मुक़र्रर करने के नियम के अर्थ में भी यह परिभाषा प्रयुक्त हुई है। क़ुरआन में है कि "ये 'हुदूदुल्लाह' हैं, अतः इनका उल्लंघन न करना।" (क़ुरआन, 2:229) हराम की गई चीज़ों के सम्बन्ध में कहा गया है : "ये हुदूदुल्लाह हैं। अतः इनके निकट न जाओ।" (अल-बक़रा, 187)

जिन अपराधों की सज़ाएँ किताब व सुन्नत ने निर्धारित नहीं की हैं, उनमें हाकिम को अधिकार प्राप्त है कि वह परिस्थिति और आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सज़ा को ख़ुद निर्धारित करे। इस प्रकार की सज़ा को 'ताज़ीर' कहते हैं।

अर्थात् किसी से कोई जुर्म या गुनाह हो जाए तो जहाँ तक सम्भव हो क्षमा कर देने और परदा डाल देने की कोशिश करो। केस को हाकिम के पास न ले जाओ। अगर मुक़द्दमा हाकिम के पास पहुँच गया तो हाकिम के लिए यह जाइज़ न होगा कि वह मुजरिम (अपराधी) को क्षमा कर सके।

(3) हज़रत वाइल बिन हुज्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) के ज़माने में एक स्त्री के साथ ज़बरदस्ती की गई। अतः उसे हद से छुटकारा दे दिया गया और उससे ज़िना करनेवाले व्यक्ति पर हद जारी की गई। उल्लेख-कर्ता ने इसका ज़िक्र नहीं किया कि आप (सल्ल०) ने उस स्त्री को महर दिलवाया या नहीं। (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : महर से आशय यहाँ उक्र अर्थात् तावान या हरजाना (Indemnity) है। दूसरी हदीसों से साबित है कि जिस स्त्री से बलात्कार किया गया हो,

उसे तावान दिलाया जाएगा। तावान उस स्त्री की मह्र-मिस्ल के बराबर होना चाहिए। मह्र-मिस्ल से अभिप्रेत मह्र की वह रक़म है जो किसी स्त्री के घराने में साधारणतया निर्धारित की जाती हो।

(4) हज़रत अम्र बिन-अल-आस (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना, "जिस क़ौम में ज़िना की अधिकता हो जाती है, वह क़ौम अकालग्रस्त हो जाती है। और जिस क़ौम में रिश्वत और घूस की बीमारी फैल जाती है उसपर (दूसरों का) रोब छा जाता है।" (हदीस : अहमद)

व्याख्या : मालूम हुआ कि मुसीबतों के कारण केवल भौतिक और प्राकृतिक ही नहीं होते कि अकाल और सूखे से सुरक्षित रहने और ख़ुशहाली और पैदावार की वृद्धि के लिए वाह्य संसाधनों को काम में लाया जाए, बल्कि मुसीबतों के कारण नैतिक भी हुआ करते हैं। अतः इसके लिए नैतिक सुधार की ओर भी ध्यान देने की ज़रूरत होती है।

किसी क़ौम में अगर रिश्वत का चलन आम हो जाए तो इसका मतलब इसके सिवा और क्या हो सकता है कि जनसामान्य ही नहीं बल्कि ज़िम्मेदारी के पदों पर आसीन व्यक्ति भी संवेदनहीन होकर रह गए हैं। घूसख़ोर हाकिम बेझिझक अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह नहीं कर सकता। सत्यप्रिय व्यक्तियों का विश्वास और भरोसा अपनी सच्चाई और सत्यप्रियता पर शेष नहीं रहता। लोगों में असन्तोष पैदा हो जाता है। फिर डर और भय का ऐसा वातावरण निर्मित हो जाता है जिसमें हर व्यक्ति आशंकाग्रस्त होकर रह जाता है। नैतिकता और चरित्र के अन्त के बाद क़ौम (जाति) भीरू और साहसहीन हो जाती है। उसमें वह शक्ति और दृढ़ता शेष नहीं रहती जो उसे हर प्रकार के भय, सन्देह और आतंक से सुरक्षित रख सके।

(5) हज़रत उबादा-बिन-सामित (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "निकट और दूर सब पर अल्लाह की हदें जारी करो और अल्लाह के (आदेश के) मामले में किसी मलामत करनेवाले की मलामत तुम्हारे आड़े न आए।" (हदीस : इब्ने-माजा)

व्याख्या : मालूम हुआ कि हद जारी करने में इसका ध्यान नहीं रखा जाएगा कि अपराधी कोई निकट का सम्बन्धी है या दूर का कोई व्यक्ति है।

निकट से अभिप्रेत वह व्यक्ति भी हो सकता है जिस तक पहुँचना मुश्किल न हो और उसपर हद जारी करना अपेक्षाकृत आसान हो। इसी प्रकार दूर से अभिप्रेत वह व्यक्ति भी हो सकता है जिस तक पहुँचना कठिन और जिसपर हद जारी करना मुशकिल हो। हदीस का अर्थ यह है कि अपराधी कोई भी हो, उसपर हद जारी की जाएगी। धनी हो या ग़रीब, सबल हो या निर्बल, अपना नातेदार हो या अपना नातेदार न हो, हद के मामले में किसी को कोई विशिष्टता प्राप्त नहीं है। जो भी अपराधी होगा बिना किसी भेदभाव के उसपर हद जारी होगी।

इस हदीस से यह भी मालूम हुआ कि अल्लाह के आदेश के विषय में किसी निन्दा करनेवाले की निन्दा की परवाह नहीं करनी चाहिए।

(6) हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा; "अल्लाह की (निर्धारित) हदों में से किसी एक हद का लागू करना ख़ुदा के भूभागों में चालीस दिन तक वर्षा होने से उत्तम है।"

(हदीस : इब्ने-माजा, नसई)

व्याख्या : हद जारी करके लोगों को अपराधों और गुनाह के कामों से रोकने की कोशिश असीम बरकतों के अवतरण का कारण है। इसके विपरीत हदों के जारी करने में सुस्ती या लापरवाही वास्तव में लोगों के लिए अपराध और गुनाह की राह प्रशस्त करना है। गुनाह और अल्लाह की अवज्ञा बढ़ जाना वह अशुभ लक्षण है जिसके कारण अल्लाह वर्षा को रोक सकता है और क़ौम अकाल की आपदा में ग्रस्त हो सकती है, जैसा कि ऊपर हदीस न० 4 में स्पष्ट रूप से इसका उल्लेख किया गया है।

(7) हज़रत सईद बिन-साद-बिन-उबादा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि (एक दिन) हज़रत साद बिन-उबादा (रज़ि०) एक ऐसे व्यक्ति को लेकर नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए जो विकलांग (कमज़ोर) और बीमार था और उसे उनकी लौण्डी से ज़िना करते हुए पकड़ा गया था। नबी (सल्ल०) ने कहा, "इसे मारने के लिए खजूर की एक टहनी लो जिसमें छोटी-छोटी सौ टहनियाँ हों। फिर उस टहनी से इस व्यक्ति को एक बार मारो।"

(हदीस : शरहुस्सुन्नह, इब्ने-माजा)

व्याख्या : व्यभिचारी पुरुष या व्यभिचारिणी नारी को सौ कोड़े मारने

की सज़ा क़ुरआन में बयान हुई है। (अन्-नूर, 4) इस हदीस से मालूम हुआ कि हाकिम को इस बात का ख़याल रखना चाहिए कि जिस व्यक्ति को कोड़े मारे जा रहे हों, वह कहीं मर न जाए। अगर मुजरिम बीमार है तो जब तक वह अच्छा नहीं हो जाता हद को स्थगित किया जा सकता है। किन्तु अगर मरीज़ के अच्छा होने की आशा न हो तो उसपर इस तरह हद जारी करेंगे कि वह मरने न पाए जैसा कि इस हदीस से स्पष्ट है।

क़ज़फ़

(1) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से रिवायत है कि बक्र-बिन-लैस के ख़ानदान का एक व्यक्ति नबी (सल्ल०) के पास आया और उसने आपके सामने स्वीकार किया कि उसने एक स्त्री के साथ चार बार ज़िना (व्यभिचार) किया है। आप (सल्ल०) ने उसे सौ कोड़े लगवाए। वह व्यक्ति कुँआरा था— फिर आपने उससे उस स्त्री के विरुद्ध गवाही तलब की (वह गवाह न ला सका)। फिर स्त्री ने अर्ज़ किया कि अल्लाह की क़सम, ऐ अल्लाह के रसूल! यह व्यक्ति झूठ बोलता है। इसके बाद आपने उस व्यक्ति पर झूठी तोहमत लगाने के बदले में अस्सी कोड़े लगाने का आदेश दे दिया।

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : सौ कोड़े लगवाने का अर्थ है कि उसपर ज़िना की हद जारी फ़रमाई।

जब कोई किसी व्यक्ति के बारे में यह बयान दे कि उसने व्यभिचार (ज़िना) किया है और इसके लिए चार गवाह पेश न कर सके तो उसे 80 कोड़ों की सज़ा दी जाएगी। इसी को क़ज़फ़ कहते हैं। वह व्यक्ति जिसने कहा था कि उसने अमुक स्त्री से व्यभिचार किया है किन्तु स्त्री ने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा कि अल्लाह की क़सम यह व्यक्ति अपने बयान में झूठा है।

जब वह गवाह न ला सका तो उस स्त्री ने कहा कि ख़ुदा की क़सम यह व्यक्ति अपने बयान में झूठा है। मैं ज़िना से पाक हूँ। जब स्त्री ने ज़िना का इक़रार नहीं किया और वह व्यक्ति अपने दावे (आरोप) के पक्ष में गवाह न ला सका तो उसका उस स्त्री को ज़िना का अपराधी क़रार देना इत्तिहाम (मिथ्यारोप) ठहरा। इसी लिए अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उस व्यक्ति को अस्सी कोड़ों की दूसरी सज़ा दी। यह सज़ा तोहमत लगाने की थी।

क़ुरआन में है, "जो लोग पाक दामन औरतों पर तोहमत लगाएँ, फिर चार गवाह न लाएँ तो उन्हें अस्सी (80) कोड़े मारो और कभी उनकी गवाही स्वीकार न करो— वही हैं जो अवज्ञाकारी हैं— सिवाय उन लोगों के जो इसके बाद तौबा कर लें और सुधार कर लें। इस स्थिति में निश्चय ही अल्लाह बहुत क्षमाशील, अत्यन्त दयावान है।" (24:4-5)

किसी पर ज़िना का झूठा आरोप लगाना एक घोर अपराध है। इसी लिए तोहमत लगानेवाला अगर अपने दावे के पक्ष में गवाही नहीं जुटाता तो फिर उसे अपनी पीठ पर अस्सी कोड़े खाने होंगे। किसी व्यक्ति की बुराई पर परदा पड़ा रहे और लोग उससे बेख़बर रहें तो इसमें वह बुराई नहीं है जो बुराई किसी निर्दोष और पाक दामन व्यक्ति पर तोहमत लगाकर उसे अपमानित और कलंकित करने में है।

हदीस से मालूम होता है पाक दामन औरतों पर तोहमत लगाना उन सात बड़े गुनाहों में से है जो तबाह कर देनेवाले हैं। तबरानी में हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि०) की रिवायत आई है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "एक पाक दामन स्त्री पर तोहमत लगाना सौ साल के सत्कर्म को नष्ट कर देता है।"

स्त्री का मामला पुरुषों के मुक़ाबले में ज़्यादा नाज़ुक होता है। इसी लिए किसी पाक दामन स्त्री पर तोहमत लगाने को अत्यन्त घोर अपराध ठहराया गया है।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने अबुल-क़ासिम (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना है, "जिस किसी ने अपने ग़ुलाम पर तोहमत लगाई हालाँकि वह ग़ुलाम उसकी लगाई हुई तोहमत से बरी है तो क़ियामत के दिन उस ग़ुलाम के मालिक को कोड़े लगाए जाएँगे। लेकिन अगर ऐसा ही हो जैसा कि उसके मालिक ने कहा था तो बात दूसरी है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि किसी पर तोहमत लगाना कोई साधारण बात नहीं है। किसी बेगुनाह पर अगर किसी व्यक्ति ने तोहमत लगा दी और किसी कारण दुनिया में उसे इस धृष्टता की सज़ा न दी जा सकी तो इस घोर अपराध की सज़ा उसे क़ियामत के दिन मिलकर रहेगी।

स्त्री का कार्यक्षेत्र

(1) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है। उन्होंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! हम जिहाद को समस्त कर्मों में श्रेष्ट समझते हैं, फिर आख़िर हम जिहाद क्यों न करें? आप (सल्ल०) ने कहा :

"लेकिन श्रेष्ट जिहाद हज्जे मबरूर है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मतलब यह है कि औरतों का वास्तविक कार्य-क्षेत्र वह नहीं है जो पुरुषों का है। औरतें अगर युद्ध-क्षेत्र में नहीं उतरतीं तो उनको इसका ग़म नहीं होना चाहिए। उनके लिए हज्ज और उमरा जिहाद की हैसियत रखते हैं। बल्कि हज्जे-मबरूर की हैसियत श्रेष्ठ जिहाद की है। इसी लिए स्त्रियाँ यदि युद्ध में भाग नहीं लेतीं तो वे अपने आपको वंचित कदापि न समझें। हज्जे-मबरूर से अभिप्रेत वह हज्ज है जिसमें हज्ज की समस्त रीतियों का नियमपूर्वक निर्वाह किया गया हो और जिसमें निफ़ाक़ (कपट) और रिया (दिखावा) आदि दोष मिश्रित न हों।

(2) हज़रत अबू-बकरा (रज़ि०) से अल्लिखित है, उन्होंने कहा कि मुझे जमल की लड़ाई के दिनों में एक कलिमे (सूक्ति) के द्वारा अल्लाह ने लाभ पहुँचाया। जब नबी (सल्ल०) को इसकी ख़बर पहुँची कि फ़ारसवालों ने 'किसरा' की बेटी को बादशाह बनाया है तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वह क़ौम कदापि सफल नहीं हो सकती जिसने हुकूमत किसी स्त्री को सौंप दी।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : स्त्री और पुरुष अलग-अलग जातिवर्ग हैं। जैविक संरचना और मनोवृत्ति की दृष्टि से दोनों में असाधारण अन्तर पाया जाता है। इसलिए कर्म की दृष्टि से भी दोनों में अन्तर होना चाहिए। अतः सामाजिक जीवन में दोनों का कार्य-क्षेत्र एक हरगिज़ नहीं हो सकता। औरतों की मौलिक ज़िम्मेदारी यह है कि वह घर की आन्तरिक व्यवस्था को सँभालें और घरेलू मामले में किसी प्रकार की कोताही न आने दें। स्त्री की प्रकृति और क्षमता की दृष्टि से यह ठीक न होगा कि पुरुषो को छोड़कर शासन उसको सौंप दिए जाएँ। अब अगर कोई क़ौम शासन के दायित्व का पद किसी स्त्री को सौंप देती है तो इस फ़ैसले को उचित नहीं कहा जा सकता। ग़लत फ़ैसले अपने परिणाम की दृष्टि से दुखद ही सिद्ध होंगे।

लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि इस्लाम स्त्री को हीन पद देता है। बल्कि स्त्री चूँकि अपनी प्रकृति की दृष्टि से पुरुष से भिन्न है, इसलिए ज़िम्मेदारियों के सौंपने में उसका ध्यान रखना ज़रूरी है। स्त्री पर कोई ऐसा बोझ डालना उसके साथ ज़ुल्म होगा जिसको वह अपनी प्रकृति की दृष्टि से उठाने की क्षमता नहीं रखती। वह घर के मामलों को देखने और सँभालने के लिए बहुत ही उपयुक्त है। लेकिन बाहर के कामों के लिए भावुकता होने के गुण की ही आवश्यकता नहीं होती, जो स्त्री की विशेषता है, बल्कि कर्मवीरता के गुण अभीष्ट हैं, और ये गुण पुरुषों को प्रदान किए गए हैं। बाहर के काम करने के लिए कठोर शरीर और सुदृढ़ स्नायविक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए पुरुष ही उपयुक्त हो सकता है, न कि औरत। इतिहास का साक्ष्य भी यही है कि आम मामलों के नायक हर युग में पुरुष ही रहे हैं, बल्कि घर के अन्दर भी उच्च अधिकार उन्हीं को प्राप्त रहा है। इसलिए औरतों को पुरुष का अनुकरण कदापि नहीं करना चाहिए। 'नारी स्वातंत्र्य' के भ्रमपूर्ण नारों से प्रभावित होकर अगर वे उन क्षेत्रों में उतरने की कोशिश करती हैं, जो पुरुषों ही के लिए होने चाहिएँ, तो वे अपने साथ अन्याय करेंगी। इस प्रकार उनके स्त्रैण को भी आघात पहुँचेगा, जो एक स्त्री की बहुमूल्य निधि है।

(3) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती है कि मैंने नबी (सल्ल०) से जिहाद में शरीक होने की इजाज़त माँगी। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम औरतों का जिहाद हज्ज है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् तुम्हारे लिए हज की हैसियत जिहाद की है। तुमने अगर हज का सफ़र किया और इस सफ़र की कठिनाइयाँ सहन कीं तो मानो तुमने जिहाद में हिस्सा लिया। स्त्रियों का वास्तविक कार्यक्षेत्र, युद्धक्षेत्र नहीं, बल्कि उनका अपना घर है। इसलिए अगर उनको युद्ध में हिस्सा लेने का सौभाग्य प्राप्त न हो तो उनके चरित्र और आचरण का दोष नहीं है, बल्कि यह उनकी प्रकृति और क्षमता ही की अपेक्षा है कि यथासम्भव उनसे बाहर के कठोर काम न लिए जाएँ।

---

1. महरम उन निकट सम्बन्धियों को कहा जाता है जिनसे उस स्त्री का निकाह शरीअत में हराम ठहराया गया है। जैसे पिता, भाई, दादा, नाना, फूफा, ससुर आदि। —अनुवादक

(4) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "कोई व्यक्ति किसी स्त्री के साथ एकान्त में न मिले और कोई स्त्री महरम[1] को साथ लिए बिना सफ़र न करे।" इस अवसर पर एक व्यक्ति ने कहा, ऐ अल्लाह के रसूल, मेरा नाम फ़ुलाँ-फ़ुलाँ युद्ध में शरीक होने के लिए लिखा जा चुका है और मेरी पत्नी हज को जानेवाली है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जाओ और अपनी पत्नी के साथ हज करो।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अजनबी स्त्री और पुरुष के लिए दुरुस्त नहीं है कि वह तनहाई में इकट्ठे हों। इसी प्रकार स्त्री के लिए वैध नहीं है कि वह पति या महरम के बिना सफ़र पर जाए। यहाँ तक कि हज के (पवित्र) सफ़र में भी उसके लिए आवश्यक है कि उसके साथ उसका पति या कोई महरम अवश्य हो। तनहाई में अगर कोई व्यक्ति किसी अजनबी स्त्री से मिलता है तो वह अपने को बड़ी परीक्षा में डालता है। मनुष्य किसी भी समय वासनात्मक इच्छा के वशीभूत हो सकता है और वह कोई ऐसा ग़लत काम कर सकता है, जिसकी क्षतिपूर्ति सम्भव न हो सके। इसलिए यह ज़रूरी है कि मर्यादाओं का आदर किया जाए, सुरक्षा वास्तव में इसी में है।

सफ़र में अगर स्त्री के साथ उसका पति या उसका बाप, बेटा या (इसी प्रकार का कोई) महरम नहीं है तो फिर उसे सुरक्षित नहीं कहा जा सकता, किसी समय और कहीं भी वह किसी की हवस का शिकार हो सकती है। स्त्री की आबरू को किसी ख़तरे में डाला जाए, शरीअत इसपर राज़ी नहीं हो सकती।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "किसी मुस्लिम स्त्री के लिए एक रात की दूरी की यात्रा करना बिना महरम के साथ लिए जाइज़ नहीं है।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : बुख़ारी और मुस्लिम की रिवायत है— "कोई स्त्री बिना किसी महरम को साथ लिए ऐसे सफ़र पर न निकले जिसे तय करने में एक दिन और एक रात का समय लगता हो।"

(6) हज़रत अबू-सईद (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "किसी ऐसी स्त्री के लिए, जो अल्लाह और आख़िरत

के दिन पर ईमान रखती हो, यह जाइज़ नहीं कि तीन दिन से अधिक का सफ़र करे जब तक कि उसका बाप या उसका भाई या उसका पति या उसका बेटा या उसका कोई महरम उसके साथ न हो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इससे पहले की रिवायत में स्त्री को एक रात की दूरी के सफ़र पर तनहा जाने से रोका गया है। इस रिवायत में महरम के बिना तीन दिन से अधिक के सफ़र से रोका जा रहा है। इस तरह की रिवायतों का मूलोद्देश्य वास्तव में सफ़र की दूरी और समय निर्धारित करना नहीं है, बल्कि उद्देश्य यह है कि सफ़र लम्बा हो या छोटा स्त्री को बिना पति या महरम के अकेले सफ़र करना मसलहत के विरुद्ध है। इसलिए इससे बचना ज़रूरी है। आज के वर्तमान युग में जबकि बिगाड़ और फ़साद एक आम बात है, आप (सल्ल०) की शिक्षाओं पर अत्यन्त दृढ़तापूर्वक अमल करने की ज़रूरत है।

(7) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुममें से किसी की स्त्री मस्जिद में जाने की इजाज़त माँगे तो उसे न रोको।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : किसी स्त्री के लिए मस्जिद में जाने की इजाज़त तो है, लेकिन उसके लिए ज़्यादा अच्छा यही है कि वह अपनी नमाज़ घर ही में अदा करे, और अगर औरतों के मस्जिदों में जाने से किसी बुराई की आशंका हो तो फिर उन्हें हरगिज़ मस्जिद में न जाना चाहिए। इस्लाम के आरम्भिक काल में स्त्रियाँ मस्जिदों में इसलिए भी जाना चाहती थीं कि उन्हें वहाँ धार्मिक आदेश के ज्ञान प्राप्त करने के अवसर मिलेंगे, लेकिन आज तो वे अपने घरों में रहकर आसानी से धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं।

(8) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मर्दों की पंक्ति में सबसे उत्तम पहली पंक्ति है और सबसे बुरी अन्तिम पंक्ति। और स्त्रियों की पंक्ति में सबसे उत्तम अन्तिम पंक्ति है और सबसे बुरी पहली पंक्ति है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : लेकिन अगर जमाअत (अर्थात् सामूहिक नमाज़) सिर्फ़ स्त्रियों ही की हो तो उनके लिए भी उत्तम पंक्ति पहली ही होगी। पहली पंक्ति का अर्थ नमाज़ियों की वह पंक्ति है जो इमाम के क़रीब होती है। पुरुषों के लिए पहली पंक्ति को इसलिए बेहतरीन पंक्ति ठहराया गया है कि इस पंक्ति

के नमाज़ी इमाम से क़रीब होते हैं और औरतों की पंक्ति उनसे सबसे अधिक दूर होती है। इसके विपरीत पिछली सफ़ सबसे बुरी इस दृष्टि से है कि उस पंक्ति के नमाज़ी इमाम से दूर और औरतों से क़रीब होते हैं। औरतों के लिए पिछली पंक्ति (सफ़) को बेहतरीन इसलिए फ़रमाया कि वह पुरुषों से पीछे और दूर होती है यद्यपि यह सफ़ इमाम के क़रीब नहीं होती। औरतों के लिए अगली या पहली पंक्ति को सबसे बुरी इस कारण ठहराया कि इस सफ़ में सम्मलित होने से पुरुष उनसे बहुत क़रीब हो जाते हैं।

पुरुष और स्त्री स्वभावतः परस्पर एक–दूसरे के लिए असाधारण आकर्षण रखते हैं, इसलिए उनके परस्पर एक–दूसरे के क़रीब होने से, उनके मन–मस्तिष्क एवं चित्त की एकाग्रता को आघात पहुँच सकता है और यह स्थिति नमाज़ के मूल उद्देश्य — अल्लाह की ओर उन्मुख होने — के भी विपरीत है और यह चीज़ आदमी के लिए किसी बड़े बिगाड़ का कारण भी बन सकती है।

(9) हज़रत इब्ने–उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम अपनी औरतों को मस्जिद (में जाने) से न रोको, लेकिन बेहतर उनके लिए उनके घर ही हैं।" (हदीस : अबू–दाऊद)

(10) हज़रत अब्दुल्लाह बिन–मसऊद (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "औरत का अपने घर के अन्दर नमाज़ पढ़ना आँगन में नमाज़ पढ़ने से अफ़ज़ल (उत्तम) है और कोठरी में उसका नमाज़ अदा करना खुले हुए मकान में नमाज़ अदा करने से अफ़ज़ल है।"

(हदीस : अबू–दाऊद)

व्याख्या : आम तौर पर बड़े घर के अन्दर सुरक्षित कमरा या कोठरी भी होती है। सुरक्षा की दृष्टि से अच्छी और बहुमूल्य वस्तुएँ उसी के अन्दर रखी जाती हैं। इस तरह के सुरक्षित कमरे में नमाज़ पढ़नी स्त्री के लिए अधिक उत्तम और श्रेष्ठ है। स्त्री अबला होने के कारण इसका हक़ रखती है कि उसकी सुरक्षा की अधिक से अधिक व्यवस्था की जाए। स्त्री कोई प्रदर्शनी की वस्तु हरगिज़ नहीं है, उसकी कोमलता व स्त्रैण की अपेक्षा यही है कि ग़ैरों की निगाहों से उसे बचाया जाए।

युद्ध में भाग लेना

(1) हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जब किसी युद्ध के लिए (सहाबा के साथ) जाते तो उम्मे-सुलैम (रज़ि०) और अनसार की दूसरी औरतों को भी साथ ले जाते। जब युद्ध होता तो ये स्त्रियाँ (लड़नेवालों को) पानी पिलातीं और घायलों की मरहम-पट्टी करतीं। (हदीस : मुस्लिम)

(2) हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) कहती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ सात लड़ाइयों में भाग लिया है। मैं मुजाहिदों के पीछे उनके डेरों में रह जाती थी। उनके लिए खाना तैयार करती, घायलों की मरहम-पट्टी और दवा-इलाज करती और बीमारों की देख-भाल करती थी। (हदीस : मुस्लिम)

(3) रुबैअ बिन्ते-मुअव्विज़ (रज़ि०) से रिवायत है, उनका बयान है कि हम स्त्रियाँ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ युद्ध में शरीक होती थीं। लोगों को पानी पिलातीं और उनकी सेवा करती थीं और शहीदों और घायलों को मदीना वापस लाने में सहायता करती थीं।'' (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इन रिवायतों से मालूम हुआ कि मुजाहिदीन को पानी पिलाने और घायलों की मरहम-पट्टी आदि के उद्देश्य से औरतों को युद्ध में अपने साथ ले जाना वैध है। अलबत्ता इसके लिए औरतों में उन औरतों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो ज़्यादा उम्रवाली हों। स्त्रियाँ लड़ाई-भिड़ाई में शरीक न होंगी, इसलिए कि मूलतः यह काम पुरुषों का है। स्त्रियाँ पुरुषों के पीछे ख़ेमों में और पड़ाव पर रहकर इलाज, घायलों की देख-भाल और खाना तैयार करने आदि के काम कर सकती हैं। लेकिन अपरिहार्य परिस्थतियों में वे हथियार भी उठा सकती हैं।

कुछ आवश्यक प्रतिबन्ध

अश्लीलता से बचना

(1) हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने-मसऊद (रज़ि०) से रिवायत है। उन्होंने बयान किया कि अल्लाह से बढ़कर कोई स्वाभिमानवाला नहीं, इसी लिए उसने सभी अश्लील चीज़ों को अवैध ठहराया है, चाहे खुली हुई हों या छुपी हों। और अल्लाह के निकट प्रशंसा से बढ़कर प्रिय चीज़ कोई नहीं। यही कारण है कि उसने स्वयं अपनी प्रशंसा की (और हमें भी आदेश दिया कि हम उसकी स्तुति करें)। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : सहीह बुख़ारी से मालूम होता है कि हज़रत अब्दुल्लाह-इब्ने-मसऊद (रज़ि०) का यह कथन वास्तव में रसूल (सल्ल०) का कथन है।

ऐसा ही क़ुरआन में भी बयान हुआ है, "कहो, मेरे रब ने तो हराम किया है सिर्फ़ अश्लील कामों को, जो उनमें से खुला हुआ हो उसे भी और जो छुपा (गौण) हो उसे भी, और दूसरों का हक़ मारना, अकारण ज़्यादती (अत्याचार) और इस बात को कि तुम अल्लाह के साथ शरीक ठहराओ जिसके लिए उसने कोई प्रमाण नहीं उतारा, और इसको भी कि तुम अल्लाह से सम्बद्ध करके वह कुछ कहो जिसका तुम्हें ज्ञान नहीं।" (क़ुरआन, 7:33)

अल्लाह सबसे बढ़कर स्वाभिमानवाला है, वह यह कैसे पसन्द करता कि उसके बन्दे अश्लीलता और बदकारी के कामों में लिप्त हों। जिस प्रकार एक स्वाभिमानी और लज्जावान व्यक्ति यह कभी सहन नहीं कर सकता कि उसकी पत्नी निर्लज्ज और स्वाभिमान से वंचित होकर रहे और ग़ैरों से दोस्ती-यारी करती फिरे, ठीक इसी प्रकार अल्लाह का स्वाभिमान इसे कदापि सहन नहीं कर सकता कि उसके बन्दे बेहयाई और बेशर्मी के काम करें। इसलिए उसने उन सभी चीज़ों को अवैध ठहराया है जिनसे स्वाभिमान और लज्जा को आघात पहुँचता है।

"ख़ुदा की दृष्टि में प्रशंसा से बढ़कर प्रिय चीज़ कोई नहीं।" प्रशंसा और गुणगान वास्तव में सत्य की पहचान और यथार्थ के स्वीकार करने का

आत्यान्तिक और अन्तिम दर्जा है। इसके बाद इसका कोई दर्जा शेष नहीं रहता। ख़ुदा ने अपनी स्वयं प्रशंसा की है। क़ुरआन की पहली ही आयत है : अलहमदुलिल्लाहि रब्बिल-आलमीन (अल- फ़ातिहा, 1) "सारी प्रशंसा अल्लाह, विश्व के पालनकर्ता प्रभु के लिए है।" ख़ुदा अपने गुणों एवं अपने सौन्दर्य और पूर्णता से अनभिज्ञ नहीं हो सकता। अपनी प्रशंसा करके वह अपने बन्दों को इससे सूचित करता है कि वास्तव में प्रशंसा के योग्य उसी की गुण-सम्पन्न सत्ता है।

अल्लाह जो समस्त गुणों, सुषमा एवं सौंदर्य और कौशल्य से युक्त है, उसको पहचानने के बाद ज़बान से अनायास उसकी प्रशंसा और गुणगान के शब्द प्रस्फुटित होने चाहिएँ। यही चेतना और ज्ञान की पराकाष्ठा और जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि (Finding) है। यहाँ चेतना वह सब कुछ पा लेती है, स्वभावतः जिसकी उसे तलाश है।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तीन व्यक्ति ऐसे हैं जिनपर ख़ुदा ने जन्नत हराम कर दी है— एक वह व्यक्ति जो हमेशा शराब पिए, दूसरा वह जो अपने माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करे और तीसरा वह दैयूस (पतित) व्यक्ति जो अपने परिवार में नापाकी पैदा करे।"

(हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी)

व्याख्या : जन्नत वह जगह है, जहाँ पवित्रतम जीवन स्थानान्तरित होंगे। जिनका जीवन अपवित्र है उनकी जगह वास्तव में जन्नत (स्वर्ग) नहीं है। इसी लिए फ़रमाया कि जन्नत ऐसे लोगों के लिए हराम है। इसे एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। जिस तरह किसी सुचरित्र और पवित्र मनुष्य के लिए यह अशोभनीय है कि कोई कुलटा स्त्री उसकी जीवन संगनी बने, ठीक इसी प्रकार उच्चतम स्थान जिसका नाम जन्नत है, उसके अधिकारी तो पवित्र लोग ही हो सकते हैं, न कि चरित्रहीन व्यक्ति।

शराबी शराब के नशे के सहारे जीता है। वह नहीं जान सकता कि जीने के सहारे और भी हो सकते हैं। जीवन की मस्तियाँ कुछ और भी हैं, शराब की मस्ती जिसका मुक़ाबला कदापि नहीं कर सकती। फिर अल्लाह के आदेशों का पालन करने के लिए चेतना और होश की ज़रूरत है, बेहोश और नशे का

प्रेमी शरीअत के उद्देश्य को किस प्रकार पूरा कर सकता है ? शराब पीने से अनेक दूसरी बुराइयाँ आदमी के अन्दर पैदा हो जाती हैं, जिनसे सभी परिचित हैं। व्यभिचार का तो शराब से गहरा सम्बन्ध है। मदिरापान स्वास्थ्य का शत्रु है। शराबी व्यक्ति स्वास्थ्य जैसी नेमत की उपेक्षा करता है, वह किसी से छुपा हुआ नहीं है।

माता–पिता की ओर से विमुखता और उनकी अवज्ञा अत्यन्त बुरा आचरण और पतित कर्म है। माता–पिता के जो उपकार और एहसान औलाद पर होते हैं उसका बदला यह तो नहीं हो सकता कि माता–पिता को कष्ट दिए जाएँ और उनके हक़ों को एकदम भुला दिया जाए। जो व्यक्ति भी माता–पिता की आज्ञा–पालन से भागता है वह अपने इस व्यवहार से सिद्ध करता है कि वह एक गिरा हुआ, चरित्रहीन व्यक्ति है। अब स्पष्ट है कि जन्नत ऐसे चरित्रहीन और दुराचारी लोगों के लिए तो नहीं बनाई गई है।

'दैयूस' (पतित) उस व्यक्ति को कहते हैं जिसको अपनी पत्नी के व्यभिचार पर कुछ भी ग़ैरत न आती हो, वह सब कुछ जानते हुए उसको अपनी पत्नी बनाए रखे।

यह हदीस बताती है कि दैयूस जन्नत में जाने का हरगिज़ अधिकारी नहीं है जो अपने घर में नैतिक गन्दगी फैलाए और अपनी पत्नी, लौंडी या किसी और को बदकारी (व्यभिचार) की राह पर लगाए। अपनी औरतों को पराये पुरुषों से बेपरदा और निस्संकोच मिलने–जुंलने और आलिंगन व चुम्बन की आज़ादी दे, और उसे इसकी कोई परवाह न हो कि अकेले में उसकी पत्नी से कौन मिलता है।

(3) हज़रत अबू–उसैद अनसारी (रज़ि०) अपने पिता के माध्यम से उल्लेख करते हैं कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को मस्जिद से निकलते हुए कहते हुए सुना जब लोग रास्ते में औरतों से मिल–जुल गए थे। आप (सल्ल०) ने औरतों से फ़रमाया, "पीछे हट जाओ, तुम्हें बीच रास्ते से नहीं चलना चाहिए, बल्कि तुम्हें किनारे से चलना चाहिए।" फिर स्त्रियाँ दीवार से लगकर चलने लगीं यहाँ तक कि उनका कपड़ा दीवार से उलझ जाता था। (हदीस : अबू–दाऊद)

व्याख्या : औरतों के लिए यह पाबन्दी ज़रूरी है कि वे पुरुषों के बीच

आने की कोशिश न करें। वह इस तरह के घुलने-मिलने से परहेज़ करें। रास्ते से गुज़रें तो पुरुषों के साथ मिल-जुलकर नहीं बल्कि रास्ते के एक किनारे से होकर चलें। स्त्री और पुरुष स्वाभाविक रूप से एक-दूसरे के लिए बड़ा आकर्षण रखते हैं। अतः ज़रूरी है कि उनके बीच दूरी बनी रहे ताकि किसी फ़ितने (उपद्रव) को सिरे से सर उठाने का अवसर न मिल सके।

(4) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने पुरुषों को दो औरतों के बीच में चलने से मना किया है।

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : जिस प्रकार औरतों के लिए आवश्यक है कि वे पुरुषों के बीच में चलने से परहेज़ करें ठीक उसी प्रकार पुरुषों के लिए भी अनिवार्य है कि वे औरतों के बीच में चलने से बचें।

(5) हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने-मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "स्त्री, स्त्री से मिलकर उसकी प्रशंसा अपने पति से इस तरह न करे मानो वह उस स्त्री को सामने देख रहा है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अपने पति के सामने किसी स्त्री की सुन्दरता को चित्रित करने से इसलिए रोका जा रहा है कि कहीं उससे पति के दिल में उस अजनबी स्त्री के लिए झुकाव न पैदा हो जाए और वह उसके प्रेम में ग्रस्त होकर किसी संकट में न पड़ जाए। इससे अनुमान किया जा सकता है कि शरीअत के आदेशों में कितनी दूर-दर्शिता पाई जाती है। यही दूर-दर्शिता है जिसके अन्तर्गत अजनबी स्त्री के साथ सफ़र करने और तनहाई में उससे मिलने से शरीअत ने रोका है।

निगाह बचाना

(1) हज़रत जरीर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से (किसी स्त्री पर) अचानक निगाह पड़ जाने के विषय में पूछा। आप (सल्ल०) ने मुझे अपनी निगाह फेर लेने का आदेश दिया। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : किसी अजनबी स्त्री पर अगर बिना इरादा अचानक निगाह पड़ जाए तो उसे देखता न रहे, बल्कि तुरन्त अपनी निगाह फेर ले। फिर दोबारा

उसे देखने की कोशिश न क़रे। बिना इरादा जो निगाह अजनबी स्त्री पर पड़ गई थी वह माफ़ है, उसपर कोई पकड़ न होगी। क़ुरआन में भी है, "मोमिनों से कहो कि वह अपनी निगाहें बचाए रखें।" (क़ुरआन, 24:30)

इस हदीस के आधार पर इमाम नववी (रह०) और कुछ दूसरे विद्वानों का विचार है कि स्त्री को राह में मुँह ढकना वाजिब नहीं है, बल्कि सुन्नत और पसन्दीदा है। लेकिन पुरुषों को उनसे अपनी निगाह बचानी चाहिए। अलबत्ता जहाँ वास्तविक आवश्यकता हो वहाँ देखने की अनुमति है। उदाहरण स्वरूप कोई व्यक्ति किसी स्त्री से निकाह करना चाहता है तो वह एक नज़र उस स्त्री को देखकर इतमीनान हासिल कर सकता है। ऐसा करने में कोई हरज नहीं है। उसी तरह अपराधों की छानबीन के सम्बन्ध में किसी सन्दिग्ध स्त्री को देखना, या इलाज के लिए डाक्टर का स्त्री को देखना वैध है। गवाही के अवसर पर भी क़ाज़ी (जज) गवाही देनेवाली स्त्री को देख सकता है।

(2) हज़रत बुरैदा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हज़रत अली से फ़रमाया, "ऐ अली, (किसी स्त्री पर) दृष्टि पड़ जाने के पश्चात् पुनः दृष्टि न डाल। पहली (संयोगवश पड़ जानेवाली) दृष्टि तेरे लिए है, दूसरी तेरे लिए कदापि नहीं।"

(हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद, दारमी)

व्याख्या : पहली नज़र जो संयोगवश किसी स्त्री पर पड़ जाए उसपर पकड़ न होगी, लेकिन इसके बाद अगर दूसरी नज़र इरादे के साथ कोई उसपर डालता है तो यह कदापि वैध न होगा। इसलिए अगर किसी व्यक्ति की बिना इरादा के किसी स्त्री पर निगाह पड़ जाए तो उसकी ओर से अपनी निगाह हटा ले, उसे दोबारा देखने की कदापि कोशिश न करे। नबी (सल्ल०) के अपने अंतिम हज्ज (हिज्जतुल-विदाअ) के अवसर पर ख़शअम क़बीले की एक स्त्री रास्ते में नबी (सल्ल०) को रोककर हज से सम्बन्धित किसी चीज़ के बारे में पूछने लगी। फ़ज़्ल-बिन-अब्बास (नबी सल्ल० के चचा ज़ाद भाई जो उस समय नौजवान थे) ने अपनी निगाहें गाड़ दीं। नबी (सल्ल०) ने उनका मुँह पकड़कर दूसरी ओर कर दिया। (हदीस : बुख़ारी, अबू-दाऊद, तिर्मिज़ी)

पुरुष ही को नहीं औरतों को भी अपनी निगाहें बचानी चाहिए। उन्हें भी जान-बूझकर किसी पुरुष को देखने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। लेकिन

औरतों के पुरुषों को देखने के मामले में इतनी सख़्ती नहीं है जितनी सख़्ती पुरुषों को औरतों के देखने में है। इसी लिए हज़रत आइशा (रज़ि०) को हबशियों के नेज़ा-बाज़ी (भाला-बरछी का खेल) नबी (सल्ल०) ने ख़ुद दिखाया है, जबकि परदे का आदेश उतर चुका था और हज़रत आइशा (रज़ि०) बालिग़ थीं। अलबत्ता इसकी इजाज़त कदापि नहीं दी जा सकती कि औरतों और पुरुषों का घुलना-मिलना हो, पुरुष और स्त्रियाँ किसी मजलिस या सभा में एक साथ एकत्र हों और वे आपस में बेझिझक बातें करें और शौक़ और दिलचस्पी से एक-दूसरे को देखें।

दृष्टि बचाने से अभिप्राय यह भी है कि कोई किसी स्त्री या पुरुष के सत्र (गुप्तांग) पर निगाह न डाले। नबी (सल्ल०) ने पुरुष के सत्र की सीमा नाफ़ (नाभि) से घुटने तक मुक़र्रर की है। शरीर के इस भाग को पत्नी के सिवा किसी दूसरे के सामने खोलना दुरुस्त नहीं, (हदीस : दार-क़ुत्नी, बैहक़ी)। पुरुषों के लिए स्त्री का सत्र हाथ और मुँह के सिवा उसका पूरा शरीर है जिसको पति के सिवा किसी दूसरे पुरुष के सामने हरगिज़ न खोलना चाहिए, यहाँ तक कि बाप और भाई के सामने भी उसे खोलना जाइज़ नहीं है।

स्त्री को ऐसा बारीक या चुस्त लिबास भी पहनना उचित नहीं है; जिससे बदन अन्दर से झलकता हो या शरीर की बनावट नज़र आए। एक बार हज़रत आइशा (रज़ि०) की बहन हज़रत असमा बिन्ते-अबी-बक्र अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के सामने आईं। वे बारीक कपड़े पहने हुए थीं। आप (सल्ल०) ने मुँह फेर लिया और फ़रमाया —

"ऐ असमा, जब स्त्री बालिग़ हो जाए तो यह दुरुस्त नहीं कि इसके और इसके सिवा कोई अंग नज़र आए।" आप (सल्ल०) ने मुँह और हाथ की ओर इशारा किया (हदीस : अबू-दाऊद)। इस सिलसिले में बस इतनी छूट है कि बाप, भाई आदि अपने महरम रिश्तेदारों के सामने स्त्री अपने शरीर का इतना हिस्सा खोल सकती है, जितना घर का काम-काज करते हुए जिसके खोलने की ज़रूरत पड़ती है। उदाहरण स्वरूप आटा गूँधते समय अपनी आस्तीन चढ़ा लेना या घर का फ़र्श धोते हुए पाइंचे कुछ ऊपर उठा लेना।

किसी के सत्र पर निगाह डालने से बचना शरीअत की निगाह में ज़रूरी है। हज़रत अली (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "किसी

ज़िन्दा या मुर्दा की रान पर निगाह न डालो," (हदीस : इब्ने-माजा, अबू-दाऊद)। तनहाई की हालत में भी नंगा रहना दुरुस्त नहीं है। नबी (सल्ल०) का कथन है, "ख़बरदार, कभी नंगे न रहो, क्योंकि तुम्हारे साथ वे (रहमत के फ़रिश्ते) रहते हैं जो कभी तुमसे अलग नहीं होते, सिवाय उस समय के जब तुम शौच-क्रिया करते हो या अपनी पत्नी के पास जाते हो। अतः उनसे हया करो और उनके सम्मान का ध्यान रखो।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

एक दूसरी हदीस में है कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अपने सत्र को अपनी पत्नी और लौण्डी के सिवा हर एक से सुरक्षित रखो।" एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि जब हम तनहाई में हों? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तो अल्लाह तआला इसका सबसे ज़्यादा हक़दार है कि उससे हया की जाए।"

(हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा, तिर्मिज़ी)

(3) हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिस किसी मुस्लिम की दृष्टि किसी स्त्री के सौन्दर्य पर पहली बार पड़ जाए फिर वह तुरन्त अपनी दृष्टि हटा ले तो अवश्य ही अल्लाह उसके लिए ऐसी इबादत पैदा करेगा कि उसकी लज़्ज़त उसे हासिल होगी।"(अहमद)

व्याख्या : यदि किसी मुस्लिम व्यक्ति की नज़र किसी पराई स्त्री की सुन्दरता पर पड़ गई और उसने अपनी निगाह उससे हटा ली और दोबारा उसपर निगाह डालने की कोशिश नहीं की तो आख़िरत के अलावा दुनिया में भी ख़ुदा इसके बदले में उसे ऐसी चीज़ प्रदान करेगा जो बाह्य सौन्दर्य से श्रेष्ठ और उच्चतर तथा अत्यन्त आनन्ददायक होगी। वह वास्तव में एक ऐसी सौन्दर्यानुभूति होगी जो उसे इसी वर्तमान जीवन में प्राप्त होगी। यह अनुभूति अल्लाह की ओर से होगी, इसलिए इसके विश्वसनीय होने में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। इस सौन्दर्यानुभूति को इस हदीस में इबादत शब्द से अभिव्यंजित किया गया है। इबादत से तात्पर्य यहाँ ख़ुदा की पहचान और उसका ज्ञान है, जिससे बढ़कर आनन्ददायक और रसात्मक अन्य कोई अनुभूति सम्भव नहीं है।

यहाँ यह भी ध्यान रहे कि इस्लाम में आम इबादतें भी वास्तव में सत्य को पहचान लेने और ईश्वर को जान लेने का प्रदर्शन है। सहीह मुस्लिम की एक

रिवायत में शब्द 'इबादत' मारफ़त या पहचान के अर्थ में प्रयुक्त भी हुआ है। हदीस यह है— अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने जब हज़रत मुआज़ (रज़ि०) को यमन भेजा तो फ़रमाया, "तुम ऐसे लोगों के पास जाओगे जो किताब वालों में से हैं, तो सबसे पहले तुम्हें जिस चीज़ की ओर उन लोगों को आमंत्रित करना चाहिए वह अल्लाह की इबादत है। फिर जब वे अल्लाह को पहचान लें तो उन्हें बताना कि अल्लाह ने दिन-रात में उनपर पाँच नमाज़ें अनिवार्य की हैं। जब वे इस पर अमल करने लगें तो उनको बताना कि अल्लाह ने उनपर ज़कात भी फ़र्ज़ की है जो उनके माल में से ली जाएगी। फिर उनके मोहताजों की ओर लौटा दी जाएगी। जब वे इसे मान लें तो उनसे ज़कात वुसूल करना और उनके अच्छे मालों से बचना (अर्थात् उनके अच्छे क़िस्म के मालों ही पर हाथ न डालना)।" (हदीस : मुस्लिम)

इस हदीस में स्पष्ट रूप से 'इबादतुल्लाह' का शब्द ख़ुदा की पहचान के अर्थ में आया है। और कहा गया है कि यमन के अह्ले किताब को इसके लिए आमंत्रित करना कि वे अल्लाह को पहचानें। और जब वे अल्लाह को पहचान लें तब आम इबादतें नमाज़, ज़कात आदि के बारे में ख़ुदा के आदेशों से उनको अवगत कराना।

आवाज़ का फ़ितना

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) कहते थे, "तसबीह पुरुषों के लिए है और दस्तक औरतों के लिए।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : नमाज़ में इमाम से कोई भूल हो रही हो तो उससे उसको सावधान करने के लिए पुरुष जो इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ रहा हो वह ऊँची आवाज़ से तसबीह (सुब्हानल्लाह या अल्लाहु अकबर) पढ़े और इमाम के पीछे नमाज़ पढ़नेवाली स्त्री तसबीह के बदले दस्तक दे अर्थात् अपने हाथ को दूसरे हाथ पर मारकर इमाम को उसकी भूल पर सावधान करे। मुख से आवाज़ न निकाले।

स्त्री की आवाज़ भी स्त्री होती है। रूप और सूरत की तरह औरतों की आवाज़ में भी ख़ुदा ने ऐसा आकर्षण रखा है कि पुरुषों के दिल स्वाभाविक

रूप से उसकी तरफ़ झुक जाते हैं। स्त्री की आवाज़ में विशेष प्रकार के लोच और कोमलता के कारण दिलों में अनुचित प्रकार की भावनाओं के उभरने और उनके विकसित होने की सम्भावनाएँ पैदा हो सकती हैं। हृदय की शुद्धता और पवित्रता की सुरक्षा के लिए शरीअत ने ज़रूरी समझा कि नमाज़ में भूल-चूक के अवसर पर स्त्रियाँ तसबीह के बदले दस्तक से काम लें। जब नमाज़ में आवाज़ के फ़ितने से लोगों के सुरक्षित रहने का इस प्रकार यत्न किया गया है तो आम हालात में इस फितने से अपने को सुरक्षित रखने की कोशिश करना कितना ज़्यादा ज़रूरी है, इसको हर व्यक्ति अच्छी तरह समझ सकता है।

ख़ुशबू का फ़ितना

(1) हज़रत ज़ैनब (रज़ि०), हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) की पत्नी, कहती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हम (औरतों) से फ़रमाया, "जब तुममें से कोई स्त्री मस्जिद में आए तो सुगन्ध लगाकर न आए।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : वह ऐसी ख़ुशबू लगाकर मस्जिद में न आए कि दूर तक वातावरण सुगंधित हो जाए और यह सुगन्ध पुरुषों तक पहुँचे, क्योंकि किसी स्त्री की सुगन्ध के कारण पुरुष को उसकी चाहत पैदा हो सकती है और यह चीज़ फ़ितना व फ़साद का कारण बन सकती है।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो स्त्री ख़ुशबू की धूनी ले वह हमारे साथ इशा (रात) की जमाअत में शरीक न हो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : ऊद और सुगन्धित लोबान आदि की धूनी से अपने शरीर, बाल और लिबास को ख़ुशबू में बसाकर स्त्री मस्जिद में लोगों के साथ नमाज़ अदा करने न आए, क्योंकि उसकी ख़ुशबू पुरुषों की नाक तक पहुँचेगी, और यह चीज़ फ़ितने का कारण बन सकती है।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जान लो, पुरुषों की ख़ुशबू वह है जिसकी महक स्पष्ट और प्रकट हो, लेकिन उसका रंग प्रकट न हो। जान लो कि

औरतों की ख़ुशबू वह है जिसका रंग स्पष्ट हो, उसकी महक प्रकट न हो।"
(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इमरान-बिन-हुसैन (रज़ि०) की रिवायत में ये शब्द आए हैं—"जान लो, पुरुषों की ख़ुशबू में महक होती है, रंग नहीं होता और औरतों की ख़ुशबू में रंग होता है, महक नहीं होती।" (हदीस : अबू-दाऊद)

पुरुषों की ख़ुशबू का उदाहरण गुलाब और मुश्क (कस्तूरी) आदि है कि इनमें ख़ुशबू होती है लेकिन ऐसा रंग नहीं होता कि शोभा और सुन्दरता के लिए उनका प्रयोग किया जा सके। औरतों के लिए पसन्दीदा ख़ुशबू का उदाहरण ज़ाफ़रान (केसर) और मेंहदी आदि है जिनमें रंग तो होता है कि बाह्य सुन्दरता में सहायक हो सके लेकिन उनमें कोई ऐसी तेज़ ख़ुशबू नहीं होती कि किसी फ़ितने का कारण बने। औरतों के लिए यह आदेश कि वे तेज़ ख़ुशबू न लगाएँ उस समय के लिए है जबकि वे बाहर निकलें। अन्यथा अपने घर में पति के पास जिस प्रकार की ख़ुशबू वे चाहें प्रयोग कर सकती हैं।

नग्नता से परहेज़

(1) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "औरत परदे की चीज़ है। अतएव जब कोई स्त्री बाहर निकलती है तो शैतान उसे ताकता है।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : स्त्री का व्यक्तित्त्व ही ऐसा होता है कि उसे अपनी प्रतिष्ठा और महानता की सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। स्त्री का महत्त्व और मूल्य यह नहीं है कि उसे सिर्फ़ वासनाओं की तृप्ति का साधन माना जाए। लज्जावती स्त्री का स्वाभिमान तो इसे भी सहन नहीं कर सकता कि किसी कामी पुरुष की नापाक निगाह भी उसपर पड़े।

शैतान की पूरी कोशिश यह होती है कि वह लोगों को नैतिक दृष्टि से अत्यन्त पतित कर दे। वह लोगों को व्यभिचार और भ्रष्ट कर्मों में ग्रस्त देखना चाहता है। स्त्री जब अपने सुरक्षित घर से बाहर निकलती है तो शैतान उससे लाभ उठाते हुए इसके लिए प्रयत्नशील होता है कि दूसरों की निगाहें उसपर पड़ें और वह उनको फ़ितने में डालकर रहे। व्यभिचार और कुकर्म में पड़ने के बाद आदमी का कोई चरित्र नहीं रहता, और इस सच्चाई को समझना कुछ

मुश्किल नहीं कि चरित्रहीन व्यक्ति से ख़ुदा की बन्दगी सम्भव नहीं हो सकती। और शैतान की सारी कोशिशों का मूल उद्देश्य यही है कि वह लोगों को ख़ुदा की आज्ञाकारिता और बन्दगी से दूर कर दे।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "दो प्रकार के नारकीय ऐसे हैं जिनको मैंने नहीं देखा। एक प्रकार के तो वे लोग हैं जिनके हाथ में बैल की पूँछ जैसे कोड़े होंगे जिनसे वे लोगों को (अकारण) मारेंगे। और दूसरे प्रकार की नारकीय वे स्त्रियाँ हैं जो देखने में तो कपड़े पहने हुए होंगी लेकिन वास्तव में वे नंगी होंगी। लोगों को अपनी ओर आकर्षित करनेवाली और स्वयं उनकी ओर आकर्षित होनेवाली। उनके सर लम्बी गर्दनवाले ऊँट के कोहान की तरह हिलते होंगे। ये स्त्रियाँ न तो जन्नत में प्रवेश कर सकेंगी और न उसकी महक पा सकेंगी। हालाँकि जन्नत की ख़ुशबू इतनी-इतनी दूर की दूरी (अर्थात् बहुत दूर) से आती है।

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि अत्याचार और ज़्यादती करनेवाले लोग जन्नत के अधिकारी नहीं होते। इसी प्रकार उन स्त्रियों को भी जन्नत में प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त नहीं जो नैतिक दृष्टि से इस गिरावट को पहुँच गई हों कि उनके जीवन में अतिआनन्ददायक चीज़ बस यह रह गई हो कि वे दूसरों को लुभाएँ और उन्हें अपना प्रेमी बनाने में सफलता प्राप्त करें। दूसरों को अपना शिकार बनाएँ और ख़ुद दूसरों की वासना का शिकार हों। ऐसी स्त्रियाँ दूसरों पर डोरे डालने के लिए बनाव-शृंगार से भी काम ले सकती हैं और इसके लिए दूसरी चाल-ढाल भी अपना सकती हैं। फिर उनका वस्त्र ऐसा होगा कि उसे पहनकर भी वे नग्न होंगी। उनका कपड़ा इतना बारीक होगा कि अन्दर से उनका बदन पूरी तरह झलकेगा। या फिर वे ऐसे कपड़े या ऐसी कटिंग और काट-छांट का वस्त्र पहनेंगी जो शरीर के उन अंगों के लिए पूर्ण रूप से आवरक न होगा जिन्हें ढका हुआ होना चाहिए। उसे पहनने के बाद भी उनके शरीर के बहुत सारे आकर्षक अंग खुले रहेंगे।

ऐसी निर्लज्ज और आबरू गँवानेवाली स्त्रियों के लिए जन्नत नहीं बनाई गई है। ऐसी स्त्रियाँ जन्नत की ख़ुशबू भी न पा सकेंगी जबकि जन्नत की ख़ुशबू बहुत दूर के फ़ासले से ही आने लगती है।

(3) हज़रत याला (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक व्यक्ति को बिना तहबन्द के मैदान में नहाते हुए देखा। फिर आप मिम्बर पर चढ़े और अल्लाह का गुणगान किया। उसके बाद फ़रमाया, "निस्सन्देह अल्लाह बहुत लज्जावान है, बड़ा परदादार है और उसे लज्जा और परदापोशी बहुत पसन्द है। अतः जब कोई तुममें से स्नान करे तो उन अंगों को छिपाए जिनका छिपाना अनिवार्य है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : जब ख़ुदा स्वयं लज्जावान है तो फिर हमारे अन्दर भी लज्जा का गुण होना चाहिए। हमारा कर्तव्य है कि हम प्रत्येक अश्लील और निर्लज्जता के कामों से अपने को दूर रखें। इसी तरह जब हमारे अल्लाह को परदापोशी पसन्द है तो हमें इसके मूल्य और महत्त्व का पूरा एहसास होना चाहिए।

जब अल्लाह हर किसी के सामने चाहे वह कैसा भी हो प्रकट नहीं होता तो फिर हमें भी आत्म-सम्मान और आत्म-प्रतिष्ठा का पूरा ध्यान रखना चाहिए। स्त्री चूँकि सर्वथा छिपाने की चीज़ (सतर) होती है। इसलिए उसका ग़ैरों के सामने बेझिझक और बेपरदा आना अपने सम्मान को घटाना है।

अनुमति माँगना

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर कोई व्यक्ति तुम्हारे घर में बिना तुम्हारी अनुमति के झाँके और तुम उसे एक कंकड़ी से मारो और उसकी आँख फूट जाए तो तुमपर कोई गुनाह नहीं।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस्लाम से पूर्व अज्ञानकाल में अरबवाले निस्संकोच प्रातः शुभ हो, (Good morning) संध्या शुभ (Good Evining) हो कहते हुए एक-दूसरे के घर में प्रवेश कर जाते थे। कभी-कभी स्त्रियों पर ऐसी हालत में निगाहें पड़ जाती थीं जिसमें उनपर निगाहें नहीं पड़नी चाहिए थीं। अल्लाह ने इसका सुधार किया और हर व्यक्ति को उसके अपने घर में एकान्तता (Privacy) का भी अधिकार प्रदान किया और अनुमति के बिना किसी की एकान्तता में विघ्न डालने को एकदम अवैध ठहराया।

किसी के घर में बिना उसकी अनुमति के झाँकना कितना बुरा है इसका भलीभाँति अनुमान रसूल (सल्ल०) की इस हदीस से किया जा सकता है।

(2) हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैं नबी (सल्ल०) के पास हाज़िर हुआ। मैंने आवाज़ दी। नबी (सल्ल०) ने पूछा, "कौन है?" मैंने कहा कि मैं हूँ। आप (सल्ल०) यह कहते हुए बाहर आए, "मैं भी तो मैं हूँ।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अबू-दाऊद की रिवायत में है— "हज़रत जाबिर (रज़ि०) बयान करते हैं कि वे अपने पिता के ऋण के सम्बन्ध में नबी (सल्ल०) के पास गए। वे कहते हैं कि मैंने दरवाज़ा खटखटाया। आप (सल्ल०) ने पूछा, "कौन है?" मैंने कहा कि मैं। आप (सल्ल०) ने कहा, "मैं भी तो मैं हूँ।" जैसे कि आपने इसे सख़्त नापसन्द किया।

मतलब यह है कि इस "मैं" से कोई क्या समझे कि तुम कौन हो। तुम्हें साफ़-साफ़ अपना नाम लेना चाहिए।

(3) हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना, "अनुमति माँगनी तीन बार है। फिर अगर अनुमति मिले तो अच्छा अन्यथा लौट जाओ।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह तीन बार आवाज़ देना निरन्तर न होना चाहिए, बल्कि ठहर-ठहरकर पुकारना चाहिए। इसलिए कि इसकी सम्भावना है कि घरवाले को कोई ऐसी व्यस्तता हो कि वह तुरन्त जवाब देने में असमर्थ हो। उसे इसका अवसर मिलना चाहिए कि वह अपनी व्यस्तता से निवृत्त हो सके।

(4) हज़रत हुज़ैल (रज़ि०) बयान करते हैं कि एक व्यक्ति आए। हज़रत उसमान कहते हैं कि वे साद बिन-अबी-वक़्क़ास (रज़ि०) थे। वे अनुमति लेने के उद्देश्य से नबी (सल्ल०) के ठीक दरवाज़े के सामने खड़े हो गए। हज़रत उसमान (रज़ि०) कहते है कि उनका मुँह ठीक दरवाज़े की ओर था। नबी (सल्ल०) ने उनसे फ़रमाया, "परे हटकर खड़े हो। इजाज़त लेने का आदेश इसी लिए है कि निगाह न पड़े।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : जब तुम ऐसी जगह खड़े हो कि घर का सब कुछ दिखाई दे तो फिर इजाज़त लेने से क्या लाभ। इजाज़त लेने का मुख्य उद्देश्य ही यह है कि अचानक किसी पर निगाह न पड़े। खुद नबी (सल्ल०) जब किसी के घर तशरीफ़ ले जाते तो दरवाज़े के दाएँ या बाएँ खड़े होते। दरवाज़े के ठीक सामने

कदापि खड़े न होते। (हदीस : अबू-दाऊद)

इजाज़त माँगने का तरीक़ा भी नबी (सल्ल०) ने सिखाया है कि दरवाज़े पर पहुँचकर यूँ कहे, "अस्सलामु अलैकुम अ्-अद्ख़ुलु," अर्थात "आप पर सलामती हो, क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ?" (हदीस : अबू-दाऊद)

बिना इजाज़त किसी के घर में झाँकना तो अलग रहा, बिना इजाज़त किसी के पत्र पर निगाह डालना भी सख़्त गुनाह की बात है। अतः हुज़ूर (सल्ल०) का कथन है— "जिस किसी ने अपने भाई के ख़त में उसकी इजाज़त के बिना नज़र दौड़ाई, वह बस आग में झाँकता है।"

(हदीस : अब-दाऊद)

अकेले में मिलने और छूने से बचना

(1) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "ख़बरदार, कोई पुरुष किसी विवाहित स्त्री के साथ रात न गुज़ारे सिवाय इसके कि वह पुरुष उसका पति या 'महरम' हो।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : पति या महरम के अलावा विवाहित स्त्री के साथ कोई दूसरा व्यक्ति रात न बिताए। तनहाई और वह भी रात की तनहाई में इसकी बड़ी संभावना रहती है कि कामेक्षा के वशीभूत होकर वे कोई ग़लत काम न कर बैठें। शरीअत ने व्यभिचार ही से नहीं रोका बल्कि उसने उन कारणों और प्रेरकों के द्वार भी बन्द कर दिए हैं जो आदमी को बुराई और व्यभिचार की ओर ले जा सकते हैं।

महरम से अभिप्रेत स्त्री के वे नातेदार हैं जिनसे हमेशा के लिए उसका निकाह हराम ठहराया गया है, जैसे— बाप, दादा, भाई, चचा, मामा आदि।

इस हदीस का मतलब यह नहीं होता कि स्त्री अगर शादीशुदा नहीं बल्कि कुँआरी है तो उसके साथ रात गुज़ारने में कोई आपत्ति नहीं है। जो आदेश शादीशुदा स्त्री के लिए है वही आदेश कुँआरी के सिलसिले में भी है। अर्थात् उसके साथ भी किसी ग़ैर-महरम का रात गुज़ारना वैध नहीं।

(2) हज़रत उक़बा-बिन-आमिर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अजनबी स्त्री के पास जाने से बचो।" एक

अनसारी ने अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! हम्व के बारे में आपका क्या आदेश है?" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हम्व तो मौत है।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : हम्व से अभिप्रेत पति के मित्र और सगे-सम्बन्धी हैं। जैसे पति का भाई (देवर), उसके चचा का बेटा, जिनसे स्त्री का निकाह हो सकता है। जिनसे निकाह न हो सकता हो जैसे पति का बाप या उस पति का बेटा, तो ये हम्व में सम्मलित नहीं हैं।

"हम्व तो मौत है" अर्थात् वह सबसे बढ़कर तबाही का कारण बन सकता है। तनहाइयों में हम्व के ग़ैर-महरम स्त्री के साथ उठने-बैठने के कारण उनके किसी बुराई में पड़ जाना कोई असम्भव बात नहीं है। जिस प्रकार अरबवासी कहते हैं, "शेर मौत है और सुलतान आग है।" अर्थात् उनसे मिलना मानो मौत और आग से मिलना है। उसी प्रकार "पति के सम्बन्धी मौत हैं" का अर्थ यह हुआ कि पति के सम्बन्धियों से एकान्त में मिलना, अजनबियों के साथ अकेले में रहने से कहीं अधिक ख़तरनाक है।

(3) हज़रत उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब कोई पुरुष तनहाई में किसी अजनबी स्त्री के साथ होता है तो निश्चय ही उनके साथ तीसरा शैतान होता है।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : शैतान उनकी काम-वासना को उत्प्रेरित करता है और उसकी कोशिश यह होती है कि वे व्यभिचार में पड़ जाएँ। इसलिए अकेले में किसी अजनबी स्त्री के साथ किसी पुरुष के इकट्ठा होने का अवसर ही नहीं मिलना चाहिए कि शैतान अपनी चाल चल सके।

नबी करीम (सल्ल०) ने शैतानी चाल से सुरक्षित रहने ही के उद्देश्य से हिजड़ों को घरों में प्रवेश करने से रोक दिया, क्योंकि वे एक घर की औरतों का हाल दूसरे पुरुषों से बयान करते थे और वे औरतों से दिलचस्पी लेते थे। इससे मालूम हुआ कि अगर कोई व्यक्ति शारीरिक क्षमता की दृष्टि से बदकारी के लायक़ न भी हो लेकिन अगर उसके अन्दर काम-भावना (कामुकता) पाई जाती है और उसे औरतों से दिलचस्पी है तो वह भी फ़ितनों के द्वार खोल सकता है।

(4) हज़रत अबू-सईद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के

रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "न पुरुष, पुरुष के उन अंगों पर निगाह डाले जिनके छिपाने का आदेश दिया गया है और न स्त्री, स्त्री के ऐसे अंगों पर निगाह डाले। और न पुरुष, पुरुष के साथ एक कपड़े में हो जाए और न स्त्री, स्त्री के साथ एक कपड़े में हो जाए।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : जिस प्रकार उन अंगों पर निगाह डालना दुरुस्त नहीं है जिनके छिपाने का आदेश दिया गया है, उसी तरह उन्हें हाथ से छूना भी दुरुस्त नहीं है। सिवाय इसके कि कोई मजबूरी या अपरिहार्य ज़रूरत पड़ जाए, जैसे चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यकता आदि।

नग्नता की स्थिति में दो पुरुषों या दो औरतों का एक कपड़े में इकट्ठा होना बिल्कुल हराम है। इसलिए कि यह लज्जा और शर्म के भी विपरीत है और इससे जो ख़राबियाँ पैदा हो सकती हैं वे भी किसी से छुपी हुई नहीं हैं।

परदा

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को सुना कि आप (सल्ल०) स्त्रियों को इससे मना कर रहे थे कि वे इहराम की हालत में दस्ताने इस्तेमाल करें और नक़ाब डालें और ऐसे कपड़े पहनें जिसमें वर्स और ज़ाफ़रान लगी हो। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : वर्स एक प्रकार की घास है जिससे रंगाई का काम लेते हैं।

हज एक ऐसी इबादत है जिसमें अल्लाह के प्रेम से भावविभोर होकर विमुग्धता का ढंग अपनाना पड़ता है। इसमें बन्दे एक प्रकार की आत्मविस्मृति की हालत में होते हैं। बनाव-श्रृंगार का प्रयास इस अभीष्ट स्थिति के सर्वथा विपरीत है। हज का उद्देश्य ही यह है कि आदमी अपने आप से निरपेक्ष होकर पूर्ण रूप से ख़ुदा के सौन्दर्य और पूर्णता को दिल व निगाह में बसाने की कोशिश करे। इसी लिए इहराम की हालत में औरतों को न सिर्फ़ यह कि बनाव-श्रृंगार करने से रोका गया है, बल्कि मुँह पर नक़ाब डालने तक से रोका गया है। मानो यह इस बात का प्रदर्शन है कि ख़ुदा के सौन्दर्य के सामने किसी का अपना सौन्दर्य कुछ भी चीज़ नहीं है। नक़ाब हटाने का मूल उद्देश्य स्रष्टा के मुक़ाबले में ईश्वर के पैदा किए हुए प्राणियों के सौन्दर्य का निषेध है।

इस हदीस से मालूम हुआ कि स्त्रियों को आम दिनों में चेहरे पर नक़ाब

डालकर बाहर निकलना चाहिए। यदि स्त्रियाँ चेहरे पर नक़ाब डालकर न निकलती होतीं तो इस आदेश की कोई आवश्यकता न आती कि इहराम की हालत में स्त्रियाँ अपने चेहरे पर नक़ाब न डालें। क़ुरआन में कहा गया है : ''ऐ नबी! अपनी पत्नियों और बेटियों और ईमानवालों की स्त्रियों से कह दो कि वे अपने ऊपर अपनी चादरों का कुछ हिस्सा लटका लिया करें।'' (अल-अहज़ाब, 59) आशय यह है कि यदि स्त्रियों को बाहर निकलने की ज़रूरत पड़ जाए तो यूँ ही न निकल पड़ें, बल्कि वे चादर इस्तेमाल करें और चादर का एक भाग अपने चेहरे पर लटका लें ताकि उनपर किसी को बुरी निगाह डालने का अवसर न मिल सके और देखनेवाले ये समझ लें कि ये शरीफ़ ख़ानदान की महिलाएँ हैं जिनसे कोई ग़लत आशा नहीं की जा सकती। इस तरह ये स्त्रियाँ स्वच्छन्दाचारी और लम्पट लोगों के दुख पहुँचाने से सुरक्षित रहेंगी।

क़ुरआन में एक-दूसरे स्थान पर कहा गया है, ''और मोमिन औरतों से कहो कि अपनी निगाहें बचाकर रखें और अपने गुप्तांगों की हिफ़ाज़त करें और अपना सौन्दर्य प्रकट न करें, यह बात अलग है कि जो अपरिहार्यतः प्रकट हो जाए।'' (अन-नूर, 31)

स्त्री के श्रृंगार में हर वह चीज़ सम्मिलित है जो उसके सँवरने का साधन बनती हो। यह कृत्रिम भी हो सकती है, जैसे आभूषण, वस्त्र आदि और पैदाइशी भी जैसे कपोल, केश और दूसरे शारीरिक सौन्दर्य। अल्लाह का आदेश है कि स्त्री अपने श्रृंगार का प्रदर्शन न करे। इसका अपवाद केवल 'जो अपरिहार्यतः प्रकट हो जाए' है। 'जो अपरिहार्यतः प्रकट हो जाए' से अभिप्रेत क्या है इस बारे में विद्वानों के कई मत हैं। साधारणतया इससे अभिप्राय चेहरा और हथेली समझते हैं। यह मानो मोमिन स्त्रियों के हक़ में एक छूट और नरमी है। चेहरे और हथेलियों के छुपाने में स्त्रियों को बड़ी कठिनाइयों और परेशानियों का सामना करना पड़ता। इसी लिए उन्हें यह छूट दी गई। 'जो अपरिहार्यतः प्रकट हो जाए' के इस अपवाद के परिप्रेक्ष्य में कुछ लोगों ने चेहरे और हथेलियों को परदे या हिजाब से मुक्त ठहरा लिया और यह घोषित कर दिया कि चेहरे और हाथ को छुपाना इस्लामी परदे में शामिल नहीं है। इसलिए स्त्रियों को ग़ैर-पुरुषों से चेहरा और हाथ छुपाने की कोई ज़रूरत नहीं है। हालाँकि दुनिया जानती है कि स्त्री के सौन्दर्य में सबसे ज़्यादा सुन्दर और

आकर्षक उसका चेहरा ही होता है।

सूरा अन–नूर की आयत जिसमें 'जो अपरिहार्यतः प्रकट हो जाए' को परदे के विषय में अपवाद ठहराया है, उस आयत का सम्बन्ध वास्तव में घर से बाहर के परदे से नहीं बल्कि घर के अन्दर के परदे से है। अतः इसका मतलब सिर्फ़ यह होगा कि घर के अन्दर या दूसरे शब्दों में महरम रिश्तेदारों, नौकरों और अव्यस्क बच्चों से चेहरा छुपाने की ज़रूरत नहीं है, उनके सामने चेहरा और हाथ ख़ुला रखने की अनुमति है। विस्तार के लिए सूरा अन–नूर की आयत 31 देखें जिसमें कहा गया है कि "मोमिन स्त्रियाँ अपने शृंगार प्रकट न करें, सिवाय अपने पतियों के या अपने बापों के या अपने पतियों के बापों या अपने बेटों या अपने पतियों के बेटों के या अपने भाइयों के या अपने भतीजों के या भांजों के या अपने सम्बन्ध की स्त्रियों या जो उनकी अपनी मिल्क में हों उनके, या अधीन पुरुषों अर्थात् उनके जो स्त्री की आवश्यकता की अवस्था से निकल चुके हों, या उन बच्चों के जो स्त्रियों के छिपे अंगों से अपरिचितहों।"

यदि इस्लाम में चेहरे का परदा न होता तो फिर क़ुरआन में इस बात का आदेश क्यों दिया जाता, "और जब तुम उनसे (नबी सल्ल० की पत्नियों से) कुछ माँगो तो परदे के पीछे से माँगो" (अल–अहज़ाब, 53)। नबी (सल्ल०) की पवित्र पत्नियों का जीवन मोमिन स्त्रियों के लिए उत्तम आदर्श है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

जो विद्वान चेहरे के परदे के हक़ में नहीं हैं वे भी परदे का सबसे उचित और पूर्ण रूप यही समझते हैं कि स्त्री यथासम्भव अपने चेहरे को छिपाए। ख़ास तौर से वर्तमान युग में जबकि मर्यादाहीनता का प्रचलन आम हो गया है।

विधवाओं और ग़रीब औरतों को अगर अपनी या अपनी सन्तान की आवश्यकताओं के लिए बाहर निकलना पड़ता है और ऐसी स्थिति में नक़ाब डालने और अपनी हथेलियाँ छिपाने में उन्हें कठिनाइयाँ और दिक़्क़तें पेश आती हैं तो वे धर्मशास्त्रियों की दी हुई छूट से लाभ उठा सकती हैं। लौंडियों और बान्दियों को शरीअत ने सामाजिक विवशताओं ही के कारण परदे की पाबन्दियों के सम्बन्ध में छूट दी है। लेकिन यह मात्र एक छूट है, इससे यह न समझा जाए कि इस्लाम में चेहरे के परदे का सिरे से कोई आदेश ही नहीं है।

(2) हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं कि हम (सफ़र में) इहराम

की हालत में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ थे, हमारे निकट से क़ाफ़िले गुज़रते रहते थे। जब कोई क़ाफ़िला हमारे सामने से गुज़रता तो हममें से हर स्त्री अपनी चादर अपने सर पर तानकर अपने मुँह को ढक लेतीं। फिर जब हमारे पास से क़ाफ़िला गुज़र जाता तो हम अपना मुँह खोल देती थीं।

(हदीस : अबू–दाऊद, इब्ने–माजा)

व्याख्या : इस रिवायत से भी यही सिद्ध होता है कि स्त्री को यथा–सम्भव अपने चेहरे को ग़ैरों से छिपाना चाहिए, न यह कि वे बेझिझक अपने चेहरे को ग़ैरों के सामने खुला रखें।

(3) हज़रत आइशा (रज़ि०) से रिवायत है कि एक बार असमा–बिन्ते–अबू–बक्र (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में इस हालत में उपस्थित हुईं कि उनके शरीर पर बारीक कपड़े थे। आप (सल्ल०) ने उनकी ओर से मुँह फेर लिया और फ़रमाया : "ऐ असमा, स्त्री जब रजस्वला की उम्र को पहुँच जाए तो यह हरगिज़ दुरुस्त नहीं कि उसके शरीर का कोई अंग दिखाई दे। सिवाय इसके और इसके।" आप (सल्ल०) ने अपने चेहरे और हथेलियों की ओर संकेत किया। (हदीस : अबू दाऊद)

व्याख्या : रसूल (सल्ल०) ने हज़रत असमा (रज़ि०) से मुँह फेर लिया क्योंकि उनका कपड़ा बारीक होने की वजह से कपड़े के अन्दर से शरीर झलक रहा था। इससे शरीर पूरी तरह ढक नहीं रहा था।

इस हदीस से यह ज्ञात हुआ कि जब स्त्री बालिग़ होने की उम्र को पहुँच जाए तो उसे दूसरों से अपने पूरे शरीर को छुपाना चाहिए। अलबत्ता घर में अपने 'महरम' रिश्तेदारों और नौकर आदि के सामने वह अपना चेहरा और अपनी हथेलियाँ खोल सकती है। इसके लिए छूट और रिआयत तो बस यही है। इसी तरह की एक घटना का इब्ने–जरीर ने भी उल्लेख किया है कि हज़रत आइशा (रज़ि०) के यहाँ उनके अख़याफ़ी भाई (अर्थात् हज़रत आइशा और अब्दुल्लाह दोनों की माँ एक ही थी) अब्दुल्लाह–बिन–तुफ़ैल की बेटी आई हुई थीं। हुज़ूर (सल्ल०) घर में आए तो उनको देखकर मुँह फेर लिया। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, यह तो मेरी भतीजी है। आप (सल्ल०) ने कहा कि जब स्त्री बालिग़ हो जाए तो उसके लिए वैध नहीं कि वह अपने मुँह के सिवा और हाथ में 'इसके' सिवा ज़ाहिर करे।

आपने अपनी कलाई पर हाथ रखकर इस तरह हाथ की सीमा बताई कि आपकी मुट्ठी और हथेली के बीच एक मुट्ठी की जगह और बाक़ी थी।

रिश्तेदारों में ऐसे लोग जिनसे रिश्ता हमेशा के लिए हराम होने का न हो कि उनसे एक स्त्री का कभी भी निकाह न हो सकता हो उन महरम रिश्तेदारों में सम्मलित नहीं हो सकते कि स्त्रियाँ उनके सामने बेझिझक अपने शृंगार के साथ आ सकें। लेकिन उनको बिल्कुल अजनबियों की श्रेणी में भी शामिल नहीं कर सकते कि उनके साथ पूरा परदा किया जाए जिस तरह ग़ैरों से परदा करने का आदेश है। इन दो अतियों के बीच सही रवैया क्या हो सकता है यह निश्चित नहीं किया जा सकता और न शरीअत ने इसे निश्चित ही किया है। इसकी सीमाएँ व नियम रिश्तों के प्रकार, उम्र, पारिवारिक सम्बन्ध और उनके व्यक्तिगत हालात और स्थितियों को देखते हुए भिन्न होंगे। ख़ुद नबी (सल्ल०) के व्यवहार से इसी बात की रहनुमाई मिलती है। हज़रत असमा-बिन्ते-अबी बक्र (रज़ि०) अन्तिम समय तक आप (सल्ल०) के सामने होती थीं। चेहरे और हाथों की हद तक कोई परदा न था। हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) जो अबू-तालिब की बेटी, आपकी चचाज़ाद बहन थीं, अंतिम समय तक उन्होंने आप से परदा नहीं किया। दूसरी ओर उम्मुल मोमिनीन हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) जो फ़ज़्ल की हक़ीक़ी फ़ूफ़ीज़ाद बहन हैं, नबी (सल्ल०) की उपस्थिति में फ़ज़्ल के सामने नहीं होतीं, बल्कि उनसे परदे के पीछे से बात करती हैं।

(हदीस : अबू-दाऊद)

इससे मालूम हुआ कि इस तरह के रिश्तों के सम्बन्ध में सीमाओं का निर्धारण परिस्थितियों और दूसरे पहलुओं को देखते हुए ही किया जा सकता है। इसका कोई लगा-बँधा उसूल व सिद्धान्त नहीं है जिसको हम हर अवसर पर अपना सकें।

(4) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि फ़ातिमा-बिन्ते-अबी हुबैश अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास आईं और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे इस्तिहाज़ा हो गया है, मैं पाक नहीं होती, तो क्या मैं नमाज़ छोड़ दूँ? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नहीं, यह एक रग का रक्त है, हैज़ नहीं है। जब हैज़ के दिन आएँ तो नमाज़ छोड़ दो। फिर हैज़ के दिन गुज़र जाएँ तो रक्त धो डालो और नमाज़ पढ़ो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : हैज़ (मासिक धर्म) यदि निश्चित दिनों से बढ़कर आए तो बढ़े हुए दिनों के हैज़ को इस्तिहाज़ा कहा जाता है। इससे मालूम हुआ कि ज़रूरत पड़े तो स्त्री के लिए इसकी इजाज़त है कि वह ग़ैर –महरम पुरुष से धार्मिक विषय की बातें पूछ सकती है।

सम्बन्धों के व्यापक क्षेत्र

स्वयं अपने प्रति अपना दायित्व

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-अल-आस (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ऐ अब्दुल्लाह! क्या मुझे यह ख़बर नहीं कि तुम दिन में रोज़े से रहते हो और रातभर (नमाज़ में) खड़े रहते हो?" मैंने कहा कि जी हाँ, (आपको सही ख़बर मिली है)। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अच्छा तो ऐसा न करो। रोज़ा रखो और न भी रखो। रात में खड़े भी हुआ करो और सोया भी करो, क्योंकि तुमपर तुम्हारे शरीर का भी हक़ है, और तुमपर तुम्हारी आँख का हक़ है और तुम पर तुम्हारी पत्नी का भी हक़ है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि आदमी पर केवल दूसरों ही के अधिकार नहीं, बल्कि स्वयं उसके अपने भी हक़ हैं जिनकी उपेक्षा करना वैध नहीं हो सकता। फिर यह भी एक सच्चाई है कि जो व्यक्ति अपने हक़ को नहीं पहचानता वह दूसरे के हक़ भी देर तक अदा नहीं कर सकता।

(2) हज़रत हकीम-बिन-हिज़ाम (रज़ि०) से रिवायत है, वे बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से माल माँगा तो आप (सल्ल०) ने मुझे दिया। मैंने फिर आप (सल्ल०) से माँगा तो आपने प्रदान किया, मैंने फिर आप (सल्ल०) से माँगा तो आपने मुझे दिया फिर फ़रमाया, "यह माल हरित, मधुर है। जिस किसी ने इसे आत्मा की पवित्रता और अच्छे भाव के साथ लिया तो इसमें उसके लिए बरकत होती है और जिसने अपने आप को अपमानित करके इसे लिया तो इसमें कोई बरकत नहीं होती। और ऊपर रहनेवाला हाथ नीचे रहनेवाले हाथ से उत्तम होता है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि माल हासिल करने के लिए जिसने भी दयनीयता और गिरावट इख़्तियार की और हाथ पसारकर माँगने से अपनी प्रतिष्ठा और स्वाभिमान को भी नष्ट किया उसे बरकत प्राप्त नहीं होती।

'इसमें कोई बरकत नहीं होती।' अर्थात् उसे कभी भी सम्पन्नता की दौलत उपलब्ध नहीं हो सकती। ऐसा व्यक्ति सदैव मोहताज का मोहताज ही

रहता है। उसका हाल यह होता है कि खाता है और तृप्त नहीं होता।

आदमी को जानना चाहिए कि श्रेष्ठता किस चीज़ को प्राप्त है। उसकी कोशिश यह हो कि उसका हाथ हमेशा ऊपर रहे। अर्थात् उसका हाथ देनेवाला बने, न कि उसे देने से ज़्यादा लेने की चिन्ता लगी रहे।

(3) हज़रत आइशा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुममें से कोई यह न कहे कि मेरी आत्मा गन्दी हो गई, बल्कि यूँ कहे कि मुझमें आलस्य आ गया।"

व्याख्या : मालूम हुआ कि आदमी के लिए यह ज़रूरी है कि वह आत्म-सम्मान का ध्यान रखे। बातचीत और अपनी वार्ताओं में इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने मुख से क्या शब्द निकाल रहे हैं। हमें कभी भी ऐसा शब्द ज़बान पर नहीं लाना चाहिए जो अच्छी रुचि के विपरीत हो और जो मनुष्य की गिरावट और उसके असंवेदनशील होने का पता देता हो। अपनी आत्मा को गन्दा कहना अपना अपमान है जो किसी तरह वैध नहीं।

(4) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने एक बूढ़े को देखा कि वह अपने दो बेटों के बीच (उनके कन्धों पर हाथ रखकर) रास्ता चल रहा है। आप (सल्ल०) ने पूछा, "इसे क्या हुआ है ?" लोगों ने कहा कि इसने पैदल बैतुल्लाह (क़ाबा) जाने की नज़्र (मनौती) मानी है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इस तरह अपने-आपको अज़ाब (पीड़ा) में डालने की ख़ुदा को कोई ज़रूरत नहीं है।" फिर आपने उसे हुक्म दिया कि वह सवारी पर जाए। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : सही मुस्लिम की रिवायत में हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "सवारी पर चलो ऐ बूढ़े! क्योंकि अल्लाह तुमसे और तुम्हारी इस (कष्टप्रद) नज़्र व मन्नत से बेपरवाह है।" अर्थात् अल्लाह की कोई आवश्यकता इसके बिना रुकी हुई नहीं है कि तुम अपने आपको इस तरह की मुसीबत में डालो। उसकी सत्ता बेनियाज़ है। इसलिए उसकी प्रसन्नता की प्राप्ति इसपर कदापि निर्भर नहीं करती कि कोई व्यक्ति अपने आपको ऐसी कठिनाइयों में डाल दे जिसके सहन करने की

शक्ति उसके अन्दर न हो।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इरशाद फरमाया, "तुममें से कोई ज़माने को बुरा न कहे क्योंकि अल्लाह ही ज़माना है और कोई तुममें से अंगूर को करम न कहे क्योंकि करम तो मुस्लिम पुरुष होता है। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : 'अल्लाह ही ज़माना है।' का अर्थ है कि ज़माने की बागडोर अल्लाह ही के हाथ में है। दुनिया में जो कुछ होता है उसकी इच्छा से होता है। इसलिए ज़माने को बुरा कहना और उसकी शिकायत करना वास्तव में ख़ुदा की शिकायत है। (अल्लाह इससे सुरक्षित रखे।)

अरब के लोग अंगूर और अंगूरी शराब को 'करम' कहते थे। 'करम' शब्द में मौलिक रूप से प्रतिष्ठा, सम्मान, दानशीलता सज्जनता आदि का भाव पाया जाता है। अरब समझते थे कि शराब पीने से इनसान में करम का गुण पैदा होता है। इसलिए वे स्वयं अंगूर और उसकी शराब को भी करम से अभिव्यंजित करते थे। जब अल्लाह ने शराब को हराम कर दिया तो नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि कोई शराब को करम के नाम से न याद करे, क्योंकि इस नाम से शराब जैसी बुरी चीज़ को महत्व और सम्मान प्राप्त होता।

यह जो कहा गया कि "करम तो मुस्लिम पुरुष होता है।" इस वाक्यांश से मुस्लिम व मोमिन बन्दे की प्रतिष्ठा का भली-भाँति अन्दाज़ा किया जा सकता है। मोमिन पुरुष को जो दर्जा अल्लाह ने प्रदान किया है वह ख़ास उसी का हक़ है।

(6) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने आसिया नाम (जो एक स्त्री का था) बदल दिया और फ़रमाया, "तू जमीला है।"

व्याख्या : आसिया का अर्थ है—नाफ़रमान, अवज्ञाकारी और गुनहगार स्त्री। और जमीला का अर्थ होता है—नेक और सुन्दर स्त्री। नबी (सल्ल०) के इस अमल से पता चलता है कि किसी का ऐसा नाम रखना जो बुरा हो, दुरुस्त नहीं है। स्वयं अपना कोई बुरा नाम चुनना भी सही न होगा। कुछ कवि अपना तख़ल्लुस (उपनाम) 'आसी', 'बरबाद' आदि रख लेते हैं। शायद

उन्हें पता नहं: कि उनका यह अमल आत्मसम्मान के बिल्कुल विपरीत है।

(7) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति अपने आपको लोहे के हथियार से मार डाले तो वह हथियार उसके हाथ में होगा, उसे वह जहन्नम की आग के अन्दर अपने पेट में भोंकता रहेगा। हमेशा स्थायी रूप से वह उसी में रहेगा। और जो कोई व्यक्ति विष पीकर आत्महत्या कर ले तो वह दोज़ख़ की आग में वही विष घूँट-घूँट करके पीता रहेगा। वह हमेशा स्थायी रूप से उसी में रहेगा। और जो व्यक्ति किसी पहाड़ से अपने-आपको गिराकर मार डाले तो वह जहन्नम की आग में हमेशा गिरा करेगा और सदा उसी हाल में रहेगा।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : आत्महत्या को किसी भी सुसंस्कृत और सभ्य समाज ने वैध नहीं ठहराया है। इस्लामी शरीअत की दृष्टि से भी आत्महत्या हराम है। कोई मनुष्य अपनी जान और अपने अस्तित्त्व का वास्तविक मालिक नहीं है। शरीर और प्राण का वास्तविक मालिक अल्लाह है। मनुष्य के पास जो कुछ भी है वह अल्लाह की अमानत है। जान भी उसकी एक अमानत है। इस अमानत को नष्ट करना घोर अपराध और विश्वासघात है। अपने अस्तित्त्व को नुक़सान पहुँचाना और अपने को मार डालना वास्तव में दूसरे के धन में अनाधिकारिक रूप में हाथ डालना है। यह एक सामान्य पाप नहीं, बल्कि महापाप है। इसी लिए इस पाप पर बड़े भयावह और पीड़ादायक दण्ड की धमकी दी गई है।

यह हदीस बताती है कि कोई व्यक्ति जिस चीज़ के द्वारा आत्महत्या करता है, आख़िरत में उसके लिए उसी को सदैव के लिए यातना का साधन बना दिया जाएगा। मानो इससे यह तथ्य व्यक्त होगा कि किसी व्यक्ति का अपना अन्तिम कर्म और अन्तिम कार्यनीति ही उसका वास्तविक कर्म है। उसी को उसकी शाश्वत स्थिति क़रार दी जाएगी। उसने अगर जीवन यात्रा तय करके जिस मंज़िल पर पहुँचना चाहा है वह प्राणाघात है तो यही प्राणाघात उसकी अन्तिम मंज़िल होगी। वह निरन्तर प्राणाघात का मज़ा चखता रहेगा। इससे मुक्त होने की कोई सूरत उसके लिए न होगी।

सत्य का इनकार करनेवालों और काफ़िरों के लिए तो यह यातना निश्चय ही शाश्वत होगी, जैसा कि हदीस के शब्द 'मुख़ल्लदन', 'अबदन' और

'ख़ालिदन' से स्पष्ट है। और अगर कोई ईमानवाला यह अपराध करता है तो दीर्घकाल तक यातना में ग्रस्त रहने का वह भी भागी ठहरेगा।

मनुष्य पर उसका यह अपना हक़ होता है कि वह दुनिया में भी आत्महत्या न करे और परलोक के विनाश और तबाही से बचने के लिए तो उसे हर समय चिन्तित रहना चाहिए। होश और सतर्कता की बात यही है। इसके विपरीत जो नीति भी कोई व्यक्ति अपनाता है वह उसके अज्ञानी और असंवेदनशील होने का ही प्रमाण होगा।

रिश्ते-नाते का आदर

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "रहिम रहमान से निकला है। अतएव अल्लाह ने फ़रमाया— जो तुझे जोड़ेगा मैं भी उसे जोड़ूँगा और जो तुझे तोड़ेगा, मैं भी उसे तोड़ूँगा।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अरबी भाषा में 'रहिम' (गर्भाशय) शब्द रूपक के रूप में नातेदारी और निकट के सम्बन्धियों के लिए प्रयुक्त होता है। एक व्यक्ति के समस्त नातेदार उसके 'ज़विल-अरहाम' (नातेदार) हैं, चाहे वह रिश्तेदार दूर के हों या क़रीब के हों। अलबत्ता जिससे जितना अधिक निकट का सम्बन्ध होगा उसका हक़ भी उतना ही अधिक होगा और उससे सम्बन्ध तोड़ना उतना ही बड़ा गुनाह (पाप) होगा। सिलारहमी (सम्बन्धों को जोड़ना) से अभिप्रेत यह है कि अपने नातेदारों के साथ आदमी जो नेकी और भलाई कर सकता हो वह उसमें कमी न करे। नाता तोड़ना यह है कि आदमी का व्यवहार अपने रिश्तेदार के साथ अच्छा न हो। या अपने रिश्तेदार के साथ जिस भलाई की वह सामर्थ्य रखता हो उससे वह किनारा करे।

बुख़ारी की एक दूसरी हदीस के शब्द ये हैं—

'रहिम' (रहमान से मिली हुई) एक शाख़ा है जो उससे मिले, मैं उससे मिलता हूँ और जो उससे सम्बन्ध तोड़े, मैं उससे सम्बन्ध तोड़ता हूँ।" मतलब यह है कि ये नाते-रिश्ते वास्तव में रहमान से जुड़े हुए हैं। अर्थात् ये अल्लाह की रहमत के लक्षणों में से हैं। जो व्यक्ति नाते-रिश्तों के हक़ों को नहीं पहचानता और अपने रिश्तेदारों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता वह

वास्तव में ख़ुदा की रहमत से अपना सम्बन्ध तोड़ता है। ईश्वर भी ऐसे व्यक्ति से सम्बन्ध तोड़ लेता है। हदीस में 'शुजना' शब्द प्रयुक्त हुआ है जो वृक्ष के उन रेशों और टहनियों को कहते हैं जो जड़ से संयुक्त और परस्पर मिले हुए हों।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह-इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वास्तविक नाता जोड़नेवाला वह नहीं है जो बदला चुकाए, बल्कि नाता जोड़नेवाला वह व्यक्ति है कि जब उसके रिश्ते को तोड़ दिया जाए तो वह उस रिश्ते को क़ायम रखे।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : वास्तविक नाता जोड़ना वही है जो सिर्फ़ बदला चुकाने के लिए न हो कि किसी के रिश्तेदार उसके साथ अच्छा व्यवहार करें तो उसके जवाब में वह भी उसके साथ नाता जोड़े बल्कि उसे तो सिर्फ़ हक़ पहचानने के एहसास के साथ अपने रिश्तेदारों के साथ नाता जोड़ना चाहिए। चाहे उसके साथ उसके रिश्तेदार नाता जोड़ते हों या न जोड़ते हों। पूर्ण व्यक्ति कहलाने का पात्र वास्तव में वही है जो दूसरों का हक़ इससे बेपरवाह और निरपेक्ष होकर अदा करे कि दूसरे उसका हक़ अदा करते हैं या वे उसके हक़ को बिल्कुल भुला बैठे हैं।

(3) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब (रज़ि०) अपने पिता से और वे अपने दादा से रिवायत करते हैं कि एक व्यक्ति ने नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित होकर कहा कि मैं मालदार हूँ और मेरे पिता मेरे माल के ज़रूरतमन्द हैं। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम और तुम्हारा माल दोनों ही तुम्हारे बाप के हैं। क्योंकि तुम्हारी औलाद तुम्हारी उत्तम कमाई है। अतः अपनी औलाद की कमाई में से (बे-झिझक) खाओ।"

(हदीस : अबू-दाऊद, नसई, इब्ने-माजा)

व्याख्या : तुम्हारे बाप को पूरा अधिकार प्राप्त है कि वे तुमसे अपनी सेवा का काम लें और तुम्हारे माल से भी लाभ उठाएँ। तुम्हें अत्यन्त प्रसन्नता के साथ पिता की सेवा करनी चाहिए और इसको अपना सौभाग्य समझना चाहिए। यह जो फ़रमाया कि तुम्हारी औलाद तुम्हारी उत्तम कमाई है। इससे

यह बताना अभीष्ट है कि औलाद की कमाई से लाभान्वित होने में कोई बुराई महसूस नहीं करनी चाहिए।

(4) हज़रत अली (रज़ि०) बयान करते हैं कि मुझे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने दो ग़ुलाम प्रदान किए जो आपस में भाई-भाई थे। फिर मैंने उनमें से एक को बेच दिया तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मुझसे पूछा, "ऐ अली तुम्हारा एक ग़ुलाम क्या हुआ?" मैंने आपको सूचना दी (कि मैंने उसे बेच दिया)। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उसे वापस कर लो, उसको वापस कर लो।" (हदीस : तिर्मिज़ी, इब्ने-माजा)

व्याख्या : इस क्रय-विक्रय को निरस्त कर दो और उस ग़ुलाम को अपने ही पास रखो। "उसको वापस कर लो" इस वाक्य को दो बार आप (सल्ल०) ने ताकीद के लिए कहा ताकि इस आदेश को हल्का न समझा जाए।

भाई को भाई से जुदा करना उस रिश्ते के सम्मान के विरुद्ध है जो उनके बीच पाया जाता है। एक दूसरी हदीस से मालूम होता है कि लौण्डी और उसके बेटे में जुदाई डालना भी सही नहीं है कि दोनों में से एक को बेच दिया और एक को अपने पास रहने दिया।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने निवेदन किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे कुछ नातेदार हैं, मैं उनके हक़ का ध्यान रखता हूँ किन्तु उनका व्यवहार इससे भिन्न होता है। मैं उनके साथ अच्छा व्यवहार करता हूँ और वे मेरे साथ बुरा व्यवहार करते हैं। मेरा सुलूक उनके साथ सहनशीलता का होता है और वे मेरे साथ जाहिलों का-सा व्यवहार करते हैं। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर तुम ऐसे ही हो जैसा कि तुम्हारा बयान है तो मानो तुम उनके मुँह में गर्म राख डाल रहे हो। और अल्लाह उनके मुक़ाबले में हमेशा तुम्हारा समर्थक और सहायक होगा जब तक कि तुम इस नीति पर जमे रहोगे।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात तुम्हारा अच्छा व्यवहार और सुशीलता उनकी अधमता और उनकी पतितता को अत्यन्त स्पष्ट कर रही है। अगर उन्होंने अपने आचरण को नहीं बदला तो उनके हिस्से में दोज़ख़ ही आएगी जहाँ अज़ाब के साथ अपमान और अनादर का पूरा सामान भी मौजूद होगा।

"अल्लाह तुम्हारा समर्थक होगा।" अर्थात ईश्वर का सहयोग और समर्थन भी तुम्हें प्राप्त होगा। सफल और प्रतिष्ठित तुम ही होगे। ख़ुदा अपने फ़रिश्तों के द्वारा भी तुम्हारी मदद करेगा।

(6) हज़रत सलमान बिन-आमिर (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "किसी मिस्कीन (मुहताज) को सदक़ा (दान) देना केवल सदक़ा है और ग़रीब रिश्तेदार को सदक़ा देना सदक़ा भी है और नाते-रिश्ते का आदर भी।" (हदीस : नसई, तिर्मिज़ी)

व्याख्या : अर्थात् इसमें दोहरा सवाब (पुण्य) है, एक सदक़ा करने का और दूसरा रिश्तेदारी का हक़ अदा करने का।

(7) हज़रत असमा-बिन्ते-अबू-बक्र (रज़ि०) बयान फ़रमाती हैं कि मैंने अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी माँ मेरे पास आई है और वह बहुदेववादी है— यह उस समय की बात है जब आप (सल्ल०) ने क़ुरैश से सन्धि की थी— मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा कि मेरी माँ मेरे पास आई हैं और वह सत्य-धर्म से विमुख हैं तो क्या मैं रिश्ते का आदर करते हुए उनके साथ अच्छा व्यवहार करूँ? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ, अपनी माँ के हक़ों का ध्यान रखो (अच्छा व्यवहार करो)।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इससे मालूम हुआ कि रिश्तेदार चाहे मुश्रिक और ग़ैर-मुस्लिम ही क्यों न हों, यथासम्भव उनके साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए। इस हदीस में शब्द 'राग़िबह' आया है। इसका अनुवाद हमने "विमुख हैं" किया है। इसका अनुवाद इच्छुक भी हो सकता। इस रूप में अर्थ यह होगा कि मेरी माँ इच्छुक होकर आई हैं। अर्थात् वह इसकी इच्छा रखती हैं कि मैं उनकी कुछ आर्थिक सहायता करूँ।

(8) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "जो व्यक्ति यह चाहता है कि उसकी रोज़ी में वृद्धि हो और उसकी मौत में विलम्ब हो तो उसको चाहिए कि वह अपने रिश्ते-नाते को जोड़े रखे। (अर्थात् नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार करे)।"

व्याख्या : हदीस में यह जो कहा गया है कि उसकी मृत्यु में विलम्ब हो अर्थात् उसकी आयु दीर्घ हो तो मूल में इसके लिए 'असर' शब्द प्रयुक्त हुआ

है। 'असर' वास्तव में क़दमों के उस चिह्न को कहते हैं जो चलते समय ज़मीन पर पड़ता है। यह निशान जीवन का लक्षण समझा जाता है। जिस किसी की मौत आ जाती है तो उसके क़दमों का चिह्न धरती पर नहीं पड़ता। इसलिए अरब उम्र की अवधि को 'असर' कहते हैं।

इस हदीस से यह भी मालूम हुआ कि आजीविका में वृद्धि और कुशादगी और लम्बी आयु के प्रत्यक्ष कारणों के अलावा इसके नैतिक कारण भी होते हैं। इसमें और नियति की धारणा में विसंगति कदापि नहीं है। इसलिए कि कारण और प्रेरक भी नियति में सम्मिलित होते हैं, उससे अलग नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त रोज़ी में कुशादगी और दीर्घायु में बरकत का अर्थ भी शामिल है। अर्थात् उसे अपनी रोज़ी में बरकत महसूस होगी और इसी तरह अपने जीवन की घड़ियों में भी उसको बरकतों का एहसास होगा। उसके थोड़े समय को भी ईश्वर अधिक उपयोगी और शुभ बना देता है। और जो रिज़्क़ भी उसके हिस्से में होगा उससे असाधारण लाभ उठाएगा कि लोगों को इससे हैरानी और आश्चर्य हो सकता है। इसके अलावा आदमी की अपनी सन्तान उसके लिए क्षमा और मुक्ति की प्रार्थना करती है। और नेक राह अपनाकर उसके गुणगान को देर तक जीवित रखती है।

रिश्ते-नाते को तोड़ना

(1) हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तीन तरह के लोग जन्नत में प्रवेश न पा सकेंगे : हमेशा शराब पीनेवाला, नाते-रिश्ते का तोड़नेवाला और जादू पर विश्वास करनेवाला।" (हदीस : अहमद)

व्याख्या : जब स्थिति यह है कि अल्लाह के ऐसे बन्दों के हक़ों की उपेक्षा करने में उसे कोई झिझक नहीं, जिनको अल्लह ने उसका अपना नातेदार बनाकर पैदा किया था तो ऐसी हालत में आख़िर वह किस आधार पर यह आशा कर सकता है कि अल्लाह उसे अपनी जन्नत में जगह प्रदान करेगा। जब उसने उस रिश्ते का आदर नहीं किया जो उसके और उसके रिश्तेदारों के बीच पाया जाता है, तो ईश्वर को इसके लिए वह कैसे बाध्य समझता है कि वह उस रिश्ते और सम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में, जो स्रष्टा और

स्रष्ट-प्राणियों के बीच पाया जाता है, उसे जन्नत में प्रवेश करा देगा। उसने तो अपने व्यवहार से उस आधार ही को शेष नहीं रहने दिया जिसके कारण परस्पर एक पर दूसरे के हक़ क़ायम होते हैं। उसने वास्तव में अत्यन्त गम्भीर अपराध करके अपने सारे ही हक़ खो दिए।

जादू कई प्रकार के होते हैं। उनमें से कुछ का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से बहुदेववाद या शिर्क से है। उनसे लगाव उन्हीं लोगों को हो सकता है और वही लोग उसे महत्त्व दे सकते हैं जो एकेश्वरवाद से बिलकुल दूर हों। फिर जादू किसी प्रकार का हो उनपर इस अर्थ में विश्वास रखना कि वह अपने आप में प्रभावकारी है, एक ग़लत धारणा है। फिर मिथ्यावादियों का जन्नत में प्रवेश कैसे हो सकता है!

(2) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अबी औफ़ा (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना, "उस क़ौम पर रहमत नहीं उतरती जिसमें नाते-रिश्ते को तोड़नेवाला मौजूद हो।"

(हदीस : बैहक़ी, शोबुल-ईमान)

व्याख्या : नाते-रिश्ते का तोड़नेवाला एक अशुभ अस्तित्त्व होता है। उसकी अशुभता से पूरी क़ौम विपत्तियों में ग्रस्त हो सकती है। क़ौम से तात्पर्य यहाँ वे लोग हैं जो उस सम्बन्ध-विच्छेदक से सहानुभूति रखते हों और उसके समर्थक और सहायक हों और उसे नाते-रिश्ते के तोड़ने से रोकने की कोशिश न करें।

रहमत न उतरने के कारण यह भी सम्भव है कि उस क़ौम का भू-भाग वर्षा से वंचित रह जाए और वह क़ौम अकाल की यातना में ग्रस्त हो जाए।

(3) हज़रत जुबैर-बिन-मुत्इम (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "रिश्ते-नाते को तोड़नेवाला जन्नत में प्रवेश न कर सकेगा।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : रिश्ते-नाते को तोड़ना इस्लामी शरीअत में बिल्कुल हराम है। यह मानव-प्रकृति के भी विपरीत है कि इनसान अपने रिश्तेदारों से अच्छा व्यवहार न करे। प्रकृति के विरुद्ध आचरण करनेवाला व्यक्ति उस सुख-शान्ति और अच्छे परिणाम का हक़दार कैसे हो सकता है जो वास्तव में उनके लिए नियत है जिनका जीवन नैसर्गिक धर्म (दीने-फ़ितरत) के पालन में व्यतीत होता है।

सहीह मुस्लिम में हज़रत आइशा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "रिश्ता अर्श (ईश-सिंहासन) से सम्बन्ध रखता है। कहता है जो मुझे मिलाएगा, ईश्वर उसे अपने से मिलाएगा और जो मुझे काटेगा, ईश्वर उसे अपने से काटेगा।" अर्थात् रिश्ता और नाता कोई साधारण चीज़ नहीं है। उसका सिरा अर्श और ख़ुदा से मिला हुआ है। अकारण रिश्ता-नाता तोड़ना वास्तव में ख़ुदा से अपना रिश्ता तोड़ना है। रिश्ते को बाक़ी रखना और उसका आदर करना ईशपरायणता में सम्मिलित है।

(4) हज़रत अबू-बकरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "कोई भी गुनाह समय के हाकिम के विरुद्ध विद्रोह और रिश्ता-नाता तोड़ने से बढ़कर इस बात का औचित्य नहीं जुटाता कि अल्लाह इन कर्मों के करनेवाले के लिए आख़िरत में जो कुछ एकत्र करेगा (अर्थात् जिस यातना की व्यवस्था करेगा) उसके साथ दुनिया में भी उसे सज़ा देने में जल्दी करे।" (हदीस : तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् ये दो गुनाह ऐसे हैं कि आदमी को इनके कारण दुनिया में भी दण्ड मिलता है— चाहे वह जिस रूप में हो— और आख़िरत में भी वह यातनाग्रस्त होगा। क्योंकि ये गुनाह ऐसे हैं कि इनके बुरे प्रभाव स्पष्टतः प्रकट होते हैं। दुनिया में इनके परिणामस्वरूप उपद्रव और रक्तपात का बाज़ार गर्म होता है। दिलों का चैन और इत्मीनान जाता रहता है। प्रेम और सहानुभूति, द्वेष और शत्रुता में बदल जाती है। रहा आख़िरत का मामला, तो आख़िरत की दुनिया तो बनाई ही इसलिए गई है कि अच्छे लोग अपनी नेकियों का अच्छा फल प्राप्त कर सकें और अल्लाह की रहमतें और अपार नेमतें उनके हिस्से में आएँ और अपराधी अपने अपराधों का वास्तविक मज़ा चख सकें।

यहाँ यह बात स्पष्ट रहे कि केवल इन्हीं दो गुनाहों के साथ यह बात नहीं है कि इनके करनेवाले दुनिया और आख़िरत में दण्डित होंगे, बल्कि दूसरे गुनाह भी ऐसे हो सकते हैं जिनके कारण आदमी दुनिया और आख़िरत दोनों में यातनाग्रस्त हो। लेकिन जिन दो गुनाहों का वर्णन इस हदीस में किया गया है, वे वास्तव में उनमें अत्यन्त जघन्य और निकृष्ट गुनाह हैं।

(5) हज़रत साद-बिन-अबी-वक़्क़ास (रज़ि०) और हज़रत अबू-बकरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया,

"जो व्यक्ति अपने आपको अपने पिता के सिवा किसी दूसरे का बेटा बताए और वह यह जानता हो कि वह दूसरा व्यक्ति उसका बाप नहीं है तो उसपर जन्नत हराम है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात जो व्यक्ति ग़लती से नहीं बल्कि जानबूझ कर ऐसे व्यक्ति से अपना नस्ली (वंशनुगत) रिश्ता जोड़े जो वास्तव में उसका बाप नहीं है, वह जन्नत का हक़दार नहीं हो सकता। यह अत्यन्त निर्लज्जता, अयोग्यता, अशिष्टता और अकृतज्ञता की बात है कि कोई व्यक्ति अपने सगे बाप का इनकार करके किसी दूसरे को अपना बाप कहे। जन्नत ऐसे अकृतज्ञ और अशिष्ट व्यक्ति के लिए नहीं बनाई गई है। अलबत्ता यदि कोई व्यक्ति सम्मानपूर्व लाक्षणिक रूप में किसी को 'अब्बा' कहता है तो इसमें कोई गुनाह नहीं है।

(6) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अपने बाप से नफ़रत न करो (अर्थात् अन्य व्यक्ति से अपना नस्ली सम्बन्ध न जोड़ो) क्योंकि जिस किसी ने अपने बाप से नफ़रत की उसने कुफ़्र किया।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस्लाम से पूर्व अज्ञान काल में यह एक आम बुराई रही है कि कुछ लोग बड़ाई के लिए अपने वास्तविक पिता को पिता न मानकर दूसरों को अपना पिता ठहरा लेते थे। इस्लाम इसे कुफ़्र ठहराता है।

इस्लामी शरीअत में सबसे बड़ा कुफ़्र यह है कि मनुष्य अपनी पैदाइश का रिश्ता अपने वास्तविक स्रष्टा (अल्लाह) से तोड़कर उससे जोड़ने लगे जो वास्तव में उसका स्रष्टा नहीं है। इसके बाद सबसे बड़ा कुफ़्र और कृतघ्नता यह है कि कोई अपने पुत्रत्व का रिश्ता अपने पिता को छोड़कर उस व्यक्ति से जोड़े जो वास्तव में उसका पिता न हो। इस तरह की हरकतें हमेशा किसी मानसिक और बौद्धिक हीनता और नीचता के कारण की जाती हैं। कुफ़्र और कृतघ्नता एक प्रकार का जघन्य अपराध है। कुफ़्र में लिप्त व्यक्ति अपने अस्तित्त्व की पवित्रता खो चुका होता है। फिर वह इसका पात्र नहीं रहता कि वह किसी स्तर पर आदर के योग्य हो और उसके हक़ ख़ुदा के यहाँ सुरक्षित हों।

यहाँ यह भी स्पष्ट रहना चाहिए कि किसी के नसब (वंश) पर चोट करना भी एक प्रकार का कुफ़्र है। जैसा कि नबी (सल्ल०) का इरशाद है—

"लोगों में दो बातें कुफ़्र की पाई जाती हैं, वंश पर चोट करना और मुर्दों पर विलाप करना" (हदीस : मुस्लिम)। अपनी जिन चीज़ों पर अरब गर्व करते थे उनमें वंश भी था। इसलिए दूसरों के वंश पर चोट करने को वे अपनी शान समझते थे। इसी तरह विलाप को भी वे प्रतिष्ठा का प्रतीक समझते थे। इस्लाम की निगाह में ये दोनों ही चीज़ें अज्ञानकाल और कुफ़्र की हैं जिनको छोड़ना एक मोमिन के लिए आवश्यक है।

माता-पिता के अधिकार

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "रब की प्रसन्नता पिता की प्रसन्नता में है और रब की अप्रसन्नता पिता की अप्रसन्नता में है।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : यही आदेश माता के विषय में भी है। मतलब यह है कि ख़ुदा की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए माता-पिता की प्रसन्नता प्राप्त करना अनिवार्य है। माता-पिता को नाराज़ करके कोई ख़ुदा को प्रसन्न नहीं कर सकता। क़ुरआन में अल्लाह ने कहा है, "तुम्हारे रब ने फ़ैसला कर दिया है कि उसके सिवा किसी की बन्दगी न करो, और माता-पिता के साथ अच्छा व्यवहार करो।" (क़ुरआन, 17 : 23)

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि एक व्यक्ति ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी अच्छी सहचारिता का (अर्थात् मेरी ओर से अच्छे व्यवहार और सेवा का) सबसे ज़्यादा हक़दार कौन है?" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम्हारी माता।" उसने कहा, "फिर कौन?" कहा : "तुम्हारी माता।" उसने कहा, "फ़िर कौन?" कहा, "तुम्हारी माता।" उसने कहा, "फिर कौन?" आप (सल्ल०) ने कहा, "तुम्हारा पिता।"[1]

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

एक हदीस में है कि आप (सल्ल०) ने (उस व्यक्ति के सवाल के जवाब में) फ़रमाया, "तुम्हारी माता, तुम्हारी माता, फिर तुम्हारी माता, फिर तुम्हारा पिता, फिर तुम्हारा वह प्रिय जिससे निकट का सम्बन्ध हो, फिर उनके बाद जो क़रीबी रिश्तेदार हो।"

व्याख्या : माता-पिता की सेवा और उनका आदर करना सन्तान के

लिए ज़रूरी है। इस विषय में माता सन्तान की ओर से ध्यान देने का कुछ अधिक ही हक़ रखती है, जैसा कि इस हदीस से इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। माता स्त्री होने के कारण एक तो पिता की अपेक्षा कमज़ोर और अबला होती है। अत: उसकी ओर सन्तान को विशेष ध्यान देना चाहिए। दूसरी यह कि संतान के पालन–पोषण में पिता की अपेक्षा माता का योगदान अधिक होता है। गर्भ का बोझ वही उठाती है, वही प्रसव–पीड़ा सहती और बच्चे को दूध पिलाने का सेवा–कार्य करती है।

इमाम नववी (रह०) की दृष्टि में सद्व्यवहार के विषय में नातेदारों का क्रम इस प्रकार है— पहले माता, फिर पिता, फिर सन्तान, फिर दादा–दादी, नाना–नानी फिर भाई–बहन, फिर दूसरे निकट सम्बन्धी जैसे चचा, फूफी, मामू, ख़ाला। दूर के सम्बन्धों की अपेक्षा निकट–सम्बन्धों को प्राथमिकता प्राप्त है। इसी प्रकार वे भाई या बहन जिनका पिता एक हो किन्तु माता दो हों, या ऐसे भाई–बहन जिनकी माता एक हो किन्तु पिता दो हों। ऐसे भाई–बहन के मुक़ाबले में सगे (जिनके माता–पिता एक हों) भाई–बहनों को प्राथमिकता प्राप्त है। फिर इसके बाद दूसरे नातेदारों का हक़ होता है, जैसे चचा, मामू और ख़ाला की सन्तानें, फिर ससुराली रिश्तेवाले, फिर ग़ुलाम और फिर पड़ोसी।

(3) हज़रत बह्ज़–बिन–हकीम (रज़ि०) अपने पिता से और वे उनके दादा के माध्यम से उल्लेख करते हैं। उन्होंने कहा कि मैंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैं किसके साथ भलाई करूँ? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अपनी माँ के साथ।" मैंने कहा, फिर किसके साथ? फ़रमाया, "अपनी माँ के साथ।" मैंने कहा, फिर किसके साथ? फ़रमाया, "अपनी माँ के साथ।" मैंने कहा, फिर किसके साथ? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अपने बाप के साथ, और उसके साथ जो तुम्हारा निकटतम रिश्तेदार हो। और फिर उसके साथ जो इनके बाद दूसरों से अधिक निकट का रिश्तेदार हो।"

(हदीस : तिर्मिज़ी, अबू–दाऊद)

(4) हज़रत अबू–हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "धूल–धूसरित हो नाक उस व्यक्ति की, धूल–धूसरित हो नाक उस व्यक्ति की, धूल–धूसरित हो नाक उस व्यक्ति की।" पूछा गया कि ऐ अल्लाह के रसूल : "किसकी (नाक धूल धूसरित हो)?" फ़रमाया, "उस व्यक्ति की जो अपने माता–पिता में से किसी एक या दोनों ही को बुढ़ापे

की दशा में पाए और फिर जन्नत में प्रवेश न करे।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : माता-पिता की सेवा जन्नत प्राप्त करने का मुख्य साधन है। इसके विपरीत उनकी अवज्ञा और उन्हें कष्ट देना आदमी को दोज़ख़ का भागी बना देता है। माता-पिता जब बुढ़ापे की अवस्था को पहुँच जाते हैं तो सेवा और आराम की उन्हें अधिक आवश्यकता होती है। ऐसी हालत में उनकी सेवा का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। बुढ़ापे की स्थिति में उनकी सेवा ख़ुदा की दृष्टि में अत्यन्त प्रिय और सराहनीय है जिससे आदमी के लिए जन्नत की राह प्रशस्त होती है। जिस व्यक्ति को अपने बूढ़े बाप या बूढ़ी माँ की सेवा का अवसर प्राप्त हो और वह उनकी सेवा करके जन्नत का अधिकारी न बन सके तो उससे बढ़कर अभागा, निन्दित और पतित दूसरा कौन हो सकता है!

(5) हज़रत मुआविया-बिन-जाहिमा (रज़ि०) से रिवायत है कि जाहिमा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैं जिहाद में जाना चाहता हूँ। और इस सिलसिले में आपसे परामर्श लेने के लिए उपस्थित हुआ हूँ। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क्या तुम्हारी माँ (जीवित) है?" उन्होंने कहा कि हाँ। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम उनकी सेवा करो, क्योंकि जन्नत माँ के क़दमों में है।"

(हदीस : अहमद, नसई, बैहक़ी, शोबुल-ईमान)

व्याख्या : "जन्नत माँ के क़दमों में है" का अर्थ यह है कि तुम माँ के क़दमों में पड़े रहकर उनकी सेवा और आज्ञापालन को सर्वोपरि समझो। उनकी सेवा तुम्हें जन्नत का अधिकारी बना देगी। स्पष्ट रहे कि इस वाक्य में सांकेतिक रूप से उस श्रद्धा और विनीत-भाव की ओर भी संकेत किया गया है जो सन्तान में अपने माता-पिता के प्रति होना चाहिए। अर्थात् अभीष्ट यह है कि माता-पिता की सेवा अत्यन्त शालीनता और आदर के साथ करनी चाहिए और उनके सामने सन्तान को विनीत बनकर रहना चाहिए। क़ुरआन में आया है :

"और उनके (माँ-बाप के) आगे दयायुक्त विनीत भाव की बाहें बिछाए रखो और कहो : मेरे रब! जिस तरह इन्होंने बचपन में मुझे पाला है, तू भी इनपर रहम कर।" (क़ुरआन, 17:24)

इस हदीस का यह अर्थ लेना ठीक न होगा कि कोई यह समझने लगे कि जब माता-पिता की सेवा का यह महत्व है तो उनकी मौजूदगी में जिहाद या

दीन की ख़िदमत के लिए कोई बाहर निकल ही नहीं सकता या यह कर्तव्य वे लोग निभाएँगे जिनके माँ–बाप का निधन हो गया हो। बल्कि हदीस का सही अर्थ यह है कि अगर माँ–बाप जीवित हैं और वे सेवा के अत्यंत ज़रूरतमन्द हैं और दूसरा कोई उनकी देखभाल के लिए मौजूद भी नहीं है तो फिर उनकी सेवा और देख–रेख ही को दूसरी सेवाओं पर प्राथमिकता देनी चाहिए। उनकी सेवा कोई निम्न श्रेणी का कार्य नहीं है, उनकी सेवा और उन्हें आराम पहुँचाना भी आदमी के उस चरित्र का प्रतीक है जिस चरित्र के कारण आदमी ख़ुदा के यहाँ जन्नत में जगह पाएगा।

(6) हज़रत अबू–उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! औलाद पर माँ–बाप का क्या हक़ है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम्हारे माँ–बाप तुम्हारी जन्नत भी हैं और जहन्नम भी।" (हदीस : इब्ने–माजा)

व्याख्या : इस हदीस में बड़ी ही मार्मिक कथन–शैली अपनाई गई है। आशय यह है कि माता–पिता का हक़ इतना महत्त्वपूर्ण है कि इस हक़ को अदा करने से तुम जन्नत के हक़दार बन सकते हो। और इसकी ओर से लापरवाही आदमी को जहन्नम की आग में गिरा देने के लिए पर्याप्त है।

(7) हज़रत अबू–दरदा (रज़ि०) से उल्लिखित है। वे बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना, "पिता जन्नत के द्वारों में से बेहतरीन द्वारा है। अब तुमपर है कि चाहो तो इस द्वार की रक्षा करो और चाहो तो इसको नष्ट कर दो।" (हदीस : तिर्मिज़ी, इब्ने–माजा)

व्याख्या : इस हदीस में भी बहुत ही मार्मिक शैली अपनाई गई है। इस हदीस का आशय यह है कि माँ–बाप का हक़ इतना महत्त्वपूर्ण है कि इस हक़ के अदा करने से मनुष्य जन्नत का हक़दार बन सकता है और इससे ग़फ़लत और लापरवाही उसे जहन्नम की आग में गिरा देने के लिए पर्याप्त है। किसी के माता–पिता उसके लिए जन्नत का प्रतीक भी हैं, लेकिन उनकी अवज्ञा और अप्रसन्नता के कारण मनुष्य अज़ाब (यातना) का भागी भी हो सकता है।

(8) हज़रत अब्दुल्लाह–बिन–अम्र (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "किसी व्यक्ति का अपने माँ–बाप को गाली

देना बड़े गुनाहों में से है।" पूछा गया कि ऐ अल्लाह के रसूल, क्या कोई अपने माँ-बाप को भी गाली दे सकता है ? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ, इस रूप में कि कोई व्यक्ति किसी आदमी के पिता को गाली दे, जवाब में वह उसके पिता को गाली दे और वह उसकी माँ को गाली दे, जवाब में वह उसकी माँ को गाली दे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि माँ-बाप को गाली देना बड़ा गुनाह (महापाप) है। और यह भी अपने माँ-बाप को गाली देना है कि कोई व्यक्ति यद्यपि स्वयं तो अपने माँ-बाप को गाली न दे लेकिन उसके ग़लत व्यवहार के कारण उसके माँ-बाप को गालियाँ सुननी पड़ें। इस प्रकार मानो वह खुद अपने माँ-बाप को गाली देकर महापाप करता है।

सन्तान के अधिकार

(1) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) के पास एक बच्चा लाया गया। आप (सल्ल०) ने उसका चुम्बन लिया और फ़रमाया, "जान लो, ये बच्चे कंजूसी और भीरुता का कारण बनते हैं। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि ये बच्चे ख़ुदा का पुष्प और सुगन्ध या उपकार हैं।"

(हदीस : शरहुस्सुन्नह)

व्याख्या : इनसान सन्तान के मोह में पड़कर कंजूस बन जाता है। सन्तान के लिए धन इकट्ठा करने की चिन्ता उसे पकड़ लेती है और उनके कारण पुरुषार्थ के कार्य करने में भी अधिकतर उसे झिझक होती है।

वास्तव में बच्चे ख़ुदा की दी हुई सबसे अच्छी नेमत हैं, मनुष्य को उनसे हार्दिक लगाव होता है। उनके कारण जीवन-वाटिका में वसन्त आ जाता है। इसी लिए कहा गया कि बच्चे ख़ुदा का पुष्प और सुगन्ध या उपकार हैं।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! "कौन-सा गुनाह ख़ुदा की दृष्टि में सबसे बड़ा है ?" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह कि तुम अल्लाह का कोई समकक्ष ठहराओ, हालाँकि अल्लाह ही तुम्हारा स्रष्टा है।" फिर पूछा, "इसके बाद कौन-सा गुनाह सबसे बड़ा है ?" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह कि तुम अपनी सन्तान को इस भय से मार डालो कि वह

तुम्हारे साथ खाएगी।" फिर उसने पूछा, "और इसके बाद ?" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : "यह कि तुम अपने पड़ोसी की पत्नी से व्यभिचार करो।" और अल्लाह ने इसकी पुष्टि में आयत नाज़िल की, "और जो अल्लाह के साथ किसी दूसरे पूज्य-प्रभु को नहीं पुकारते, और न किसी प्राणी की हत्या करते हैं जिसकी हत्या करनी अल्लाह ने वर्जित की है, यह और बात है कि सत्य की अपेक्षा यही हो, और न वे ज़िना (व्यभिचार) करते हैं।"(क़ुरआन, 25:68)

व्याख्या : इस हदीस में कई ऐसी बातों का उल्लेख किया गया है जो इनसानियत के दामन पर बदनुमा दाग़ होती हैं और इस्लामी शरीअत ने जिनकी गणना महापापों में की है, जिनका करनेवाला कठोर यातना का भागी होता है।

सबसे बड़ा अपराध और पाप तो यह बताया गया है कि कोई व्यक्ति किसी को ख़ुदा का समकक्ष ठहराए और उसे अपने जीवन में वह स्थान दे जो स्थान ईश्वर के सिवा किसी को भी प्राप्त नहीं हो सकता। सबका स्रष्टा अल्लाह है। अल्लाह के सिवा कोई स्रष्टा नहीं है। फिर अल्लाह का समकक्ष कोई कैसे हो सकता है!

दूसरा महापाप यह बताया कि कोई अपनी सन्तान को इस कारण मार डाले कि वह उसके सिर का बोझ बनेगी और उसे उसकी आर्थिक ज़िम्मेदारियाँ स्वीकार करनी पड़ेंगी। अज्ञानकाल में ग़रीबी के डर से लोग अपनी सन्तान को मौत के घाट उतार देते थे। यहाँ इस अत्याचारपूर्ण कृत्य को महा अपराध ठहराया गया।

तीसरा महापाप इसको ठहराया गया कि कोई अपने पड़ोसी की पत्नी से व्यभिचार करे। व्यभिचार करना वैसे भी बड़ा गुनाह है। पड़ोसी की पत्नी से व्यभिचार करने से अपराध (गुनाह) और जघन्य हो जाता है कि वह वासना की पूर्ति के लिए अपने पड़ोसी के हक़ को भी भुला बैठता है और अपने पड़ोसी के इस विश्वास को भारी आघात पहुँचाता है जो स्वभावतः पड़ोसी उसपर रखता है।

(3) हज़रत नोमान-बिन-बशीर (रज़ि०) से रिवायत है। उन्होंने कहा कि मेरे पिता ने मुझे एक उपहार दिया तो (मेरी माँ) अमरा-बिन्ते-रवाहा ने (मेरे पिता से) कहा, जब तक आप अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को गवाह न बना लें, मैं राज़ी न होऊँगी। अतः वे (हज़रत बशीर) अल्लाह के रसूल

(सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने अपने बेटे को, जो अमरा-बिन्ते-रवाहा से है, एक उपहार दिया है। अमरा ने मुझे ताकीद की है कि मैं इसपर आपको गवाह ठहरा लूँ। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क्या तुमने अपने सब बच्चों को इसी तरह उपहार दिया है?" उन्होंने कहा, नहीं। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह से डरो और अपनी औलाद के बीच इन्साफ़ करो।" उल्लेखकर्ता का कहना है कि नोमान के पिता वापस आए और अपना उपहार वापस ले लिया। एक और हदीस में है कि आप (सल्ल०) ने (हज़रत बशीर की बात सुनकर) फ़रमाया, "मैं ज़ुल्म और ज़्यादती पर गवाही नहीं दे सकता।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि अपनी औलाद और सन्तान के बीच भेदभाव और अन्तर करना अत्यन्त अप्रिय बात है। किसी ने एक चीज़ अपने एक बेटे को दी और अपने दूसरे बेटों और बेटियों को न दी तो यह शील के विरुद्ध बात होगी, जिसे कभी भी प्रशंसनीय दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। औलाद हमेशा अपने पिता से समान व्यवहार की अपेक्षा और उम्मीद रखती है। और उसकी यह आशा एक स्वाभाविक है जिसका ध्यान रखना ज़रूरी है।

(4) हज़रत अय्यूब-बिन-मूसा अपने बाप से और वे अय्यूब के दादा (हज़रत इब्ने-साद रज़ि०) के माध्यम से उल्लेख करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "किसी बाप ने अपनी सन्तान को अच्छी शिष्टता से उत्तम कोई उपहार नहीं दिया।

(हदीस : तिर्मिज़ी, बैहक़ी, फ़ी शोबुल-ईमान)

व्याख्या : मतलब यह है कि बहुमूल्य और सर्वोत्तम उपहार जो एक बाप अपनी सन्तान को दे सकता है वह शिष्टाचार और उसकी सही शिक्षा-दीक्षा से बढ़कर कोई दूसरी चीज़ नहीं हो सकती। लोगों को चिन्ता होती है कि वे अपनी सन्तान को उत्तम से उत्तम उपहार दे सकें, यह एक स्वाभाविक बात है। लेकिन संतान के लिए जो सबसे उत्तम चीज़ हो सकती है वह उसका उचित प्रशिक्षण है जिसकी ओर साधारणतया ध्यान नहीं जाता। हदीस में इसी की ओर ध्यान दिलाया गया है।

(5) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के

रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिस किसी के पास लड़की हो फिर वह उसे जीवित न गाड़े और न उसे तुच्छ और हीन समझे और न उसपर लड़के को प्राथमिकता दे तो अल्लाह उसको जन्नत में दाख़िल करेगा।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मालूम हुआ कि लड़की को निम्न और हीन तथा बेटों को उसकी तुलना में श्रेष्ठतर समझना नादानी है। उनका कर्त्तव्य है कि वे लड़की को अपने लिए मुसीबत ख़याल न करें और उसे अज्ञानकाल की तरह जीवित गाड़ने की कोशिश न करें। अगर वे प्रेम और ख़ुशदिली के साथ उसका पालन-पोषण करते हैं तो ख़ुदा की निगाह में उनका यह कर्म इतना उत्तम है कि इसका फल उसके यहाँ जन्नत से कम नहीं हो सकता।

(6) हज़रत आइशा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो लड़कियों के कारण आज़माइश में डाला जाए, फिर वह उनके साथ अच्छा सुलूक करे तो वे लड़कियाँ उसके लिए दोज़ख़ से आड़ होंगी।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : पिता का कर्तव्य है कि ख़ुशदिली के साथ बेटी का पालन-पोषण करे और उसके साथ प्रेम और स्नेह का व्यवहार करे और अच्छे व्यक्ति के साथ उसका विवाह करे।

लड़की के साथ अच्छे व्यवहार के कारण वह जहन्नम की आँच से सुरक्षित रहेगा। ख़ुदा की पकड़ और उसकी यातना से सुरक्षित रहना किसी व्यक्ति के लिए बहुत बड़े सौभाग्य की बात है।

(7) हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो दो लड़कियों की परवरिश करे, यहाँ तक कि वे जवान हो जाएँ, तो क़ियामत के दिन मैं और वह इस तरह आएँगे।" और आप (सल्ल०) ने अपनी उँगलियों को परस्पर मिलाया।

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : जिस किसी व्यक्ति के ज़िम्मे दो लड़कियों की परवरिश करनी हो और वह इस दायित्व को स्वीकार करता है और किसी चरण में अपनी सरपरस्ती से हाथ नहीं खींचता, यहाँ तक कि वे लड़कियाँ अपनी जवानी को पहुँच जाती हैं। ऐसे व्यक्ति को परलोक में अल्लाह के रसूल

(सल्ल०) के साथ होने का श्रेय प्राप्त होगा, इसलिए कि उसका यह काम अपने स्वरूप की दृष्टि से नुबुव्वत के कार्य के सदृश है। नबी का काम वास्तव में ख़ुदा के बन्दों की भलाई और उनके साथ करुणा और सहृदयता का होता है। वह स्वयं कर्मवीर होता है और चाहता है कि दूसरे लोग भी उसकी नीति को आदर्श समझें ताकि भलाई के काम को दुनिया में उन्नति प्राप्त हो और उसे वर्चस्व मिले और अपौरुषार्थ, उपेक्षा और स्वार्थपरता का अन्त हो। प्रेम, त्याग और क़ुर्बानी का मूल्य लोगों पर स्पष्ट हो।

(8) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अक़रा-बिन-हाबिस (रज़ि०) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को देखा कि आप (सल्ल०) हुसैन (रज़ि०) का चुम्बन ले रहे हैं तो कहा कि मेरे दस बच्चे हैं लेकिन मैंने उनमें से किसी का चुम्बन नहीं लिया। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति दया न करे उसपर दया न की जाएगी।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि बच्चों का यह भी हक़ है कि माता-पिता उनसे अपने प्यार और लगाव को प्रकट करें। बच्चों के मानसिक विकास पर प्यार और प्रेम का अत्यन्त अच्छा और सुखद प्रभाव पड़ता है। जो बच्चे प्यार से वंचित रहते हैं, मानसिक दृष्टि से वे साधारणतः असन्तुलित होते हैं, और इससे उनका पूरा जीवन प्रभावित होकर रहता है।

भाँजे का हक़

(1) हज़रत अबू-मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "किसी क़ौम का भाँजा उसी क़ौम में से है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मतलब यह है कि भाँजे को पराया न समझो, उसे अपनी ही क़ौम का एक व्यक्ति समझो। उसके बाप की क़ौम में यदि किसी कारण से उसका अपना कोई न रहा हो तो उसे असहाय और बेठिकाना न छोड़ो। मामू की उपस्थिति में वह बेसहारा नहीं हो सकता।

ख़ाला के हुक़ूक़

(1) इब्ने-उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि एक व्यक्ति ने नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित होकर कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, मुझसे एक बड़ा गुनाह हो गया है। क्या मेरी तौबा का कोई उपाय है। आप (सल्ल०) ने

फ़रमाया, "क्या तुम्हारी माँ है?" उसने अर्ज़ किया कि नहीं। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क्या तुम्हारी ख़ाला है?" उसने अर्ज़ किया कि हाँ। आप (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "तुम उसके साथ अच्छा व्यवहार करो।"

(तिर्मिज़ी)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित होनेवाले व्यक्ति ने यह कहा कि मुझसे एक बड़ा गुनाह हो गया है तौबा का मेरे लिए कोई उपाय है? तो इसका अभिप्राय यह था कि वह कौन-सा अच्छा कर्म करे कि अल्लाह की रहमत उसकी ओर आकृष्ट हो जाए और उसका गुनाह क्षमा कर दिया जाए।

तौबा का सामान्य रूप तो यह है कि आदमी अपने बुरे कर्म पर पछताए और अल्लाह से अपने गुनाह की क्षमा याचना करे। लेकिन माँ-बाप या उनकी उनुपस्थिति में ख़ाला ही की सेवा की जाए तो गुनाह बिल्कुल धुल जाता है और बुराई व गुनाह के प्रभाव से आदमी मुक्त हो जाता है। इसलिए ख़ाला की सेवा व आज्ञापालन करना चाहिए और अपने सामर्थ्य के अनुसार उसकी आर्थिक सहायता भी करनी चाहिए।

(2) हज़रत अली (रज़ि०) से रिवायत है कि जब हम मक्का से निकले तो हमज़ा (रज़ि०) की बेटी हमारे पीछे होकर ऐ चचा, ऐ चचा! कहकर पुकारने लगी। अली (रज़ि०) ने उसे ले लिया और उसका हाथ पकड़कर (उसे हज़रत फ़ातिमा रज़ि० के हवाले करते हुए) कहा कि लो अपने चचा की बेटी को, फ़ातिमा (रज़ि०) ने उसे उठा लिया। फिर यह क़िस्सा बयान किया। हज़रत जाफ़र (रज़ि०) ने कहा कि वह मेरे चचा की बेटी है और उसकी ख़ाला मेरे निकाह में है (इसलिए मैं उसके लालन-पालन का ज़्यादा हक़दार हूँ)। नबी (सल्ल०) ने वह लड़की उसकी ख़ाला को दिला दी और फ़रमाया, "ख़ाला माँ के समान है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

मालूम हुआ ख़ाला को माँ का दर्जा हासिल है। इसलिए सबसे अधिक वही इसका हक़ रखती है कि वह अपनी भाँजी को अपने पास रखे और उसकी परवरिश करके अपने प्रेमभाव को परितुष्ट करे।

यह जो फ़रमाया कि "ख़ाला माँ के समान है" इससे यह बात भी स्पष्ट

होती है कि ख़ाला का यह हक़ होता है कि उसका आदर और सम्मान और उसकी सेवा माँ की तरह की जाए। उसे पराया समझना दुरुस्त न होगा।

बड़ों का हक़

(1) हज़रत अबू-मूसा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "किसी बूढ़े मुसलमान का और ऐसे क़ुरआन-वाहक का आदर और सम्मान जो क़ुरआन में न्यूनाधिकता से काम न ले वास्तव में ख़ुदा का सम्मान करने में शामिल है; और इसी तरह न्यायप्रिय शासकों का सम्मान भी।" (हदीस : अबू-दाऊद, बैहक़ी, शोबुल-ईमान)

व्याख्या : जो क़ुरआन-वाहक या क़ुरआन का हाफ़िज़ अल्लाह के कलाम (वाणी) का हक़ पहचानता है, यहाँ तक कि वह उसके पाठ के नियमों का भी पूरा ख़याल रखता है, उसका आदर करना हमारा कर्तव्य है। इसी प्रकार वह शासक या राज्य का अधिकारी जो न्याय स्थापित करता है वह अल्लाह के विशेष गुण 'न्याय' का प्रतीक होता है, फिर उसका आदर हमारे लिए क्यों आवश्यक न होगा। ठीक इसी तरह जो मुसलमान अल्लाह के आज्ञापालन और बन्दगी में बुढ़ापे को पहुँच गया वह भी इस बात का अधिकारी है कि हम उसका सम्मान करें। अगर हमारे अन्दर ख़ुदा की महानता और उसकी बड़ाई का एहसास पाया जाता है तो हमारे लिए इन तीनों ही का सम्मान करना आवश्यक है। क्योंकि इनकी प्रतिष्ठा व सम्मान वास्तव में ख़ुदा की प्रतिष्ठा व सम्मान ही की अपेक्षा है।

मेहमान के हक़

(1) हज़रत अबू-शुरैह अदवी (रज़ि०) बयान करते हैं कि मेरे दोनों कानों ने सुना और मेरी दोनों आँखों ने देखा जबकि नबी (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "जो व्यक्ति अल्लाह और अन्तिम दिन पर ईमान रखता हो उसे चाहिए कि अपने पड़ोसी का सम्मान करे, और जो व्यक्ति अल्लाह और अन्तिम दिन पर ईमान रखता हो उसे चाहिए कि अपने मेहमान का पूर्ण सत्कार करके सम्मान करे।" पूछा : ऐ अल्लाह के रसूल! उसका सत्कार कब तक

है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "एक दिन एक रात और सामान्य आतिथ्य की मुद्दत तीन दिन है। और जो इससे अधिक हो वह उसपर सदक़ा है। और जो व्यक्ति अल्लाह और अन्तिम दिन पर ईमान रखता हो उसे चाहिए कि अच्छी बात ज़बान से निकाले या फिर चुप रहे।" (बुख़ारी)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि मेहमान के आने पर पहला दिन मुक्त–हस्तता और मेहमान नवाज़ी का है जिसमें मेहमान का भरपूर सत्कार करना चाहिए।

दूसरे और तीसरे दिन जो कुछ उपलब्ध हो बिना झिझक मेहमान के सामने पेश करना चाहिए।

तीन दिन के पश्चात् मेहमान के लिए जो कुछ करेगा वह उसकी ओर से दान है, अर्थात् उसे इसका पुण्य मिलेगा।

इस हदीस में यह जो कहा कि "ज़बान से अच्छी बात निकाले या चुप रहे" इससे मालूम हुआ कि ज़बान की हिफ़ाज़त ज़रूरी है। परोक्ष–निंदा हो या अपशब्द या निरर्थक बकवास हो, इन सबसे परहेज़ करना चाहिए। ज़बान खोलने से पहले सोच ले कि वह जो कुछ कहने जा रहा है वह मोमिन के लिए शोभायमान भी है या नहीं। अनुचित और व्यर्थ बात करने से अच्छा यह है कि आदमी चुप रहे।

इस हदीस से ज्ञात हुआ कि अल्लाह पर ईमान और आख़िरत पर ईमान की अपेक्षा यह है कि मनुष्य नैतिक दृष्टि से उच्च हो। ईमान के अभीष्ट प्रभाव अगर मनुष्य के जीवन में व्यक्त नहीं होते तो इसका मतलब यह है कि उसने ईमान की अपेक्षाओं को सिरे से जाना ही नहीं। ईमान का सम्बन्ध मानव की मात्र धारणाओं और आस्थाओं से नहीं है, बल्कि वह मानव के पूरे जीवन को एक विशेष रूप में ढाल देना चाहता है। अगर हम ईमान की अपेक्षाओं का ध्यान रख सकें तो निश्चय ही हम उच्च चरित्र की साकार मूर्ति बन सकते हैं। दीन व ईमान हमारा चरित्र न बन सका तो वास्तव में हम ईमान से अपरिचित ही रहे, और इससे बढ़कर अभाव की दूसरी बात नहीं हो सकती।

(2) हज़रत अबू–करीमा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति किसी क़ौम के पास मेहमान की हैसियत से जाए और वह सुबह तक आतिथ्य सत्कार से वंचित रहे तो उसकी सहायता

करना हर मुसलमान के लिए अनिवार्य हो जाता है।"(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अगर किसी मेहमान का आतिथ्य सत्कार न हो सका तो फिर हर मुसलमान के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह इसकी ओर ध्यान दे और मेज़बानी का हक़ अदा करे।

(3) हज़रत अबू-करीमा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "एक रात मेहमान का हक़ हर मुसलमान पर है, तो जो आतिथ्य से वंचित रहे तो यह मेज़बान पर कर्ज़ है, वह चाहे उसे वुसूल करे और चाहे तो छोड़ दे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मेहमान का यह हक़ है कि उसका सत्कार किया जाए। ऐसा न हो कि रात गुज़र जाए और कोई उसकी ख़बर न ले। अगर ऐसी स्थिति पेश आ गई तो मानो यह अब एक ऋण है जिसका चुकाना आवश्यक है।

(4) हज़रत अबू-शुरैह ख़ुज़ाई (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अतिथि-सत्कार तीन दिन तक है और इसके लिए भली प्रकार ख़ातिरदारी एक दिन-रात तक है। और किसी मुसलमान व्यक्ति के लिए जाइज़ नहीं कि वह अपने भाई के यहाँ ठहरा रहे यहाँ तक कि वह उसे गुनाहगार बना दे।" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उसके पास ठहरा रहे और उसके पास खिलाने और मेहमानदारी के लिए कुछ न हो।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अतिथि-सत्कार तो यह है कि बिना किसी खिन्नता के आनेवाले के ठहरने और खाने की व्यवस्था की जाए और उसके आदर-सत्कार में कोई कमी न होने दे। लेकिन मेहमान के अन्दर भी स्वाभिमान की भावना होनी चाहिए। उसके लिए ठीक नहीं कि वह मेज़बान पर तीन दिन से अधिक का बोझ डाले। अलबत्ता अगर मेज़बान की इच्छा का आदर करते हुए वह और भी ठहरता है तो इसमें कोई बुराई नहीं है।

यह हदीस बताती है कि मेहमान किसी के यहाँ इतने दिन तक न ठहरा रहे कि उसे कठिनाई और परेशानी में डाल दे जिसमें इसकी सम्भावना है कि उसकी ज़बान पर अपने मेहमान के लिए कोई अनुचित शब्द आ जाए। या मेहमान को अपने यहाँ से विदा करने के लिए वह किसी ओछी हरकत पर मजबूर हो जाए।

मेहमान को सोचना चाहिए कि कहीं ऐसा न हो कि हमारा मेज़बान तंगदस्ती में हो और वह इस स्थिति में न हो कि अतिथि–सत्कार का सामान जुटा सके। मेहमान के लिए जाइज़ नहीं कि वह अपने मेज़बान की रुसवाई का कारण बने। अतिथि–सत्कार से संबंधित हदीसों में शिष्टाचार के जिन नियमों का उल्लेख किया गया है यदि उनका पालन किया जाए तो सामाजिक जीवन में अच्छे वातावरण का निर्माण हो सकता है।

पड़ोसी के हक़

(1) हज़रत अब्दुर्रहमान–बिन–अबी–क़ुराद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिसे यह प्रिय हो कि अल्लाह और उसके रसूल से प्रेम रखे या अल्लाह और उसके रसूल उससे प्रेम करें, तो उसे चाहिए कि वह जब बोले तो सच बोले, और जब उसपर भरोसा किया जाए तो वह यह सिद्ध कर दे कि वह भरोसा करने के योग्य है, और अपने पड़ोसियों के साथ अच्छे पड़ोसी होने का सुबूत दे।" (हदीस : बैहक़ी, शोबुल–ईमान)

व्याख्या : अल्लाह और उसके रसूल से प्रेम रखना बड़े उच्च दर्जे की बात है। लेकिन अल्लाह और उसके रसूल किसी व्यक्ति से प्रेम रखें यह दर्जा किसी को प्राप्त हो जाए तो उसके सौभाग्य का क्या कहना! लेकिन यह उच्च दर्जा मात्र मौखिक दावे से तो प्राप्त होने से रहा। इसके लिए ज़रूरी है कि अपने आचरण और व्यवहार से आदमी यह साबित करे कि वह अपने जीवन को उसी चरित्र व आचरण से सुसज्जित रखना चाहता है जिसको अल्लाह और उसके रसूल पसन्द करते हैं। दूसरे शब्दों में वह उन्हीं बातों को अपनाएगा जिनका आदेश अल्लाह और उसके रसूल ने दिया है और वह उन बातों से बचेगा जो अल्लाह और उसके रसूल को अप्रिय हैं।

इस हदीस में तीन बातों का वर्णन किया गया है : 1. सदा सच बोलना, 2. भरोसे के योग्य होना, 3. पड़ोसियों के साथ अच्छा व्यवहार।

सत्य यह है कि अगर इन तीनों बातों को अपनाया जाए तो दूसरे नैतिक गुण आदमी के अन्दर अपने आप पैदा हो जाएँगे। इस हदीस से इस बात का पता चलता है कि पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार करना अपने चरित्र की सुरक्षा के लिए कितना आवश्यक है। पड़ोसी के साथ बुरा व्यवहार इस बात

का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि आदमी का जीवन सज्जनता, मानवता और नैतिक गुणों से बिल्कुल रिक्त है। ऐसा जीवन वास्तविकता की दृष्टि में किस काम का हो सकता है और फिर ऐसा व्यक्ति अल्लाह और रसूल का प्रेम–पात्र कैसे हो सकता है?

(2) हज़रत इब्ने–अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना, "वह व्यक्ति मोमिन नहीं जो पेट भर खाए और उसका पड़ोसी उसके पहलू में भूखा रह जाए।"

(हदीस : बैहक़ी, फ़ी शोबुल ईमान)

व्याख्या : यह कोई मर्दानगी की बात नहीं, यह स्वार्थपरता की बात है कि पड़ोसी भूखा रहे और कोई पेट भरकर खाए। इस असंवेदनशीलता की किसी मोमिन से आशा नहीं की जा सकती। इसी लिए आप (सल्ल०) फ़रमाते हैं कि ऐसा व्यक्ति वास्तव में ईमान ही से अनभिज्ञ है। यदि ईमान जीवन की आत्मा बनकर उसके हृदय में उतर चुका होता तो वह कदापि इसे पसन्द न करता कि वह पेट भरकर खाए और उसका पड़ोसी भूखा रह जाए।

(3) हज़रत अबू–हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! अमुक स्त्री को अपनी नमाज़ की अधिकता, रोज़ा और सदक़ा के कारण बहुत प्रसिद्धि मिली हुई है। लेकिन वह अपनी ज़बान से अपने पड़ोसियों को दुख पहुँचाती है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उसका ठिकाना दोज़ख़ है।" उसने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, अमुक स्त्री जिसके विषय में कहा जाता है कि वह (रमज़ान के रोज़े के अतिरिक्त) बहुत कम रोज़े रखती है, बहुत कम सदक़ा और ख़ैरात करती है और (अनिवार्य नमाज़ों के अतिरिक्त) बहुत कम नमाज़ पढ़ती है। वह बस कुछ टुकड़े पनीर के सदक़ा (दान) करती है। लेकिन वह अपनी ज़बान से अपने पड़ोसियों को दुख नहीं पहुँचाती। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : "उसका ठिकाना जन्नत है।"

(हदीस : अहमद, बैहक़ी, शोबुल–ईमान)

व्याख्या : दीन में जहाँ यह ज़रूरी है कि इबादतों और ईश–आज्ञापालन से ज़ीवन परिपूर्ण हो, वहीं यह भी ज़रूरी है कि आदमी गुनाह और अवज्ञा से दूर रहे। गुनाह और अवज्ञा से परहेज़ के बिना उपासना और बन्दगी का कोई मूल्य नहीं। अगर कोई अवज्ञा के त्याग के बिना इबादतों और तद्‌धिक

उपासनाओं की पाबन्दी करता है तो चाहे उसकी यह विशेष पाबन्दी कितनी ही असाधारण क्यों न हो, ख़ुदा के यहाँ उसका कोई महत्त्व और मूल्य नहीं हो सकता। जीवन में सौंदर्य और भलाई का आविर्भाव उसी रूप में होता है जबकि इनसान एक तरफ़ ख़ुदा से अपना सम्बन्ध जोड़े रखे, उसे सुदृढ़ से सुदृढ़ करने की चिन्ता में लगा रहे, और इस सिलसिले में अनिवार्य और आवश्यक (फ़र्ज़ और वाजिब) आदेशों के पालन से ग़ाफ़िल न हो, और दूसरी तरफ़ वह ख़ुदा के बन्दों के हुक़ूक़ को बर्बाद न होने दे। चरित्र और आचरण को हम टुकड़ों में नहीं बाँट सकते। जो व्यक्ति ख़ुदा के बन्दों के हक़ में अच्छा सिद्ध नहीं हो रहा है वह अपने व्यवहार से साबित कर रहा है कि उसके जीवन में इस्लाम के अभीष्ट आचरण का अभाव है। फिर ऐसे चरित्रहीन व्यक्ति की नमाज़ें और रोज़े सभी कुछ निष्प्राण और मात्र रस्मी होंगे। वे किसी उच्च नैतिकता व चरित्र का प्रतीक नहीं हो सकते। इसी लिए रसूल (सल्ल०) पड़ोसियों को दुख पहुँचानेवाली रोज़ा-नमाज़ की पाबन्द स्त्री को नारकीय घोषित कर रहे हैं। इस हदीस से धर्म की मूल प्रवृत्ति और प्रकृति को हर व्यक्ति आसानी से समझ सकता है।

(4) हज़रत आइशा (रज़ि०) के सम्बन्ध में उल्लिखित है! उन्होंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे दो पड़ोसी हैं, मैं उनमें से किस को उपहार भेजूँ? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उनमें से जिसका दरवाज़ा तुमसे निकटतम हो।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अभिप्राय यह नहीं है कि सिर्फ़ उसी को उपहार भेजें जिसका द्वार सबसे निकट हो, बल्कि मतलब यह है कि पहला हक़ उस पड़ोसी का होता है जिसका दरवाज़ा निकट हो। निकट के पड़ोसी के साथ मिलना-जुलना ज़्यादा होता है और उसके विषय में हम जानते भी ज़्यादा हैं। इसलिए उसे प्राथमिकता देना एक स्वाभाविक बात है।

(5) हज़रत अबू-ज़र (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुम गोश्त पकाओ तो शोरबा ज़्यादा कर दो और अपने पड़ोसियों का ख़याल रखो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् तुम्हें सिर्फ़ अपनी ही चिन्ता न होनी चाहिएं बल्कि पड़ोसियों की ज़रूरत का भी ख़याल रखना ज़रूरी है। जिस किसी के यहाँ

महसूस हो कि उसे सालन की ज़रूरत है उसके यहाँ सालन भेज दो। इसके लिए ऐसा कर सकते हो कि शोरबा ज़्यादा कर दो, इस तरह सालन देने में तुम्हें कठिनाई भी न होगी।

(6) हज़रत अबू–हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) फ़रमाते थे, "ऐ मुसलमान स्त्रियो! कोई पड़ोसिन अपनी पड़ोसिन को साधारण चीज़ भी उपहार भेजने को तुच्छ न समझे, यद्यपि बकरी का खुर ही क्यों न हो।"

व्याख्या : 'बकरी का खुर' अर्थात् मामूली या थोड़ी चीज़ भी पड़ोसिन के यहाँ भेजने को लज्जा की बात न समझो। थोड़ी और मामूली चीज़ भी बेझिझक उपहार में भेजो। इसी तरह से पड़ोस से अगर उपहार आए तो उसे ख़ुशी से स्वीकार करो, चाहे वह कितनी ही थोड़ी और साधारण क्यों न हो। उसे तुच्छ और बुरा न समझो। मूलतः देखने की चीज़ वह भावना होती है जो किसी को उपहार भेजने के पीछे काम कर रही होती है।

(7) हज़रत अबू–राफ़े (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "पड़ोसी अपनी निकटता के कारण ज़्यादा हक़ रखता है।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मतलब यह है कि किसी मामले में पड़ोसी का ख़याल रखना इस्लामी सिद्धान्त और शिष्टाचार में से है। उदाहरणार्थ हम अपनी ज़मीन बेचना चाहते हैं और पड़ोसी उसे लेने का इरादा रखता है तो दूसरे के मुक़ाबले में उसे ही प्राथमिकता देनी चाहिए। पड़ोसी से ज़मीन की क़ीमत अगर कुछ कम ही मिले जब भी नैतिकता यही है कि क़ीमत से अधिक इस निकटता का आदर करें जो हमारे और पड़ोसी के बीच पाई जाती है।

(8) हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वह व्यक्ति जन्नत मे दाख़िल न होगा जिसकी बुराई और फ़साद से उसका पड़ोसी सुरक्षित न हो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : पड़ोसी को सताना और अपनी बुराई का निशाना बनाना इतना बड़ा ज़ुल्म है जो आदमी को जन्नत से वंचित कर देने के लिए पर्याप्त है। जन्नत तो, वास्तव में, उन लोगों का ठिकाना है जो सर्वथा भलाई और दया की मूर्ति और बुराई व फ़साद की दुर्भावना से बिल्कुल मुक्त होते हैं। इसी लिए

ईश्वर की असीम रहमतें और अनुकम्पाएँ उनकी प्रतीक्षा में होती हैं। ख़ुदा आख़िरत में उन्हें हर तरह की परेशानियों और कठिनाइयों से निश्चिन्त रखेगा।

(9) हज़रत अबू-शुरैह ख़ुज़ाई (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह की क़सम! वह मोमिन नहीं, अल्लाह की क़सम! वह मोमिन नहीं, अल्लाह की क़सम! वह मोमिन नहीं।" कहा गया कि ऐ अल्लाह के रसूल! कौन मोमिन नहीं? आपने फ़रमाया, "वह व्यक्ति जिसका पड़ोसी उसकी बुराई से सुरक्षित न हो।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यह ईमान को अपेक्षित है कि हम अपने पड़ोसियों के साथ अच्छा व्यवहार करें यहाँ तक कि वे सोच भी न सकें कि उन्हें हमारी तरफ़ से किसी प्रकार की हानि या तकलीफ़ पहुँच सकती है। इसके बिना हमारा ईमान मानो न होने के बराबर है। एक हदीस में आया है— "जो कोई अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो तो वह अपने पड़ोसी को दुख न पहुँचाए।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

एक दूसरी हदीस से मालूम होता है कि ईमान की अपेक्षा केवल यही नहीं है कि हमारा पड़ोसी हमारी बुराई से सुरक्षित रहे, बल्कि अपने पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार करना भी ईमान की अपेक्षाओं में से एक महत्त्वपूर्ण अपेक्षा है। जैसा कि फ़रमाया गया है— "अपने पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार करो तब तुम मोमिन होगे।" (हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी)

(10) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुममें से कोई व्यक्ति पड़ोसी को अपनी दीवार में लकड़ी (खूँटी) गाड़ने से न रोके।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह इसलिए कि यह दयावान और शुभेच्छा की भावना के विपरीत है कि हम पड़ोसी को उस चीज़ से रोकें जिसमें अपना कोई नुक़सान भी न हो और पड़ोसी को उससे लाभ पहुँच रहा हो।

(11) हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना, "जिबरील मुझे पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार करने की निरन्तर ताकीद करते रहे यहाँ तक कि मुझे ऐसा लगने लगा कि पड़ोसी को विरासत में शरीक कर देंगे।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् शायद एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी का वारिस ठहरा दिया जाएगा। इस हदीस से भली प्रकार अन्दाज़ा किया जा सकता है कि पड़ोसी के हक़ों को अदा करना कितना ज़रूरी है। शरीअत ने पड़ोसी को विरासत में शरीक तो नहीं किया क्योंकि इस तरह वह पड़ोसी नहीं बल्कि घर का एक व्यक्ति ठहरता और इससे विभिन्न प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न होतीं। पड़ोसी की अस्ल हैसियत को बाक़ी रखते हुए शरीअत ने उसके साथ हर तरह के सद्व्यवहार की ताकीद की है। किसी व्यक्ति के भले होने की पहचान यह है कि उसके पड़ोसी उससे ख़ुश हों, और अगर उसके पड़ोसी को यह मालूम हो कि वह अब कहीं दूसरी जगह स्थानान्तरित होने का इरादा रखता है तो वह उसके जुदा होने के एहसास से शोकाकुल हो। इसके विपरीत जिसके पड़ोसी उससे व्यग्र और परेशान हों और उसके चले जाने को अपने लिए मुक्ति पाना समझते हों, तो ऐसा व्यक्ति अल्लाह की निगाह में कभी प्रिय नहीं हो सकता। मोमिन तो वह है जो अपने दुष्ट पड़ोसियों को भी शिकायत का मौक़ा न दे और उनके प्रति सहानुभूति और संवेदना बनाए रखे। पड़ोसी का एक बड़ा हक़ यह है कि हम उसके बारे में बदगुमानी से काम न लें और अगर उसकी ओर से कोई कमज़ोरी ज़ाहिर हो जाए तो हम उसे छिपाएँ। किसी के सुधार की उत्तम विधि भी यही है कि उसके साथ सज्जनता का व्यवहार अपनाया जाए।

(12) हज़रत उक़्बा-बिन-आमिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क़ियामत के दिन सबसे पहले झगड़नेवाले दो पड़ोसी होंगे।" (हदीस : अहमद)

व्याख्या : एक हदीस से मालूम होता है कि क़ियामत के दिन सबसे पहले नमाज़ के बारे में पूछा जाएगा। एक दूसरी हदीस में है कि क़ियामत के दिन सबसे पहले क़त्ल के मुक़द्दमे पेश होंगे। यह हदीस बताती है कि क़ियामत के दिन सबसे पहले दो पड़ोसियों के झगड़े का मामला पेश होगा। देखने में इन रिवायतों में परस्पर विरोध पाया जाता है, लेकिन विचार करें तो मालूम होगा कि इनमें कोई विरोध नहीं है। बात यह है कि अल्लाह के हक़ों में सबसे महत्त्वपूर्ण और बुनियादी हक़ यह है कि बन्दा नमाज़ का पाबन्द हो। वह अपने रब की सेवा में सजदा करता हो और उसकी इबादत और उपासना

से कदापि ग़ाफ़िल न हो। इसी लिए अल्लाह के हक़्क़ों के सिलसिले में सबसे पहले जिस चीज़ का सवाल होगा वह नमाज़ है। अल्लाह के हक़्क़ों के सिलसिले में वास्तव में सबसे भारी अपराध यह है कि आदमी बेनमाज़ी बनकर जीवन व्यतीत करे। इसलिए बन्दे से सर्वप्रथम इसी का सवाल होना भी चाहिए। बन्दों के हक़्क़ों में बन्दों का सबसे पहला हक़ यह है कि उनका आदर किया जाए और उन्हें अकारण क़त्ल न किया जाए। इसी लिए बन्दों के हक़्क़ों के सिलसिले के मुक़द्दमों में सबसे पहले क़त्ल व ख़ून के मुक़द्दमों का फ़ैसला किया जाएगा।

रहे ऐसे लोग जिनमें परस्पर एक को दूसरे से शिकायत होगी तो उनमें से उन दो आदमियों के झगड़े का फ़ैसला सबसे पहले किया जाएगा जो एक-दूसरे के पड़ोसी होंगे। किसी पर ज़ुल्म व ज़्यादती करना हर हाल में बुरा है, लेकिन यह बुरा व्यवहार अगर पड़ोसी के साथ हो तो फिर जुर्म (अपराध) अत्यन्त गम्भीर हो जाता है। यही कारण है कि इस प्रकार के मामलों में सबसे पहले इसी मामले का फ़ैसला किया जाएगा।

यह हदीस बताती है कि परस्पर झगड़े में सबसे ज़्यादा कष्टप्रद बात यह है कि दो ऐसे आदमियों को परस्पर एक-दूसरे से शिकायत हो जो एक-दूसरे के पड़ोसी हों।

जनसामान्य के अधिकार

(1) हज़रत जरीर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) से उल्लिखित है कि, अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह उस व्यक्ति पर दया नहीं करता जो लोगों पर दया नहीं करता।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि लोगों से हमारा व्यवहार कठोरता का नहीं, बल्कि नर्मी का होना चाहिए। उनके लिए हमारे दिलों में वैमनस्य एवं घृणा के बदले दया की भावना होनी चाहिए। फिर इस हदीस से यह भी मालूम हुआ कि हम अल्लाह की दया के पात्र उसी स्थिति में हो सकते हैं जबकि हमारे अन्दर भी दयाभाव मौजूद हो। अल्लाह की दया तो उसके प्रकोप से बढ़ी हुई है। लेकिन इसके विपरीत अगर हमारे दिल प्रेम, स्नेह, करुणा और दया की भावना से अपरिचित हैं तो इसका मतलब यह हुआ कि

अल्लाह का विशिष्ट गुण 'दया' की प्रतिच्छाया से हमारे हृदय–दर्पण सर्वथा रिक्त हैं। ऐसी स्थिति में ख़ुदा से हमारा रिश्ता और सम्बन्ध कैसे स्थापित हो सकता है! ख़ुदा के दयापात्र तो वही होंगे जिनका ख़ुदा से विशिष्ट सम्बन्ध हो। ख़ुदा से विरक्त व्यक्ति तो ख़ुदा के अनुग्रहों से वंचित ही रहेगा।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह–बिन–अम्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "दया करनेवालों पर रहमान दया करता है। तुम ज़मीनवालों पर दया करो, आसमानवाला तुमपर दया करेगा।"

(हदीस : अबू–दाऊद, तिर्मिज़ी)

व्याख्या : मतलब यह है कि अगर हम धरती के वासियों पर दया करते हैं और उनके कल्याण और भलाई की चिन्ता रखते हैं और उनका हित चाहते हैं तो ख़ुदा हमपर दया करेगा। 'आसमानवाला' से अभिप्रेत अल्लाह की सत्ता है, जिसके ऐश्वर्य और शक्ति–सामर्थ्य की पराकाष्ठा विशेष रूप से आसमान में प्रकट है और जिसका राज्य धरती से लेकर आकाश तक व्याप्त है। ख़ुदा हमपर दया करता है तो आकाश के फ़रिश्ते भी हमारे लिए प्रार्थना और दया की याचना करते हैं। और ख़ुदा के आदेश से वे हमारी रक्षा का कार्य भी करते हैं।

(3) हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अपने भाई की सहायता करो चाहे वह अत्याचारी हो या वह जिसपर अत्याचार किया गया हो।" एक व्यक्ति ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! पीड़ित की सहायता तो मैं करता हूँ, मगर अत्याचारी की सहायता कैसे करूँ? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उसको अत्याचार से रोक दो, यही उसके हक़ में तुम्हारी सहायता है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् अत्याचारी को अत्याचार से रोक देना उसके हक़ में तुम्हारी सहायता है। कोशिश करो कि अत्याचारी अत्याचार न करे और वह अपने आपपर क़ाबू पा ले और शैतान को निराश कर दे जो ज़ुल्म और सितम को ही पसन्दीदा काम समझता है। धार्मिक दृष्टि से इस तरह की कोशिश निन्दनीय नहीं, बल्कि अभीष्ट है।

(4) हज़रत अनस (रज़ि) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०)

ने फ़रमाया, "उस सत्ता की क़सम जिसके हाथ में मेरे प्राण हैं! कोई बन्दा उस समय तक मोमिन नहीं हो सकता जब तक कि वह अपने भाई के लिए वही चीज़ पसन्द न करे जो उसे अपने लिए पसन्द है।"

व्याख्या : 'वही चीज़' से तात्पर्य भलाई है। अतः एक रिवायत में स्पष्ट रूप से 'मिनल-ख़ैर' (भलाई) का शब्द आया है। यह स्वाभाविक बात है कि हर व्यक्ति अपनी भलाई और सफलता का इच्छुक होता है। मोमिन की विशिष्टता यह है कि वह दूसरों के लिए भी दुनिया व आख़िरत की भलाई और कल्याण चाहता है। अगर किसी व्यक्ति में यह हृदय-विशालता नहीं पाई जाती और वह केवल अपनी ही भलाई चाहता है, दूसरों की या तो उसे सिरे से कोई चिन्ता ही नहीं होती या वह उनका दुष्चिंतक है तो वास्तव में ईमान के भाव से उसका दिल अभी तक अपरिचित ही है। ईमान की माँग यही होती है कि आदमी को केवल उसकी अपनी ख़ुशी और प्रसन्नता ही आनन्दित न करे, बल्कि दूसरों की ख़ुशी और प्रसन्नता से भी उसके दिल को आराम मिलता हो।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "कौन है जो मुझसे इन बातों को प्राप्त करे फिर इनको व्यवहार में लाए या उस व्यक्ति को सिखाए जो इनको अपना व्यवहार बनाए?" मैंने अर्ज़ किया, ऐ अल्लाह के रसूल! वह व्यक्ति मैं हूँ। आप (सल्ल०) ने मेरा हाथ पकड़ा और वे पाँच बातें गिनाईं और उनको बयान किया : "अवैध चीज़ों से बचो, तुम लोगों में सबसे बढ़कर इबादत करनेवाले होगे। उसपर राज़ी रहो जिसको अल्लाह ने तुम्हारे भाग्य में लिख दिया है, तुम सबसे बढ़कर धनी हो जाओगे। अपने पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार करो, तुम मोमिन हो जाओगे। तुम जो चीज़ अपने लिए पसन्द करते हो उसी को सब लोगों के लिए पसन्द करो, मुस्लिम हो जाओगे। और ज़्यादा न हँसो, क्योंकि ज़्यादा हँसना दिल को मुर्दा बना देता है।" (हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी)

व्याख्या : शरीअत ने जिन चीज़ों को अवैध और हराम ठहराया है उनसे बचने के बाद ही आदमी सही अर्थों में ख़ुदा का सच्चा आज्ञाकारी कहलाने के योग्य हो सकता है। एक व्यक्ति वे सारे कार्य करता है जो अनिवार्य ठहराए गए हैं, बल्कि तद्धिक कार्य और पूजा-उपासना करता है लेकिन उन बातों से बचने से ग़ाफ़िल है जिनसे ख़ुदा ने उसे रोका है तो समझ लीजिए कि उसकी

बन्दगी में दोष है। निषिद्ध और हराम चीज़ों से रुकना अनिवार्य है। निषिद्ध और अवैध चीज़ों से अपने को दूर रखना अनिवार्य कर्तव्यों को निभाने से कहीं अधिक दुष्कर होता है। अब जो व्यक्ति अवैध चीज़ों से बचता और हराम चीज़ों के निकट नहीं जाता, वस्ततुः ख़ुदा की बन्दगी में आदर्श चरित्र उसी व्यक्ति का हो सकता है और निश्चय ही ऐसा व्यक्ति लोगों में उत्तम उपासक कहलाने का हक़ रखता है।

हृदय का धनी होना ही वास्तविक धनी होना है। ख़ुदा ने भाग्य में जो लिख दिया है उसपर राज़ी और सन्तुष्ट हो जाने के बाद आदमी हृदय–लोभ से बिल्कुल मुक्त हो जाता है। वह समझता है कि ख़ुदा ने उसे जो भी दिया है वह उसका उपकार है। हमें उसका आभार स्वीकार करना चाहिए, न कि सांसारिक लोलुपता में पड़कर लोगों के धन–वैभव को ललचाई हुई निगाहों से देखते फिरें। वैध रूप से जो भी मिल जाए वही पर्याप्त है। वह जानता है कि अपने भाग्य पर सन्तुष्ट और राज़ी होने पर ख़ुदा की ख़ुशी और प्रसन्नता हासिल होगी जो संसार और समस्त सांसारिक वस्तुओं से उत्तम है। स्पष्ट है कि ऐसी पवित्र भावनाएँ जिस व्यक्ति की होंगी उससे बढ़कर दुनिया में कोई दूसरा धनी और निस्पृह नहीं हो सकता।

पड़ोसी से इनसान को सुबह–शाम बराबर सामना होता है। ऐसे लोगों के साथ जो बराबर मिलते रहते हों सद्व्यवहार का पालन करना आसान नहीं होता है। सद्व्यवहार का पूर्णतः पालन वही कर सकता है जिसके दिल को ईमान का स्वाद मिल चुका हो। ऐसा व्यक्ति ईमान की अपेक्षाओं को भुला नहीं सकता जो ईमान को चरित्र व आचरण की आत्मा समझता है। जो जानता है कि दूसरे इनसान भी हमारी ही तरह अल्लाह के बन्दे हैं। फिर ख़ुदा को उसके बन्दों के साथ दुर्व्यवहार करके कैसे ख़ुश रख सकते हैं। आदमी को अपने पड़ोसी से बराबर सम्पर्क होता रहता है। इस तरह उसे अपनी ईमानी दशा के जाँचने का मौक़ा भी बराबर मिलता रहता है।

यह बात कि 'जो अपने लिए पसन्द करते हो वही सब लोगों के लिए पसंद करो' पिछली हदीस में भी बयान हुई है। इसमें अपने भाई की भलाई चाहने को मुस्लिम का चरित्र बताया गया है। इस हदीस में मुस्लिम उसको कहा गया है जो सारे ही इनसानों का उसी तरह शुभचिन्तक हो जिस तरह वह

अपना शुभचिन्तक होता है।

ज़्यादा हँसना ग़फ़लत और लापरवाही का लक्षण है। ग़फ़लत के साथ इनसान का दिल कभी ज़िन्दा नहीं रह सकता। मुर्दा हो जाने के बाद दिल किसी काम का नहीं रहता। ऐसे दिल में न तो गहन वास्तविकताओं को समझने की क्षमता शेष रहती है और न उसमें आत्मिक विकास और आत्मिक प्रकाश पाया जा सकता है और न ही उसे ईश्वर का सामीप्य प्राप्त हो सकता है।

(6) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "प्रत्येक दिन जिसमें सूरज निकलता है, लोगों के हर अंग पर सदक़ा (दान) अनिवार्य होता है। दो आदमियों के बीच सुलह-सफ़ाई (मेल-मिलाप) कराना दान है। सवारी के सिलसिले में किसी की सहायता करो इस तरह कि उसे उसपर सवार करा दो या उसपर सामान लदवा दो तो यह भी दान है। अच्छी बात कहनी भी दान है। तुम्हारा नमाज़ की तरफ़ उठनेवाला हर क़दम दान है और रास्ते से तकलीफ़ पहुँचानेवाली चीज़ (काँटा, पत्थर आदि) को हटा दो तो यह भी दान है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इनसान के शरीर का हर अंग ख़ुदा का एक अनुग्रह और उपहार है। इनसान का कर्तव्य है कि वह प्रतिदिन ख़ुदा के इस उपकार का दान के द्वारा आभार प्रकट करता रहे और यह दान वह इस तरह कर सकता है कि नेकी और भलाई के किसी काम को वह तुच्छ न समझे अर्थात् उसे अपनी शान के ख़िलाफ़ न समझे। वह सबके काम आए और अपने रब से अपना नाता बनाए रखे जिसको व्यक्त करने का सर्वोत्तम साधन नमाज़ है।

(7) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मेरे बाद ऐसी प्राथमिकताएँ और ऐसे मामले पेश आएँगे जिन्हें तुम नापसन्द करोगे।" लोगों ने कहा कि हममें से जिस किसी व्यक्ति को ऐसी स्थिति का सामना करना पड़े, उसके लिए क्या आदेश है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो हक़ तुमपर होते हैं वे तुम अदा करो और अपना हक़ अल्लाह से माँगो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् तुम अपनी ज़िम्मेदारी से ग़ाफ़िल न होना। जो हक़ (दूसरों के) तुमपर आते हों उनको अदा करते रहना। तुम्हें इसकी चिन्ता न होनी चाहिए कि तुम्हारी उपेक्षा की जा रही है। तत्कालीन शासक या बड़े लोग तुम्हारी उपेक्षा कर सकते हैं। वे तुम्हारे मुक़ाबले में दूसरों को प्राथमिकता दे सकते हैं। लेकिन इससे प्रभावित होकर तुम कदापि अपने दायित्व को विस्मृत न करना। अगर तुम्हारा हक़ मारा जाता है तो तुम अपना हक़ ख़ुदा से माँगना। उसके पास तुम्हारे लिए बहुत कुछ सुख, सम्मान एवं प्रतिष्ठा का सामान मौजूद है। वह तुम्हारी उपेक्षा नहीं कर सकता। धैर्य रखने के लिए इतना पर्याप्त है।

(8) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वह व्यक्ति जन्नत में प्रवेश न पा सकेगा जिसके दिल में कण भर अभिमान हो।" एक व्यक्ति ने कहा कि आदमी पसन्द करता है कि उसके कपड़े अच्छे हों और उसके जूते अच्छे हों (तो क्या यह भी अभिमान है)। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "निस्सन्देह अल्लाह सौन्दर्यवान है और सुन्दरता को पसन्द करता है। अभिमान तो यह है कि हक़ का इनकार किया जाए और लोगों को हीन समझा जाए।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अच्छे वस्त्र और अच्छी वेष-भूषा को पसन्द करना अहंकार नहीं है, इसलिए कि ख़ुदा स्वयं सुन्दरता को पसन्द करता है। अभिमान की वास्तविकता यह है कि आदमी दूसरे को हीन जाने या हक़ को स्वीकार करने से इनकार करे। साधारणतः क़ौमों के विनष्ट होने का कारण अभिमान और अहंकार ही रहा है। सत्य उन क़ौमों के समक्ष रखा गया जिसके इनकार का कोई कारण न था। सत्य को स्वीकार करने से जो चीज़ बाधक बनी वह अभिमान के सिवा और कुछ न था।

(9) हज़रत अबू-ज़र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ईश्वर के सृष्टिजन को तकलीफ़ न दो।"

(अहमद, अबू-दाऊद)

व्याख्या : यह एक रिवायत का मुख्य अंश है। इस रिवायत में ग़ुलाम के साथ सद्व्यवहार की ताकीद की गई है। यहाँ एक बुनियादी बात बताई गई है कि ख़ुदा की सृष्टि को कष्ट देना वैध नहीं है। सृष्टिजन को कष्ट पहुँचाकर

आदमी उसके स्रष्टा को क्रुद्ध करता है, और यह अत्यन्त मूर्खता की बात है। आदमी को सोचना चाहिए कि ख़ुदा ने तो उसपर अनुग्रह किया है कि उसे अस्तित्त्व से अनुगृहीत किया। अब हम यदि उसपर अत्याचार करते हैं तो इसका अर्थ इसके सिवा और क्या हो सकता है कि हमने न तो ईश्वर को पहचाना और न उसके विस्तृत हक़ को जान सके।

चचा का हक़

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ऐ उमर! क्या तुम नहीं जानते कि किसी व्यक्ति का चचा और उसका बाप एक ही जड़ की दो शाख़ाएँ हैं।"(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् चचा की इज़्ज़त व प्रतिष्ठा उसी तरह करनी चाहिए जैसे बाप की इज़्ज़त व प्रतिष्ठा की जाती है। इसलिए कि दोनों एक दादा की संतान हैं। इसका ध्यान रखना ज़रूरी है।

बूढ़ों और बड़ों का आदर

(1) हज़रत अबू-मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "बूढ़े मुसलमानों की इज़्जत व प्रतिष्ठा करनी और क़ुरआनवालों की जबकि वह क़ुरआन में अतिवाद करनेवाला और उससे हट जानेवाला न हो और न्यायप्रिय शासक की प्रतिष्ठा व सम्मान ख़ुदा की प्रतिष्ठा व सम्मान में से है।"(हदीस : अबू-दाऊद, बैहक़ी, शोबुल-ईमान)

व्याख्या : अर्थात् अल्लाह तआला के सम्मान की अपेक्षाओं में से एक अपेक्षा यह भी है कि वयोवृद्ध मुसलमान का सम्मान किया जाए। उसके बुढ़ापे का ध्यान रखना हमारे लिए ज़रूरी है। ख़ुदा के सम्मान की एक अपेक्षा यह भी होती है कि क़ुरआन के वाहक और न्यायप्रिय शासक का आदर व सम्मान किया जाए। क़ुरआन के वाहकों में हाफ़िज़, टीकाकार और क़ुरआन का पाठ करनेवाले और क़ुरआन की शिक्षाओं और उसके सन्देश को जनसामान्य तक पहुँचानेवाले व्यक्ति इत्यादि सभी शामिल हैं।

क़ुरआन में अति से काम न लेने से अभिप्रेत यह है कि क़ुरआन के पाठ में शब्दों के शुद्ध उच्चारण और पाठ की सुन्दरता को बढ़ाने में अतिशयोक्ति से

काम न ले। क़ुरआन इस तरह पढ़ा जाए कि उसके शब्दों का उच्चारण शुद्ध रूप से अदा हो उसके पाठ में ध्वनिद्ध सौन्दर्य का होना सराहनीय है। लेकिन इसके साथ यह भी ज़रूरी है कि अल्लाह के कलाम (वाणी) की महत्ता और उसकी प्रतिष्ठा को कदापि आघात न पहुँचे।

क़ुरआन से हट जानेवाला न हो, इससे अभिप्रेत यह है कि क़ुरआन-वाहक क़ुरआन की आयतों की ग़लत व्याख्याएँ और उनके ग़लत अर्थ बताने से बचे। उसके लिए ज़रूरी है कि वह एक तरफ़ तो क़ुरआन के शुद्ध उच्चारण और उसके पढ़ने के नियमों की उपेक्षा न करे, दूसरी तरफ़ क़ुरआन की शिक्षाओं और उसके निर्देशों के पालन के लिए यथासम्भव प्रयास करे। क़ुरआन के आदेशों पर अमल करने से विमुखता न दिखाए। सारांश यह कि क़ुरआन-वाहक क़ुरआन के मामले में असन्तुलित नीति कदापि न अपनाए।

न्यायप्रिय शासक से तात्पर्य वह शासक या हाकिम है जो न्याय की प्रतिमूर्ति हो, न तो वह जनता पर ज़ुल्म व अत्याचार करे और न उसका कोई फ़ैसला न्याय और इनसाफ़ के विरुद्ध हो।

शिक्षक का हक़

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ज्ञान प्राप्त करो और ज्ञान के लिए शान्ति और गरिमा सीखो और जिससे ज्ञान प्राप्त करो उसके प्रति विनीत-भाव प्रकट करो।"[3] (हदीस : तबरानी)

व्याख्या : ज्ञान से अभिप्रेत यहाँ धार्मिक ज्ञान है।

धार्मिक ज्ञान कर बड़ा महत्व है। यह कोई साधारण चीज़ नहीं है जिसके मूल्य का एहसास मोमिन को न हो। इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए शान्ति, गरिमा और चित्त-एकाग्रता की आवश्यकता होती है। इसके लिए मन की एकाग्रता और हृदय की उदारता और सन्तुष्टि भी चाहिए। धार्मिक ज्ञान के द्वारा ही आदमी को अपना वास्तविक मूल्य और अपने उच्च पद का ज्ञान प्राप्त होता है। यही वह धार्मिक ज्ञान हैं जो आदमी को अल्लाह की महानता और गौरव का एहसास प्रदान करता है और उसे इस बात से अवगत करता है कि उसके रब की उससे क्या अपेक्षाएँ हैं। वह ख़ुदा की रज़ामन्दी और प्रसन्नता

कैसे हासिल करे।

माता-पिता के बाद शिक्षक का हक़ स्वीकार किया गया है। माता-पिता ने हमें पाल-पोसकर बड़ा किया लेकिन आदमी के वैचारिक व धार्मिक दीक्षा में बड़ा योगदान शिक्षकों का ही होता है। इसलिए उनके हक़ों की किसी तरह उपेक्षा नहीं की जा सकती। उनका सबसे बड़ा हक़ यह है कि हम उनके प्रति आदर और शिष्टाचार का प्रदर्शन करें। उनके साथ हमारा व्यवहार सदैव विनम्रता का हो।

सहचारिता का हक़

(1) हज़रत अब्दुल्लाह ख़ितमी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जब सेना को विदा करने का इरादा करते तो कहते : "मैं तुम्हारे दीन, तुम्हारी अमानत और अन्तिम कर्मों को अल्लाह को सौंपता हूँ।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् तुम मेरे साथ थे। दीन व ईमान, धर्म, आस्था, विश्वासपात्रता, चरित्र और आचरण प्रत्येक दृष्टि से तुम्हारे प्रशिक्षण (Training) और सुरक्षा का मैं ध्यान रखता रहा हूँ। अब तुम दूर जा रहे हो तो अल्लाह तुम्हारी रक्षा करेगा। यह हदीस बताती है कि सहचारिता के हक़ में यह बात भी शामिल है कि आदमी अपने साथियों के दीन व नैतिकता की रक्षा में भी उसका सहायक हो।

मित्रता का हक़

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) का कथन है, "आदमी अपने मित्र के धर्म पर होता है। अतः उसे देख लेना चाहिए कि वह किससे मित्रता का सम्बन्ध जोड़ता है।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् वास्तविक मित्रता तो यह है कि मित्रों के मध्य किसी प्रकार की दूरी और अपरिचितता न पाई जाए। मित्र वही हैं जो एक ही विचार और दृष्टि कोण के हों और उनकी कामनाएँ भी एक ही हों। इसलिए किसी

व्यक्ति को मित्र बनाने से पहले यह देख लेना ज़रूरी है कि उसका दीन व मज़हब क्या है ?

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क़ियामत के दिन महान और उच्च अल्लाह कहेगा कि कहाँ हैं वे लोग जो मेरे प्रताप के लिए परस्पर प्रेम रखते थे। आज के दिन मैं उन्हें अपनी छाया में रखूँगा। यह वह दिन है कि कोई छाया नहीं सिवाय मेरी छाया के।" (हदीस : मुवत्ता इमाम-मालिक)

व्याख्या : अर्थात् उनकी मित्रता का मूल प्रेरक ख़ुदा की महानता का प्रतीक रहा है। इससे मालूम होता है कि अल्लाह की श्रेष्ठता और उसकी महानता की अपेक्षा केवल यही नहीं होती कि हम उसे श्रेष्ठ और महान मानें, बल्कि अल्लाह की महानता का हमारे जीवन पर भी प्रभाव पड़ना चाहिए। उदाहरणार्थ ख़ुदा की महानता इस बात की अपेक्षा करती है कि हमारी पारम्परिक मित्रता के पीछे मूलतः ख़ुदा की महानता का एहसास काम कर रहा हो, न कि कोई दूसरी चीज़। जिस मित्रता को ख़ुदा नापसन्द कर रहा हो उससे हम दूर रहें। और जो दोस्ती और प्रेम उसकी निगाह में प्रिय हो उसे हम अपनाएँ।

यह हदीस बताती है कि आख़िरत की दुनिया में सारे झूठे सहारे समाप्त हो चुके होंगे। बस एक ख़ुदा का सहारा बाक़ी रह जाएगा। कितने सौभाग्यशाली होंगे वे लोग जिनपर ख़ुदा आख़िरत में दया दर्शाएगा और उन्हें अपने अनुग्रह की छाया में स्थान देगा।

मुसलमानों के हक़

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मोमिन, मोमिन का दर्पण है। और मोमिन, मोमिन का भाई है। जो चीज़ उसके लिए हानिकारक हो उसको उससे रोकता है और उसकी पीठ पीछे उसकी रक्षा और निगरानी करता है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मालूम हुआ कि एक मोमिन दूसरे मोमिन का दर्पण होता है, उसका भाई होता है और इसके साथ ही उसका रक्षक भी। जिस तरह दर्पण में

आदमी स्वयं अपना ही मुख देखता है, किसी अन्य का मुख नहीं देखता, ठीक उसी तरह मोमिन जब किसी दूसरे मोमिन से मिलता है तो वह किसी अन्य से नहीं बल्कि वह मानो अपने आप से मुलाक़ात कर रहा होता है। बल्कि मोमिन की हैसियत दर्पण से भी बढ़ी होती है। दर्पण में कोई चेतना नहीं होती। उसे इसकी कोई सूचना नहीं होती कि उसमें कौन अपने आपको देख रहा है। इसके विपरीत मोमिन मोमिन के लिए एक जीवन्त दर्पण होता है। इसी लिए दर्पण के बाद कहा कि मोमिन मोमिन का भाई होता है। भाई भी ऐसा जो उसका सच्चा शुभचिन्तक और संरक्षक भी होता है। उसे अपने भाई का धन, उसका आदर और प्रतिष्ठा सब प्रिय होती है। वह नहीं चाहता कि उसके भाई को किसी प्रकार की क्षति पहुँचे।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का कथन है, "लोग करम (अंगूर) कहते हैं हालाँकि करम तो मोमिन का दिल है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् अंगूर को जो करम कहा जाता है तो इस उपाधि का अस्ल पात्र तो अंगूर नहीं बल्कि मोमिन का दिल ही होता है क्योंकि करम में उत्तमता और श्रेष्ठता का भाव पाया जाता है। इस हदीस से यह भी मालूम हुआ कि मोमिन को अपना दिल कैसा रखना चाहिए।

(3) हज़रत उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मुसलमान मुसलमान का भाई होता है। न एक-दूसरे पर ज़ुल्म करता है और न उसे तबाही व मुसीबत के लिए छोड़ता है। और जो व्यक्ति अपने भाई की ज़रूरत पूरी करने के प्रयास में लगा होता है तो अल्लाह उसकी ज़रूरत पूरी करता है, और जो किसी मुसलमान की कोई मुश्किल आसान कर देता है तो अल्लाह क़ियामत की मुश्किलों में से उसकी कोई मुश्किल आसान करेगा। और जो व्यक्ति किसी मुसलमान के ऐब को छिपाता है तो अल्लाह क़ियामत के दिन उसके ऐब को छिपाएगा।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस में मुसलमानों के कुछ अधिकारों के वर्णन के साथ-साथ उन हक़ों के अदा करने का अज्र व सवाब भी बयान किया गया है, जिससे यह वास्तविकता प्रकट होती है कि ख़ुदा के यहाँ बन्दों को उनके कर्मों का जो बदला प्रदान किया जाएगा वह उनके कर्मों के अनुकूल होगा। दूसरी

हदीसों से भी इस तथ्य पर रौशनी पड़ती है कि बदला कर्म का सहजाति (Familiar) होता है। दूसरी बात यह कि मुस्लिम के हक़ों का ख़ुदा के यहाँ वह महत्त्व है कि उन हक़ों को अदा करनेवालों को बदला प्रत्यक्ष रूप से ख़ुदा स्वयं प्रदान करेगा।

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "एक मुसलमान पर दूसरे मुसलमान के छः हक़ होते हैं। जब वह बीमार हो तो उसकी बीमार-पुर्सी करे। मर जाए तो जनाज़े में शरीक हो। वह बुलाए तो उसके यहाँ चला जाए। उससे मुलाक़ात हो तो सलाम करे। उसको छींक आने पर (वह 'अल-हमदुलिल्लाह' कहे तो) उसके जवाब में 'यर-हमुकल्लाह' (अल्लाह तुमपर दया करे) कहे। उसकी अनुपस्थिति और उपस्थिति दोनों हालतों में उसका शुभ चिन्तक रहे।"

(हदीस : नसई)

व्याख्या : इसी सम्बन्ध में तिर्मिज़ी की एक रिवायत में ये शब्द भी आए हैं, "और उसके लिए वही पसन्द करता हो जो वह ख़ुद अपने लिए पसन्द करता है।"

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "मुसलमान, मुसलमान का भाई होता है, न एक-दूसरे पर ज़ुल्म करता है और न उसको रुसवा होने देता है, और न उसका अपमान करता है।" आप (सल्ल०) ने अपने वक्ष (छाती) की तरफ़ तीन बार इशारा करके कहा, "तक़वा (ईश-भय) यहाँ होता है। किसी आदमी के बुरे होने के लिए बस यही पर्याप्त है कि वह अपने मुसलमान भाई को अपमानित करे। प्रत्येक मुसलमान का दूसरे मुसलमान पर उसका ख़ून, उसका माल, उसकी आबरू सब हराम है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् किसी व्यक्ति को उसकी बाह्य स्थिति को देखकर उसे साधारण आदमी न समझो। आदमी तो ईश-परायणता के कारण प्रतिष्ठित होता है, और ईश-परायणता का सम्बन्ध हृदय से होता है। तुम्हें क्या मालूम ईश-परायणता की दृष्टि से किसे क्या स्थान प्राप्त है। इस हदीस से ज्ञात हुआ कि मुसलमान अपने भाई मुसलमान की जान उसके माल और उसकी आबरू

सबका रक्षक होता है। एक हदीस में है कि "मुस्लिम वह है जिसकी ज़बान और जिसके हाथों द्वारा कष्ट पहुँचाने से मुसलमान सुरक्षित हों और मोमिन वह है जिसकी ओर से अपनी जान और माल के सम्बन्ध में लोग निशंक हों।"

(हदीस : तिर्मिज़ी, नसई)

(6) हज़रत अबू-दरदा (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना, "जो मुस्लिम अपने भाई की आबरू की रक्षा के लिए उसकी ओर से प्रतिरक्षण करता है तो अल्लाह पर अनिवार्यतः हक़ हो जाता है कि वह क़ियामत के दिन जहन्नम की आग को उससे हटाकर उसकी रक्षा करे।" इसके बाद आप (सल्ल०) ने यह आयत पढ़ी, "मोमिन की सहायता करना हमपर उसका हक़ है।"

(7) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति अपने मुसलमान भाई को 'ऐ काफ़िर!' कहता है तो दोनों में से एक न एक पर यह बात चरितार्थ होकर रहती है।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मालूम हुआ कि किसी मुसलमान को काफ़िर कहकर पुकारना बड़ी गम्भीर बात है। आदमी के मुँह से जो बात भी निकलती है वह यूँ ही विलुप्त नहीं हो जाती, वह तो अपना प्रभाव दिखाकर रहती है। जिसको काफ़िर कहा है यदि वह वास्तव में काफ़िर नहीं है तो फिर यह बात इसके कहनेवाले ही की तरफ़ लौटती है। मतलब यह है कि ग़ैर-काफ़िर को काफ़िर कहना ख़ुद कुफ़्र है। ख़ुदा इससे अपनी पनाह में रखे। मुसलमान को काफ़िर कहनेवाला स्वयं अपने को काफ़िर बनाता है। अबू-दाऊद की एक रिवायत में भी कहा गया है कि जब कोई व्यक्ति किसी पर लानत भेजता है तो लानत की युक्ति आसमान की तरफ़ जाती है। वहाँ स्थान न मिलने पर वह ज़मीन की तरफ़ लौट आती है, फिर दाएँ-बाएँ घूमती है। जब कहीं भी जगह नहीं मिलती तो उसकी तरफ़ बढ़ती है जिसपर लानत की गई थी। अब यदि वह लानत का पात्र नहीं होता तो लौटकर फिर लानत करनेवाले ही की तरफ़ आ जाती है। यह लानत ख़ुद उसी लानत करनेवाले पर पड़ती है।

(8) हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल

(सल्ल०) ने फ़रमाया, "मुसलमान के लिए अपशब्दों का प्रयोग ईश-अवज्ञा है और उससे युद्ध करना कुफ्र है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : किसी मुसलमान को बुरा कहना या उसके लिए अपशब्द का प्रयोग ईश्वर की किसी अवज्ञा से कम नहीं है। यह चीज़ उसी को शोभा देती है जो अल्लाह का अवज्ञाकारी और उलल्घनकारी हो। और मुसलमान से लड़ना और उसके विरुद्ध हथियार उठाना ऐसा कर्म है जो बुराई की चरम को पहुँचा हुआ है। यह हरकत तो आदमी का इस्लाम से रिश्ता ही बड़ी हद तक काट देती है।

सहीह बुख़ारी की एक रिवायत में है— "जिस किसी ने किसी मोमिन पर लानत की तो वह ऐसा है जैसे उसे क़त्ल कर दिया गया हो, और जिसने किसी मोमिन को कुफ्र से आरोपित किया तो वह भी उसके क़त्ल की तरह है।"

(9) हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने-उमर (रज़ि०) बयान करते हैं कि उन्होंने नबी (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना, "मेरे बाद फिर काफ़िर मत हो जाना कि तुम आपस में एक-दूसरे की गर्दनें मारने लगो।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

(10) हज़रत तमीम दारी (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "धर्म सर्वथा सुभेच्छा और भलाई चाहना है।" यह बात आपने तीन बार फ़रमाई। हमने कहा कि यह (शुभेच्छा) किसके लिए है ? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह के लिए, उसकी किताब के लिए, उसके रसूल के लिए, मुसलमानों के इमामों के लिए और सामान्य मुसलमानों के लिए।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इमामों से अभिप्रेत शासनाधिकारी हैं। यह हदीस संग्राहक कथनों में से है। बताया जा रहा है कि इस्लाम की मूल आत्मा और भाव शुभेच्छा और भलाई चाहना है। मोमिन का कर्तव्य है कि वह ख़ुदा के हक़ों का पूरा ध्यान रखे, उससे प्रेम करे और उसकी बन्दगी में कोई कमी न आने दे। उसकी किताब का आदर उसके दिल की गहराई में हो। उसकी कोशिश यह हो कि ख़ुदा की जीवन्त किताब मानव-जीवन में आत्मा बनकर उतर जाए। लोग उसे अपना मार्गदर्शक बना लें। उसके लिए ख़ुदा के रसूल अपने प्राण

और हृदय से बढ़कर प्रिय हों। उसकी अवज्ञा से बचे। इस्लामी हुकूमत के इमामों और अधिकारियों के साथ वफ़ादारी को क़ायम रखा जाए। उन्हें उनकी ग़लतियों पर सतर्क अवश्य किया जाए लेकिन क़ानून व व्यवस्था में बाधा और अनियंत्रण हरगिज़ पैदा न होने दिया जाए। इसके साथ ही यह भी ज़रूरी है कि सामान्य मुसलमानों की लौकिक और पारलौकिक भलाई की भी किसी हाल में उपेक्षा न की जाए। इसके लिए हर सम्भव प्रयास व संघर्ष से काम लिया जाता रहे।

मालूम हुआ कि दीन शुभेच्छा है, और संकीर्ण अर्थों में नहीं, बल्कि अपने विस्तृत अर्थों में शुभेच्छा है।

(11) हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिसके सामने उसके मुसलमान भाई की निन्दा की जाए और वह उसकी मदद करने की सामर्थ्य रखता हो तो उसकी मदद करे, अल्लाह उसकी दुनिया और आख़िरत में मदद करेगा। और अगर वह उसकी मदद न करे जबकि उसे उसकी मदद की सामर्थ्य प्राप्त हो तो ख़ुदा दुनिया व आख़िरत में उसकी पकड़ करेगा।" (हदीस : शरहुस्सुन्नह)

व्याख्या : अर्थात् सख़्त पकड़ करेगा और बदला लेगा कि उसने सामर्थ्य रखते हुए अपने मुसलमान भाई की सहायता क्यों नहीं की।

(12) हज़रत अस्मा-बिन्ते-यज़ीद (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो अपने भाई का मांस खाने से उसकी अनुपस्थिति में रोक दे तो अल्लाह पर उसका यह हक़ है कि वह उसे दोज़ख़ की आग से मुक्त करे।" (हदीस : बैहक़ी, शोबुल-ईमान)

व्याख्या : अर्थात् कोई व्यक्ति किसी मुसलमान भाई की निन्दा कर रहा हो और वह उसको इससे रोके तो अल्लाह उसे नरकाग्नि से मुक्त करेगा।

(13) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो मुसलमान व्यक्ति उस अवसर पर उस मुसलमान व्यक्ति की सहायता न करे जहाँ उसकी प्रतिष्ठा भंग की जा रही हो और उसकी आबरू को क्षति पहुँचाई जाती हो तो अनिवार्यतः अल्लाह भी उस अवसर पर उसकी सहायता न करेगा (दुनिया व आख़िरत में) जहाँ उसे उसकी सहायता पसन्द (और अभीष्ट) होती है। इसके विपरीत जो मुसलमान व्यक्ति उस मौक़े पर

मुसलमान की मदद करे जहाँ उसकी बेइज़्ज़ती की जा रही हो और उसकी आबरू को क्षति पहुँचाई जाती हो तो निश्चय ही अल्लाह भी उस मौक़े पर उसकी सहायता करेगा, जहाँ उसे उसकी सहायता पसन्द (और अभीष्ट) होती है।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

(14) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) का कथन है, "जो व्यक्ति किसी मुसलमान पर से दुनिया की कोई कठिनाई दूर करेगा तो अल्लाह उसपर से क़ियामत के दिन की कोई न कोई कठिनाई दूर करेगा। और कोई तंगहाल पर (अपना रुपया वुसूल करने में) आसानी करेगा (सख़्ती से काम नहीं लेगा) तो अल्लाह भी दुनिया व आख़िरत में उसपर आसानी फ़रमाएगा। और जो कोई किसी मुसलमान के ऐब को छिपाएगा तो अल्लाह भी दुनिया व आख़िरत में उसके ऐब को छिपाएगा। और अल्लाह अपने बन्दे की मदद पर लगा रहता है जब तक कि वह अपने भाई की मदद में लगा रहता है।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : आदमी नैतिकता के जिस दर्जे पर होता है, उसे स्वभावतः यही अपेक्षित होता है कि उसके साथ भी उसी नैतिकता का प्रदर्शन हो जिस नैतिकता का प्रदर्शन उसकी ओर से दूसरों के लिए होता है।

मालिक के हक़

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब ग़ुलाम अपने मालिक का शुभन्तिक हो और अल्लाह की इबादत अच्छे ढंग से करे तो उसके लिए दोहरा फल है।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : सेवक और ग़ुलाम का कर्तव्य है कि वह अपने मालिक का शुभचिन्तक हो, बुरा चाहनेवाला न हो। अब यदि वह इस शुभ-चिन्ता का हक़ अदा करता है और साथ ही अपने वास्तविक आक़ा और मालिक अर्थात् प्रभावशाली अल्लाह की बन्दगी के प्रति भी ग़ाफ़िल नहीं है, बल्कि यथासम्भव वह ख़ुदा की इबादत भी अच्छी तरह करता है तो वह निश्चय ही दोहरे फल का अधिकारी होगा। इसलिए कि उसने ख़ुदा का भी हक़ पहचाना और अपने मालिक का हक़ भी अदा करता रहा।

(2) हज़रत जरीर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने

फ़रमाया, "जब ग़ुलाम भाग जाए तो उसकी नमाज़ स्वीकृति प्राप्त न कर सकेगी।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : जीवन एक पूर्ण इकाई है। मनुष्य का चरित्र और उसके आचरण को भी एक पूर्ण इकाई की हैसियत प्राप्त है। चरित्र को विभाजित नहीं किया जा सकता। ख़ुदा के बन्दों के विषय में हमारा जो दायित्व होता है उसका भी हमारी नमाज़ से गहरा सम्बन्ध है। ख़ुदा के बन्दों के हक़ अदा करने से यदि हम भागते हैं तो हमारे इस व्यवहार से हमारी नमाज़ भी प्रभावित होगी। इससे हमारी नमाज़ गरिमाहीन और निष्प्राण होकर रह जाएगी। इस रूप में निष्प्राण और चरित्र-शून्य नमाज़ से किसी फल की आशा रखना और यह समझना कि हमारी नमाज़ ईश्वर की सेवा में स्वीकृत होगी मात्र भ्रम है। जितना जल्द सम्भव हो यह भ्रम दूर हो जाना चाहिए।

(3) हज़रत जरीर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : " जो कोई ग़ुलाम भाग जाए तो उसके सिलसिले की ज़मानत और दायित्व समाप्त हो जाता है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : जो व्यक्ति अपने दायित्वों का निर्वाह करता है, वह ख़ुदा की अमान में होता है। समाज के लोगों की ज़िम्मेदारी होती है कि वे उसके हक़ों का पूर्ण रूप से ध्यान रखें। अब यदि कोई व्यक्ति अपनी ज़िम्मेदारियों को बिल्कुल भुला बैठता है तो फिर उसे यह हक़ नहीं पहुँचता कि वह इसकी आशा रखे कि उसके अधिकार यथापूर्व शेष रहेंगे और उसे ख़ुदा की वही शरण और संरक्षण हासिल रहेगा जो पहले से हासिल था, और उसके साथ किसी प्रकार का कठोर व्यवहार नहीं किया जा सकता।

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ग़ुलाम के लिए यह कितनी अच्छी बात है कि अल्लाह उसे दुनिया से इस दशा में उठाए कि वह अपने रब की अच्छी इबादत और अपने मालिक के सेवाकार्य में लगा रहा हो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : यह बड़े सौभाग्य की बात है कि जीवन जगत्-प्रभु की बन्दगी और उसकी सुन्दर आराधना में व्यतीत हो और दूसरे किसी व्यक्ति का जो हक़ हमपर होता हो उसके अदा करने में भी हमसे कोई कमी न हो।

कमज़ोरों (दुर्बलों) के अधिकार

ग़ुलाम और सेवकों के अधिकार

(1) हज़रत अबू-दरदा उवैमिर (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना, "मुझे कमज़ोर लोगों में तलाश करो क्योंकि कमज़ोरों ही के कारण तुम्हारी सहायता की जाती है और तुम्हें आजीविका प्रदान की जाती है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् अगर तुम्हें ख़ुदा की प्रसन्नता चाहिए और तुम ख़ुदा के रसूल को प्रसन्न करना चाहते हो तो निर्बलों और असहाय लोगों की तरफ़ ध्यान दो। ईश्वर के समक्ष वास्तव में उसके निर्बल और निर्धन बन्दे होते हैं। वह तुम्हें आजीविका इसलिए नहीं देता कि तुम केवल अपना ही ख़याल करो, बल्कि तुम्हें अपने कमज़ोर और बेसहारा भाइयों की भी चिन्ता करनी चाहिए। तुम्हारे धन में उनका भी हिस्सा रखा गया है। इस बात को कभी न भूलो।

(2) हज़रत अबू-ज़र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "(ये ग़ुलाम) तुम्हारे भाई हैं, अल्लाह ने उनको तुम्हारा अधीनस्थ बनाया है। अत: अल्लाह जिसके अधीनस्थ उसके किसी भाई को कर दे तो उसे चाहिए कि उसको वही खिलाए जो वह ख़ुद खाता हो और वही पहनाए जो वह ख़ुद पहनता हो। और उसको ऐसे किसी काम को करने के लिए बाध्य न करे जो उसकी सामर्थ्य से अधिक है और उसके लिए भारी हो। और अगर ऐसा काम उससे ले जो उसकी सामर्थ्य से ज़्यादा हो तो फिर उस काम में स्वयं भी उसकी सहायता करे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) की नुबुव्वत से पहले लगभग सम्पूर्ण संसार में ग़ुलामी और दासता का रिवाज था। विजयी क़ौमें पराजित क़ौम के लोगों को ग़ुलाम बना लेती थीं। वे उनकी मिलकियत हो जाते थे। ग़ुलामों का कोई हक़ स्वीकार नहीं किया जाता था। उनसे जानवरों की तरह कठिन परिश्रम का काम लिया जाता था। इस्लाम ने ग़ुलामों की स्वतंत्रता के लिए कई उपाय किए। इस्लामी शिक्षाओं ने ग़ुलामों की दुनिया एकदम बदल दी। अतएव उनमें से कितने ही मुस्लिम समुदाय के पेशवा, इमाम, बल्कि शासक तक हुए हैं। युद्ध में दुश्मन की शक्ति तोड़ने और उन्हें बन्दी बनाने के पश्चात् उनके साथ

क्या व्यवहार किया जाए? इसके सम्बन्ध में क़ुरआन की पवित्र शिक्षा यह है— "फिर या तो एहसान करो या फ़िदया का मामला करो यहाँ तक कि युद्ध अपने हथियार डाल दे।" (47 : 4) मतलब यह है कि या तो उनको बिना कुछ लिए मुक्त कर दो या कुछ लेकर उन्हें आज़ाद कर दो। पहले से जो ग़ुलाम चले आ रहे थे उनके साथ जिस सद्व्यवहार का हुक्म दिया गया है वह इस हदीस से स्पष्ट है। फिर उनकी स्वतंत्रता के लिए विभिन्न राहें निकाली गईं। ग़ुलाम आज़ाद करने को पुण्य का काम और गुनाहों का प्रायश्चित ठहराया गया। विभिन्न प्रकार से उन्हें स्वतंत्र करने के लिए उन्हें प्रेरणा दी गई।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "खाना और कपड़ा ग़ुलाम का हक़ है, और उससे बस वही काम लिया जाए जिसके करने की वह सामर्थ्य रखता हो।"

(हदीस : मुस्लिम)

(4) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि एक व्यक्ति नबी (सल्ल०) की सेवा में आया और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! हमें सेवक को कितनी बार क्षमा कर देना चाहिए? आप चुप रहे। उस व्यक्ति ने फिर अपनी बात दोहराई। आप (सल्ल०) फिर चुप रहे। फिर जब तीसरी बार उसने कहा तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "प्रतिदिन सत्तर बार।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : क्षमा कर देने के महात्म्य का अन्दाज़ा आप (सल्ल०) के इस कथन से भली-भाँति किया जा सकता है। सच यह है कि माफ़ करने के महात्म्य को अगर आदमी सही तौर पर समझ जाए तो वह कभी भी इस महात्म्य के प्राप्त करने के अवसरों को खो नहीं सकता। वह निर-तर अपने अधीनस्थ के अपराध और ग़लतियों को क्षमा ही करता रहेगा। किसी ने कहा है— "Forgiveners is an act of self love." अर्थात् "क्षमा करना वास्तव में स्वयं अपने आप से प्यार करना है।"

(5) हज़रत अबू-मसऊद अनसारी (रज़ि०) कहते हैं कि मैं अपने एक ग़ुलाम को मार रहा था। मैंने अपने पीछे से यह आवाज़ सुनी, "ऐ अबू-मसऊद, जान लो कि अल्लाह को तुमपर उससे कहीं अधिक सामर्थ्य हासिल है जितनी तुम्हें इस (ग़ुलाम) पर हासिल हैं।" मैंने मुड़कर देखा तो वे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) थे। मैंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल : अब यह अल्लाह के लिए

आज़ाद है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम्हें जान लेना चाहिए कि अगर तुम यह न करते तो जहन्नम की आग तुमको जला डालती।" या यह फ़रमाया, "जहन्नम की आग तुम्हें अपनी लपेट में ले लेती।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : कुछ अन्य रिवायतों से भी मालूम होता है कि बेबस और असहाय ग़ुलाम को मारना अत्यन्त बुरा और हृदय की कोमलता और दयाभाव के विपरीत है। उसकी भरपाई का अगर कोई उपाय है तो वह बस यही कि उस ग़ुलाम के साथ अत्यन्त अच्छा व्यवहार किया जाए अर्थात् उसे ग़ुलामी से आज़ाद कर दिया जाए। सहीह मुस्लिम की रिवायत है : "जो व्यक्ति अपने ग़ुलाम को तमाँचा (थप्पड़) लगाए या मारे तो उसका प्रायश्चित यह है कि वह उसे आज़ाद कर दे।"

(6) हज़रत अली (रज़ि०) से उल्लिखित है कि (देहान्त से पहले) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का अन्तिम वचन यह था, "नमाज़ का ख़्याल रखो, नमाज़ का ख़्याल रखो और ग़ुलामों और अधीनस्थों के बारे में अल्लाह का डर रखो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् आपने मुस्लिम समुदाय को जो अन्तिम वसीयत की वह यह थी कि नमाज़ से ग़ाफ़िल न होना और अपने अधीनस्थों के बारे में ख़ुदा से डरते रहना कि कहीं ऐसा न हो कि तुम उनके साथ ज़ुल्म-ज़्यादती करो और इसपर ख़ुदा के यहाँ तुम्हारी कड़ी पकड़ हो जाए।

ख़ुदा को सम्बोधित करके जो अंतिम बात आप (सल्लै) ने कही वह यह थी : "ऐ अल्लाह, रफ़ीक़े-आला से मिला।" (हदीस : बुख़ारी)

(7) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "जो व्यक्ति किसी मुस्लिम ग़ुलाम को स्वतंत्र करे तो अल्लाह उस (ग़ुलाम) के प्रत्येक अंग के बदले उसके अंग को जहन्नम की आग से स्वतंत्र करेगा, यहाँ तक कि उसके गुप्तांग को उसके गुप्तांग के बदले स्वतंत्र करेगा।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् अगर तुमने ग़ुलाम को ग़ुलामी से आज़ाद किया तो तुम्हारा यह कर्म अल्लाह को इतना प्रिय है कि वह इसके बदले तुम्हें जहन्नम की यातना से छुटकारा देगा। जहन्नम के दर्दनाक और भयंकर यातना की तुलना में ग़ुलामी की तकलीफ़ और दुख कुछ भी नहीं है। लेकिन तुम वह काम

करके दिखाओ जो तुम कर सकते हो, फिर ख़ुदा तुम्हारे साथ वह व्यवहार करेगा जिसकी क़ुदरत और क्षमता उसे और केवल उसे ही हासिल है।

(8) हज़रत अबू-मूसा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिस किसी के पास दासी हो और वह उसका अच्छी तरह पालन-पोषण करे, फिर उसको आज़ाद करके उससे विवाह करे तो उसके लिए दोहरा फल है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् उस लौंडी की परवरिश और पालन-पोषण स्वयं एक बड़ी नेकी है। फिर उसे आज़ाद करके उसे पत्नी का पद दे देना एक दूसरी बड़ी नेकी है। इसलिए ख़ुदा के यहाँ निश्चित रूप से वह दोहरे फल का अधिकारी होगा।

(9) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से उल्लेख करते हैं कि आप (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "तुममें से कोई (ग़ुलाम से) यह न कहे कि अपने रब (मालिक) को खाना खिला, अपने रब को वुज़ु करा, अपने रब को पानी पिला। और चाहिए कि वह कहे सैयिदी, मौलाई (मेरे सरदार, मेरे आक़ा)। और तुममें से कोई (अपने ग़ुलाम और दासी को) मेरा बन्दा, मेरी बन्दी न कहे। बल्कि चाहिए कि वह कहे फ़ताई, फ़तानी, ग़ुलामी (मेरा नवयुवक, मेरी नवयौवना स्त्री, मेरे लड़के)।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : ज्ञात हुआ कि रब तो सिर्फ़ ख़ुदा ही को कहना चाहिए। वास्तविक हाकिम व मालिक और पालनकर्ता वही है। सारी पालन-व्यवस्था उसी के हाथ में है।

एक हदीस में है कि "तुममें से प्रत्येक ईश्वर का दास है और तुम्हारी सभी स्त्रियाँ ईश्वर की दासियाँ हैं।" इसलिए अपने ग़ुलाम और दासी को अपना बन्दा और अपनी दासी कहकर न पुकारो।

विधवा का हक़

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया : "विधवाओं और मुहताजों के लिए मेहनत और दौड़-भाग करनेवाला अल्लाह की राह में जिहाद करनेवाले या रात में इबादत करनेवाले, दिन में रोज़ा रखनेवाले की तरह है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मतलब यह है कि विधवाओं और मुहताजों की आजीविका की चिन्ता और उसके लिए उपाय और प्रयास करना कोई सधारण नेकी कदापि नहीं है। इस्लामी दृष्टिकोण से यह प्रयास अल्लाह की राह में जिहाद करने का दर्जा रखता है और यह सत्कर्म ऐसा है जैसे कोई व्यक्ति रातों में इबादत में व्यस्त रहता हो और दिन में अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए रोज़े रखता हो।

अनाथों का हक़

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मुसलमानों के घरों में सबसे अच्छा घर वह है जिसमें कोई अनाथ हो जिसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाए। और मुसलमानों के घरों में सबसे बुरा घर वह है जिसमें कोई अनाथ हो जिसके साथ बुरा व्यवहार किया जाए।" (हदीस : इब्ने-माजा)

व्याख्या : मुसलमानों के घर को तो उत्तम और आदर्श होना चाहिए। लेकिन अनाथ के साथ अगर घर में अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता तो इस्लाम की निगाह में उसे उत्तम घर के बदले निकृष्ट घर ही कहा जाएगा।

(2) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति अपने खाने और पीने में किसी यतीम को शरीक कर ले तो अल्लाह उसके लिए जन्नत अनिवार्य कर देता है सिवाय इसके कि उसने कोई ऐसा गुनाह किया हो जो क्षमायोग्य न हो। और जो व्यक्ति तीन बेटियों या उन्हीं की तरह तीन बहनों का पालन-पोषण करे। फिर उनका प्रशिक्षण करे और उनपर दया दर्शाए यहाँ तक कि अल्लाह उन्हें निरपेक्ष कर दे (अर्थात् वे बड़ी हो जाएँ और उनका विवाह हो जाए), उसके लिए अल्लाह जन्नत अनिवार्य कर देता है।" इसपर एक व्यक्ति ने अर्ज़ किया कि क्या दो (बेटियों या दो बहनों) के पालन-पोषण करने पर भी यह फल मिलेगा? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : "हाँ, दो पर भी यही फल मिलेगा।" अगर सहाबा एक बेटी या एक बहन के बारे में पूछते तो आप (सल्ल०) यही उत्तर देते कि हाँ एक पर भी यही फल मिलेगा। (हदीस : शरहुस्सुन्नह)

व्याख्या : यतीम के साथ बेटियों और बहनों का उल्लेख इसलिए किया

गया कि लड़कियाँ चाहे वे बेटियाँ हों या बहनें, बेटों और भाइयों के मुक़ाबले में निर्बल होती हैं। लड़कों के मुक़ाबले में लड़कियों की तरफ़ साधारणतया बहुत कम ध्यान दिया जाता है। साधारणतया वे उपेक्षा का शिकार होकर रहती हैं।

इस हदीस से मालूम हुआ कि लड़कियों के पालन–पोषण का, चाहे वे बहन हों या बेटियाँ, बड़ा महत्त्व है। उनके साथ दयालुता और करुणा का व्यवहार होना चाहिए। ईश्वर की दृष्टि में यह ऐसा प्रिय कर्म है कि इसके कारण बन्दा ख़ुदा के यहाँ जन्नत का अधिकारी हो जाता है।

(3) हज़रत सह्ल–बिन–साद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "मैं और अनाथ का भरण–पोषण और संरक्षण करनेवाला दोनों जन्नत में इस तरह पास–पास रहेंगे।" और आप (सल्ल०) ने बीच की उँगली और तर्जनी से संकेत करते हुए उसकी निकटता बताई। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यतीम की परवरिश और संरक्षण को नुबूवत के कार्य और नुबूवत के स्वभाव से घनिष्ट सम्बन्ध है। यही कारण है कि ऐसे व्यक्ति को, जो यतीम के संरक्षण का दायित्त्व स्वीकार करता है, जन्नत में ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) के सामीप्य व प्रेम की शुभ–सूचना दी जा रही है और उसके बाद आप (सल्ल०) ने बीच की उँगली और तर्जनी को मिला कर मिसाल दी।

बुख़ारी की एक रिवायत में ये शब्द भी आए हैं— "और तर्जनी और बीच की उँगली से संकेत किया और उनके बीच थोड़ी–सी दूरी रखी।" यह वास्तव में इस बात का प्रदर्शन है कि अत्यन्त सान्निध्य के बावुजूद एक नबी को जो विशिष्टता प्राप्त है उसे बाक़ी रहना चाहिए और वह बाक़ी रहेगा।

(4) हज़रत अबू–हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि एक व्यक्ति ने नबी (सल्ल०) से अपनी कठोर हृदयता की शिकायत की। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यतीम के सर पर (प्यार का) हाथ फेरा करो और मुहताजों को खाना खिलाया करो।" (हदीस : अहमद)

व्याख्या : यतीमों के सिर पर प्रेम और स्नेह का हाथ फेरना और मुहताजों को खाना खिलाना वास्तव में करुणा और संवेदनशीलता का प्रदर्शन है। अपने हृदय में यदि कोई व्यक्ति करुणा और संवेदनशीलता न पाए या उसकी उसे कमी महसूस हो तो वह प्यारे नबी (सल्ल०) की बताई हुई इस

युक्ति से काम ले। ख़ुदा ने चाहा तो इससे दिल की कठोरता दूर हो जाएगी और उसे अपने अन्दर करुणा और संवेदनशीलता की अनुभूति होने लगेगी।

निर्धनों और मुहताजों के अधिकार

(1) हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "प्रतापवान अल्लाह क़ियामत के दिन फ़रमाएगा : ऐ आदम के बेटे, मैं बीमार हुआ लेकिन तुमने मेरा हाल नहीं पूछा। वह कहेगा कि ऐ मेरे रब, मैं कैसे आपकी बीमारपुर्सी करता, जबकि आप समस्त जगत् के रब हैं? अल्लाह फ़रमाएगा : क्या तुम्हें नहीं मालूम कि मेरा फ़ुलाँ बन्दा बीमार था, तुमने उसका हाल नहीं पूछा। क्या तुम्हें मालूम नहीं था कि अगर तुमने मिजाज़पुर्सी की होती तो तुम मुझे उसके पास पाते? (फिर फ़रमाएगा :) ऐ आदम के बेटे, मैंने तुमसे खाना माँगा, तुमने मुझे खाना नहीं खिलाया। वह कहेगा कि ऐ मेरे रब, मैं कैसे आपको खाना खिला सकता हूँ, जबकि आप समस्त जगत् के रब हैं? अल्लाह फ़रमाएगा : क्या तुम्हें मालूम नहीं कि मेरे फ़ुलाँ बन्दे ने तुमसे खाना माँगा था तो तुमने उसे खाना नहीं खिलाया। क्या तुम जानते नहीं थे कि अगर तुम उसे खाना खिलाते तो उसे (उसके पुण्य फल को) मेरे पास पाते। (फिर अल्लाह कहेगा :) ऐ आदम के बेटे, मैंने तुमसे पानी माँगा तो तुमने मुझे पानी नहीं पिलाया। वह कहेगा कि ऐ मेरे रब, मैं कैसे आपको पानी पिला सकता हूँ, जबकि आप समस्त जगत् के परवरदिगार हैं? अल्लाह फ़रमाएगा कि तुमसे मेरे फ़ुलाँ बन्दे ने पानी माँगा था तो तुमने उसे पानी नहीं पिलाया। अगर तुमने उसे पानी पिलाया होता तो उसे (यानी उसके पुण्य और फल को) मेरे पास पाते।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : ज्ञात हुआ कि अल्लाह की पहचान और उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए संसार में सुन्दर और हरित घाटियाँ और सुन्दर दृश्य ही नहीं पाए जाते, उसकी खोज उसके विवश और असहाय बन्दों में भी होनी चाहिए। पीड़ा की संवेदना और नैतिक आचरणों के द्वारा जिस ज्ञान का उद्घाटन और अनुभव आदमी को हो सकता है उसका मुक़ाबला कोई दूसरा ज्ञान नहीं कर सकता।

इस हदीस क़ुदसी से कई बातें मालूम होती हैं। इससे ज्ञात होता है कि ख़ुदा को अपने बन्दों से गहरा सम्बन्ध है। यही कारण है कि वह उनकी भूख, प्यास और बीमारी को अपनी भूख, प्यास और बीमारी कह रहा है।

यह हदीस बताती है कि निर्धनों और मुहताजों के काम आना कोई घाटे का काम नहीं है। जो व्यक्ति मुहताजों और दीन–दुखियों की मदद करता और उनकी सान्त्वना के लिए चिन्तित होता है, ख़ुदा उसे उसके इन नेक कर्मों के फल से कदापि वंचित नहीं रखेगा। वह ख़ुदा के यहाँ पहुँचकर अपनी इन सभी सेवाओं का फल पाएगा जो सेवाएँ वर्तमान लोक में उसने ख़ुदा के लिए निस्सहाय और निराश बन्दों के लिए की होंगी।

(2) हज़रत अबू–सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिस किसी मोमिन (मुस्लिम) ने किसी भूखे मोमिन को खाना खिलाया, अल्लाह उसे क़ियामत के दिन जन्नत के फल खिलाएगा, और जिस किसी मोमिन ने किसी प्यासे मोमिन को पानी पिलाया, अल्लाह उसे क़ियामत के दिन विशुद्ध उत्तम मुहरबन्द पेय का पान कराएगा। और जिस किसी मोमिन ने किसी निःवस्त्र मोमिन को कपड़ा पहनाया, अल्लाह क़ियामत के दिन उसे जन्नत का वस्त्र पहनाएगा।" (हदीसः तिर्मिज़ी)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि अल्लाह के प्रिय बन्दों को भोजन कराना वास्तव में ईश्वर के हाथों स्वयं भोजन करना है। ईश्वर के किसी प्रिय को पानी पिलाना वास्तव में ईश्वर के शुभ हाथों से विशुद्ध, सुगन्धित पेय के पान करने का सौभाग्य प्राप्त करना है। इसी प्रकार ईश्वर के किसी प्रिय बन्दे को वस्त्र प्रदान करना स्वर्गिक परिधान धारण करना है। ख़ुदा के नेक बन्दों के साथ यह उत्तम व्यवहार वास्तव में स्वयं अपने साथ उत्तम व्यवहार करना है। इसी लिए भारत के ज्ञानवान पुरुषों ने कहा था—"दान हमारा अर्जन है।" ऐसे लोगों को स्वयं वस्त्र धारण करने से अधिक दूसरों को वस्त्र पहनाने में आनन्द का अनुभव होता है और स्वयं खाने की अपेक्षा दूसरों को खिलाने में अधिक तृप्ति होती है।

पीड़ित और निरुपाय जनों के अधिकार

(1) हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "जो व्यक्ति पीड़ित और दुखी लोगों की

फ़रियाद सुनता है, अल्लाह उसके लिए तिहत्तर बख़शिशें लिख देता है। उनमें से एक वह है जो उसके हर मामले का सुधार व दुरुस्ती का ज़ामिन बन जाती है और शेष बहत्तर क़ियामत के दिन उसके दर्जे बुलंद करने का कारण होंगी।" (हदीस : बैहक़ी, शेबुल ईमान)

व्याख्या : अर्थात् उसे ऐसी बख़शिशें हासिल होंगी कि उनमें से सिर्फ़ एक बख़शिश ही उसके सारे काम बनाने के लिए पर्याप्त होगी। शेष बहत्तर क़ियामत में उसके बुलन्द दर्जों के रूप में प्रकट होंगी।

यह हदीस इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि बख़शिश (मग़फ़िरत) के अर्थ में गुनाहों और ख़ताओं की क्षमा से कहीं अधिक व्यापकता पाई जाती है। यह भी ख़ुदा की ओर से मग़फ़िरत और बख़शिश है कि आदमी के सभी मामले ठीक हो जाएँ, उसके सारे काम बन जाएँ और दर्जों की बुलन्दी और उच्चता भी ख़ुदा की मग़फ़िरत और दयालुता का स्पष्ट प्रदर्शन है।

इस हदीस से मालूम हुआ कि जो व्यक्ति किसी विपत्ति-ग्रस्त और पीड़ित व विवश लोगों की फ़रियाद सुनता और उनके दुख दूर कर देता है, वह देखने में तो एक विकल और परेशान व्यक्ति को परेशानियों से छुटकारा दिलाता है, लेकिन उसका यह कर्म वास्तविकता की दृष्टि से अपने अन्दर असाधारण प्रभाव और विशिष्टताएँ रखता है। उसके इस शुभ-कर्म से उसका प्रभु उससे इतना ख़ुश हो जाता है कि वह ख़ुद उसको भी कभी परेशान, पीड़ित और शोकाकुल देखना पसन्द नहीं कर सकता। उसके अपने सारे काम बन जाते हैं और ईश्वर के यहाँ से उसे विशेष सामीप्य प्राप्त होता है।

बीमार का हक़

(1) हज़रत सौबान (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "बीमार की (उसके घर जाकर) मिजाज़पुर्सी करनेवाला वापसी तक जन्नत के उद्यान में होता है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : हर चीज़ अपना कोई न कोई प्रभाव रखती है। इस हदीस में इस तथ्य का उद्घाटन किया गया है कि दूसरी चीज़ों की तरह आदमी के कर्म भी प्रभाव से ख़ाली नहीं होते। सबसे अधिक फलदायक और आनन्ददायक प्रभाव मनुष्य के नेक कर्म ही के होते हैं। इससे शुभ-कर्मों के महत्त्व और मूल्य

का आसानी से अनुमान किया जा सकता है। व्यक्ति जब अपने भाई की मिजाज़पुर्सी के लिए उसके पास जाता है तो तथ्यात्मक दृष्टि से वह जन्नत के उद्यान में होता है, अपने स्थान और पद की दृष्टि से वह उच्चतम स्थान पर होता है। विचार कीजिए, जिस कर्म में व्यक्ति को जन्नती बनाने की क्षमता हो वह कर्म अपने आप में कितना पवित्र, सुन्दर और आनन्दस्वरूप होगा। इसकी कल्पना साधारण बुद्धि का व्यक्ति नहीं कर सकता। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने ठीक ही फ़रमाया है कि बीमार की मिज़ाजपुर्सी करनेवाला जब तक मिज़ाजपुर्सी करके वापस लौट नहीं आता वह स्वर्गिक उद्यान में होता है। इयादत और मिज़ाजपुर्सी का काम जन्नत में दाख़िल होने से कम महत्त्वपूर्ण कदापि नहीं है।

(2) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति किसी ऐसे बीमार की इयादत करे जिसकी मौत का अभी समय न आया हो और वह उसके पास सात बार यह दुआ पढ़े : 'अस्अलुल्लाहल-अज़ी-म रब्बल-अरशिल-अज़ीमि ऐंयशफ़िय-क' (मैं महान अल्लाह से जो महान सिंहासन का मालिक है याचना करता हूँ कि वह तुम्हें स्वस्थ कर दे), तो अल्लाह ज़रूर उसे स्वास्थ्य-लाभ कराएगा।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : बीमार के पास जाकर उसके स्वास्थ्य के लिए दुआ करने से बीमार को बड़ा सहारा मिलता है। यदि उसका समय पूरा नहीं हो गया है तो दुआ क़बूल भी होती है और मरीज़ बीमारी से छुटकारा पा जाता है।

(3) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) एक देहाती के पास उसकी बीमारपुर्सी के लिए गए। और नबी (सल्ल०) जब किसी बीमार के पास उसकी बीमारपुर्सी के लिए जाते तो फ़रमाते, "कोई डर-भय की बात नहीं, यह बीमारी इनशाअल्लाह (गुनाहों से) पाक करनेवाली है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मालूम हुआ कि बीमार की इयादत करनी नबी का तरीक़ा है। इयादत में मरीज़ को सांत्वना देनी चाहिए। और उसके स्वास्थ्य के लिए ख़ुदा से दुआ करनी चाहिए।

(4) हज़रत आइशा-बिन्ते-साद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि उनके

पिता बयान करते हैं कि मैं मक्का में बहुत अधिक बीमार हुआ तो नबी (सल्ल०) मेरे पास मेरी मिज़ाजपुर्सी के लिए आए। आप (सल्ल०) ने अपना हाथ मेरे ललाट पर रखा, फिर मेरे चेहरे और मेरे पेट पर अपना हाथ फेरा और दुआ की, "ऐ अल्लाह, साद को स्वास्थ्य-लाभ प्रदान कर और इसकी हिजरत को परिपूर्ण कर दे।" उस समय से अब तक निरन्तर मैं अपने कलेजे में उसकी ठण्डक महसूस करता हूँ।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् नबी (सल्ल०) की दुआ सर्वशक्तिमान प्रभु के यहाँ स्वीकृत हुई। आप (सल्ल०) ने जो प्रेम-पूर्वक हाथ मेरे ललाट, चेहरे और पेट पर फेरा था उसकी ठण्डक और असर मैं अब तक महसूस कर रहा हूँ।

(5) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जब किसी बीमार के पास जाते या आपके पास कोई बीमार लाया जाता तो आप (सल्ल०) दुआ फ़रमाते, "ऐ लोगों के रब, रोग को दूर करनेवाला तू ही है। और स्वास्थ्य-लाभ तो बस तेरा ही प्रदत्त स्वास्थ्य-लाभ है। ख़ौफ़ दूर कर दे और ऐसी आरोग्यता दे जो किसी बीमारी को न छोड़े।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् जिसको अल्लाह स्वास्थ्य प्रदान करे उसे पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ होता है। वह हर बीमारी से छुटकारा पा लेता है। ख़ुदा को इसपर सामर्थ्य प्राप्त है कि वह प्रत्येक रोग को मनुष्य से दूर रखे। रोग शारीरिक हो या वैचारिक और नैतिक, वास्तविक आरोग्यता प्रदान करनेवाला अल्लाह ही है।

(6) हज़रत सौबान (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति किसी बीमार की बीमारपुर्सी करेगा वह हमेशा जन्नत के बाग़ीचे से मेवे चुनता रहेगा।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इससे मालूम हुआ कि दूसरों की तकलीफ़ों में उनके प्रति सहानुभूति दर्शाना अपने में असाधारण प्रभाव रखता है। उसके अच्छे परिणाम अनिवार्यतः सामने आएँगे। उदाहरणार्थ, बीमार की मिज़ाजपुर्सी के पीछे जिस प्रकार की भावनाओं की क्रियाशीलता इस्लाम में अपेक्षित है वे भावनाएँ निश्चय ही ऐसी उत्तम भावनाएँ हैं जिनका महत्त्व व मूल्य किसी भी बाग़ के स्वादिष्ट फलों से हरगिज़ कम नहीं है।

क़ैदी का हक़

(1) हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "भूखे को खाना खिलाओ, बीमार की मिज़ाजपुर्सी करो और क़ैदी को छुड़ाओ।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : भूखा, बीमार और क़ैदी ये तीनों मजबूर और बेबस होते हैं। उनकी ओर ध्यान न देना ठीक नहीं। उनके प्रति जो हमारा उत्तरदायित्त्व होता है उसका हमें पूरा एहसास होना चाहिए। भूखा भूखा न रहे, बीमार की मिज़ाजपुर्सी की जाए। यह इस बात का सुबूत होगा कि हमें इनसे लगाव और सहानुभूति है, हम इनको पराया नहीं समझते। मोमिनों का तो सारी मानवता से नाता और रिश्ता होता है। इसी लिए उन्हें मोमिन कहा जाता है। ईमान का सम्बन्ध वर्ण, वंश, देश और काल विशेष से न होकर मनुष्य की नैतिकता और उसके चरित्र से होता है।

बन्दी और क़ैदी भी निहायत मजबूरी और विवशता की स्थिति में होता है। यथासम्भव उसे आज़ाद कराने की कोशिश करनी चाहिए। विशेष रूप से जबकि वह निर्दोष हो या दुश्मन ने उसे पकड़ रखा हो।

शोक में सम्मिलित होना

(1) हज़रत मुआज़ (रज़ि०) से रिवायत है कि उनके एक बेटे का देहान्त हो गया तो नबी (सल्ल०) ने उन्हें यह शोक-पत्र लिखाया :

"बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम। अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) की तरफ़ से मुआज़-बिन-जबल के नाम।

तुमपर सलाम हो।

मैं उस अल्लाह की हम्द (प्रशंसा) तुमसे बयान करता हूँ जिसके सिवा कोई पूज्य नहीं। तत्पश्चात् प्रार्थना करता हूँ कि अल्लाह तुम्हें (इस दुख का) बड़ा बदला दे और सब्र दे। और हमें और तुम्हें शुक्र करने का सौभाग्य प्रदान करे। क्योंकि हमारे प्राण और हमारे माल और हमारे घरवाले अल्लाह की शुभ देन हैं और उसकी सौंपी हुई अमानतें हैं। (तुम्हारा बेटा भी अल्लाह की अमानत था।) अल्लाह ने हर्ष और प्रसन्नता के साथ उससे तुम्हें लाभ उठाने और जी बहलाने का अवसर प्रदान किया। और उसकी इच्छा हुई तो उसने उसे

तुमसे एक बड़े प्रतिदान के बदले वापस ले लिया। उसका अनुग्रह, दयालुता और विशेष मार्गदर्शन तुम्हारे लिए है, अगर तुमने पुण्य और फल के संकल्प से धीरज रखा। अतः (ऐ मुआज़) धीरज रखो! ऐसा न हो कि तुम्हारा अधैर्य और विकलता तुम्हारे फल को विनष्ट कर दे और फिर तुम्हें पछतावा हो, और जान लो कि अधैर्य और विकलता (रोने-चिल्लाने) से कोई मरनेवाला लौटता नहीं और न इससे रंज व ग़म ही दूर होता है। और ख़ुदा की तरफ़ से जो हुक्म उतरता है वह घटित हो चुका होता है। (उसका होना निश्चित होता है।) वस्सलाम।" (हदीस : तबरानी फ़िल-कबीर वल-औसत)

व्याख्या : मुहम्मद (सल्ल०) के इस शोक-पत्र से ज्ञात हुआ कि हमारे पास जो नेमतें भी हैं, चाहे वे सन्तान के रूप में हों या किसी और रूप में, वे सब अल्लाह की देन हैं। इन नेमतों से हमें ख़ुशियाँ मिलती हैं और हमारे दिल को आराम और शान्ति भी। किन्तु मनुष्य को इनसे लाभ उठाते और इनसे अपना जी बहलाते हुए यह कभी न भूलना चाहिए कि यह ख़ुदा की अमानत हैं। वह अपनी अमानत वापस भी ले सकता है। लेकिन उसके वापस लेने का उद्देश्य मनुष्यों का दिल दुखाना और उन्हें ग़म पहुँचाना कदापि नहीं है। बल्कि इसके पीछे ख़ुदा की महान तत्त्वदर्शिता और हिकमतें काम करती हैं जिनका साधारणतया हमें पूरा ज्ञान नहीं होता, और हो भी नहीं सकता है। अलबत्ता ऐसे अवसर पर यदि मनुष्य धैर्य से काम लेता और ख़ुदा के फ़ैसले पर राज़ी होता है तो ख़ुदा उसे वंचित नहीं रखेगा, ख़ुदा के यहाँ इसका उत्तम बदला और सवाब है।

नबी (सल्ल०) ने अपने पत्र में यह जो लिखा था कि 'उसका अनुग्रह, दयालुता और विशेष मार्गदर्शन तुम्हारे लिए है' इसमें संकेत क़ुरआन की इन आयतों की ओर है, "जो उस समय जबकि उनपर कोई मुसीबत आती है तो कहते हैं : बेशक हम अल्लाह के हैं और हम उसी की ओर लौटनेवाले हैं। यही लोग हैं जिनपर उनके रब की विशेष कृपाएँ हैं और दयालुता भी, और यही हैं जो सीधे मार्ग पर हैं।" (अल-बक़रा, 156-157)

ग़ैर-मुस्लिमों का हक़

(1) हज़रत असमा (रज़ि०) से उल्लिखित है, वे बयान करती हैं कि

उस समय जबकि क़ुरैश ने नबी (सल्ल०) से सन्धि की थी, मेरी माँ अपने बाप के साथ आई तो मैंने नबी (सल्ल०) से कहा कि मेरी माँ आई है और वह मुसलमान नहीं है। आप (सल्ल०) ने कहा, "तुम अपनी माँ के साथ नातेदारी रखो (अर्थात् अच्छा व्यवहार करो)।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इससे मालूम हुआ कि यदि कोई मुस्लिम नहीं है तो ऐसा नहीं है कि अब उसका हमपर कोई हक़ ही नहीं रहा। और यदि कोई ग़ैर-मुस्लिम ऐसा है कि उसके साथ पारिवारिक सम्बन्ध पाया जाता है तो अच्छे व्यवहार में तो उसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। हज़रत उमर (रज़ि०) ने भी एक बार अपने एक भाई के लिए नबी (सल्ल०) का दिया हुआ कुर्ता भेजा था जबकि उनके भाई ने अभी इस्लाम क़बूल नहीं किया था। क़ुरआन, 60:8 में भी है, "अल्लाह तुम्हें इससे नहीं रोकता कि तुम उन लोगों से अच्छा व्यवहार करो और उन्हें उनके हिस्से की आर्थिक सहायता पहुँचाओ जिन्होंने तुमसे दीन के मामले में युद्ध नहीं किया और न तुम्हें तुम्हारे अपने घरों से निकाला।"

जानवरों के साथ व्यवहार

(1) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "किसी भी जानवर को (बाँधकर) निशाना न बनाओ।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : जानवरों को चाँदमारी के लिए इस्तेमाल करना वर्जित है क्योंकि यह कठोर हृदयता और अत्यन्त निर्दयता की बात है। इसी प्रकार यह भी वैध नहीं है कि जानवर को बिना चारा-पानी के बाँधकर रखा जाए, फिर उसे मार डाला जाए।

(2) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मुँह पर मारने और मुँह पर दाग़ लगाने से रोका है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : किसी भी आदमी या जानवर के मुँह पर तमाँचा या कोड़े से मारना वैध नहीं है। इसी तरह मुँह पर दाग़ लगाना भी वर्जित है। एक रिवायत में तो मुँह पर दाग़नेवाले को लानत का भागी ठहराया गया है। (हदीस : मुस्लिम)

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "जब तुम ख़ुशहाली और हरियाली के वर्ष में

यात्रा करो तो ऊँटों को भूमि से हिस्सा दिया करो और जब तुम अकाल और सूखे के साल सफ़र करो तो जल्द ही सूखे की मंज़िलों को ऊँटों का गूदा रहते तय कर डालो। और जब तुम रात के पिछले पहर मंज़िल पर उतरो तो रास्तों से हटकर उतरो, क्योंकि उनसे जानवरों का आना-जाना होता है और रात में कीड़े-मकोड़े वहाँ ठहरते हैं।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : ज्ञात हुआ कि यदि कोई व्यक्ति ऊँट या किसी जानवर पर सवार होकर सफ़र करता है और मौसम हरियाली और ख़ुशहाली का है तो सवारी के जानवर को ज़मीन में चरने के लिए छोड़ दे ताकि वह अपनी भूख मिटा ले और ताक़त प्राप्त कर ले। और यदि ज़माना सूखा और अकाल का है तो जितना सम्भव हो सूखे के क्षेत्र से जल्दी निकल जाए।

ऊँटों का गूदा रहते रास्ता तय करने का अर्थ है कि उनकी शक्ति शेष रहे और तुम बड़ी-बड़ी मंज़िलें तय करके सूखे क्षेत्र से जल्द निकल जाओ।

रात के समय रास्ते से जंगली जानवर भी गुज़रते हैं और कीड़े-मकोड़े भी वहाँ आ जाते हैं। इसी लिए आप (सल्ल०) ने कहा रास्ते से हटकर सुरक्षित जगह पड़ाव डालो। इससे तुम भी परेशानियों में न पड़ोगे और जंगली जानवरों की आज़ादी में भी बाधा न पड़ेगी।

(4) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस़ (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो कोई नाहक़ किसी पक्षी या उससे छोटे-बड़े किसी जानवर और पक्षी को मार डालेगा तो अल्लाह उसके प्राण लेने के विषय में उससे पूछेगा कि तुमने उसे क्यों मारा।" कहा गया कि ऐ अल्लाह के रसूल, उस (पक्षी आदि) का हक़ क्या है ? फ़रमाया, "यह कि उसे ज़बह करके खाया जाए, यह नहीं कि उसका सर काटकर फेंक दिया जाए।" (हदीस : अहमद, नसई, दारमी)

व्याख्या : मात्र मनोरंजन के लिए किसी जानदार की जान ले लेना अपने अधिकार का दुरुपयोग और ज़ुल्म है। ख़ुदा के यहाँ निश्चय ही इसपर पकड़ होगी। जानवर का हक़ उससे फ़ायदा उठाना है न कि बिना उद्देश्य उसका सिर काटकर फेंक देना।

(5) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-जाफ़र-बिन-अबी तालिब से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तो क्या तुम उस जानवर के बारे में अल्लाह से डरते नहीं जिसको अल्लाह ने तुम्हारे अधिकार में दे रखा

है? क्योंकि वह मुझसे शिकायत करता है कि तुम उसे भूखा रखते हो और हमेशा उससे मेहनत का काम लेते हो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह बात आप (सल्ल०) ने एक अनसारी से कही। आप (सल्ल०) उसके ऊँट की दशा देखकर अप्रसन्न हुए। इससे मालूम हुआ कि बेज़बान अथवा मूक जानवर भी हमारी दया के पात्र हैं। उनपर ज़ुल्म करना और उनपर दया न करना घोर पाप है। इसपर ख़ुदा के यहाँ कड़ी पकड़ होगी।

(6) हज़रत अनस (रज़ि०) बयान फ़रमाते हैं कि हम जब (सफ़र में) किसी पड़ाव पर उतरते तो उस समय तक नमाज़ नहीं पढ़ते थे जब तक कि जानवरों पर से सामान खोलकर न उतार लिया जाता।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस रिवायत में नमाज़ को तसबीह से अभिहित किया गया है (तसबीह नमाज़ का एक अंग है)। कभी अंश से अभिप्रेत सम्पूर्ण होता है। इसके उदाहरण क़ुरआन में भी मिलते हैं। क़ुरआन में नमाज़ को कहीं क़ियाम (खड़े होने) से, कहीं तसबीह (महिमागान) और कहीं सजदा से अभिहित किया गया है। सूरा, अल-हिज्र में है "अतः तुम अपने रब की प्रशंसा की तसबीह करो और सजदा करनेवाले हो जाओ।" (15/98)

सहाबा किराम (रज़ि०) नमाज़ों के सिलसिले में बहुत ज़्यादा सतर्कता से काम लेते थे। लेकिन अपने जानवरों को समय पर पहले आराम पहुँचाते थे; फिर दूसरे कामों में लगते थे। यहाँ तक कि वे उसे अपनी नमाज़ पर भी प्राथमिकता देते थे। वे ऐसा क्यों न करते, उनका प्रशिक्षण नबी (सल्ल०) ने भली-भाँति किया था।

(7) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "एक बार एक व्यक्ति रास्ते पर चल रहा था कि उसे बड़ी तेज़ प्यास लगी। उसे एक कुआँ मिला। उसने उसमें उतरकर पानी पिया। फिर बाहर निकला, क्या देखता है कि एक कुत्ता ज़बान निकाले हाँप रहा है और गीली मिट्टी चाट रहा है। उस व्यक्ति ने कहा कि प्यास से इस कुत्ते की वैसी ही दशा हो गई है जैसी दशा मेरी हो गई थी। फिर वह कुएँ में उतरा और अपने मोज़े को पानी से भर लिया। फिर उसे अपने मुँह से थामा और कुएँ से निकल आया। और उस कुत्ते को पिला दिया। इसपर ख़ुदा ने उसकी क़द्रदानी की और उसको क्षमा कर दिया।" लोगों ने अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के

रसूल, क्या जानवरों के सिलसिले में भी हमारे लिए कोई पुण्य और फल है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "प्रत्येक आर्द्र जिगर में (तुम्हारे लिए) प्रतिदान है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि दयालुता को दीन में बुनियादी महत्त्व प्राप्त है। आर्द्र जिगर में सभी प्राणधारी सम्मिलित हैं। जिगर (कलेजा) जीवन ही के कारण जीवन्त और ताज़ा रहता है। प्राण और चेतना जो एक अदृश्य चीज़ है 'आर्द्र जिगर' कहकर आप (सल्ल०) ने उसे मूर्त रूप दे दिया जिससे मनुष्य में छिपी हुई दया और संवेदना का भाव उतर आता है।

एक रिवायत में एक व्यभिचारिणी स्त्री के विषय में आया है कि किस तरह उसने एक कुत्ते को गरमी के दिन में देखा कि कुएँ के चक्कर लगा रहा है और प्यास की तीव्रता से उसकी ज़बान बाहर निकल आई है। उसने अपना मोज़ा उतारा (और उसमें पानी भरकर उसे पानी पिलाया।) इसपर ख़ुदा ने उसके गुनाह माफ़ कर दिए। इन रिवायतों में एक प्राणधारी की तकलीफ़ और विकलता का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह बहुत साफ़ और प्रभावकारी है। कुत्ते का बेचैनी और परेशानी के साथ कुएँ के चारों ओर चक्कर लगाना या प्यास की तीव्रता से गीली मिट्टी चाटना यह विकलता की तीव्रता और परेशानी के ऐसे चित्र हैं जो हर ऐसे व्यक्ति को तड़पा देने के लिए काफ़ी हैं जिसके सीने में धड़कता हुआ दिल हो।

(8) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) के बेटे अब्दुर्रहमान अपने पिता से रिवायत करते हैं कि एक सफ़र में हम अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ थे। आप शौच के लिए गए। इसी बीच हमने एक छोटी-सी लाल चिड़िया देखी, जिसके साथ दो छोटे-छोटे बच्चे भी थे। हमने उन बच्चों को पकड़ लिया। वह चिड़िया आई और सिर पर मंडलाने लगी। इतने में नबी (सल्ल०) आए और फ़रमाया, "किसने इसके बच्चे पकड़कर इसको सताया? इसे इसके बच्चे लौटा दो।"— चींटियों की एक बस्ती जहाँ (चींटियों ने बहुत-से घर बना रखे थे और वहाँ चींटियों की अधिकता थी) हमने वहाँ आग लगा दी थी। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "किसने इनको जलाया है?" हमने कहा कि हमने ही ऐसा किया है। फ़रमाया, "किसी के लिए उचित नहीं कि वह आग की यातना दे सिवाय उसके जो अग्नि का प्रभु है

(अर्थात् अल्लाह)।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मालूम हुआ कि किसी जानवर को सताना और कष्ट पहुँचाना वैध नहीं है। इस तरह के अनुचित कर्म दयालुता के बिल्कुल विपरीत हैं। इनसे बचना ज़रूरी है।

रास्ते का हक़

(1) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम रास्तों में बैठने से बचो।" लोगों ने अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल, हमारे लिए तो परस्पर बातचीत करने के लिए रास्तों में बैठने के सिवा कोई उपाय नहीं। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अच्छा यदि तुम वहीं बैठना चाहते हो तो रास्ते हक़ अदा कर दिया करो।" लोगों ने पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल, "रास्ते का हक़ क्या होता है?" फ़रमाया, "निगाहें बचाकर रखना, तकलीफ़ पहुँचानेवाली बातों से परहेज़ करना, सलाम का जवाब देना, भलाई का हुक्म देना और बुरी बातों से रोकना।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् अगर तुम्हारे घर और मकान में जगह की गुंजाइश नहीं है और तुम इसके लिए मजबूर हो कि घर के बाहर, जहाँ लोगों का आना-जाना रहता है, अपने मिलनेवालों से बातचीत करो तो फिर तुम्हें रास्ते का हक़ अदा करना होगा, और वह हक़ यह है कि तुम नज़रें नीची रखो। अर्थात आने-जानेवाली औरतों से अपनी निगाहें बचाए रखो। और तुम्हारी कोशिश यह हो कि तुम्हारी वजह से लोगों को तकलीफ़ और दुख न पहुँचे और अवसर के अनुसार भलाई का हुक्म देने और बुराई से रोकने का कर्तव्य भी निभाया करो।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) की एक रिवायत में, जिसे अबू-दाऊद ने उद्धृत किया है, '(भूले-भटके) लोगों को रास्ता बताना' के शब्द भी आए हैं। हज़रत उमर बिन-ख़त्ताब (रज़ि०) की रिवायत में जिसको अबू-दाऊद ने उद्धृत किया है ये शब्द भी मिलते हैं — "आपदा-ग्रस्त लोगों की मदद करो और भूले-भटके व्यक्ति को रास्ता बताओ।"

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से रिवायत किया है कि "रास्ते से कष्टदायक चीज़ों को हटा दें, यह भी सदक़ा है।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मालूम हुआ कि सदक़ा (दान) सिर्फ़ माल ख़र्च करने का नाम नहीं है कि कोई ख़ुदा के रास्ते में या मिस्कीनों और मोहताजों पर अपना माल ख़र्च करे, बल्कि दूसरे नेक कामों की गणना भी सदक़े में होती है। इस्लाम में सदक़े की परिकल्पना बहुत व्यापक है। रास्ते से तकलीफ़ देनेवाली चीज़ों को हटाकर भी आदमी यह प्रमाण प्रस्तुत करता है कि वह ख़ुदा के बन्दों के हक़ को पहचानता है, जिस तरह वह अपना माल ख़र्च करके इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि वह अपने ईमान व विश्वास में सच्चा है और वह ख़ुदा के बन्दों के लिए अपने दिल में हमदर्दी व सहानुभूति का भाव रखता है और उनसे उसे प्रेम है।

इज्तिमाइयत

सामाजिक जीवन के कुछ आदेश और शिष्टाचार

सामूहिकता

(1) हज़रत नोमान बिन-बशीर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम मोमिनों को परस्पर दया दिखाने, प्रेम करने और स्नेह और कृपा करने में ऐसा पाओगे जैसा कि शरीर का हाल है कि जब उसके किसी अंग में तकलीफ़ होती है तो शरीर के शेष सभी अंग उसके कारण एक-दूसरे को पुकारते और ज्वर व अनिद्रा में उसके साथ हो जाते हैं।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मतलब यह है कि सारे मुसलमानों को एक शरीर की तरह रहना चाहिए। वे परस्पर एक-दूसरे के दुख-दर्द बाँटनेवाले हों। उनके सम्बन्ध दयालुता, आत्मीयता और प्रेम के आधार पर सुदृढ़ हों। वे परस्पर एक-दूसरे के दुख को अपना दुख समझें और सब मिलकर उस दुख या मुसीबत को दूर करने के उपाय करें। क़ुरआन ने ईमानवालों के इस गुण को अत्यन्त संक्षिप्त शब्दों में वर्णन किया है कि "वे आपस में दयालु हैं।" (48/29)

शैख़ सादी ने भी कहा है :

"बनी आदम आज़ाए यक दीगरन्द,
कि दर आफ़रीनश ज़ि यक गौहरन्द।
चू अज़्वे बदर्द आवुर्द रोज़गार,
दिगर अज़्वहा रा न मानद क़रार॥

अर्थात् "मनुष्य परस्पर एक-दूसरे के अंग-प्रत्यंग हैं कि उनकी सृष्टि एक ही सत्व से हुई है, जैसे शरीर के किसी अंग में पीड़ा होती है तो शरीर के दूसरे अंग भी विकल हो जाते हैं, उन्हें चैन नहीं आता।"

(2) हज़रत अबू-मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मोमिन, मोमिन के लिए एक भवन के सदृश होता है, जिसका एक

भाग दूसरे भाग को सुदृढ़ करता है।'' फिर आप (सल्ल०) ने अपने एक हाथ की उँगलियाँ दूसरे हाथ की उँगलियों में डाल दीं। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् जिस तरह किसी भवन या मकान के समस्त भाग परस्पर एक-दूसरे के साथ जुड़कर सम्पूर्ण भवन को सुदृढ़ रखते हैं, उसी तरह मुसलमानों को भी परस्पर सम्बद्ध और एक होकर रहना चाहिए। अलबत्ता यह एकत्व और संजोग अनिवार्यतः न्याय और प्रेम पर आधारित हो। उनकी एकता और संजोग का आधार ज़ुल्म और अन्याय न हो। इस विशिष्ट गुण के बिना इस्लामी समुदाय के अपराजित शक्ति बनने का स्वप्न कभी साकार नहीं हो सकता।

(3) हज़रत हारिस अशअरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, ''मैं तुम्हें पाँच चीज़ों का आदेश देता हूँ— जमाअत का, सुनने और आज्ञापालन का, हिजरत और अल्लाह की राह में जिहाद का। जो व्यक्ति एक बित्ता भी जमाअत से अलग हुआ, उसने इस्लाम का पट्टा अपनी गरदन से निकाल फेंका, सिवाय इसके कि वह लौट आए, और जिसका आह्वान अज्ञान का आह्वान हो, वह नरकवासियों में से है, यद्यपि वह रोज़ा रखता और नमाज़ पढ़ता हो और उसे इसका दावा हो कि वह मुसलमान है।'' (हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी)

व्याख्या : इस हदीस में जिन पाँच बातों का आदेश दिया गया है उनको दीन में बुनियादी अहमियत हासिल है। आदेश है कि मुसलमानों की जमाअत से कटकर न रहो। जमाअती (सामूहिक) जीवन व्यतीत करो। ख़ुद को नियम-व्यवस्था का पाबन्द बनाओ। तुम्हारा कोई अमीर और नायक हो जिसकी आज्ञा का तुम पालन करो। इस्लामी संगठन और मिल्लत के सामूहिक स्वरूप को हर स्थिति में बाक़ी रखने की कोशिश करो। अगर हुकूमत इस्लामी हो तो इस स्थिति में तो इसका महत्त्व और अधिक होगा।

नायक और धर्म-विद्वान शरीअत के मुताबिक़ जो आदेश और हिदायत दें, उनको सुनो, उनकी उपेक्षा न करो और बढ़-चढ़कर आज्ञापालन करो।

अपने दीन की सुरक्षा और उसके तक़ाज़ों और अपेक्षाओं के अन्तर्गत प्रिय वतन को भी छोड़ना पड़ सकता है। और दीन की उच्चता और उसके विकास के लिए और इस बात के लिए कि अल्लाह के क़ानून को धरती में

प्रभुत्त्व प्राप्त हो तुम्हें संघर्ष में हिस्सा लेना होगा। इसके लिए धन भी ख़र्च करना होगा और अपनी जान की क़ुरबानी भी पेश करनी होगी। अर्थात् अगर असत्य के पोषकों से युद्ध करना पड़ जाए तो उस युद्ध में हिस्सा लेना होगा। लेकिन यह न्याय और शान्ति की स्थापना के लिए हो। ख़ुदा की ज़मीन में बिगाड़ पैदा करने के उद्देश्य से न हो।

हदीस में कहा गया है कि जमाअत से एक बित्ता भर भी अलग होना जाइज़ नहीं। इससे अन्दाज़ा किया जा सकता है कि इस्लाम में सामूहिकता और एकता को कितना महत्त्व दिया गया है। सामूहिकता को नज़रअन्दाज़ करने का अर्थ यह होता है कि अब इस्लाम के मुक़ाबले में आदमी को अपना व्यक्तिगत स्वार्थ अधिक प्रिय है। अब इस्लाम से उसका कोई सम्बन्ध और रिश्ता बाक़ी नहीं रहा सिवाय इसके कि उसे अपनी ग़लती का एहसास हो जाए और वह तौबा करके अपना सुधार कर ले और सामूहिकता की ओर पलट आए।

यह हदीस बताती है कि जिस व्यक्ति ने अज्ञान और ग़ैर-इस्लामी चीज़ों की तरफ़ लोगों को आमंत्रित किया और गरोही और साम्प्रदायिक पक्षपातों को बढ़ावा दिया, उदाहरणार्थ इस्लामी भाईचारे के बदले रंग व नस्ल के भेद-भाव को अपने प्रयासों और संघर्षों का आधार बनाया या इस्लामी संगठन से अलग होने पर लोगों को उकसाया, वह इतना बड़ा अपराधी है कि वह ख़ुदा के यहाँ नारकीय ठहरेगा। जन्नत में उसके लिए कोई जगह न होगी। उसकी नमाज़, उसका रोज़ा और उसका यह दावा कि वह मुसलमान है, इस गम्भीर तथ्य को छुपा नहीं सकते।

(4) हज़रत तमीम दारी (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "दीन शुभेच्छा और नसीहत है।" आप (सल्ल०) ने यह बात तीन बार कही। हमने पूछा कि किसके लिए? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह के लिए, उसकी किताब के लिए और उसके रसूल के लिए और मुसलमानों के इमामों और अधिकारियों के लिए और सामान्य मुसलमानों के लिए।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह हदीस संग्राहक वाक्यों में से है। शब्द तो थोड़े हैं मगर वे सारे शुभ गुणों और सांसारिक व पारलौकिक भलाइयों को अपने अन्दर समेटे

हुए हैं। इस हदीस से मालूम होता है कि दीन अर्थात् इस्लाम अपनी मूल आत्मा की दृष्टि से सर्वथा शुभेच्छा और शुभ-चिन्ता है और यह शुभेच्छा और शुभ-चिन्ता कोई सीमित प्रकार की कदापि नहीं है, बल्कि इसमें पूरी व्यापकता और विस्तीर्णता पाई जाती है। इस्लाम में सिर्फ़ अपने ही लिए नहीं, बल्कि सभी के लिए शुभेच्छा और भलाई अपेक्षित है। आदमी ख़ुदा की किताब के हक़ भी अदा करे और ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) का भी सच्चा वफ़ादार और शुभचिन्तक हो। क़ुरआन पढ़े भी और उसके आदेशों पर अमल भी करे, और उसमें निहित तत्त्वदर्शिता और रहस्यों तक यथासम्भव पहुँचने की कोशिश भी करे। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) पर सच्चे दिल से ईमान लाए। सबसे ज़्यादा आपको प्रिय रखे। आपके आज्ञापालन को अपने लिए श्रेय और सौभाग्य समझे।

मुसलमानों के इमामों अर्थात् उच्चाधिकारियों के साथ वफ़ादारी को क़ायम रखे। उनके आदेशों व हिदायतों की अवहेलना करके व्यवस्था को बिगाड़ने का अपराध न करे। उनकी ग़लत नीतियों पर उन्हें अवश्य टोका जाए और उन्हें समझाने की कोशिश करे। इसी तरह धार्मिक विद्वानों के आदर में कोई कमी न आने दे, इसलिए कि वे धार्मिक मार्गदर्शक हैं। उनसे धार्मिक विषयों में लाभ उठाए। उनके सम्मान में कोताही न करे और दीनी मस्लों में उनकी रहनुमाई से पूरा लाभ उठाए।

समस्त मुसलमानों की भलाई चाहने और शुभकामना का आशय यह है कि हम उनसे कटकर न रहें। उनकी धार्मिक और सांसारिक भलाइयों की चिन्ता करें। उनमें इल्म को बढ़ावा दें। हमारी कोशिश यह हो कि उन्हें कोई हानि न पहुँचे।

(5) हज़रत नोमान-बिन-बशीर (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अपनी (नमाज़ में) पंक्तियों को बराबर रखो अन्यथा अल्लाह तुम्हारे चेहरों के मध्य विभेद पैदा कर देगा।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मालूम हुआ कि नमाज़ की भी इस्लामी इज्तिमाइयत (संगठन) में भूमिका है। कहा जा रहा है कि अपनी नमाज़ में पंक्ति को ठीक रखो। उनमें किसी तरह की विषमता और अन्तर न पाया जाए वरना इसका बुरा प्रभाव

तुम्हारी इज्तिमाइयत (संगठन) पर पड़कर रहेगा। तुम्हारे बीच मतभेद उत्पन्न होंगे। तुममें परस्पर आत्मीयता और एकता शेष न रह सकेगी और यह भी सम्भव है कि इससे तुम्हारी इज्तिमाइयत में ही नहीं तुम्हारे चेहरों में भी अन्तर आ जाए, वे विकृत हो जाएँ। तुम्हारे व्यक्तित्त्व में कोई आकर्षण और प्रभाव बाक़ी न रहे। तुम हर जगह रुसवा और बरबाद हो।

(6) हज़रत अबू-अय्यूब अनसारी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "किसी व्यक्ति के लिए वैध नहीं कि वह तीन दिन से अधिक अपने भाई को छोड़े रहे। और स्थिति यह हो कि कहीं उनका आमना-सामना हो जाए तो यह अपना मुँह दूसरी तरफ़ फेर ले और वह अपना मुँह दूसरी ओर कर ले। और उन दोनों में बेहतर व्यक्ति वह है जो (सम्बन्ध को पूर्वत् स्थिति में लाने के लिए) सलाम में पहल करे।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : तीन दिन में अनिवार्यतः अपने आवेश पर नियंत्रण पा लेना चाहिए। सम्बन्धों का त्याग तीन दिन से ज़्यादा अवैध है। लेकिन दीन की मस्लहतों को देखते हुए यह अवधि तीन दिन से ज़्यादा भी हो सकती है। शर्त यह है कि इसके पीछे स्वार्थपरता, अहंकार और कोई अप्रिय भावना काम न कर रही हो।

दूसरों का ख़याल और मानसिकता की रक्षा

(1) हज़रत अबू-मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुममें से कोई हमारी मस्जिद या हमारे बाज़ार से होकर जाए और उसके पास तीर हों तो उसे चाहिए कि तीर पर हाथ रख ले ताकि उससे किसी मुसलमान को कोई हानि न पहुँचे।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मतलब यह है कि मस्जिद हो या बाज़ार जहाँ लोगों की भीड़ हो वहाँ अपने हथियार को बहुत देख-भालकर अपने पास रखना चाहिए, चाहे तीर हों या तलवार और भाला आदि कोई दूसरा हथियार, ताकि ग़लती से कहीं कोई व्यक्ति घायल न हो जाए।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल

(सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिस किसी व्यक्ति ने अपने भाई की तरफ़ लोहे (अर्थात् हथियार आदि) से संकेत किया तो फ़रिश्ते उसपर उस समय तक लानत करते हैं जब तक कि वह उस लोहे को रख न दे यद्यपि वह उसका अपना सगा भाई ही क्यों न हो।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : नुक़सान पहुँचाने का इरादा न भी हो, हँसी-मज़ाक़ में भी संकेत के रूप में भाई पर हथियार नहीं उठाना चाहिए। किस दर्जा एक-दूसरे का ख़्याल रखने की ताकीद इस हदीस में की गई है।

(3) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) और हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "जो व्यक्ति हमपर हथियार उठाए वह हममें से नहीं है।" इसे बुख़ारी ने रिवायत किया और मुस्लिम ने ये शब्द भी उद्धृत किए हैं कि "जो व्यक्ति हमको धोखा दे वह हममें से नहीं है।"

व्याख्या : नबी (सल्ल०) कह रहे हैं कि जो हमपर हथियार उठाए तो उसका यह अमल हमारे तरीक़े और हमारे लाए हुए दीन के बिल्कुल विरुद्ध है।

उस व्यक्ति का अमल भी हमारे दीन के विरुद्ध है जो कोई चीज़ बेचते समय बेची जानेवाली चीज़ में पाए जानेवाले ऐब को ज़ाहिर न करे।

(4) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुममें से कोई व्यक्ति किसी स्त्री के साथ निकाह करने का पैग़ाम भेजे तो अगर उसके लिए सम्भव हो कि वह उसे (हाथ, चेहरा) देख सके जो उसको निकाह के लिए प्रेरित करता है तो एक नज़र देख ले।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अपनी मंगेतर को निकाह से पहले एक नज़र देख लेना अच्छा है ताकि निकाह पूरे इत्मीनान और चाहत के साथ करे और बाद में किसी प्रकार का पछतावा और अफ़सोस उसे न हो। स्त्री का सौन्दर्य निरर्थक नहीं है, लेकिन यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि निकाह में केवल सुन्दरता ही पर दृष्टि नहीं होनी चाहिए बल्कि ध्यान देने की मूल चीज़ स्त्री की धार्मिकता, सज्जनता और नैतिक गुण है।

(5) हज़रत ख़नसा-बिन्ते-ख़िज़ाम (रज़ि०) बयान करती हैं कि वे विधवा थीं, उनके पिता ने (उनकी अनुमति के बिना) उनका किसी से निकाह

कर दिया और उन्हें यह निकाह पसन्द न था। वे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुईं, आप (सल्ल०) ने उनका निकाह जो उनके पिता ने कर दिया था, रद्द कर दिया। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : निकाह से पहले स्त्री से उसकी अनुमति लेनी ज़रूरी है। जो स्त्री विधवा और बालिग़ हो उसका निकाह उस समय तक दुरुस्त नहीं जब तक कि वह ख़ुद इसकी अनुमति न दे।

(6) हज़रत उसामा-बिन-ज़ैद (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मुसलमान ग़ैर-मुस्लिम का वारिस नहीं होता और न ग़ैर-मुस्लिम मुसलमान का वारिस होता है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस बात पर सब सहमत हैं कि ग़ैर-मुस्लिम मुसलमान का वारिस नहीं होता। अधिकांश विद्वानों की दृष्टि में मुसलमान भी अपने ग़ैर-मुस्लिम मूरिस (पितृ आदि) का वारिस नहीं होता, इस हदीस से इसी की पुष्टि होती है।

एक हदीस में है— "दो विभिन्न दीन रखनेवालों में विरासत नहीं होती" (हदीस : अबू-दाऊद)। एक दूसरी हदीस में आया है— "व-ल-दुज़्ज़िना (अवैध सन्तान) अपने बाप का वारिस नहीं होगा और न उसका बाप उसका वारिस होगा (हदीस : तिर्मिज़ी)। तिर्मिज़ी और इब्ने-माजा की एक रिवायत में है— "क़ातिल वारिस नहीं होता।"

इन रिवायतों से इसका सिर्फ़ एक नियम और क़ानून ही नहीं मालूम होता कि कौन-कौन से लोग विरासत से वंचित होंगे बल्कि इनसे एक बड़े तथ्य का भी पता चलता है। विरासत वास्तव में वारिस और मूरिस के बीच गहरे सम्बन्ध और रिश्ते का प्रतीक है। पारस्परिक सम्बन्ध ज़िन्दगी की उन चीज़ों में से है जिनका आदर करना प्रत्येक अवस्था में अनिवार्य है। किसी की अकारण हत्या करके आदमी मक़तूल (निहत) से अपनी विरक्ति को प्रकट करता है। इसके बाद भी उससे रिश्ता जोड़ना रिश्ते का अपमान है। इसलिए सम्बन्धों की पवित्रता और उसके स्वाभिमान की अपेक्षा है कि हत्यारा निहत का वारिस न ठहराया जाए। निहत व्यक्ति का सम्मान और उसके स्वाभिमान की रक्षा उसके मरने के बाद भी की जाए।

"व-ल-दुज़्ज़िना (अवैध सन्तान) अपने बाप का वारिस न होगा और

न उसका बाप उसका वारिस होगा।'' अवैध सन्तान और उसके बाप के बीच भी वह रिश्ता नहीं पाया जाता जो एक वैध सन्तान और उसके पिता के बीच पाया जाता है। बाप ने उस अमानत के सम्मान का आदर नहीं किया जो ख़ुदा ने उसे प्रदान किया था। उसने उसे ग़लत जगह सौंपा और हमेशा के लिए औलाद को कलंक का दाग़ दे दिया, जो मिटाए नहीं मिटता। उसका यह कर्म किसी हत्या से कम नहीं है। क़त्ल में आदमी किसी के प्राण ले लेता है और व्यभिचार में व्यभिचारी अपनी सन्तान के सम्मान का गला घोंट देता है। अगर वह अपनी विवाहिता पत्नी से ही सम्बन्ध रखता तो वह उसकी जाइज़ औलाद होती और औलाद व बाप के मध्य एक-दूसरे पर हक़ होते। लेकिन इतना बड़ा विश्वासघात करके औलाद को उसने एक ऐसे मरुस्थल में डाल दिया जहाँ उसे कोई छाया न मिल सके। उसे एक अबला नारी के हवाले कर दिया और उसको उसकी दया पर छोड़ दिया, जो ख़ुद सहारे की मोहताज होती है। जिस पवित्र नाते और रिश्ते को उसने ख़ाक में मिला दिया उसमें वह अपना कोई हक़ ढूँढे, ख़ुदा को यह कैसे स्वीकार हो सकता है।

इसी प्रकार ग़ैर-मुस्लिम और मोमिन के बीच भी कोई विरासत नहीं है। इसका कारण भी यही है कि ग़ैर-मुस्लिम और मोमिन के बीच वास्तविक रिश्ता नहीं पाया जाता। इसलिए उनमें कोई भी एक-दूसरे का स्थानापन्न नहीं हो सकता। सारे रिश्तों का मूलाधार अल्लाह का रिश्ता है। अतएव कहा गया है— ''और उस ख़ुदा का डर रखो जिसके वास्ते से तुम एक-दूसरे से मदद माँगते हो, और रिश्ते-नाते की भी तुम्हें ख़याल रखना है।'', (क़ुरआन, 4:1)। जब उसने रिश्ते की असल बुनियाद ही को ढा दिया तो फिर उन दोनों में क्या रिश्ता हो सकता है। जीवन में तो कुछ बातों में उनमें परस्पर कुछ सम्बन्ध और मामले हो सकते हैं, लेकिन मरने के बाद तो ये सम्बन्ध भी शेष नहीं रहते, लेकिन जिन लोगों के रिश्ते और सम्बन्ध की बुनियाद ख़ुदा होता है उनकी मृत्यु से उनके रिश्ते समाप्त नहीं हो जाते, शेष रहते हैं। और वे एक-दूसरे के वारिस हो सकते हैं, जैसा कि हदीस में है कि जब आप (सल्ल०) से उस व्यक्ति के बारे में पूछा गया जो एक मुसलमान के हाथ पर ईमान लाया था तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, ''वह व्यक्ति (जिसके हाथ पर वह ईमान लाया) लोगों में सबसे अधिक निकट का सम्बन्ध रखता है, उसके जीवन में

भी और उसकी मृत्यु के पश्चात् भी।" (हदीस : अबू-दाऊद)

मालूम हुआ कि रिश्ते व सम्बन्ध का अपना नाज़ुक पहलू भी होता है जिसका ध्यान रखना और आदर करना बहुत ज़रूरी है।

(7) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "कोई व्यक्ति अपने भाई के निकाह के पैग़ाम पर अपना पैग़ाम न दे, यहाँ तक कि वह निकाह कर ले या निकाह का इरादा छोड़ दे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : किसी व्यक्ति की मंगेतर से अपने निकाह का पैग़ाम भेजना पुरुषार्थ, सज्जनता और इस्लामी भाईचारे के विरुद्ध है। और अगर शादी का मामला लगभग तय हो चुका हो, इस स्थिति में निकाह का पैग़ाम भेजना बिलकुल ही ग़लत होगा।

(8) हज़रत अनस बिन-मालिक (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "परस्पर एक-दूसरे से द्वेष न रखो, और न ईर्ष्या करो, और न पीठ दिखाओ, और हो जाओ अल्लाह के बन्दे भाई-भाई। किसी मुस्लिम के लिए यह वैध नहीं कि वह अपने भाई को तीन दिन से अधिक छोड़ दे (और उससे सम्बन्ध न रखे)।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : पीठ न दिखाओ से अभिप्रेत है कि भेंट करना न छोड़ो। समाज में आपस के सम्बन्ध कितने पवित्र होने चाहिएँ, इसका भली-भाँति अनुमान इस हदीस से किया जा सकता है। आपस में न ईर्ष्या हो, न शत्रुता और द्वेष। सभी एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति रखनेवाले और शुभचिन्तक हों, कोई किसी को ग़ैर न समझे। और, अल्लाह न करे, किसी से वैमनस्य हो जाए तो तीन दिन से अधिक उसे आगे न बढ़ने दे। एक रिवायत में है, "जो व्यक्ति (भाई को) तीन दिन से ज़्यादा छोड़ दे और (मिलाप करने से पहले) मर गया तो वह जहन्नम में गया" (अबू-दाऊद)। इसी तरह एक अन्य रिवायत में है ?: "जो व्यक्ति अपने भाई को एक साल तक छोड़ दे तो मानो उसने उसकी हत्या कर दी।" (अबू-दाऊद)

9. हज़रत अबू-दरदा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "क्या मैं तुम्हें बताऊँ कि रोज़े, नमाज़ और सदक़ा (दान) से भी श्रेष्ठ क्या चीज़ है ?" लोगों ने कहा कि क्यों नहीं, ऐ

अल्लाह के रसूल! आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "आपस में (बिगाड़ हो तो) मेल कराना। और पारस्परिक सम्बन्धों में फ़साद डालना मूँड देनेवाली चीज़ है।" (अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् सम्बन्धों में फ़साद डालना ऐसा कर्म है जो सारी नेकियों पर पानी फेर देता है, बल्कि यह चीज़ दीन ही को सिरे से ही मेट देनेवाली है। इससे मालूम हुआ कि दीन व ईमान का हमारी नैतिकता और कर्मों से अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। इस्लाम की विशेषता यह है कि उसके दृष्टिकोण से दीन जीवन का कोई परिशिष्ट या मात्र एक भाग नहीं है, बल्कि-सम्पूर्ण जीवन है। विषय चाहे विचार या धारणा का हो या विभिन्न क्षेत्रों में मानव के प्रयासों का, इस्लाम समस्त मामलों में ही हमारा मार्गदर्शन करता है। वह चाहता है कि हमारा हर क़दम सीधी राह पर पड़े और हमारा जीवन टेढ़ी चाल से सुरक्षित रहे। जीवन की अन्तहीन यात्रा में, जिसका सिलसिला दुनिया से लेकर आख़िरत तक चला जाता है, प्रत्येक चरण से हम सफलता के साथ गुज़र सकें।

ग्राह्य चीज़ों में विस्तीर्णता

(1) हज़रत क़बैसा बिन-हुल्ब (रज़ि०) अपने पिता के माध्यम से बयान करते हैं कि उन्होंने ईसाइयों के खाने के बारे में पूछा (कि हम खाएँ या न खाएँ?) एक रिवायत में है कि किसी और व्यक्ति ने नबी (सल्ल०) से प्रश्न किया। अतः उसने अर्ज़ किया कि खानों में एक खाना ऐसा है (अर्थात् किताबवालों का खाना) जिससे मैं परहेज़ करता हूँ। आप (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "तुम्हारे दिल में कोई उलझन पैदा न हो कि इसमें ईसाइयत के सादृश्य होगे।" (हदीस : तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् इस्लाम में ग्राह्य चीज़ों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इस्लाम में कठिनाई और दुस्साध्यता को वैध नहीं रखा गया है। तुम्हें तो अपने व्यवहार से यह दिखाना चाहिए कि तुम्हारा दीन कितना स्वाभाविक, सीधा-सादा तथा सरल है। जब तक भोजन के हराम होने का यक़ीन न हो, मात्र सन्देह के कारण उससे परहेज़ करना या उसके खाने से झिझकना कदापि उचित नहीं है। तुम हर क़ौम का पकाया हुआ खाना खा सकते हो जब तक

कि यह विश्वास न हो जाए कि उसमें कोई हराम चीज़ मिला दी गई है। स्पष्ट रहे कि पूछनेवाले अदी बिन–हातिम थे जो इस्लाम लाने से पहले ईसाई थे।

हज़रत ग़ुज़ैफ़ बिन–हारिस (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) के कुछ व्यवहारों के बारे में हज़रत आइशा (रज़ि०) से पूछा तो मालूम हुआ कि कभी आप (सल्ल०) ग़ुस्ले–जनाबत (सम्भोग क्रिया के बाद स्नान) तुरन्त कर लिया करते थे और कभी रात के अन्तिम भाग में ग़ुस्ल (स्नान) करते थे। इसी तरह वित्र (एक नमाज़) कभी रात के पहले हिस्से में अदा फ़रमाते थे और कभी रात के आख़िरी हिस्से में अदा करते थे। और इसी तरह तहज्जुद की नमाज़ में कभी बुलन्द आवाज़ से क़ुरआन पढ़ते थे और कभी आहिस्ता आवाज़ से क़ुरआन पढ़ते थे। इसपर हज़रत ग़ुज़ैफ़ बिन–हारिस (रज़ि०) ने कहा : "अल्लाहु–अकबर! प्रशंसा और धन्यवाद अल्लाह के लिए है जिसने दीन के मामले में कुशादगी और आसानी रखी है।" (हदीस : अबू–दाऊद, इब्ने–माजा)

(2) हज़रत अब्दुल्लाह बिन–उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि जब आप (सल्ल०) अहज़ाब के सैन्य अभियान (जिसमें आप भी शरीक थे) से वापस हुए तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हममें एलान किया कि "कोई व्यक्ति ज़ुह्र की नमाज़ न पढ़े जब तक कि बनी–क़ुरैज़ा के मुहल्ले में न पहुँच जाए।" कुछ लोगों को नमाज़ के क़ज़ा हो जाने का भय हुआ, उन्होंने बनी–क़ुरैज़ा के यहाँ पहुँचने से पहले ही नमाज़ पढ़ ली। दूसरे लोगों ने कहा कि हम तो जहाँ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हुक्म दिया है वहाँ ही नमाज़ पढ़ेंगे, चाहे नमाज़ क़ज़ा ही क्यों न हो जाए। आप (सल्ल०) दोनों गरोहों में से किसी से अप्रसन्न नहीं हुए। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : एक रिवायत में ज़ुह्र की जगह अस्र का उल्लेख है। सम्भव है जिस समय आपने एलान किया उस समय कुछ लोग ज़ुह्र की नमाज़ अदा कर चुके हों। उन्हें हुक्म हुआ कि वे अब अस्र की नमाज़ बनी क़ुरैज़ा में पढ़ें और जिन लोगों ने ज़ुह्र की नमाज़ अदा नहीं की थी उन्हें हुक्म हुआ कि वे ज़ुह्र की नमाज़ बनी–क़ुरैज़ा में पढ़ें।

बनी–क़ुरैज़ा यहूदियों का एक क़बीला था। अहज़ाब की लड़ाई के अवसर पर अनुबन्ध के अनुसार उसे मुसलमानों का साथ देना चाहिए था। लेकिन वह अपने वचन से फिर गया और उसने मुसलमानों की स्त्रियों और

बच्चों के लिए ख़तरा पैदा कर दिया। अतएव तीन हज़ार मुसलमानों में से एक हिस्से को नगर की सुरक्षा के लिए नियुक्त करना पड़ा। अहज़ाब के जंग की मुसीबत टली तो नबी (सल्ल०) ने बनी-क़ुरैज़ा के दमन के अभियान पर सहाबा (रज़ि०) को रवाना किया था।

सहाबा के एक गरोह को जब यह आशंका हुई कि बनी-क़ुरैज़ा के यहाँ पहुँचने पर नमाज़ का समय बाक़ी न रहेगा तो उसने रास्ते ही में नमाज़ पढ़ ली। उसने समझा कि नबी (सल्ल०) के कथन का अभिप्राय यह नहीं था कि नमाज़ त्यागी जाए, बल्कि आपका आशय यह था कि हमारी कोशिश यह हो कि हम वहाँ पहुँचकर नमाज़ अदा कर सकें, लेकिन जब हम वक़्त पर वहाँ पहुँचने में असमर्थ रहे और यह भय है कि नमाज़ का समय निकल जाएगा तो वहाँ पहुँचने से पहले ही नमाज़ पढ़ लेने में कोई दोष नहीं है।

दूसरे गरोह का फ़ैसला यह था कि हमको नमाज़ वहीं अदा करनी चाहिए जहाँ उसे अदा करने की आपने ताकीद की है। चाहे हमें नमाज़ क़ज़ा ही क्यों न पढ़नी पड़े। जब नबी (सल्ल०) को उनके इस मतभेद की सूचना मिली तो आप (सल्ल०) ने किसी की पकड़ नहीं की और किसी गरोह से यह नहीं कहा कि तुमने हमारी अवज्ञा की है। दोनों गरोहों ने अपनी समझ और वैचारिक प्रयास के आधार पर नबी (सल्ल०) के आदेश का जो आशय समझा उसका अनुसरण किया। इसलिए किसी एक को भी अवज्ञाकारी नहीं ठहराया गया। इससे पता चलता है कि दीनी मामलों में बहुत गुंजाइश है। दीन का दामन ऐसा तंग नहीं है जैसा कि कुछ अतिवादी समझते हैं। इस अतिवादिता से मुस्लिम समुदाय को जो क्षति पहुँची है उसका अनुमान करना भी कठिन है। इस अतिवादिता ने मुस्लिम समुदाय की एकता को छिन्न-भिन्न कर देने में कोई कमी नहीं की है।

(3) हज़रत अबू-सालबा-अल-ख़ुशनी जुरसूम-बिन-नाशिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "निस्संदेह अल्लाह ने तुमपर अनिवार्य कर्मों को ज़रूरी ठहराया है। अतः उनको विनष्ट न करना। और उसने अपराधों के दण्ड निश्चित किए हैं। अतः उनका उल्लंघन न करना। और उसने बहुत-सी चीज़ों को अवैध ठहराया है, तो तुम उनके निकट न जाना। और वह बहुत-सी चीज़ों के विषय में बिना किसी भूल के चुप

रहा। यह तुम्हारे लिए उसकी दयालुता है। अतः तुम उनके विषय में कुरेद में न पड़ना।''
(हदीस : दारे-क़ुत्नी)

व्याख्या : अनिवार्य कर्म और अपराधों के दण्ड शरीअत में निश्चित कर दिए गए हैं। इसी तरह जो चीज़ें अवैध हैं, उनसे भी सूचित कर दिया गया है। अनिवार्य कर्मों की ओर से असावधान न रहें। निर्धारित दण्डों के विषय में सीमा से आगे बढ़ने की कोशिश न करें और जो चीज़ें हराम हैं उनके निकट भी न जाएँ। चीज़ों में मूलतः ग्राह्यता पाई जाती है और इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तीर्ण है। यह वास्तव में ईश्वर की दयालुता और अनुकम्पा है। जिन चीज़ों के बारे में अल्लाह ने ख़ामोशी अपनाई है, तो यह ख़ामोशी भूलकर नहीं बल्कि अपने इरादे से जान-बूझकर अपनाई है। खोद-कुरेद और अनुचित छानबीन से उनको हराम-ठहराने की कोशिश न करें। दयालुता के क्षेत्र को संकीर्ण से संकीर्ण करने की कोशिश सरासर अल्लाह की दयालुता का अपमान है।

(4) हज़रत आमिर-बिन-साद-बिन-अबी-वक़्क़ास (रज़ि०) अपने पिता (साद-बिन-अबी-वक़्क़ास) के माध्यम से रिवायत करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, ''मुसलमानों में सबसे बड़ा अपराधी वह व्यक्ति है जिसने किसी ऐसी चीज़ के बारे में प्रश्न किया जो हराम न थी, उसके प्रश्न करने के कारण वह हराम कर दी गई।''
(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् एक चीज़ ग्राह्य थी। अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार आदमी उससे लाभ उठा सकता था। लेकिन उसके विषय में प्रश्न करने के बाद शरीअत निर्धारित करनेवाले ने उसके सम्बन्ध में कोई निश्चित फ़ैसला कर दिया। उससे रोक दिया या उसके सिलसिले में कुछ पाबन्दियाँ लागू कर दीं। इस प्रकार उसमें वह गुंजाइश बाक़ी न रही जो पहले पाई जाती थी। ऐसा व्यक्ति जो प्रश्न करके उम्मत से उसकी आसानियों और सुविधाओं को छीन लेता है, उम्मत का उपकारकर्ता नहीं हो सकता, बल्कि वह अपराधी है। और अपराधी भी कोई साधारण नहीं, बल्कि उसका अपराध घोर अपराधों में से है।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, ''मुझे छोड़ दो जब तक कि मैं तुम्हें छोड़ दूँ। तुमसे पहले जो क़ौमें

गुज़री हैं वे अपने प्रश्न और अपने नबियों से मतभेद के कारण विनष्ट हुई हैं। अतः जब मैं तुम्हें किसी चीज़ से रोकूँ तो उससे दूर रहो और जब तुम्हें किसी बात का हुक्म दूँ तो जितना तुमसे हो सके उसका पालन करो।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस हदीस में कहा गया है कि अधिक प्रश्न और अनुचित कुरेद व छानबीन से बचो। दीन व शरीअत के दामन को तंग न करो। बनी-इसराईल को गाय ज़िबह करने का आदेश हुआ था। पहले तो उन्होंने इसे हँसी और मज़ाक़ समझा। फिर सवाल पर सवाल करके कि गाय कैसी हो ? उसका रंग कैसा हो ? अपने लिए तंगी पैदा करते चले गए। अन्यथा वे कोई भी गाय ज़िब्ह करके ईश्वरीय आदेश का पालन कर सकते थे।

पिछली क़ौमें जो विनष्ट की गईं उनके विनाश के कारणों में से एक बड़ा कारण यह भी रहा है कि वे अधिक प्रश्न करने से परहेज़ नहीं करती थीं। अपने दुर्भाग्य से धर्म को कठिन और दुस्सध्य बना लेती थीं। उनकी दुष्टताओं के कारण दण्ड के रूप में भी उनको कठोर आदेश दिए जाते। धैर्य और सहनशीलता के साथ आदेशों के पालन के बदले वे अपने नबियों के आदेशों का उल्लंघन करते थे। इसका परिणाम तबाही के सिवा और क्या हो सकता था !

मुस्लिम की रिवायत में है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपने अभिभाषण में फ़रमाया, "ऐ लोगो ! तुम्हारे लिए हज अनिवार्य कर दिया गया है, अतः तुम हज करो।" इसपर एक व्यक्ति ने प्रश्न कर दिया कि प्रत्येक वर्ष हज करें ? आप (सल्ल०) चुप रहे यहाँ तक कि उस व्यक्ति ने तीन बार यही प्रश्न किया। फिर आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर मैं कहता कि हाँ, तो प्रत्येक वर्ष हज करना अनिवार्य हो जाता और तुम्हें इसका सामर्थ्य प्राप्त नहीं।" फिर आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम मुझे छोड़ दो जब तक कि मैं तुम्हें छोड़ दूँ, इसलिए कि जो लोग तुमसे पहले थे वे अधिक प्रश्न करने और अपने नबियों से मतभेद के कारण विनष्ट हुए। अतः जब मैं तुम्हें किसी बात का आदेश दूँ तो यथाशक्ति तुम उसका पालन करो और जब मैं तुम्हें किसी बात से रोकूँ तो तुम उसे छोड़ दो।" (हदीस : मुस्लिम)

आप (सल्ल०) के इस कथन से मालूम हुआ कि दीन में कोई तंगी और ख़राबी नहीं है। यथाशक्ति आदेशों का पालन करना चाहिए। उदाहरणार्थ,

अगर तुम खड़े होकर नमाज़ अदा नहीं कर सकते तो बैठकर अदा करो। और अगर इसकी भी ताक़त नहीं तो लेटे ही लेटे नमाज़ पढ़ो, किन्तु नमाज़ अदा ज़रूर करो। यही मामला दूसरे कर्मों का भी है। शरीअत के इसी गुण को देखते हुए हज़रत सुफ़यान सौरी ने फ़क़ीह उस व्यक्ति को कहा है जिसकी निगाह शरीअत की गुंजाइशों पर हो और वह लोगों के लिए सुविधा और आसानी पैदा करे। रही सख़्ती और अतिवादिता, तो इसमें बहुत-से कुशल मिल सकते हैं।

फ़ितना और बिगाड़ पैदा करना

(1) हज़रत अर्फ़जा (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना कि, "मेरी उम्मत में बुराई और बिगाड़ पैदा होगा, बुराई और बिगाड़ पैदा होगा, बुराई और बिगाड़ पैदा होगा। फिर जो व्यक्ति मुसलमानों के मामले में फूट पैदा करना चाहे जबकि उनमें एकता बनी हुई हो, तो ऐसे व्यक्ति को तलवार से मारो, चाहे वह कोई भी हो।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इससे मालूम हुआ कि मुस्लिम समुदाय में फूट डालना और उसे बढ़ावा देना घोर अपराध है। इस अपराध की भीषणता उस समय और बढ़ जाती है जबकि मुस्लिम समुदाय के अन्दर एकता का वातावरण पाया जाता हो। उम्मत की एकता को खण्डित करनेवाला मृत्यु-दण्ड का पात्र होता है। इस्लामी हुकूमत किसी ऐसे अपराधी को हरगिज़ सहन नहीं कर सकती चाहे वह देखने में उच्चकोटि का व्यक्ति ही क्यों न हो।

(2) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इबलीस अपना सिंहासन पानी पर रखता है, फिर अपनी सेनाओं को (बिगाड़ पैदा करने के लिए) भेजता है। उनमें उससे पद में अधिक निकटवर्ती वह होता है जो उनमें से बड़ा फ़साद डाले। कोई उनमें से आकर कहता है कि मैंने यह और यह काम किया। शैतान कहता है कि तुमने कुछ भी नहीं किया। फिर कोई आकर सूचित करता है कि मैंने अमुक व्यक्ति को छोड़ा नहीं (उसके पीछे पड़ा रहा) जब तक कि मैंने उसमें और उसकी पत्नी में जुदाई नहीं करा दी। शैतान उसको अपने से क़रीब कर लेता है और कहता है कि हाँ, तूने बड़ा काम

किया। (तू मुझे प्रिय है।)" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : पति-पत्नी के बीच जुदाई डालना शैतान की निगाह में महान कार्य है। सत्य यह है कि किसी सुदृढ़ समाज का मूल आधार परिवार की सुदृढ़ता है। समाज परिवारों के ही द्वारा अस्तित्त्व में आता है। समाज का मूल आधार अर्थात् परिवार में अगर टूट-फूट होती है तो यह शैतान के लिए सबसे बढ़कर प्रसन्नता की बात होती है। वह नहीं चाहता कि इनसानी या इस्लामी समाज सुदृढ़ और स्थाई आधारों पर क़ायम हो और उसमें न्याय, प्रेम-भाव, संवेदनशीलता का वातावरण पाया जाए।

(3) हज़रत अबू-बकरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना कि "जब दो मुसलमान अपनी तलवारें लेकर एक-दूसरे को मारने के लिए उठें तो हत्यारा और निहत दोनों ही नरक में जाएँगे।" एक व्यक्ति ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, हत्यारा तो (नरक में) जाएगा, मगर निहत क्यों जाएगा? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उसका इरादा भी तो अपने साथी को मार डालने का था (यद्यपि वह इसमें सफल नहीं हुआ)।"

व्याख्या : अर्थात् उसने एक मुसलमान को मारने के इरादे से स्वयं को रोका नहीं, यह अलग बात है कि वह स्वयं मारा गया। इसलिए नरक का भागी वह भी है।

शिष्टाचार की शिक्षा

(1) हज़रत मुआज़-बिन-जबल (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अपनी हैसियत और सामर्थ्य के अनुसार अपने घरवालों पर ख़र्च करना और प्रशिक्षण की छड़ी उनसे न हटाना और अल्लाह के मामले में उन्हें डराए रखना।" (हदीस : तबरानी)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) घरवालों के सम्बन्ध में जो ताकीद कर रहे हैं दीन में उसे बुनियादी अहमियत हासिल है। आप (सल्ल०) ने कहा कि उनके खिलाने-पिलाने में कंजूसी न करना। अपनी हैसियत के लिहाज़ से उन्हें खिलाओ-पिलाओ और उनकी आवश्यकताएँ पूरी करो। उनकी शिक्षा और इलाज आदि में ख़र्च करने से नहीं कतराना चाहिए।

बाल बच्चों का प्रशिक्षण और उनकी शिष्टता का ध्यान रखना आवश्यक है। कहा जा रहा है कि प्रशिक्षण की ओर से कभी ग़ाफ़िल न होना। इस सिलसिले में कुछ सख़्ती से काम लेना पड़े तो सख़्ती से काम ले सकते हैं। उन्हें अपनी तरफ़ से ऐसा निडर और निर्भय न बना देना कि उन्हें तुम्हारी परवा न हो और वे मनमानी करने लग जाएँ। शिक्षा और प्रशिक्षण में नरमी के साथ सख़्ती की भी ज़रूरत होती है। अलबत्ता इस बात का ख़्याल रहे कि मार सख़्त न हो और न उनके मुँह पर मारना।

ऐसा करना कि वे अल्लाह से डरते रहें और उसके हक़ों को पहचान लें। उनका जीवन ईश-परायणता का हो। लम्बी हदीस का यह एक अंश है जो यहाँ उद्धृत किया गया है।

(2) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब अपने पिता और वे उनके दादा से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अपने बच्चों को जब वे सात बरस के हो जाएँ तो नमाज़ पढ़ने का आदेश दो और जब वे दस वर्ष के हो जाएँ तो उन्हें नमाज़ के लिए मारो और बिस्तरों पर उन्हें अलग-अलग सुलाओ।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस हदीस में आदेश दिया गया है कि जब बच्चे दस वर्ष के हो गए फिर भी नमाज़ नहीं पढ़ते तो कुछ सख़्ती से काम लो ताकि वे नमाज़ के पाबन्द हो सकें।

दस वर्ष की अवस्था में बच्चों में काम-चेतना जागृत होने लगती है। इसलिए सावधानी की बात यही है कि वे अलग-अलग बिस्तर पर सोएँ।

शिक्षण-प्रशिक्षण

(1) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "(लोगों को) शिक्षित करो और आसानी पैदा करो। और जब तुममें से किसी को क्रोध आ जाए तो चाहिए कि वह चुप हो जाए। जब तुममें से किसी को क्रोध आ जाए तो चाहिए कि चुप हो जाए। जब तुममें से किसी को क्रोध आ जाए तो चाहिए कि वह चुप हो जाए।"

(हदीस : अहमद, तबरानी फ़िल-कबीर)

व्याख्या : अपनी औलाद की तरह आम लोगों का भी हम पर हक़ होता है इसलिए इस हदीस में कहा गया है कि लोगों को दीन सिखाओ। दीन की तालीम और उसके प्रचार-प्रसार में असावधानी बरतना ज़ुल्म है। लोगों को दीन की शिक्षाओं से परिचित कराना तुम्हारा कर्तव्य है।

इस हदीस में एक मुख्य बात यह भी कही गई है कि तुम्हें आसानी पैदा करनी चाहिए। किसी मामले में कठिनाई और तंगी पैदा करना ख़ुद दीन की अपनी प्रकृति के प्रतिकूल है। कुछ लोग सख़्ती और अतिवादिता को ही दीन समझते हैं, यह ग़लत है। इस्लाम तो आया ही इसलिए है कि अनुचित सख़्तियों और प्रतिबन्धों से लोगों को मुक्ति दिलाए और सन्तुलित मार्ग की ओर लोगों का मार्गदर्शन करे।

इस हदीस में क्रोध का यह एक इलाज बताया गया है कि क्रोध आने पर आदमी मौन और ख़ामोश हो जाए। यह बात आप (सल्ल०) ने तीन बार फ़रमाई। इससे उसके महत्त्व और ज़रूरत का अन्दाज़ा किया जा सकता है। क्रोध आने पर ख़ामोश हो जाए ताकि बात आगे न बढ़ सके और कोई ख़राबी पैदा न हो। एक दूसरी हदीस में है कि क्रोध आए तो आदमी वुज़ू कर ले। ग़ुस्से को दूर करने का यह भी एक कारगर और उत्तम उपाय है। वुज़ू से ग़ुस्से की गरमी और तेज़ी दूर हो जाएगी और इस तरह ग़ुस्से की जो आग भड़क उठी थी वह ठण्डी पड़ जाएगी।

बुराई को मिटाना

(1) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "तुममें से जो कोई व्यक्ति किसी बुराई को देखे तो उसे अपने हाथ से बदल दे और यदि उसे इसकी सामर्थ्य प्राप्त न हो तो फिर अपनी ज़बान के द्वारा बदलने का प्रयास करे और अगर उसे इसकी भी सामर्थ्य न हो तो फिर दिल से ही (उसे बुरा जाने और उसके मिट जाने की कामना करे)। और यह सबसे कमज़ोर ईमान की बात है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् तुम्हारी कोशिश यह हो कि समाज में कोई बुराई पनपने न पाए। जब भी समाज में कोई बुराई या शरीअत के विरुद्ध कोई चीज़

दिखाई दे, उसे तुरन्त अपनी शक्ति से मिटा दें ताकि वह बुराई अपनी जगह बाक़ी न रहे, लेकिन अगर उसकी सामर्थ्य न हो तो उसके विरुद्ध आवाज़ उठाएँ। लोगों का उसकी तरफ़ ध्यान दिलाएँ कि वह इस बुराई को कदापि सहन न करें और अगर इसकी भी किसी व्यक्ति में हिम्मत और साहस नहीं है तो कम से कम वह अपने दिल में ही उस बुराई से कुढ़न महसूस करे। और इस इरादे पर क़ायम रहे कि जब भी उसे शक्ति हासिल होगी वह बुराई के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करेगा। और अगर उसे मिटा देने की शक्ति हासिल हुई तो उसको मिटाकर रहेगा। यह ईमान की निम्नतर श्रेणी है। अब यदि कोई व्यक्ति ऐसा है कि वह अपने दिल में भी बुराई से कोई तकलीफ़ महसूस नहीं करता तो फिर उसे अपने ईमान की चिन्ता करनी चाहिए। क्योंकि मोमिन के दिल की यह हालत नहीं हुआ करती।

सिफ़ारिश

(1) हज़रत अबू-मूसा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के विषय में बताते हैं कि जब आप (सल्ल०) के पास कोई माँगनेवाला या मुहताज आता तो आप (सल्ल०) कहते कि "इसके लिए सिफ़ारिश करो, इसका तुम्हें फल मिलेगा।" और अल्लाह अपने रसूल के मुख से जो चाहता है, फ़ैसला करता है।

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मतलब यह है कि ज़रूरतमन्द की मदद करो और दूसरों को भी इस बात पर उभारो कि वे मुहताज की ज़रूरत पूरी करें। यह पुण्य का काम है, इसका फल मिलेगा। फिर आप (सल्ल०) देते जो कुछ देने का फ़ैसला करते।

(2) हज़रत अबू-मसऊद (रज़ि०) से रिवायत है कि एक व्यक्ति नबी (सल्ल०) के पास आया और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, मेरे पास सवारी नहीं है, मुझे सवारी दे दीजिए। आप (सल्ल०) ने कहा, "मेरे पास तो सवारी नहीं है, लेकिन तुम अमुक व्यक्ति के पास चले जाओ। शायद वह तुम्हें सवारी दे दे।" वह उसके पास चला गया। उसने उसे सवारी दे दी। फिर वह अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ और आपको इसकी सूचना दी। आप (सल्ल०) ने कहा, "जो व्यक्ति किसी नेक बात की ओर मार्गदर्शन करे तो उसे उस कार्य के करनेवाले के फल के समान फल मिलेगा।"(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् फल और प्रतिदान का हक़दार सिर्फ़ वही व्यक्ति नहीं होता जो दूसरों के काम आता है और उनकी ज़रूरत पूरी करता है, बल्कि उसे भी भरपूर फल और प्रतिदान मिलता है जो सहानुभूति और संवेदना के भाव से किसी को अच्छी सलाह देता है और उसका मार्गदर्शन करता है।

ऋण

(1) हज़रत अबू-क़तादा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिस व्यक्ति को यह बात प्रिय हो कि अल्लाह उसे क़ियामत के दिन की कठिनाइयों से बचाए तो उसे चाहिए कि वह (अपना ऋण वुसूल करने में) तंगदस्त लोगों को मोहलत दे या अपना ऋण माफ़ कर दे।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि ज़रूरत पड़ने पर आदमी एक-दूसरे से ऋण ले सकता है। लेकिन उसे ऋण अदा करने की चिन्ता रहनी चाहिए। जितना शीघ्र हो सके ऋण देनेवाले व्यक्ति का ऋण चुका दे। दूसरी ओर ऋण देनेवाले व्यक्ति को भी ऋण की वुसूली में नरमी से काम लेना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो तंगी में पड़े क़र्ज़दार को मोहलत दे ताकि वह आसानी से ऋण चुका सके। और अगर वह तंगदस्त व परेशान हाल ऋणी का पूरा ऋण या उसका कुछ अंश माफ़ कर दे तो यह और भी अच्छा है। इस तरह वह ज़्यादा से ज़्यादा अपने रब की ख़ुशी हासिल करने का पात्र हो जाएगा। ख़ुदा क़ियामत की कठिनाइयों में उसके लिए आसानियाँ पैदा करेगा और उस दिन की कठिनाइयों से उसे मुक्त कर देगा।

वादा

(1) हज़रत अली (रज़ि०) और हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "वादा भी एक क़र्ज़ है (जिसे अदा होना चाहिए)।"(हदीस : तबरानी फ़िल-औसत)

व्याख्या : जिस प्रकार कर्ज़ का चुकाना अनिवार्य होता है उसी प्रकार किसी व्यक्ति से जो वादा करो उसे भी पूरा करो। वादे को तोड़ना उसी प्रकार की बददयानती और बेईमानी है जिस प्रकार की बददयानती इसे समझा जाता

है कि कोई व्यक्ति क़र्ज़ तो ले किन्तु क़र्ज़ लेकर उसे चुकता करने की उसे कोई चिन्ता न हो।

ख़बरे-वाहिद

(1) हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) से रिवायत है। वे बयान करते हैं कि मैं अबू तलहा अनसारी (रज़ि०), अबू-उबैदा-बिन-जर्राह (रज़ि०) और उबैय-बिन-कअब (रज़ि०) को फ़ज़ीह अर्थात् ख़जूर की शराब पिला रहा था कि उनके पास एक आनेवाला आया और उसने कहा कि "शराब हराम कर दी गई।" अबू-तलहा (रज़ि०) ने कहा कि ऐ अनस, उठकर उन (शराब के) मटकों के पास जाओ और उनको तोड़ दो। हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि मैं खड़ा हुआ, एक मिहरास (वह उपकरण जिससे दवा आदि कूटते हैं) जो हमारे पास था उसे मैंने उन मटकों पर मारा यहाँ तक कि वे टूट गए। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : 'ख़बरे-वाहिद' एक पारिभाषिक शब्द है। जब किसी हदीस के रावी (उल्लेखकर्ता) अधिक न हों, बल्कि थोड़े या कुछेक ही हों तो उसे ख़बरे-वाहिद कहते हैं। इस रिवायत से भली-भाँति अनुमान किया जा सकता है कि आदरणीय सहाबा (रज़ि०) किस दर्जे का ईमान रखते थे। यह सुनते ही कि शराब हराम हो गई, शराब के मटके तोड़ दिए जाते हैं और शराब का एक घूँट भी कण्ठ के नीचे उतरने नहीं दिया जाता।

इस रिवायत से यह भी मालूम हुआ कि किसी बात पर विश्वास करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसकी ख़बर हम तक कई आदमियों के द्वारा पहुँची हो। संभावित लक्षणों की उपस्थिति में एक आदमी की दी हुई सूचना भी विश्वास के लिए पर्याप्त है। यही कारण है कि मुहद्दिसीन और फ़ुक़हा (हदीस शास्त्र के विद्वान और धर्मज्ञाता) ख़बरे वाहिद की रिवायतों को भी स्वीकार करते हैं, शर्त यह है कि मीमांसा की दृष्टि से उनमें कोई दोष और ऐब न पाया जाता हो।

सामूहिक हित

क़ौम की भावनाओं का आदर

(1) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि मुझसे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "तुम्हारी क़ौम के कुफ़्र का ज़माना अभी जल्द ही न गुज़रा होता तो मैं काबा को तोड़कर इबराहीम (अलैहि०) की बुनियाद पर उसका निर्माण करा देता। इसलिए कि क़ुरैश ने काबा के (नव निर्माण) के समय उसे छोटा कर दिया।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : हज़रत आइशा (रज़ि०) ने रसूल (सल्ल०) से काबा को हज़रत इबराहीम (अलैहि०) की बुनियाद पर निर्माण कराने की बात कही थी, इसलिए जवाब में आप (सल्ल०) ने कहा कि मैं ऐसा करता किन्तु क्योंकि तुम्हारी क़ौम अर्थात् क़ुरैश का आज्ञानकाल बीते अभी अधिक दिन नहीं हुए हैं। काबा की किसी दीवार को गिराना उनके लिए कष्टप्रद होगा, इसलिए हम उसे उसकी वर्तमान दशा पर रहने देते हैं।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) का बयान है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) उन दो रुक्नों का इसतिलाम (बोसा देना या चूमना) नहीं करते थे जो इबराहीमी बुनियाद पर नहीं थे। अर्थात् आप (सल्ल०) रुक्ने-शामी और रुक्ने-इराक़ी का इसतिलाम नहीं फ़रमाते थे। काबा के चार गोशे हैं। हर गोशे को रुक्न कहते हैं। एक रुक्न हजरे-असवद (काला पत्थर) का है। उसके सामने पश्चिमी गोशा रुक्ने-यमानी कहलाता है। रुक्ने-यमानी को दोनों हाथों या सिर्फ़ दाहिने हाथ से छूना सुन्नत है। हजरे-असवद का इसतिलाम अर्थात् बोसा देना (चूमना) या हाथ लगाना पहली बार और आठवीं बार अनिवार्य सुन्नत (सुन्नते मुअक्कदा) है। सुन्नत नबी (सल्ल०) के तरीक़े या आचरण को कहते हैं। बाक़ी दो रुक्न (रुक्ने शामी और रुक्ने इराक़ी) का इसतिलाम नहीं किया जाता। इनका इसतिलाम करें तो पूरे काबा का तवाफ़ न होगा। काबा का कुछ हिस्सा तवाफ़ से रह जाएगा। इसी लिए तवाफ़ (परिक्रमा) हतीम के अन्दर से नहीं बाहर से किया जाता है। काबा का जो भाग काबा के नव-निर्माण में शामिल नहीं किया गया, उस भाग को कम ऊँची दीवार से घेर

दिया गया है। उसे हतीम कहते हैं। हतीम वास्तव में काबा ही का हिस्सा है।

हज़रत आइशा (रज़ि०) की हदीस में हज़रत इबराहीम (अलैहि०) की बुनियाद पर काबा का नवनिर्माण न कराने की मस्लहत आप (सल्ल०) ने यह बयान की कि वह क़ुरैश के लिए अत्यन्त कष्टप्रद होगा। इसलिए कि अभी जल्द ही यह क़ौम ईमान लाई है। इससे मालूम हुआ कि कोई महत्त्वपूर्ण काम करने से पहले यथासम्भव मस्लहतों और मुख्य रूप से समष्टीय मस्लहतों का आदर करना ज़रूरी है। जिस काम में फ़ितने (आज़माइश) का भय हो और वह काम अनिवार्य न हो तो उसे छोड़ देने में कोई दोष नहीं है, बल्कि हिक्मत और मस्लहत इसी में है कि उसे छोड़ दिया जाए।

सावधानी

(1) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "बर्तन को ढक दिया करो, मशकीज़ा (पानी रखने का चमड़े का थैला) को डाट लगा दो, दरवाज़े को (रात में) बन्द कर दिया करो, और चिराग़ को (सोते समय) बुझा दिया करो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् सावधानी के लिए जो अपेक्षित है उसकी ओर से कभी असावधान नहीं रहना चाहिए। अगर बर्तन को खुला हुआ बिना ढके यूँ ही रहने दिया या मशकीज़े का मुँह डाट लगाकर बन्द नहीं किया तो बहुत सम्भव है कि बर्तन या पानी में कीड़ा-मकोड़ा घुस जाए। दरवाज़े को खुला रखने में भय है कि कोई अजनबी या कुत्ता आदि कोई जानवर घर में घुस जाए और नुक़सान पहुँचाए। चिराग़ को जलता हुआ छोड़कर सो गए या आग को बुझाया नहीं या उसे राख में अच्छी तरह नहीं दबाया तो इससे घर में आग लग सकती है।

इसी तरह अन्य मामलों में भी उत्तम उपाय से काम लेना ज़रूरी है। अतएव हदीस में आता है कि तीन प्रकार के आदमी ऐसे हैं जो ख़ुदा से फ़रियाद करते हैं मगर उनकी फ़रियाद सुनी नहीं जाती। उनमें से तीसरा उस व्यक्ति को बताया गया है जो किसी को अपना ऋण दे लेकिन उसपर गवाह न बनाए।

(2) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०)

ने उस छत पर सोने से रोका जिसपर आड़ की दीवार न हो।(हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : छत के किनारों पर दीवार न होने के कारण असावधानी की अवस्था में आदमी छत से नीचे गिरकर मर सकता है या ज़ख़्मी हो सकता है। इसलिए ऐसी छत पर सोना जो दीवार से घेरी न गई हो, बड़ी नादानी की बात है। अबू-दाऊद की एक रिवायत में है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति ऐसी छत पर सोए जिसपर कोई रोक न हो तो उससे ज़िम्मा उठ गया।" अर्थात् अब अगर वह गिरकर मर जाता है तो किसी दूसरे पर इसकी ज़िम्मेदारी नहीं, वह अपनी मौत का स्वयं ज़िम्मेदार है।

अनुभवों का महत्त्व

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "मोमिन एक बिल से दो बार नहीं डसा जाता।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मोमिन के लिए सतर्कता आवश्यक है। कभी वह किसी से धोखा खा भी जाए तो दोबारा उसे उसके धोखे में नहीं आना चाहिए। किसी चीज़ का अनुभव होने के बाद भी उससे लाभ न उठाए, यह मोमिन का काम नहीं।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "दो आदमियों का भोजन तीन के लिए और तीन आदमियों का भोजन चार आदमियों के लिए पर्याप्त हो जाता है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मतलब यह है कि अगर आदमी में प्रेम व सहानुभूति की भावना हो तो दो आदमियों के भोजन से तीन आदमियों का काम चल सकता है और अगर भोजन तीन आदमियों का है तो चार आदमी उससे अपनी भूख मिटा सकते हैं। किसी को यह महसूस न होगा कि उसका पेट नहीं भरा, बल्कि शायद इस स्थित में हर एक को कुछ ज़्यादा ही तृप्ति का एहसास होगा। नेकी और त्याग में अल्लाह ने अद्भुत असर रखा है।

(3) हज़रत ख़ुदरी (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, "ठोकरें खानेवाला ही सहनशील और अनुभव रखनेवाला ही प्रज्ञावान होता है।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : ठोकर खाने और ग़लती करने के बाद ही आदमी को सही

समझ आती है। फिर उसमें सहनशीलता और धैर्य का गुण पैदा हो जाता है। किसी से कोई चूक हो जाए तो वह तूफ़ान नहीं उठाएगा, यथासम्भव वह क्षमा और नरमी ही से काम लेगा। इसी तरह अनुभव के पश्चात् ही आदमी को बुद्धिमत्ता और सूझ–बूझ प्राप्त होती है। चिन्तन और अपनी कल्पनाओं और धारणाओं को जब तक व्यावहारिक रूप से बरत न लिया जाए, उनके मूल्यों का सही अन्दाज़ा नहीं हो पाता और न ही वास्तविक सूझ–बूझ आदमी के अन्दर पैदा होती है।

(4) हज़रत अबू–हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यमन के लोग आए हैं। वे अत्यन्त कोमल हृदय के हैं। ईमान यमन का है और समझ भी यमन की है और हिक्मत भी यमन की है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि ईमान, समझ और हिक्मत, इन तीनों चीज़ों को दीन में बड़ा महात्म्य प्राप्त है। और यह भी मालूम हुआ कि ये चीज़ें उनको मिला करती हैं जो कठोर हृदयता के रोग में ग्रस्त नहीं होते। यमनवालों की आप (सल्ल०) ने प्रशंसा की कि उनमें नरमदिली और विनम्रता पाई जाती है, उनका ईमान भी आदर्श ईमान है और उनकी समझ और हिक्मत भी प्रशंसनीय है।

मूल में समझ के लिए फ़िक़ह प्रयुक्त हुआ है, जिससे अभिप्रेत दीन की समझ–बूझ है। हिक्मत से तात्पर्य सत्य का वह अन्तरज्ञान है जिससे आदमी में ऐसी सूझबूझ पैदा हो जाती है कि वह दीन के रहस्यों और मार्मिक भावों से परिचित हो जाता है। फिर वह निम्न और उथले प्रकार के विचारों और मन की वासनाओं से उच्च हो जाता है। उसे पवित्र जीवन प्राप्त हो जाता है। उसके कर्म शुभ होंगे और वह पवित्रात्मा होता है।

(5) हज़रत अबू–हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना कि "अहंकार और डींग मारना शोर करनेवालों में पाया जाता है जो ऊँट रखते हैं जबकि शान्त–वृत्ति बकरीवालों में पाई जाती है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अनुभव के आधार पर ऊँटों और घोड़ों के बीच रहकर चीख़ने–चिल्लानेवालों की अशिष्टता का उल्लेख किया गया है। ऊँटवाले या

घोड़ों आदि की देखभाल करनेवाले प्रायः अशिष्ट और कठोर स्वभाव के होते हैं, और यह आश्चर्य की बात भी नहीं है। साधारणतया उन्हें शिष्टता की शिक्षा प्राप्त नहीं होती, सिर्फ़ जानवरों की संगति से तो वे सभ्य नहीं बन सकते। डींगें मारना और शोर-गुल मचाना नैतिकता और सभ्यता के विरुद्ध है। इससे बचने की ज़रूरत है। कबूतरबाज़ों का शोर-ग़ुल जिन लोगों ने सुना होगा वे इस बात को अच्छी तरह समझ सकते हैं कि यह शोर-ग़ुल मात्र शोर-ग़ुल नहीं होता, बल्कि यह इस बात की अधिघोषणा होती है कि मनुष्य कितना अधिक पस्ती में गिर सकता है और सज्जनता व सभ्यता से वह कितना दूर हो सकता है।

(6) हज़रत जुदामा-बिन्ते-वहब (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मैंने इरादा किया कि दूध पिलानेवाली स्त्री से सम्भोग करने से मना कर दूँ। किन्तु मुझे याद आया कि रूम और ईरान के लोग ऐसा करते हैं और इससे उनकी सन्तान को हानि नहीं पहुँचती।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मतलब यह है कि रूमियों और ईरानियों के अनुभव बताते हैं कि पत्नी यदि बच्चे को दूध पिलाती है तो सम्भोग से बच्चे को हानि नहीं पहुँचती। सम्भोग से रोकने की दशा में इसकी आशंका है कि पति के क़दम कहीं ग़लत राह में न पड़ जाएँ। इसलिए संभोग से दूर रहने की ताकीद उचित नहीं है।

(7) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना, "तलबीना से बीमार के दिल को शान्ति और शक्ति मिलती है और यह कतिपय शोकों को दूर करता है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : तलबीना एक प्रकार का हरीरा है। यह आटे और दूध से तैयार किया जाता है। कभी उसमें मधु भी मिला देते हैं। इस हरीरे का मुख्य अंश दूध होता है। चूँकि दूध को अरबी भाषा में लब्न कहते हैं इसी लिए इसको तलबीना कहा जाता है। यह हरीरा अत्यन्त शान्तिप्रद और स्वादिष्ट होता है। इससे शक्ति भी प्राप्त होती है, शान्तिप्रद होने के कारण इसका प्रयोग ग़म और शोक में भी लाभदायक सिद्ध होता है।

(8) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि (एक दिन) नबी (सल्ल०) ने अपने घरवालों से सालन माँगा। उन्होंने कहा कि सालन हमारे यहाँ नहीं है, अलबत्ता सिरका है। आप (सल्ल०) ने सिरका मँगाया और उसके साथ रोटी खाने लगे और यह कहने लगे कि "सिरका बेहतरीन सालन है। बेहतरीन सालन सिरका है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् घर में यदि सिरका मौजूद है तो परेशान होने की बात नहीं, उससे सालन का काम लिया जा सकता है। यह एक बेहतरीन सालन है। इसको किसी के सामने पेश करने में किसी लज्जा का एहसास नहीं होना चाहिए।

परामर्श

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिससे परामर्श किया जाए वह अमानतदार है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अमानदार होने की हैसियत से एक तो उसे सही और दुरुस्त सलाह देनी चाहिए। परामर्श करनेवाले ने उसपर भरोसा किया है। उसके विश्वास को आघात न पहुँचे, इसका ध्यान रखना ज़रूरी है। दूसरी बात यह है कि जिस मामले में उससे परामर्श किया जाए उसको वह अपने पास अमानत समझे और राज़दारी (गोपनीयता) का पूरा-पूरा ख़याल रखे। प्रायः ऐसा होता है कि परामर्श करनेवाला यह नहीं चाहता कि दूसरों को उसकी ख़बर हो। इसमें वह अपनी रुसवाई समझता है।

क़ुरआन और हदीसों से परामर्श का महत्त्व सिद्ध है। मोमिनों के बारे में क़ुरआन में है, "उनका मामला पारस्परिक परामर्श से चलता है।"

(क़ुरआन, 42:38)

क़ुरआन में दूसरी जगह है, "और (ऐ नबी) मामलो में उनसे (मोमिनों से) परामर्श करते रहो।" (क़ुरआन, 3:159)

अतएव नबी (सल्ल०) बहुत-से मामलों में सहाबा किराम (रज़ि०) से मशवरा लेते थे। विशेष रूप से सामूहिक मामलों में उन लोगों से मशवरा करना अत्यन्त आवश्यक है जिन्हें ठीक और सही सलाह देने में दक्षता प्राप्त हो।

जिस क़ौम के मामले पारस्परिक परामर्श से तय पाते हैं उस क़ौम को न तो परेशानियाँ झेलनी पड़ती हैं और न उसे पछतावा होता है, अतएव एक रिवायत में है कि आप (सल्ल०) ने कहा, "वह नाकाम न होगा जिसने इसतिख़ारा किया, वह लज्जित न होगा जिसने (किसी महत्त्वपूर्ण काम से पहले) परामर्श किया और वह व्यक्ति ग़रीबी और भूखमरी में न पड़ेगा जिसने (ख़र्च आदि में) मध्य-मार्ग अपनाया।" (हदीस : अल-मोजम, अल-सग़ीर)

(2) हज़रत साद (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने मेरी बीमारपुर्सी की। मैंने कहा कि क्या मैं अपने सारे माल के लिए वसीयत कर दूँ? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नहीं।" फिर मैंने कहा कि क्या मैं आधे माल की वसीयत करूँ? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नहीं।" फिर मैंने अर्ज़ किया तो क्या तिहाई की? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ, और यह तिहाई भी बहुत है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : एक रिवायत में यह भी आया है, "यदि तुम अपने वारिसों को मालदार छोड़ जाओ तो यह उससे बेहतर है कि तुम उन्हें मोहताज छोड़ जाओ कि वे लोगों के सामने हाथ फैलाते फिरें। तुम ईश्वर की प्रसन्नता के लिए जो भी ख़र्च करोगे उसका फल तुम्हें मिलेगा यहाँ तक कि उस निवाले (कौर) का भी जो तुम अपनी पत्नी को खिलाओगे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

अगर मरनेवाला मालदार व्यक्ति है तो वह एक-तिहाई माल की वसीयत कर सकता है। आदमी के लिए नेकी और पुण्य और फल का लोभ करना बुरा नहीं है लेकिन आदमी को जानना चाहिए कि अपने घरवालों पर एहसान करना कुछ कम दर्जे की नेकी नहीं है। बस शर्त यह है कि हम जो कुछ करें उसका मूल उद्देश्य अपने रब की प्रसन्नता प्राप्त करनी हो। ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करना यदि सामने हो तो खाने-पीने और सोने यहाँ तक कि पत्नी के पास जाने में भी पुण्य और फल प्राप्त होगा।

सन्दिग्ध चीज़ों से परहेज़

(1) हज़रत नोमान-बिन-बशीर (रज़ि०) से रिवायत है। वे बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से सुना— हज़रत नोमान (रज़ि०) ने अपनी उँगलियों से अपने कानों की ओर संकेत किया— आप

(सल्ल०) कह रहे थे, "हलाल भी बिल्कुल स्पष्ट है और हराम भी बिल्कुल स्पष्ट है। लेकिन इन दोनों के मध्य ऐसी चीज़ें हैं जिनकी हैसियत सन्दिग्ध की है, जिनका ज्ञान अधिकांश लोगों को नहीं है। अतः जो व्यक्ति सन्दिग्ध चीज़ों से बचा वह अपने दीन और अपनी प्रतिष्ठा को बचा ले गया और जो सन्दिग्ध चीज़ों में पड़ा, वह हराम में जा पड़ा। जैसे वह चरवाहा जो प्रतिबन्धित चरागाह के आस-पास चराता हो कि उसके जानवर उस चरागाह में चरने लग जाएँगे। सावधान! हर बादशाह की एक वर्जित चरागाह होती है। सावधान! ख़ुदा की वर्जित चरागाह उसकी अवैध ठहराई हुई चीज़ें हैं। जान रखो, बदन में मांस का एक लोथड़ा है। जब वह ठीक रहा तो सम्पूर्ण शरीर ठीक रहेगा और जब वह बिगड़ा तो सम्पूर्ण शरीर बिगड़ गया। याद रखो, वह (लोथड़ा) दिल है।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस को मौलिक महत्व प्राप्त है। शरीअत में हलाल व हराम दोनों ही स्पष्ट कर दिए गए हैं। लेकिन कुछ चीज़ें ऐसी भी सामने आ सकती हैं जिनके बारे में यह सन्देह हो सकता है कि वे ग़लत और अवैध न हों। ईश परायणता की बात यह है कि ऐसी चीज़ों से बचा जाए। इसी में ईमान और धर्म-प्रतिष्ठा की सुरक्षा है। जो व्यक्ति सन्दिग्ध चीज़ों से बचेगा उसके लिए यह सम्भव नहीं कि वह अवैध चीज़ों के क़रीब भी जाए। ठीक उसी प्रकार जैसे जानवरों को यदि प्रतिबन्धित चरागाह के आस-पास नहीं, बल्कि उनको उससे दूर रखकर चराया जाए तो प्रतिबन्धित चरागाह में उनके घुस जाने का ख़तरा बाक़ी नहीं रहता। लेकिन अगर ऐसा नहीं करते, जानवरों को प्रतिबन्धिक चरागाह के बिल्कुल क़रीब तक चरने देते हैं तो सम्भावना इसी बात की है कि जानवर प्रतिबन्धित चरागाह में घुसकर रहेंगे। ख़ुदा की हराम की हुई चीज़ों से बचने के लिए ज़रूरी है कि सिर्फ़ हराम चीज़ों ही को न छोड़ें, बल्कि संदिग्ध चीज़ों तक से बचें। यही वह नीति है जिससे हम अपने दीन व ईमान की अपेक्षाओं को पूरा कर सकते हैं और अपनी प्रतिष्ठा की, जो वास्तव में दीन व ईमान ही से सम्बन्ध रखती है, हिफ़ाज़त कर सकते हैं।

इस हदीस में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह बताई गई है कि दिल के ठीक रहने पर ही शरीर का स्वास्थ्य निर्भर करता है। दिल ठीक है तो आदमी अपनी शारीरिक क्षमताओं और शक्तियों को ग़लत राहों में हरगिज़ नहीं लगा सकता।

आदमी के इरादों, नीयतों और उसके संकल्पों का सम्बन्ध उसके दिल से होता है। आदमी की नीयत अगर ठीक है और उसकी भावनाएँ पवित्र हैं और उसके दिल में ख़ुदा की महानता और मुहब्बत का भाव पाया जाता है तो अनिवार्यतः इसका प्रभाव उसके पूरे जीवन में दिखाई देगा। उसे ऐसा पवित्र जीवन प्राप्त होगा जिसपर स्पर्धा की जा सके।

सहनशीलता और क्षमा

(1) हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि०) बयान करते हैं कि मानो मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को देख रहा हूँ कि आप (सल्ल०) नबियों में से एक नबी का हाल बयान कर रहे हैं कि, "उन्हें उनकी क़ौम ने इतना मारा कि उन्हें लहू-लुहान कर दिया। किन्तु वे अपने चेहरे से रक्त पोंछते जाते थे और ये कहते जाते थे कि ऐ अल्लाह, तू मेरी क़ौम के लोगों को क्षमा कर दे, क्योंकि वे जानते नहीं।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : लोगों के सुधार और उन्हें ईश्वर का आज्ञाकारी बनाना और समाज में स्वस्थ क्रान्ति लाना एक ऐसा महान् उद्देश्य है जिसके प्राप्त करने के लिए ऐसे कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है जो नैतिकता और आचरण की दृष्टि से अत्यंत उच्च हों। यह कार्य ऐसे लोगों के द्वारा संपन्न नहीं हो सकता जिनके दिल छोटे हों और उनमें संकल्प और साहस न पाया जाता हो। इसके लिए आवश्यक है कि उनमें विशाल हृदयता, सहनशीलता, साहस और उत्सर्ग और क़ुरबानी के गुण पाए जाते हों। जो अपनी जान के दुश्मनों तक को क्षमा कर देने का साहस रखते हों, और जो अपने प्रियजनों और साथियों ही को नहीं, बल्कि अपने बुरा चाहनेवालों के भी हितैषी हों। अल्लाह के नबियों में ये समस्त गुण पूर्णतः पाए जाते थे। इस हदीस में एक नबी के जिस वृत्तांत का उल्लेख किया गया है, वे स्वयं नबी (सल्ल०) की अपनी आपबीती है। आप (सल्ल०) जब तायफ़ गए तो आपका स्वागत पत्थरों से किया गया, यहाँ तक कि आप लहू-लुहान हो गए, किन्तु इसपर भी न तो आपने तायफ़वालों के विनाश और न उनकी तबाही को पसन्द किया, न उन्हें शाप दिया। आपकी ज़बान पर यही शब्द थे— "ऐ अल्लाह! मेरी क़ौम के लोगों का मार्गदर्शन कर; निश्चय ही वे जानते नहीं।"

अध्याय–3

इस्लामी सभ्यता एवं संस्कृति

इस्लामी सभ्यता एवं संस्कृति

सभ्यता एवं संस्कृति के मैदान में इस्लामी सभ्यता एवं संस्कृति को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। सभ्यता और संस्कृति क्या है ? इस सम्बन्ध में विभिन्न बातें कही जाती हैं। संस्कृति को सभ्यता की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया गया है। और आजकल सभ्यता की अपेक्षा संस्कृति की परिभाषा अधिक प्रचलित है। सभ्यता को प्रायः मनुष्य के वाह्य अर्थात् उसके भौतिक संसाधनों और ज्ञान-विज्ञान कला के रूप में देखा जाता है। इसके विपरीत संस्कृति का सम्बन्ध मानव की आत्मा और उसके अन्तर से जोड़ा जाता है। सभ्यता के प्रतीकों में परिस्थितियों और समय की दृष्टि से परिवर्तन सम्भव है, किन्तु संस्कृति एक सार्वकालिक वस्तु है जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

साधारणतया लोगों की दृष्टि में सभ्यता से अभिप्रेत नियम, शिष्टाचार, शिक्षा और जीवनशैली है, और संस्कृति को सभ्यता ही की एक शाखा समझा जाता है। संस्कृति में विकार और टेढ़ से मुक्त होने का भाव पाया जाता है। इस प्रकार संस्कृति जीवनके विभिन्न पक्षों में सन्तुलन, समानुपात और पूर्णता का दूसरा नाम है। संस्कृति का अंग्रेज़ी में पर्याय शब्द कल्चर (Culture) है। इसका मूल अर्थ है—हल चलाना और खेती-बाड़ी करना। लेकिन अब यह एक पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त होने लगा है। इसमें सामाजिक रीति और जीवन-पद्धति से सम्बन्धित समस्त चीज़ें सम्मिलित कर ली गई हैं। इसमें केवल वे काम ही सम्मिलित नहीं हैं जो स्वभावतः सम्पन्न होते हैं। जैसे भूख-प्यास स्वाभाविक चीज़ है। यह संस्कृति में सम्मिलित नहीं है। लेकिन भूख-प्यास मिटाने के जो ढंग अपनाए जाते हैं वे संस्कृति के अंग हैं। दूसरे शब्दों में इसमें वे सभी चीज़ें शामिल हैं जो मानव द्वारा उपार्जित की जाती हैं। इस प्रकार विचार, आस्था, नैतिकता, शिष्टाचार, सभ्यता, नागरिकता, ज्ञान-विज्ञान, कलाएँ, रुचि और प्रवृत्ति आदि सभी को इसमें सम्मिलित समझा जाता है। अपने व्यापक अर्थ और आशय की दृष्टि से सभ्यता और संस्कृति में इतना गहरा सम्बन्ध है कि दोनों एक-दूसरे की जगह प्रयुक्त होते हैं।

इस्लाम का सभ्यता एवं संस्कृति के विषय में अपना विशिष्ट विचार एवं दृष्टिकोण है जिसका मूलाधार अल्लाह की किताब और रसूल की सुन्नत

(तरीक़ा) है। धार्मिक भावना वास्तव में अपनी गहराइयों में एक सौन्दर्यबोध है। मानव-जीवन भी अपने अन्तिम विश्लेषणात्मक अध्ययन में एक सौन्दर्यबोध के सिवा कुछ और नहीं, और न परम सौन्दर्य के सिवा उसकी कोई और प्रकृति है। इस कामना की पूर्ति के लिए इनसान को जिन उत्तम प्रयासों से काम लेना पड़ता है उनका सार एक उच्च संस्कृति के रूप में हमारे सामने व्यक्त होता है। उन उत्तम प्रयासों का सम्बन्ध धारणा, विचार, समाज, अर्थ, राजनीति आदि जीवन के सभी क्षेत्रों से है।

यदि गहराई के साथ देखा जाए तो ज्ञान-विज्ञान-शिष्टाचार के नियम हों या सामाजिक तौर-तरीक़े, ललित कलाएँ और शिल्पकलाएँ हों या नागरिकता और राजनीति का तौर-तरीक़ा, ये सभी कुछ वास्तव में सभ्यता और संस्कृति के मात्र प्रतीक हैं। इनको सभ्यता और संस्कृति का पर्याय या सभ्यता एवं संस्कृति का मूल समझना सत्य न होगा। किसी भी सभ्यता या संस्कृति के मूल्य (Value) का अनुमान उसके उन मौलिक तत्त्वों के अध्ययन से ही होता है जिनके योग से उस सभ्यता व संस्कृति को आकार मिलता है। किसी भी संस्कृति के अध्ययन में देखने की मूल चीज़ यह होती है कि उसकी दृष्टि में संसार में मानव की वास्तविक हैसियत क्या है? वह किस चीज़ को इनसान के जीवन का उद्देश्य निश्चित करता है, जिसके लिए मनुष्य को प्रयास करना चाहिए। उसके मौलिक विचार और धारणाएँ क्या हैं? इसलिए कि इन सभी बातों का प्रभाव इनसान के उस व्यवहार और नीति पर अनिवार्यतः पड़ता है जो व्यवहार-नीति वह अपनी दुनिया की ज़िन्दगी में अपनाता है। और इनसान का प्रयास ही वास्तव में वह चीज़ है जिससे किसी सभ्यता का आविर्भाव सम्भव होता है।

फिर इस सम्बन्ध में यह भी देखना होगा कि अध्ययनाधीन संस्कृति के अन्तर्गत व्यक्ति की शिक्षा-दीक्षा किस ढंग पर की जाती है। वे स्वभाव एवं गुण क्या हैं जिनको महत्व दिया जाता है? और यह कि मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार स्थापित किए जाते हैं? इनसान के क्या अधिकार और कर्तव्य निर्धारित किए जाते हैं? और वे मर्यादाएँ क्या हैं जिनका आदर करना मनुष्य के लिए आवश्यक होता है?

जहाँ तक इस्लामी संस्कृति का सम्बन्ध है तो हम देखते हैं कि इस्लामी

दृष्टिकोण से यह जगत् ईश्वर के बिना नहीं है। जगत् की सारी चीज़ें ईश्वर की पैदा की हुई हैं। उसने इनसान को उनपर श्रेष्ठता प्रदान की है। उसने विश्व को इनसान ही के लिए वशीभूत किया है। इस्लामी दृष्टिकोण से इनसान का जीवन और उसके प्रयासों का मूल उद्देश्य प्रभु की प्रसन्नता प्राप्त करना है। इसलिए उसे जीवन में वही व्यवहार-नीति अपनानी चाहिए जो ईश्वर को पसन्द है।

अल्लाह पर ईमान और उसके प्रति सही धारणा मानव को हर प्रकार की संकीर्णता से मुक्त करती है। उसकी समस्त आशाएँ एक ईश्वर से जुड़ी होती हैं। लोभ-लालच, ईर्ष्या व कपट, संकीर्णता और साहसहीनता जैसे दुर्गुण उससे दूर हो जाते हैं। फिर इस्लाम ने रिसालत पर ईमान लाने की शिक्षा दी है, जिसका मतलब यह होता है कि ख़ुदा अपने बन्दों को अपने रसूलों के माध्यम से सम्बोधित करता है और उनका मार्गदर्शन करता है। रसूलों की शिक्षाएँ और उनके बताए हुए सिद्धान्त और नियम सत्य पर आधारित होते हैं। रसूलों के आज्ञापालन में जीवन व्यतीत करनेवाले ही सफल होंगे। उन्हीं को आख़िरत में ऐसा शाश्वत जीवन प्राप्त होगा जो समस्त दोषों से मुक्त होगा। संसार का अस्थाई जीवन तो वास्तव में आख़िरत के विश्वसनीय और वास्तविक जीवन के प्राप्त करने का मात्र साधन है।

जहाँ तक व्यक्तियों की शिक्षा-दीक्षा का प्रश्न है, व्यक्तियों की शिक्षा-दीक्षा के लिए इस्लाम जो ढंग अपनाता है उसका सम्बन्ध बाह्य की अपेक्षा अन्तर से अधिक है। और यह एक तथ्य है कि मनुष्य के अन्तर की शुद्धि ही पर उसका सुधार निर्भर करता है। अच्छे चरित्र और उत्तम नैतिकता को ग्रहण करने के पश्चात् ही मनुष्य इस योग्य होता है कि वह जीवन में अच्छी से अच्छी व्यवहार नीति अपना सके और ईश्वर की दृष्टि में एक अच्छा मनुष्य ठहरे। इस्लाम की सामूहिक व्यवस्था परिवार से आरम्भ होती है और एक समुदाय का रूप ले लेती है। फिर यह समुदाय इस स्थिति में होता है कि अपनी सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था और राजनीतिक नीति से यह सिद्ध कर सके कि एक आदर्श समाज कैसा होता है और एक आदर्श राज्य-व्यवस्था किसे कहते हैं। फिर यही समुदाय सम्पूर्ण मानव-जाति के नेतृत्त्व का दायित्व स्वीकार कर सके। इस्लाम संसार में अत्याचार और अन्याय, उपद्रव और बिगाड़ के स्थान पर सत्य व न्याय, भाईचारा और सहयोग का वातावरण देखना चाहता

है। उसकी निगाह में प्रतिष्ठा पूर्ण रूप से ईश-भय, ईशपरायणता पर निर्भर करती है। वह अनुचित साज-सज्जा, दिखावटी तड़क-भड़क की जगह स्वाभाविक सादगी, निष्ठा और विचार और दृष्टिकोण की उच्चता पर बल देता है। वह चाहता है कि पीड़ितों और बेसहारों के प्रति न्याय किया जाए। हत्या, बलात्कार, अश्लीलता, नग्नता, मदिरापान, जुआ और अन्य सभी बुराइयों का उन्मूलन हो। वह हर जगह पवित्रता और निर्माल्य चाहता है। केवल यही नहीं कि हमारे वस्त्र और घर साफ़-सुथरे हों, बल्कि हमारे मामले भी ठीक और सही हों, यहाँ तक कि हमारे साहित्य और काव्यों में भी पवित्रता और सुसंस्कृत रुचि की अभिव्यक्ति हो। समस्त मामलों में न्याय और सत्य का ध्यान रखा जाए। कहीं भी न्याय को आघात न पहुँचे, यहाँ तक कि दूसरे धर्मों के अनुयायियों के साथ उदारता की नीति अपनाई जाए।

इस्लाम एक ऐसी जीवन-व्यवस्था का आवाहक है जिसके सिद्धांत, नियम और क़ानून सार्वभौमिक हैं। उसके द्वारा सम्पूर्ण मानव-जाति सुख-शान्ति को प्राप्त कर सकती है। इस्लाम इनसान की न तो आध्यात्मिक आवश्यकता की उपेक्षा करता है और न उसकी भौतिक और लौकिक आवश्यकताओं को नकारता है।

इस्लाम ने सही अर्थों में सच्ची और सार्वभौमिक संस्कृति की धारणा संसार के समक्ष प्रस्तुत की है जिसके योगिक तत्त्वों में पारस्परिक विलीनता और एकात्मता पाई जाती है। यही वह चीज़ है जो जीवन और उसके विकास के लिए आवश्यक है। इस्लामी सभ्यता और संस्कृति वास्तव में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अल्लाह के गुणों के साथ अनुकूलता बनाए रखने और उसकी योजना के साथ अनुरूपता पैदा करने का दूसरा नाम है। इसके परिणामस्वरूप हम उस जीवन से परिचित हो सकते हैं जिसे पूर्ण सौन्दर्य, दयालुता, प्रेम और परितोष से अभिव्यंजित किया जा सकता है।

इस्लामी सभ्यता और संस्कृति

धर्म और सभ्यता का आधार

(1) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "मैं नहीं समझता कि अमुक और अमुक व्यक्ति हमारे धर्म का कुछ ज्ञान रखते हों।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : ये मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) थे जिनके विषय में आप (सल्ल०) ने कहा कि उन्हें हमारे धर्म का ज्ञान नहीं। जिस व्यक्ति को दीन का सही ज्ञान और उसकी पहचान न हो वह दीन की पैरवी निष्ठापूर्वक नहीं कर सकता, चाहे वह कितना ही इस बात का दावा कर रहा हो कि उसने सत्य-धर्म को अपना लिया है। सत्य-धर्म का मूल आधार ज्ञान है।

(2) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है, वे बयान करती हैं कि जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) लोगों को आदेश देते थे तो उन्हें उन कामों का आदेश देते जिनकी उन्हें सामर्थ्य प्राप्त हो। लोगों ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल "हम आप जैसे नहीं हैं। अल्लाह ने आपके तो अगले और पिछले सब गुनाह क्षमा कर दिए हैं।" इसपर आप (सल्ल०) क्रुध हुए, यहाँ तक कि यह क्रोध आपके चेहरे से व्यक्त हो रहा था। फिर आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मैं तुमसे बढ़कर (अल्लाह का) डर रखता हूँ और तुमसे अधिक अल्लाह को जानता हूँ।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : एक अन्य रिवायत में ये शब्द आए हैं, "मैं लोगों से अधिक अल्लाह को जानता हूँ और उनसे बढ़कर मेरे अन्दर उसका भय और विनय-भाव मौजूद है।" (हदीस : बुख़ारी)

यह हदीस बताती है कि अल्लाह की पहचान और उसका ज्ञान और ईश-परायणता ही इस्लाम का मूल आधार है। धर्म वास्तव में ईश-ज्ञान ही का अपेक्षित रूप है। जो जितना अधिक अल्लाह को जानता और उसकी महानता को पहचानता होगा उतना ही अधिक वह ईश्वर के आदेशों का पालन करनेवाला होगा। अल्लाह के नबी (सल्ल०) सबसे अधिक अल्लाह को जाननेवाले और उसका डर रखनेवाले हैं, इसलिए उनका व्यवहार और आचरण ही हमारे

लिए वास्तविक आदर्श हो सकता है।

(3) हज़रत अनस (रज़ि०) बयान करते हैं कि हम नबी (सल्ल०) के साथ (वापस) आए। जब हम मदीना के सामने पहुँचे तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हम (ईश्वर की ओर) लौटनेवाले, तौबा करनेवाले, इबादत करनेवाले और अपने रब की स्तुति करनेवाले हैं।" आप (सल्ल०) निरन्तर यही कहते रहे यहाँ तक कि हम मदीना में प्रवेश कर गए।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : आप (सल्ल०) का यह व्यवहार इस बात का साक्षी है कि अल्लाह को जानने और उसपर ईमान रखनेवाले लोग कैसे होते हैं। वे अगर अपने शहर को लौटते हैं तो वे इस बात को नहीं भूलते कि उनकी असूल वापसी अपने प्रभु की ओर होनी है। वे सदैव उसी की ओर उन्मुख होते हैं। उसकी बन्दगी को वे असूल ज़िन्दगी और उसकी प्रशंसा और स्तुति को जीवन का मूल धन समझते हैं और अपने इस एहसास और अपनी इस भावना को प्रत्येक अवसर पर व्यक्त करते रहते हैं।

(4) हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "मैंने क़ब्रों पर जाने से (किसी कारणवश) रोका था, किन्तु अब तुम वहाँ जा सकते हो क्योंकि यह ज़ियारत (क़ब्रों पर जाना) दिल को दुनिया से उठाता और आख़िरत की याद दिलाता है।" (हदीस : इब्ने-माजा)

व्याख्या : वास्तविक जीवन यह लौकिक जीवन कदापि नहीं है। एक और जीवन हमारी प्रतीक्षा में है और वह आख़िरत का जीवन है। उसको अपने समक्ष रखना ठीक रास्ते पर क़ायम रहने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। आख़िरत ही हमारी मंज़िल है। यदि यह मंज़िल निगाहों से ओझल हो जाए तो कोई चीज़ नहीं जो मुसाफ़िर के क़दमों को ग़लत राहों पर पड़ने से रोक सके।

दुनिया में रहते हुए यह ज़रूरी है कि हम दुनिया ही को सब कुछ न समझ बैठें और परलोक को हम भूल बैठें। इसके लिए क़ब्रों पर जाना एक उत्तम उपाय है। क़ब्रों से यह चित्र सामने आ जाता है कि दुनिया ख़त्म हो जाने वाली है और आख़िरत की याद ताज़ा हो जाती है। संसार के पुजारियों को जानना चाहिए कि क़ब्रों में कितनी कामनाएँ और अभिलाषाएँ दफ़्न हैं। अहंकारियों को भी जान लेना चाहिए कि कितने ही अहंकारियों का अहंकार ख़ाक में मिलकर रहा। क़ब्र में पड़े लोगों में कामयाब वही हैं जो अन्तिम सांस

तक प्रभु-इच्छा की चाह में लगे रहे।

(5) हज़रत अबू-बकरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) के पास जब कोई खुशी की बात पहुँचती या आपको उसकी शुभ-सूचना दी जाती तो आप (सल्ल०) अल्लाह का आभार प्रकट करने के लिए सज्दे में गिर पड़ते। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : कृतज्ञता का भाव ही ईमान का आधार है। हमारे दिलों को उत्तम अनुभवों और सुन्दरतम कामनाओं से जीवित रखनेवाला हमारा ईश्वर ही है। वही हमारी कामनाओं के पूरा करने का साधन भी करता है। इसलिए हर आनन्द और खुशी के अवसर पर उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाशन करके हमें अपने होशपूर्ण और चैतन्य होने का प्रमाण देते रहना चाहिए।

(6) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना कि "अल्लाह ने अपने सृष्टजनों को अन्धकार में पैदा किया। फिर उनपर अपना प्रकाश डाला। यह प्रकाश जिस तक पहुँचा वह मार्ग पा गया और जिस तक न पहुँच सका वह पथभ्रष्ट हो गया। इसी लिए मैं कहता हूँ कि लेखनी अल्लाह के ज्ञानानुसार लिखकर शुष्क हो गई।" (हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी)

व्याख्या : मानव का मार्गदर्शन अल्लाह के प्रकाश और उसकी प्रदान की हुई आभा पर निर्भर करता है। ईश्वरीय प्रकाश से जिसे हिस्सा मिला वही सिद्ध पुरुष है और जो व्यक्ति उससे वंचित रहा उसे गुमराही की अन्धेरियों से निकाल सके ऐसी कोई चीज़ नहीं। अल्लाह की ज्ञान-परिधि से कोई चीज़ बाहर नहीं है। वह सर्वज्ञ है और उसे सबकी ख़बर है। उसकी ज्ञान-परिधि से कोई भी बाहर नहीं हो सकता। अतः अल्लाह ने जिस किसी के भाग्य में जो कुछ लिख दिया है उसके विपरीत कुछ नहीं हो सकता।

गोत्र, वंश एवं प्रतिष्ठा

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "दो बातें लोगों में ऐसी पाई जाती हैं जो कुफ्र हैं— एक वंश के मामले में चोट करना, दूसरे यह कि मृत पर विलाप करना।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : समस्त मनुष्य आदम (अलैहि०) की सन्तान हैं। प्रतिष्ठा और श्रेष्ठता का सम्बन्ध तक़वा (ईश-परायणता) से है, न कि वर्ण और वंश से। क़ियामत के दिन जाति-पाति और वंश कुछ काम न आएगा। उस दिन तो सिर्फ़ आदमी का ईमान और उसका अमल (कर्म) देखा जाएगा। आदमी का कर्म और चरित्र ही है जिससे उच्चता और सम्मान प्राप्त होता है। क़ुरआन के दृष्टिकोण से तो ख़ानदान और क़बीला आदि सिर्फ़ पहचान के लिए हैं, ताकि आदमी अपने नातेदारों के हक़ अदा कर सके।

मरनेवाले के गुणों का बखान करके और चिल्लाकर रोना, जिसे नौहा कहते हैं, इस्लाम में वैध नहीं। अल्लाह के फ़ैसले पर राज़ी रहना और दुख और शोक के अवसर पर धैर्य और नियंत्रण से काम लेना ही अल्लाह के आज्ञाकारी बन्दों के लक्षण हैं। किसी के वंश पर चोट करना और मृतक पर विलाप करने को इस हदीस में कुफ्र कहा गया है। मतलब यह है कि ये दोनों ही काम मोमिनों के नहीं हो सकते, यह काम तो उन लोगों का है जिनका इस्लाम से कोई सम्बन्ध नहीं होता, जो कुफ्र और अज्ञान का जीवन जी रहे होते हैं।

(2) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को दीन (धर्म) के सिवा किसी को और चीज़ की ओर सम्बद्ध करते हुए नहीं सुना।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् असल महत्त्व आप (सल्ल०) के यहाँ धर्म ही को प्राप्त था। आप (सल्ल०) किसी को सम्मानित करते या किसी को किसी उपाधि से याद करते तो वह प्रतिष्ठा या उपाधि अपने अन्दर कोई धार्मिक पहलू लिए हुए होती थी। उसका सम्बन्ध ख़ानदान, जाति या इस प्रकार की किसी अन्य चीज़ से न होता था। अतः हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) को उनकी बहादुरी और वीरता को देखते हुए जो उपाधि प्रदान की वह 'सैफ़ुल्लाह' (अल्लाह की तलवार) की उपाधि थी।

(3) हज़रत अम्र-बिन-अल-आस (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को चुपके से नहीं, उच्च स्वर में कहते हुए सुना कि, "सुन लो, अमुक व्यक्ति के लोग मेरे निकट सम्बन्धी मित्र नहीं, बल्कि मेरे निकट सम्बन्धी मित्र तो अल्लाह और नेक मोमिन हैं।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् आपकी दृष्टि में दीनी सम्बन्ध और दीनी नातों की अपेक्षा अन्य नाते, मित्रता और निकट सम्बन्धों की कोई हैसियत नहीं थी। इस बात को आपने घोषणा के रूप में प्रकट किया ताकि लोगों से यह सत्य छिपा न रहे कि दीन और दीनी रिश्तों के मुक़ाबले में किसी चीज़ का कोई महत्व नहीं है। विशेष रूप से उस समय जबकि वह दीनी अपेक्षाओं को पूरा करने में रुकावट बन रही हो।

(4) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह क़ियामत के दिन कहेगा कि मैंने तुम्हें आदेश दिया था, फिर जिस विषय में तुमसे मेरी वचनबद्धता का मामला हुआ था तुमने उसका नाश कर दिया और अपने वंशों को ऊँचा किया। अतः आज मैं अपने वंश को ऊँचा करूँगा। कहाँ हैं ईश-परायण लोग, अल्लाह की दृष्टि में तुममें सबसे अधिक प्रतिष्ठित वे हैं जो तुममें सबसे बढ़कर (अल्लाह का) डर रखनेवाले हों।" (हदीस : बैहक़ी)

व्याख्या : यह जो कहा, "जिस विषय में मेरी वचनबद्धता का मामला हुआ था, तुमने उसका नाश कर दिया और अपने वंशों को ऊँचा किया।" मतलब यह कि हमने चाहा था कि चेतना के स्तर पर वास्तविक रिश्ता और नाता तुम्हारा मुझसे स्थापित हो और उसको तुम अपने लिए गौरव और प्रतिष्ठा का विषय समझो। मेरी महानता का एहसास दूसरे सभी एहसासों पर हावी रहे लेकिन तुम ऐसे अकृतज्ञ निकले कि मेरे मान और सम्मान का तुम्हें कुछ भी एहसास न रहा और न उस वचनबद्धता का तुम कुछ आदर कर सके जो अत्यन्त सुकुमार और आनन्ददायक था। उसके मुक़ाबले में अपने वंशों और ख़ानदानी बड़ाई ही को तुमने अपनी तसल्ली के लिए पर्याप्त समझा। तुम अपने नसबों को ही उछालने में लगे रहे। यहाँ तक कि उसी में तुम्हारे जीवन समाप्त हो गए और तुम मेरे सामने हाज़िर कर दिए गए।

आज तुम जान लोगे कि वास्तव में कौन-सा रिश्ता और वंश भरोसे के लायक़, दृढ़ और अपने अन्दर ऊँचाइयाँ रखता है। आज तक़वावाले (ईशपरायण लोग) ही सम्मानित होंगे, जो उस रिश्ते और सम्बन्ध पर राज़ी रहे जो उनके और मेरे बीच क़ायम हुआ था। एक ईश्वर के दामन को जो निहायत मज़बूती से थामे रहे और उसी को अपने लिए गौरव समझते रहे, जिन्होंने उस वचन को

जो मैंने उनसे लिया था जी-जान से प्रिय रखा।

हदीस का अन्तिम अंश "अल्लाह की दृष्टि में तुममें सबसे अधिक प्रतिष्ठित वे हैं जो तुममें सबसे बढ़कर (अल्लाह का) डर रखनेवाले हों" क़ुरआन से उद्धृत है (अल-हुजुरात,13)। इसमें स्पष्ट रूप से बताया गया है कि प्रतिष्ठा, उच्चता और बड़ाई या महानता का वास्तविक मानदण्ड क्या है।

संरचना में परिवर्तन

(1) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने लानत की ऐसे पुरुषों पर जो औरतों का रूप-रंग धारण करें और ऐसी औरतों पर जो पुरुषों का रूप अपनाएँ।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : ख़ुदा की सृष्टि को बदलने की कोशिश अन्यायपूर्ण धृष्टता है। किसी व्यक्ति को यह हक़ हासिल नहीं कि वह ख़ुदा के फ़ैसले और उसकी योजना में हस्तक्षेप करके उसको बदलने की कोशिश करे। ख़ुदा की हिकमत को उससे बेहतर कोई नहीं समझ सकता। पुरुष होकर जो व्यक्ति औरतों के पहनावे और उसकी चाल-ढाल अपनाता है या स्त्री होकर मर्दाना लिबास धारण करना चाहती है, वह वास्तव में ख़ुदा के फ़ैसले का विरोधी है। इसलिए उसका यह काम् निश्चित रूप से लानत (अभिशाप) के क़ाबिल है। स्वस्थ समाज के लिए ज़रूरी है कि पुरुष, पुरुष बनकर रहे और स्त्री, स्त्री की तरह जीवन व्यतीत करे। इसके विपरीत जो भी क़दम उठाया जाएगा वह शराफ़त, शिष्टता और मानवता के बिल्कुल विरुद्ध होगा। सभ्यता और संस्कृति की आधारशिला ख़ुदा की आज्ञाकारिता और उसकी बन्दगी है। ख़ुदा की इच्छा का विरोध कभी भी किसी शक्तिशाली और स्थायी सभ्यता की आधारशिला नहीं बन सकती। आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से आज सिर्फ़ ज़ाहिरी पहनवे और रंग-ढंग ही नहीं बल्कि आपरेशन के द्वारा नारी-पुरुष के लिंग तक परिवर्तन कर देने का काम शुरू हो गया है। और यह चीज़ किसी भलाई और बेहतरी की नहीं बल्कि लानत ही का साधन सिद्ध हो रही है।

(2) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने हिजड़े मर्दों और पुरुषों का रूप धारण करनेवाली औरतों पर लानत की

है।'' (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : हिजड़े के लिए 'मुख़न्नस' शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ नर्मी और लोच है। यहाँ मुख़न्नस से तात्पर्य ऐसे पुरुष हैं जो पुरुष होते हुए औरतों का रूप धारण करते हैं, औरतों जैसा लिबास पहनते और बातचीत में औरतों की शैली अपनाते हैं।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उस पुरुष पर लानत की है जो स्त्रियों का वस्त्र पहने और उस स्त्री पर जो पुरुषों का वस्त्र पहने।'' (हदीस : अबू-दाऊद)

(4) हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि०) ने कहा कि अल्लाह ने लानत की है गोदनेवाली और गुदवानेवाली स्त्रियों पर, और चेहरे के बाल साफ़ करानेवाली और सुन्दरता के लिए दाँतो को कुशादा करनेवाली स्त्रियों पर जो अल्लाह की संरचना और उसके बनाए हुए रूप को बदलती हैं। मैं क्यों न उसपर लानत करूँ जिसपर अल्लाह के रसूल ने लानत की है, और यह बात अल्लाह की किताब में उल्लिखित है।'' (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : गोदने से अभिप्रेत चेहरे या शरीर के किसी अंग पर चिह्न बनाना है। सूई चुभाकर सुर्मा या नील आदि शरीर में प्रविष्ट करके चिह्न बनाए जाते हैं। यह कर्म भी ईश्वर की संरचना में परिवर्तन करना है।

अल्लाह की किताब में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के आदेश-पालन को अनिवार्य ठहराया गया है। अब जब कि आपने अल्लाह की संरचना में परिवर्तन करनेवाली स्त्रियों पर लानत की है तो हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि मैं उनपर लानत क्यों न करूँ।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह ने वासिला, मुसतौसिला, वाशिमा और मुसतौशिमा पर लानत की है।'' (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : वासिला वह स्त्री है जो अपने सर के बालों को लम्बा करने के उद्देश्य से अपने बालों में दूसरी स्त्री के बालों का जोड़ लगाए। मुसतौसिला वह स्त्री है जो दूसरी स्त्री के बालों में अपने या किसी दूसरी स्त्री के बालों का जोड़ लगाए। वाशिमा बदन को गोदनेवाली स्त्री को कहते हैं और मुसतौशिमा वह स्त्री है जो अपने बदन को दूसरे से गुदवाए।

बालों में जोड़ और पैबन्द लगाने को नबी (सल्ल०) ने ज़ूर (धोखा) से अभिहित किया है। (हदीस : बुख़ारी)

अक़ीक़ा

(1) हज़रत सलमान-बिन-आमिर ज़बीय (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना, "लड़के का अक़ीक़ा करो और उसकी ओर से रक्त बहाओ और उससे तकलीफ़ दूर करो।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : बच्चे के जन्म पर उसकी ओर से क़ुर्बानी पेश करनी चाहिए। यह अक़ीक़ा या क़ुर्बानी वास्तव में अल्लाह से यह प्रार्थना है कि वह बच्चे को ज़िन्दा और सलामत रखे और उसे पवित्र जीवन प्रदान करे और सुचरित्र और नेक बनाए। एक हदीस में है, "प्रत्येक बच्चा अपने अक़ीक़े के बदले गिरवी है। उसके जन्म के सातवें दिन उसकी ओर से जानवर ज़िबूह किया जाए, उसका मुण्डन किया जाए और उसका नाम रखा जाए।" (हदीस : अबू-दाऊद)

उससे तकलीफ़ दूर करने से अभिप्रेत उसके सर के बाल और मैल-कुचैल दूर करना है और उसे स्नान कराना है ताकि यह चीज़ उसके जीवन के लिए शुभ संकेत सिद्ध हो।

(2) हज़रत उम्मे-कुर्ज़ (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, (अक़ीक़े में) लड़के की ओर से दो बकरियाँ एक जैसी और लड़की की ओर से एक बकरी ज़िबूह की जाए।"(हदीस : अबू-दाऊद)

तहनीक और अज़ान

(1) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास (नवजात) बच्चे लाए जाते और आप (सल्ल०) उनके लिए बरकत की दुआ करते और उनके तालू में खजूर चबाकर मलते। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : खजूर या कोई मीठी चीज़ चबाकर उसे बच्चे के तालू में लगाया जाए, इसे तहनीक कहते हैं। तहनीक करनेवाला नेक और सुचरित्र हो। यह नबी (सल्ल०) का तरीक़ा है और इसे बरकत के लिए किया जाना चाहिए।

(2) हज़रत अबू-राफ़े (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को देखा की आप (सल्ल०) ने हुसैन इब्ने-अली (रज़ि०) के कान में अज़ान दी जबकि हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के यहाँ वे पैदा हुए और यह अज़ान नमाज़ की अज़ान ही की जैसी थी। (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : एक रिवायत से मालूम होता है कि बच्चा पैदा हो तो उसके दाएँ कान में अज़ान दे और बाएँ कान में तकबीर कहे। इमाम नववी की किताब 'अररौज़ा' में है कि बच्चे के कान में यह कहना भी अच्छा है, "इन्नी उई ज़ुहा बि-क व ज़ुर्रिय-तहा मिनश्शैतानिर्रजीम" अर्थात् "मैं इसे और इसकी संतान को फिटकारे गए शैतान से सुरक्षित रहने के लिए तेरी पनाह चाहता हूँ।"

बच्चे के कान में अज़ान देने का उद्देश्य यह है कि सबसे पहले बच्चे के कान में तौहीद (एकेश्वरवाद) की आवाज़ पहुँचे और इस बात की कामना की जाए कि यह बच्चा एक अल्लाह का आज्ञाकारी और उसका उपासक बनकर जीवन व्यतीत करे।

बच्चों के नाम

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह की दृष्टि में तुम्हारे नामों में सबसे प्रिय नाम अब्दुल्लाह और अबदुर्रहमान हैं।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : बच्चों का नाम जहाँ तक हो सके अच्छे-से-अच्छा रखना चाहिए। अब्दुल्लाह और अब्दुर्रहमान को सबसे प्रिय नाम इसलिए कहा गया है कि इन नामों से इस वास्तविकता का प्रदर्शन होता है कि मनुष्य की हैसियत अल्लाह के बन्दे की है। और अल्लह का बन्दा होना कोई अपमान और लज्जा की बात नहीं।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "क़ियामत के दिन अल्लाह की दृष्टि में सबसे बुरे नामवाला वह व्यक्ति होगा जिसका नाम शहनशाह होगा।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : वास्तविक सम्राट ईश्वर के सिवा कोई दूसरा नहीं हो सकता, चाहे किसी को शहनशाह अर्थात् सम्राटों का सम्राट कहा जाए। बादशाहत का

गुण तो सिर्फ़ अल्लाह ही को प्राप्त है। दूसरा कोई नहीं जो इस गुण में उसका सहभागी हो। इसलिए मनुष्य के लिए शहनशाह या इस प्रकार के दूसरे नाम जगहँसाई ही के कारण हो सकते हैं। यह सच्चाई आज नहीं तो कल क़ियामत के दिन स्पष्ट होकर रहेगी।

(3) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि हज़रत उमर (रज़ि०) की एक बेटी थी जिसको आसिया (गुनहगार) कहा जाता था। इसलिए अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उसका नाम (बदलकर) जमीला रख दिया। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अज्ञानकाल में अरब अपने बच्चों का नाम आसी या आसिया रखते थे। जिसका अर्थ है— गुनहगार, अवज्ञाकारी, उद्दण्ड और अभिमानी। इस्लाम के प्रकट होने के बाद ऐसे नाम जो अज्ञानकाल की सभ्यता के प्रतीक थे कैसे स्वीकार किए जा सकते थे। जैसा कि विभिन्न रिवायतों से पता चलता है कि यह और इस तरह के दूसरे नामों को नबी (सल्ल०) ने अत्यन्त नापसन्द किया और बहुत-से ऐसे नाम जो इस्लामी दृष्टिकोण से सही न थे, आप (सल्ल०) ने बदल दिए। 'आसी' का नाम अज़ीज़ रखा। हज़्न को, जिसका अर्थ कठोर और बीहड़ ज़मीन होता है, बदलकर 'सह्ल' (सरल) कर दिया। आपने शहाब का हिशाम और 'हर्ब' के बदले 'सल्म' नाम रखा। मुज़्तजिअ (लेटनेवाला) को 'मुम्बइस' (उठनेवाला) से बदल दिया। और जिस ज़मीन का नाम 'अफ़रा' (बंजर) था उसे 'हज़रा' (हरित) रखा। शेबुज़्ज़लाला का नाम शेबुलहुदा और बनुज़्ज़ीना का नाम बनुर्रुशदा रखा। (हदीस : अबू-दाऊद)

इससे मालूम होता है कि जो नाम इस्लामी प्रकृति के विरुद्ध हों उनको बदला जा सकता है, बल्कि उनको बदल ही देना चाहिए।

(4) हज़रत ज़ैनब बिन्ते-अबी-सलमा (रज़ि०) कहती हैं कि मेरा नाम बर्रा (सत्कर्मी) रखा गया तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अपनी प्रशंसा न करो। तुममें जो सत्कर्मी अर्थात् नेक काम करनेवाला है उसे अल्लाह अच्छी तरह जानता है। इसका नाम ज़ैनब रखो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मतलब यह है कि किसी का नाम ऐसा नहीं होना चाहिए जिसमें आत्मश्लाघा और महत्वाकांक्षा का पहलू पाया जाता हो। ख़ुद अपनी प्रशंसा करना विनम्रता और बन्दगी की भावना के विरुद्ध है। अगर कोई नेक

और अल्लाह का प्रिय है तो वह अल्लाह की दृष्टि से छिपा नहीं रह सकता।

स्नान और स्वच्छता

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह का प्रत्येक मुसलमान पर यह हक़ है कि वह हर सप्ताह में स्नान करे। अपने सिर और बदन को धोए।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मुसलमान ख़ुदा की प्रसन्नता का इच्छुक होता है। इसी लिए उसपर ख़ुदा ने अपना हक़ जताया है। हम अपने शरीर को साफ़ और स्वच्छ रखें, यह हमपर ख़ुदा का एक हक़ है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि ख़ुदा को अपने मुस्लिम बन्दे से कितना गहरा लगाव होता है। वह नहीं चाहता कि उसके प्रिय बन्दे गन्दे रहें। उन्हें सप्ताह में कम से कम एक बार तो अवश्य ही स्नान करना चाहिए और सिर और शरीर को धोकर ख़ूब स्वच्छ रखना चाहिए। अगर कोई प्रतिदिन नहाने को अपना नियम बना ले तो क्या कहना, लेकिन इसे अनिवार्य नहीं किया गया कि इसमें कुछ लोगों को कठिनाई आ सकती है।

नबी (सल्ल०) की अन्य हदीसों से मालूम होता है कि आदमी पर 'ग़ुस्ले-जनाबत' (सम्भोग या वीर्य स्खलन की अपवित्रता से शुद्ध होने का स्नान) अनिवार्य है। अर्थात यदि पति-पत्नी ने सम्भोग किया है तो उनके लिए स्नान करना ज़रूरी है। स्नान किए बिना वे नमाज़ नहीं पढ़ सकते। इसी प्रकार यदि किसी को स्वप्नदोष या वीर्यपात हो गया तो उसके लिए भी ज़रूरी है कि वह नियमानुकूल स्नान करे।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना कि पाँच चीज़ें स्वभावगत हैं। ख़तना करना, नाभि के नीचे के बाल साफ़ करना, मूँछों को कतरवाना, नाख़ुनों (नखों) को कटवाना और बग़ल (काँख) के बालों को उखाड़ना। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इन चीज़ों के स्वभावगत होने का मतलब यह है कि आदमी यदि किसी पक्षपात में ग्रसित न हो तो इन चीज़ों का औचित्य पूर्णतः स्पष्ट है कि इसके समझने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। ये पाँचों ही चीज़ें वास्तव में शरीर की स्वच्छता से सम्बन्धन रखती हैं। ख़तना न कराने से गुप्तांग की

सफ़ाई नहीं हो पाती। चिकित्सीय शोध यह है कि जिनके ख़तने हुए हों वे लिंग के कैंसर या कर्कट रोग (Penis Cancer) से सुरक्षित रहते हैं। कैंसर के अतिरिक्त और दूसरे घातक रोगों से भी आदमी की रक्षा होती है।

नाख़ुन कटवाना, नाभि के नीचे के बाल और बग़ल के बालों को साफ़ करना कितना ज़रूरी है, इसे हर स्वच्छता-प्रिय आदमी जानता है, इस सम्बन्ध में कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। मूँछों के कतरवाने का सम्बन्ध भी सफ़ाई से है। जिन लोगों की मूँछें बड़ी लम्बी होती हैं, खाते-पीते समय उन्हें उनकी ओर से बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। लेकिन इसके कुछ दूसरे पहलू भी हैं। होंठों में बड़े तीव्र और संवेदनशील ग्लैन्डज़ (Glands) होते हैं। ऊपर होंठ के ग्लैण्डज़ में ऐसे हारमोन पैदा होते हैं जिनके लिए पानी भी ज़रूरी है और बाहरी प्रभाव भी। मूँछों को तरशवाने और उनको हलकी करने से होंठ पर पानी भी लगेगा और उसपर बाहरी हवा के प्रभाव भी आसानी से पड़ सकेंगे।

एक रिवायत में है कि स्वभावगत चीज़ें दस हैं, पाँच यही हैं जिनका वर्णन इस हदीस में किया गया है, बाक़ी पाँच ये हैं : सिर पर बाल हों तो माँग निकालना, कुल्ली करना, नाक साफ़ करना, दातुन करना और पानी से इसतिन्जा (मल-मूत्र के बाद पानी से शौच) करना। इनका भी स्वभावगत होना पूर्णतः स्पष्ट है।

पेशाब-पाख़ाना के नियम

(1) हज़रत अबू-क़तादा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुममें से कोई पानी पिए तो (पानी पीने के) बरतन में साँस न ले। और जब पाख़ाना जाए तो अपने दाएँ हाथ से अपने गुप्तांग को न छुए।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस का अर्थ यह है कि जिस गिलास या बरतन से पानी पी रहे हों, पानी पीते समय उसमें साँस न लें, क्योंकि यह एक अनुचित व्यवहार है और पवित्रता के भी विरुद्ध है।

अपने गुप्तांग (लिंग) को धोने आदि के लिए उसे हाथ लगाएँ तो दाहिना हाथ न लगाएँ, बल्कि इस तरह के काम के लिए सदैव बायाँ हाथ इस्तेमाल करना चाहिए।

(2) हज़रत सलमान (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हमें इस बात से रोका है कि हम पाख़ाना या पेशाब के समय क़िबले की तरफ़ मुँह करें या हम दाहिने हाथ से इसतिन्जा करें। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : ज्ञात हुआ कि पाख़ाना-पेशाब करते समय क़िबले (काबा) की ओर पीठ भी नहीं होनी चाहिए। काबा की गरिमा और प्रतिष्ठा इस बात की अपेक्षा करती है कि न उसकी ओर थूका जाए और न उसकी ओर पाँव फैलाएँ।

पेशाब या पाख़ाना से निवृत्त होने के बाद गन्दगी से अपने आपको स्वच्छ करने के लिए जब पानी या ढेला प्रयोग करें तो उसके लिए दाएँ हाथ का नहीं बल्कि बाएँ हाथ का इस्तेमाल करें।

(3) हज़रत अनस (रज़ि०) बयान करते हैं कि जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) पाख़ाना करने के स्थान में प्रवेश करना चाहते तो यह दुआ पढ़ते : "अल्लाहुम्मा इन्नी अऊज़ु बिका मिनल-ख़ुब्स वल-ख़बाइस" (ऐ अल्लाह मैं तेरी पनाह लेता हूँ नापाक जिन्नों और नापाक जिन्नियों से बचने के लिए)।
(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : शौचालय आदि गन्दे स्थानों पर शैतानों के प्रभाव की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं। इसी लिए उनके प्रभावों से बचने के लिए अपने ख़ुदा से पनाह (आश्रय) माँगकर अपने आपको उसकी सुरक्षा में दे देना चाहिए।

मिसवाक (दातुन)

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यदि मुझे इसका ख़याल न होता कि यह मेरे समुदाय के लिए कठिन होगा तो मैं लोगों को आदेश देता कि इशा की नमाज़ देर से पढ़ें और हर एक नमाज़ के लिए मिसवाक करें।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अच्छी बात तो अब भी यही है कि प्रत्येक नमाज़ के लिए मिसवाक की जाए और अच्छा यही है कि इशा की नमाज़ देर से पढ़ी जाए। यदि लोगों की कठिनाई और परेशानी का ध्यान न होता तो इसे अनिवार्य कर दिया जाता कि लोग अनिवार्यतः प्रत्येक नमाज़ के मौक़ा पर मिसवाक किया

करें और इशा की नमाज़ को अनिवार्य रूप से वे देर से पढ़ें। तिहाई या अर्ध रात्रि बीतने से पहले इशा की नमाज़ न पढ़ें।

(2) हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "मिसवाक मुँह की स्वच्छता का साधन है और रब की प्रसन्नता व खुशनूदी का कारण है।" (हदीस : शाफ़ई, अहमद, नसई)

व्याख्या : मिसवाक के जितने भी लाभ बताए जाएँ वे कम हैं। मुख की सफ़ाई और पवित्रता के लिए मिसवाक करना ज़रूरी है। नबी (सल्ल०) मिसवाक का इस्तेमाल करने पर बहुत ध्यान देते थे। सो जाने या चुप रहने के कारण या कुछ न खाने-पीने के कारण (जैसे रोज़ा रखने से) मुँह का मज़ा बिगड़ जाता है और मुँह से एक प्रकार की अप्रिय गन्ध आने लगती है, ऐसी स्थिति में मिसवाक करना अत्यन्त आवश्यक है। हमारे यहाँ नीम के पेड़ की मिसवाक को उत्तम और गुणकारी समझा जाता है। हदीस में पीलू के पेड़ की मिसवाक का वर्णन मिलता है। विद्वानों की दृष्टि में मिसवाक के माहात्म्य में चालीस हदीसें उद्धृत हुई हैं।

नबी (सल्ल०) घर में आते तो सबसे पहले मिसवाक करते थे। इससे मालूम हुआ कि अपने घर में पवित्रता और स्वच्छता का ध्यान रखना कितना अधिक प्रिय कर्म है। मुँह साफ़ रहेगा तो आपस में मिलने-जुलने और बातचीत करने से किसी को किसी प्रकार की तकलीफ़ महसूस नहीं होगी। अल्लामा इब्ने-हजर की दृष्टि में तो इस हदीस में हर व्यक्ति के लिए एक प्रकार की ताकीद है कि जब वह अपने घर में प्रवेश करे तो सबसे पहले वह मिसवाक करके मुँह को साफ़ करे।

सिर के बाल

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जिसके बाल हों उसे चाहिए कि उनको अच्छी तरह रखे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मतलब यह है कि सिर पर बाल रखे तो उनकी रक्षा भी क़रे। बालों को धोए, सिर में तेल डाले और कंघी करे। ऐसा न हो कि सिर के बाल ऐसे बिखरे और उलझे हुए हों कि देखकर घबराहट होने लगे।

(2) हज़रत क़तादा (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) से अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के बालों के विषय में पूछा तो उन्होंने बताया कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के बाल न तो अधिक घुँघराले थे और न बहुत अधिक सीधे, बल्कि सन्तुलित थे और आप (सल्ल०) के कानों और कन्धों के मध्य थे। (हदीस : बुख़ारी)

(3) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने क़ज़अ् से रोका है। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : क़ज़अ् से अभिप्रेत यह है कि सिर के बाल कुछ तो मुँडाएँ और कुछ शेष रहने दें। अतएव हज़रत नाफ़े क़ज़अ् के विषय में कहते हैं, "बच्चे के सिर का कुछ हिस्सा मूँडना और कुछ छोड़ देना क़ज़अ् है।" (हदीस : मुस्लिम)

(4) हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) की पत्नियाँ अपने सिर के बाल कतरवाती थीं यहाँ तक कि बाल कानों तक रखती थीं। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : हुज़ूर (सल्ल०) की पवित्र पत्नियाँ कदाचित् अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के देहावसान के बाद शृंगार को त्यागने के ख़्याल से ऐसा करती रही हों। यही मत क़ाज़ी अयाज़ और दूसरे विद्वानों का भी है।

बनाव-शृंगार

(1) हज़रत अली (रज़ि०) फ़रमाते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने स्त्रियों को सिर मुँडाने से रोका है। (नसई)

व्याख्या : सिर के बाल स्त्रियों का शृंगार हैं, इसी लिए इनको मुँडाने से रोका है। बनाव-शृंगार औरतों की एक स्वभावगत आवश्यकता है।

(2) हज़रत आइशा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) के पास नज्जाशी (हब्श के सम्राट) की ओर से आभूषण आया, उसे नज्जाशी ने आप (सल्ल०) को उपहार स्वरूप भेजा था। उसमें एक सोने की अँगूठी थी, जिसमें हब्शी नगीना जड़ा हुआ था। हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उसे लकड़ी या उँगली से स्पर्श किया मगर उसकी ओर विशेष ध्यान न दिया। फिर आपने उमामा-बिन्ते-अबिल-आस

(रज़ि०) हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की बेटी को जो आपकी नवासी थीं बुलाया और कहा, "ऐ बेटी तू इसे पहन ले।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : सोने के आभूषण और रेशम को प्रयोग में लाना केवल स्त्रियों के लिए वैध है, पुरुषों के लिए वैध नहीं है।

(3) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) की अँगूठी चाँदी की थी और उसका नगीना भी चाँदी ही का था।(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : रिवायत में आप (सल्ल०) के एक ऐसी अँगूठी पहनने का वर्णन भी मिलता है जिसका नगीना हब्शी था। हब्शी से अभिप्रेत अक़ीक़ (एक प्रकार का पत्थर) है। अक़ीक़ की खान हब्शा और यमन में पाई जाती थी।

(4) हज़रत अली (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने रेशम लिया और उसे अपने दाएँ हाथ में पकड़ा और आप (सल्ल०) ने इसी तरह सोना लिया और उसको बाएँ हाथ में पकड़ा, फिर कहा, "ये दोनों चीज़ें मेरी उम्मत (समुदाय) के पुरुषों पर हराम हैं।" (हदीस : अहमद, अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : अर्थात् रेशमी वस्त्र और सोने की अँगूठी आदि का इस्तेमाल मुस्लिम पुरुषों के लिए दुनिया में बिलकुल वैध नहीं है। सज-धज और शृंगार को औरतों ही के लिए वैध रखा गया है ताकि उन्हें अपने पतियों का प्रेम ज़्यादा से ज़्यादा प्राप्त हो सके। पुरुष अगर अधिक सौन्दर्य के चक्कर में पड़ते हैं और सोने-रेशम से अपने को सजाने की रुचि और शौक़ में पड़ते हैं तो वे अल्लाह की राह में जिहाद और ख़ुदा के रास्ते में दौड़-भाग करने की योग्यता खो बैठेंगे और आख़िरत की तरफ़ से ग़ाफ़िल हो जाएँगे। एक हदीस में रेशम और दीबा के पहनने ही से नहीं, इनके बिछौने पर बैठने से भी रोका गया है। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)। अलबत्ता इलाज की ज़रूरत के तहत रेशमी कपड़ा पहनने की अनुमति आप (सल्ल०) ने पुरुष को भी दी है। जैसा की नबी (सल्ल०) ने हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) और हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) को रेशमी कपड़ा पहनने की इजाज़त दे दी थी।

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

(5) हज़रत इमरान बिन-हुसैन (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "याद रखो, पुरुष जो सुगन्ध प्रयोग में लाएँ वह ऐसी

हो कि उसमें महक तो हो लेकिन रंग न हो और औरतों की सुगन्ध में रंग तो हो किन्तु महक न हो।" (हदीस : अबू दाऊद)

व्याख्या : रंगवाली सुगन्ध के इस्तेमाल से पुरुषों को इसलिए रोका ताकि उनके वस्त्र रंगीन न हों। रंग और चमक आदि का सम्बन्ध वास्तव में पुरुषों से नहीं औरतों से होता है।

स्त्रियों को उस सुगंध से नहीं रोका गया जिसमें रंग हो किन्तु महक न हो। जैसे ज़ाफ़रान, मेंहदी आदि कि इनमें रंग तो होता है लेकिन ख़ुशबू इतनी तेज़ नहीं होती कि दूर तक फैल जाए और घर के बाहर निकलकर अजनबी और नामहरम पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करे और उनके लिए फ़ितने का कारण बन जाए। एक हदीस में है कि जब स्त्री इत्र लगाए फिर पुरुषों के बीच जाए कि वे उसकी ख़ुशबू सूँघें तो वह ऐसी और ऐसी है। आप (सल्ल०) ने बड़ी कठोर बात कही। (हदीस : अबू-दाऊद)

(6) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "असफ़हानी सुरमा लगाया करो क्योंकि वह दृष्टि को बढ़ाता और बालों अर्थात् पलकों को उगाता है।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : मूल में 'असमद' शब्द आया है जो एक विशेष सुरमे का नाम है। कुछ विद्वानों की दृष्टि में इससे अभिप्रेत अस्फ़हानी सुरमा है। सब जानते हैं कि पलकें आँखों की सुन्दरता को बढ़ाती और उनकी सुरक्षा में सहायक होती हैं।

(7) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यहूदी और ईसाई ख़िज़ाब नहीं करते तो तुम उनके विरुद्ध करो (अर्थात् ख़िज़ाब करो)।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : आँख बन्द करके किसी ग़ैर-क़ौम की रीति-रिवाज का अनुसरण करना ठीक नहीं है। अपने ढंग और तर्ज़ (Manner) को यथासम्भव क़ायम रखना चाहिए। इस्लाम ने ख़िज़ाब की इजाज़त दी है। पीले रंग के ख़िज़ाब से किसी को मतभेद नहीं है। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) मेंहदी आदि से ख़िज़ाब करते थे। काले रंग के ख़िज़ाब के सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है। कुछ की दृष्टि में काला ख़िज़ाब बिलकुल ही अवैध है। कुछ उसे मकरूह (अप्रिय) समझते हैं। इस्लाम के आरम्भिक काल के कुछ महान व्यक्तियों,

जैसे हज़रत उसमान (रज़ि०), हज़रत हसन (रज़ि०), हज़रत हुसैन (रज़ि०) और उक़बा बिन आमिर (रज़ि०) से काला ख़िज़ाब करना साबित है। शायद कोई महत्त्वपूर्ण दीनी ज़रूरत इन महानुभावों के समक्ष रही हो।

वस्त्र

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति गर्व और अभिमान में अपने (शरीर के) कपड़े घसीटता हुआ चलेगा, क़ियामत के दिन अल्लाह उसकी ओर (दयालुता की नज़र से) नहीं देखेगा।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : वस्त्र को अल्लाह ने गुप्तांग छुपाने और शरीर की सज्जा के लिए उतारा है। वस्त्र इसलिए नहीं उतारा गया है कि कोई गर्व करे और जनसामान्य की अपेक्षा अपने को बड़ा और श्रेष्ठ होने का प्रदर्शन करे और उनको तुच्छ समझे। जिस किसी ने दुनिया में अभिमानी बनने की कोशिश की होगी, ख़ुदा उसे रहमत की नज़र से नहीं देखेगा। अगर कोई अभिमान और गर्व के बिना पाजामा या तहबन्द को टख़नों से नीचे लटकाए तब भी इसे अनुचित ही समझा जाएगा और अगर वह किसी विवशता के कारण ऐसा करता है तो बात दूसरी है।

एक रिवायत में है, "जो व्यक्ति दुनिया में प्रसिद्धि के लिए वस्त्र धारण करेगा, अल्लाह क़ियामत के दिन उसे अपमानजनक वस्त्र पहनाएगा।" (हदीस : अहमद, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा) अर्थात् जो व्यक्ति अच्छे प्रकार का वस्त्र इस उद्देश्य से पहनता है कि दुनिया में वह प्रसिद्ध हो और लोग उसकी बड़ाई स्वीकार करें, उसको क़ियामत के दिन ज़िल्लत और रुसवाई का सामना करना पड़ेगा।

(2) हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मेरी उम्मत (समुदाय) की स्त्रियों के लिए सोना और रेशम वैध है और उम्मत के पुरुषों के लिए अवैध है।"

(हदीस : तिर्मिज़ी, नसई)

(3) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब (रज़ि०) अपने बाप से और वे अपने

दादा से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह को यह बात प्रिय है कि उसके अनुग्रह का प्रभाव उसके बन्दे पर प्रकट हो।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : अर्थात् अल्लाह ने यदि किसी व्यक्ति को धन-दौलत से संपन्न किया है और उसे इसकी सामर्थ्य प्राप्त है कि अच्छे वस्त्र पहन सके तो उसे अपनी हैसियत के अनुसार सुन्दर और अच्छे कपड़े पहनने चाहिएँ। अलबत्ता इस सम्बन्ध में उसे अपव्यय से बचना चाहिए और घमण्ड और अभिमान से अपने दिल को पाक रखना चाहिए। उसके हृदय में कृतज्ञता की भावना पाई जाती हो। उसके माल में अल्लाह ने मोहताजों और निर्धनों का भी हक़ रखा है, इस बात को वह कदापि न भूले।

(4) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति किसी क़ौम की समरूपता अपनाए उसकी गणना उसी क़ौम में होगी।" (हदीस : अहमद, अबू-दाऊद)

व्याख्या : यह एक महत्त्वपूर्ण हदीस है। मुसलमानों के लिए ज़रूरी है कि वे इसका ध्यान रखें कि उनकी विशिष्ट हैसियत खोने न पाए। उनकी वास्तविक हैसियत एक पथ-प्राप्त समुदाय की है। भटकी हुई और पथ-भ्रष्ट किसी क़ौम की समरूपता अपनाने का अभिप्राय इसके सिवा और क्या होगा कि हम अपने उस पद को भूल रहे हैं जिस पद पर अल्लाह ने हमें आसीन किया है। चाल-ढाल, व्यवहार-आचरण, खान-पान, बोल-चाल और पहनने-ओढ़ने आदि प्रत्येक मामले में ग़ैर-मोमिनों के रीति-रिवाज से बचने की ज़रूरत है। उदाहरण स्वरूप कोई वस्त्र यदि किसी क़ौम की अपनी जातीय पहचान में से है तो उस वस्त्र के पहनने से बचना चाहिए।

(5) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि असमा-बिन्ते-बू-बक्र (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में इस हालत में उपस्थित हुईं कि उनके बदन पर बारीक कपड़े थे। आप (सल्ल०) ने उनकी ओर से मुँह फेर लिया और फ़रमाया, "औरत जब रजस्वला होने की अवस्था को पहुँच जाए (अर्थात् जब वह बालिग़ हो जाए) तो यह कदापि ठीक नहीं कि उसका कोई अंग दिखाई दे सिवाय इसके।" आप (सल्ल०) ने अपने चेहरे

और हाथों की ओर संकेत किया। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मतलब यह है कि जब कोई स्त्री बालिग़ होने की उम्र को पहुँच जाए तो उसके लिए वैध नहीं कि चेहरे और हाथों के अलावा उसके शरीर का कोई दूसरा अंग खुला हुआ हो। इस आदेश की पाबन्दी उसे घर के अन्दर करनी है। लेकिन बालिग़ स्त्री यदि घर के बाहर जाती है तो वह अपने चेहरे और हाथों को भी छिपाए।

(6) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब (रज़ि०) अपने बाप से और वे अपने दादा से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "खाओ और पियो और सदक़ा (दान) करो और पहनो जब तक उसमें अपव्यय और अहंकार न हो।" (हदीस : अहमद, नसई, इब्ने-माजा)

व्याख्या : अर्थात् इस्लाम खाने-पीने और पहनने पर रोक नहीं लगाता। बस इस सम्बन्ध में अपव्यय और अहंकार से बचे और अपने माल में से मोहताजों और ग़रीबों की भी मदद करे और धर्म के प्रचार-प्रसार में भी अपना माल ख़र्च करता रहे।

(7) हज़रत समुरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "सफ़ेद कपड़े पहनो, वे अधिक साफ़ और उत्तम होते हैं और सफ़ेद कपड़ों ही में अपने मुर्दों को कफ़नाओ।"

(हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी, नसई, इब्ने-माजा)

व्याख्या : इस रिवायत में आया है कि "सबसे अच्छा रंग जिसमें तुम अपनी क़ब्रों और मसजिदों में अल्लाह से भेंट करो सफ़ेद रंग है।" (इब्ने-माजा) पुरुषों के लिए सफ़ेद कपड़ा ज़्यादा पसन्द किया गया है। अलबत्ता औरतों के लिए रंगीन वस्त्र ही ज़्यादा पसन्द किया गया है। इसलिए कि बनाव-शृंगार औरतों की विशेषता है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

(8) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जब नया कपड़ा पहनते, अमामा हो या कुरता या चादर, तो उसका नाम लेकर दुआ करते कि, "ऐ अल्लाह, प्रशंसा है तेरी और आभार तेरा जैसा तूने मुझे यह कपड़ा पहनाया। मैं तुझसे इसकी भलाई का इच्छुक हूँ और उस भलाई का इच्छुक हूँ जिसके लिए यह कपड़ा बनाया गया। और मैं

इस कपड़े की बुराई से और उसके हेतु (अर्थात उसके इस्तेमाल) की बुराई से तेरी पनाह चाहता हूँ।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : कपड़ा या कोई अच्छी चीज़ प्रयोग में लाए तो बन्दे के लिए आवश्यक है कि वह अल्लाह को याद करे और उसके प्रति कृतज्ञता दिखाए क्योंकि यही इस्लामी सभ्यता है।

जूता पहनना

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखिति है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुममें से जब कोई व्यक्ति जूता पहने तो पहले दाँए पाँव में पहने और जब उसे उतारे तो पहले बाँए पाँव से उतारे।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : सहीह मुस्लिम में इसके अतिरिक्त ये शब्द आए हैं, "और चाहिए कि दोनों को पहने या दोनों को उतार दे।" यह बड़े बेढंगेपन की बात है और स्वास्थ्य-नियम के भी विरुद्ध है कि जूता एक ही पाँव में हो और दूसरा पाँव ख़ाली रहे।

इस्लाम में अच्छे और पसन्द के कामों को दाईं ओर से आरम्भ करने का आदेश दिया गया है। दाएँ को बाएँ की तुलना में श्रेष्ठता प्राप्त है। इसका ध्यान रखना एक स्वाभाविक बात है। इसके अतिरिक्त शुक्र और धन्यवाद प्रदर्शन के लिए भी ऐसा ही करना चाहिए कि पसन्दीदा काम दाईं ओर से किया जाए। अच्छे काम का आरम्भ भी दाईं ओर से करके बन्दा यह दिखाता है कि इसे वह बेबसी और बेदिली से नहीं कर रहा है बल्कि वह अल्लाह के अनुग्रह और उसके कृपा-दान का पूरा एहसास रखता है।

खाने-पीने के नियम

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुममें से कोई खाना खाए तो दाँए हाथ से खाए और जब कोई चीज़ पिए तो दाहिने हाथ में लेकर पिए।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : हर अच्छे और पसन्द के काम दाँए हाथ से करना इस्लामी सभ्यता में से है। बाएँ हाथ से खाना अल्लाह की प्रदान की हुई नेमत का

निरादर है। अल्लाह की प्रदान की हुई किसी नेमत का निरादर वही कर सकता है जो कृतज्ञ न हो।

(2) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुममें से कोई खाना खाए तो उसे चाहिए कि अल्लाह का नाम ले। अगर वह पहले अल्लाह का नाम लेना भूल जाए तो यूँ कहे, 'बिसमिल्लाहि अव्व-लहू व आख़ि-रहू' (अल्लाह के नाम से बरकत हासिल करता हूँ शुरू में भी और अन्त में भी)।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : खाना ख़ुदा का नाम लेकर अर्थात् 'बिसमिल्लाह' कहकर शुरू करना चाहिए। यह इस बात का सुबूत होगा कि बन्दे को अपने बन्दा होने और पराश्रित होने का पूरा एहसास है और वह जानता और इसे स्वीकार करता है कि समस्त नेमतें अल्लाह ही की दी हुई हैं। ख़ुदा के सिवा कोई दूसरा नहीं है जिसको वह अपना दाता मानकर उसके प्रति कृतज्ञ हो।

इसके अलावा ख़ुदा के पाक नाम के प्रभाव से शैतानी अनिष्टता से उसका भोजन सुरक्षित रहता है। जो व्यक्ति खाना खाते समय ख़ुदा को याद करता हो निश्चित रूप से उसकी कोशिश यही होगी कि उसकी रोज़ी हलाल और पाक हो। और ख़ुदा की नेमत से तृप्त होने के बाद उससे इसी बात की आशा की जा सकती है कि वह ख़ुदा की अवज्ञा के कामों के निकट नहीं जाएगा।

(3) हज़रत काब-बिन-मालिक (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) तीन उँगलियों से खाना खाया करते थे और अपना हाथ पोंछने (या धोने) से पहले चाट लिया करते थे। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) अधिकतर तीन उँगलियों से खाना खाया करते थे। यही आपका तरीक़ा है। खाने के बाद उँगलियों को चाटना इसलिए ज़रूरी है कि ख़ुदा की नेमत का कोई हिस्सा बरबाद न हो। और यह इस बात का प्रदर्शन भी है कि हमें ईश्वर के अनुग्रह की आवश्यकता है, इसलिए उसकी नेमत की उपेक्षा किसी हाल में ठीक नहीं है। हमें अपने उदार प्रभु के समक्ष पूर्ण रूप से इस बात का प्रदर्शन करना चाहिए कि हम आत्यन्तिक रूप में उसके मुहताज हैं। घमण्ड और अभिमान अल्लाह को पसन्द नहीं है। फिर हमें यह नहीं मालूम कि आजीविका के किस अंश में अल्लाह ने हमारे लिए

ख़ास बरकत रखी है। इसलिए उसकी नेमत के एक-एक कण की क़द्र करनी चाहिए।

(4) हज़रत जाबिर (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना कि, "शैतान तुम्हारे हर काम के अवसर पर तुम्हारे पास मौजूद रहता है। यहाँ तक कि तुम्हारे खाने के समय भी वह मौजूद रहता है। अतः तुममें से जब किसी का कोई लुक़मा गिर जाए तो चाहिए कि (उसे उठा ले और) जो चीज़ उसको लग गई हो उसे साफ़ करके लुक़मा (कौर) खा ले। उसको शैतान के लिए न छोड़े। और जब खाना खा चुके तो चाहिए कि अपनी उँगलियों को चाट ले, क्योंकि वह नहीं जानता कि उसके खाने के किस हिस्से में बरकत है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : शैतान तो चाहता है कि ख़ुदा की नेमत बरबाद हो। इससे उसके अपने उद्देश्य को बल मिलता है। यह कितनी चिन्ता और दुख की बात है कि जिसके रसूल ने इतनी ताकीद की हो कि खाने के एक लुक़मे तक को बरबाद होने से बचाया जाए, आज उसकी उम्मत किस बेदर्दी के साथ अपना माल व्यर्थ कामों और ग़ैर-इस्लामी रीति-रिवाजों में बरबाद कर रही है जिसका कोई हिसाब नहीं। यह धन यदि दीन के प्रचार-प्रसार और मुहताजों की आवश्यकताओं को पूरा करने में ख़र्च होता तो आज क़ौम की यह दुर्दशा न होती।

यह हदीस हमें यह भी बताती है कि हमें तो हर प्रकार के गर्व और अभिमान से दूर रहकर ख़ुदा की बरकतों का लोभी होना चाहिए।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने कभी भी किसी खाने को बुरा नहीं कहा। अगर इच्छा होती, खा लेते और अगर नापसन्द करते तो उसे छोड़ देते।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : आदमी को अगर खाने में कोई चीज़ पसन्द न हो तो वह उसको न खाए, लेकिन उसको बुरा कहना और उसमें दोष निकालना नबी (सल्ल०) के तरीक़े के विपरीत है।

(6) हज़रत अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, 'मैं टेक लगाकर खाना नहीं खाता।' (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) को वह तरीक़ा पसन्द नहीं था जिसमें अहंकार का प्रदर्शन होता हो। यही कारण है कि आप (सल्ल०) तकिया आदि पर टेक लगाकर खाना नहीं खाते थे। हज़रत आइशा (रज़ि०) की एक रिवायत में है कि आपका कथन है, "मैं एक ग़ुलाम और बन्दे की तरह खाता हूँ और एक ग़ुलाम और बन्दे की तरह बैठता हूँ।" कुछ दूसरे सहाबा की रिवायतों में भी लगभग यही बात मिलती है।

(7) हज़रत अम्र-बिन-उमैया (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) को देखा कि आप (सल्ल०) बकरी का शाना जो आपके हाथ में था छुरी से काट रहे हैं। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि ज़रूरत महसूस हो तो गोश्त या खाने की कोई भी चीज़ छुरी से काट-काटकर खा सकते हैं। लेकिन यदि इसकी ज़रूरत न हो तो छुरी से काट-काटकर खाना अच्छा नहीं है। इसलिए कि यह अजमियों (ग़ैर-अरब) के अनुचित कृत्रिम आचरणों में से है जिससे बचना चाहिए।

(8) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-बुस्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह ने मुझे विनम्र और सरल बनाया है, उद्दण्ड और ज़िद्दी नहीं बनाया।" फिर आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उसके किनारों से (अपनी-अपनी ओर से) खाओ, ऊपर के हिस्से को छोड़ दो (अर्थात् बीच के हिस्से पर पहले हाथ न डालो)। तुम्हारे लिए उसमें बरकत दी जाती है।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : यह एक लम्बी हदीस का प्रमुख अंश है जो यहाँ उद्धृत किया गया है। खाने के चारों ओर अधिक लोग एकत्र हो जाते तो जगह की तंगी को देखते हुए आप (सल्ल०) घुटनों पर बैठते। ऐसे ही एक अवसर पर आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि ख़ुदा ने मुझे विनम्र बनाया है, उद्दण्ड और ज़िद्दी नहीं बनाया है कि इस तरह से बैठने को मैं अपनी शान के विरुद्ध और अपने लिए लज्जाप्रद समझूँ।

आप (सल्ल०) ने बीच के भाग में पहले हाथ डालने से रोका क्योंकि वहाँ ख़ुदा की ओर से बरकत उतरती है। एक रिवायत में है, "तुममें से जब

कोई खाना खाए तो वह तबाक़ के ऊपरी हिस्से से (अर्थात् बीच से) न खाए, बल्कि नीचेवाले हिस्से (किनारे) से खाए, क्योंकि बरकत का अवतरण उसके ऊपरी भाग में होता है।" बरकत वास्तव में एक ईश-आदेश है। नबी (सल्ल०) को इसका अनुभव होता था कि बरकत का अवतरण सीधे मध्य में होता है। उसके प्रभाव आस-पास के अन्य भागों में पहुँचते हैं। इसलिए खाने के बीच में हाथ डालने से आप (सल्ल०) ने रोका है।

(9) हज़रत उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मिलकर खाओ। अलग-अलग न खाओ, क्योंकि बरकत जमाअत के साथ होती है।" (हदीस : इब्ने-माजा)

व्याख्या : इसका अनुभव बहुधा हुआ है कि साथ मिलकर खाने में अधिक लोग तृप्त हो गए, हालाँकि खाना कोई बहुत अधिक मात्रा में नहीं था। एक रिवायत में है कि एक खाना दो के लिए, दो का चार के लिए और चार का आठ के लिए पर्याप्त हो जाता है (हदीस : मुस्लिम)। लेकिन शर्त यह है कि खानेवाले अच्छे साथी होने का सुबूत दें। उनमें त्याग का गुण मौजूद हो। हर एक कि यह इच्छा हो कि उसके दूसरे साथी अच्छी तरह खा लें।

(10) हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना कि "रेशमी कपड़ा न पहनो और न दीबाज (एक प्रकार का कपड़ा) पहनो और न सोने-चाँदी के बर्तनों में पियो और न सोने-चाँदी के प्यालों और थालियों में खाओ, क्योंकि ये चीज़ें दुनिया में अधर्मियों के लिए हैं और तुम्हारे लिए आख़िरत में हैं।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : आदमी को वास्तविक चिन्ता आख़िरत की होनी चाहिए। जिस किसी को आख़िरत की चिन्ता घेरे होगी उसे सोने-चाँदी के बर्तनों को एकत्र करने का अनुराग नहीं हो सकता। उसे तो वास्तविक चिन्ता उन कर्त्तव्यों को पूरा करने की होगी जो उसके लिए ईश्वर ने निश्चित किए हैं और जिनके पालन करने से परलोक सँवरता है। सुख और विलासिता के लिए दुनिया नहीं आख़िरत का जीवन है। नबी (सल्ल०) की शिक्षाएँ ऐसी हैं जिनसे वह प्रवृत्ति और अभिरुचि विकसित एवं पल्लवित होती है जो प्रवृत्ति और अभिरुचि परलोकवादियों की होनी चाहिए। आख़िरत की चाहत की भावना कितनी ही ऐसी चीज़ों को नगण्य बना देती है जिनपर संसारवादी जान छिड़कते हैं।

"रेशमी कपड़ा न पहनो" — कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि चार अँगुल के बराबर रेशमी कपड़ा जो दूसरे कपड़े के किनारे पर लगाया जाए वह इस सम्बन्ध में अपवाद है। इसी प्रकार उस कपड़े के पहनने की अनुमति है जिसके केवल ताने में रेशम हो। इसी प्रकार खुजली और जूओं की अधिकता के कारण भी रेशमी कपड़ा पहनना वैध है।

(11) हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का कथन है कि "प्राथमिकता दाएँ को प्राप्त है।" एक रिवायत में है कि, "याद रखो, दायीं ओर के ज़्यादा हक़दार हैं। अतः तुम दायीं तरफ़वालों का ध्यान रखो कि देने में उन्हीं से आरम्भ करो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : यद्यपि दाईं ओर का व्यक्ति अपेक्षाकृत कम रुतबे का हो फिर भी खिलाने-पिलाने और कोई चीज़ बाँटने में आरम्भ उसी ओर से करना चाहिए। दाएँ को बाएँ की तुलना में श्रेष्ठता प्राप्त है, इसका लिहाज़ ज़रूरी है। शरीअत के उसूल हिक्मत (तत्त्वदर्शिता) पर आधारित हैं। इसका ख़्याल हर अवसर पर रखना चाहिए। हम देखते हैं कि इस्लाम ने अपने सिद्धांतों की कहीं भी उपेक्षा नहीं की है।

(12) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिसकी अधिक मात्रा नशा पैदा करे उसकी अल्प मात्रा भी हराम है।" (हदीस : अबू-दाऊद, तिर्मिज़ी, इब्ने-माजा)

व्याख्या : मदिरा और सुरा समस्त बुराइयों की जननी और मानवता की शत्रु है। इसलिए इस्लाम ने उसे निश्चित रूप से अवैध ठहराया है। शराब पाचन तंत्र पर बुरे प्रभाव डालती है। शराब का सबसे अधिक बुरा प्रभाव जिगर पर पड़ता है। इससे आमाशय की घातक बीमारियाँ पैदा होती हैं। मदिरा रक्त-संचार की व्यवस्था को प्रभावित करती है। गुर्दा (Kidney) इससे अलग ख़राब होता है। फिर शराबी का अपना मानसिक सन्तुलन भी शेष नहीं रहता जिसके कारण कितनी ही सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनसे हर व्यक्ति परिचित है। इस्लाम ने मदिरा, चरस और भंग आदि सारी बुरी चीज़ों को हराम ठहरा दिया है। उनकी थोड़ी मात्रा का उपयोग भी ठीक नहीं है। इनकी थोड़ी मात्रा भी प्रयोग में लानेवाले भी मर्यादा का उल्लंघन कर जाते हैं और अन्ततः अपने स्वास्थ्य को, जो अल्लाह की बड़ी नेमत है, विनष्ट कर डालते हैं। इसके

अलावा नशे में धुत व्यक्ति अमानवीय व्यवहार से भी बाज़ नहीं आता, जिसको एक शिष्ट व्यक्ति देखना भी पसन्द नहीं करता। शराब की बुराई का अन्दाज़ा नबी (सल्ल०) की इस हदीस से किया जा सकता है कि आप (सल्ल०) ने मदिरा के सिलसिले के दस आदमियों पर लानत की। (अंगूर से) उसके निचोड़नेवाले पर, ख़ुद अपने लिए निचोड़नेवाले पर, उसके पीनेवाले पर, उसके पिलानेवाले पर, और उसपर जो उसको ले जाए, और उसपर जिसके लिए वह ले जाई जाए, उसके बेचने और उसके ख़रीदनेवाले पर, और उसपर जो किसी को शराब दे और उसपर जो उसे बेचकर उसकी क़ीमत खाए।

(हदीस : तिर्मिज़ी)

(13) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "तुम एक साँस में पानी न पियो जिस तरह ऊँट पीता है, बल्कि दो-तीन साँस में पियो। जब पानी पीने लगो तो 'बिसमिल्लाह' कहो और जब (पीने के बाद) बरतन को मुँह से हटाओ तो (अल्लाह की) स्तुति करो।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : पसन्दीदा तरीक़ा यह है कि पानी तीन साँस में धैर्य के साथ पिया जाए। नबी (सल्ल०) का व्यवहार भी अधिकतर यही रहा है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यही लाभप्रद है। इसके अलावा यह इसका प्रमाण होगा कि बन्दा नेमत के एहसास के साथ उससे लाभ उठा रहा है। इसके विपरीत तेज़ी के साथ एक ही साँस में पानी या कोई पेय पीनेवाला अपने व्यवहार से व्यक्त करता है कि वह मात्र अपनी आवश्यकता पूरी कर रहा है। वह किसी और चीज़ का कुछ भी ख़्याल नहीं रखता।

(14) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इससे रोका है कि पानी पीते समय बरतन में साँस लिया जाए या उसमें फूँक मारी जाए। (हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : बरतन में साँस लेना और उसमें फूँक मारना शिष्टता और स्वच्छता के विरुद्ध है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह हानिकारक है। इसके अलावा उसके बचे हुए पानी के पीने को दूसरा व्यक्ति नापसन्द कर सकता है। सहीह मुस्लिम की एक रिवायत में है कि आप (सल्ल०) कहा करते थे कि बीच में साँस ले-लेकर पानी पीने में अधिक तृप्ति होती है, और यह अधिक

स्वास्थ्यप्रद और पेट के लिए अधिक लाभदायक है।

(15) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जब खाने से निवृत्त होते तो फ़रमाते, "अलहम्दु-लिल्लाहिल्लज़ी अत्-अमना व सक़ाना व ज-अ-लना मिनल-मुसलिमीन" (सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जिसने हमें खिलाया, पिलाया और मुसलमान बनाया)। (हदीस : तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस दुआ में बन्दा इस सत्य को स्वीकार करता है कि उसे खिलाने-पिलानेवाला उसका अल्लाह ही है और इस प्रकार वह ख़ुदा की उस महान कृपा पर भी आभार व्यक्त करता है कि उसने उसे मुसलमान बनाया। अर्थात् भौतिक अलभ्य पदार्थ प्रदान करने पर ही बस नहीं किया बल्कि इस्लाम जैसी नेमत से उपकृत करके उसने अपने अनुग्रह को पूर्ण कर दिया।

सोने के नियम

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुममें से कोई अपने बिस्तर पर जाए तो अपना बिस्तर झाड़ ले, क्योंकि वह नहीं जानता कि क्या चीज़ उसके पीछे उसमें घुस गई है। फिर कहे— बि इस्मि-क रब्बी वज़अ्तो जंबी व बि-क अर्-फ़उहू इन अम्सक्-त फ़र्हम्हा व इन अरसल-तहा फ़ह्फ़ज़्हा बिमा तह्-फ़-ज़ो बिहिस्सालिहीन [मेरे रब, तेरे ही नाम से मैंने अपना पहलू (बिस्तर पर) रखा और तेरी ही मदद से उसे (बिस्तर से) उठाऊँगा। अगर तू (सोते में) मेरी आत्मा को रोक ले (अर्थात् मृत्यु दे दे) तो इसपर दया करना और अगर उसे छोड़ दे तो उसकी सुरक्षा करना जिस तरह तू नेक लोगों की रक्षा करता है]।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : हमारा सोना और जागना सब ख़ुदा ही की कृपा से होता है। इस एहसास को जीवित रखना हमारा नैतिक और धार्मिक कर्तव्य है। इस अनुभूति को ताज़ा और जीवन्त रखने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि हम दुनिया में हर एक काम ख़ुदा का नाम लेकर करें, यहाँ तक कि निद्रा की गोद में जाते समय भी ख़ुदा का नाम हमारी ज़बान पर हो और उससे हम अपने लिए भलाई के इच्छुक हों कि ऐ ख़ुदा, अगर इस हालत में मेरी मौत आ जाए तो तेरी दयालुता ही मेरे हिस्से में आए और अगर हम फिर जागें तो तू हमारी रक्षा कर ताकि हम तेरी अवज्ञा के कामों से

बच सकें और हमारी गणना तेरे नेक बन्दों में हो।

(2) हज़रत बरा-बिन-आज़िब (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक व्यक्ति को आदेश दिया कि "जब तुम रात में (सोने के लिए) बिस्तर पर जाओ[1] तो यह कहा करो :

अल्लाहु म-म अस्लम्तु नफ़्सी इलै-क व वज-जहतु इलै-क वल्जअतु ज़हरी इलै-क व फ़व्वज़तु अम्री इलै-क रग़बतं व रहबतन् इलै-क ला मल्जा-अ व ला मंजा मिन-क इल्ला इलै-क आमन्तु बिकिताबिकल्लज़ी अंज़ल्-त व बि रसूलि-कल्लज़ी अर्सल-त फ़इम्मा-त मा-त अलल-फ़िक़रा

"ऐ अल्लाह, मैंने अपने आपको तेरे आगे डाल दिया, अपने रुख़ को तेरी ओर किया, तुझ ही को अपना संरक्षक बनाया, तेरी चाहत और तेरा भय रखते हुए अपना मामला तुझे सौंप दिया। तेरे सिवा और कोई शरण-स्थल नहीं और न कोई बचने की जगह है, जहाँ तुझसे बचकर कोई निकल सके। मैं ईमान लाया तेरी उस किताब पर जिसे तूने अवतरित की और तेरे रसूल पर जिसे तूने भेजा।

फिर अगर मृत्यु आ गई तो यह मृत्यु दीने-फ़ितरत अर्थात् इस्लाम पर होगी।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यदि हम वुज़ू करके दायीं करवट पर सोएँ तो यह ज़्यादा बेहतर है। सहीह मुस्लिम की रिवायत है कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुम बिस्तर पर जाओ तो वुज़ू करो जिस तरह नमाज़ के लिए वुज़ू करते हो। फिर अपने दाहिने पहलू पर लेट जाओ।"

प्रकृति-अनुकूल धर्म क्या है? प्रकृति-अनुकूल धर्म यही है कि आदमी अपना उद्देश्य और पूज्य अल्लाह ही को जाने। उसी से उसकी सारी आशाएँ जुड़ी हों, उसी को वह अपना वास्तविक सहारा और आश्रय समझे। उसी के भय से वह कंपित भी हो, उसी से वह हार्दिक लगाव भी रखता हो, उसी की किताब को जीवन का मार्गदर्शक समझता हो। उसी के रसूल (सल्ल०) को वह अपना मार्गदर्शक और नेता स्वीकार करके उसका अनुसरण करे। जब कोई व्यक्ति इस दीन को अपनाता है और जागृति के अन्तिम क्षणों तक इस दीन के मूल्य एवं महत्त्व का एहसास रखता है तो ऐसे व्यक्ति से इसी बात की

आशा की जा सकती है कि वह अपनी ज़िन्दगी में ख़ुदा का नाफ़रमान बनकर नहीं रह सकता। वह सोता है तो ख़ुदा का आज्ञाकारी बनकर सोता है और जागेगा तो निश्चय ही उसका आज्ञाकारी बन्दा बनकर ही जागेगा और उसके जीवन का अन्त होगा तो दीने-फ़ितरत ही पर अन्त होगा।

(3) हज़रत बराअ् (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) जब (सोने के लिए) अपने बिस्तर पर जाते तो कहते, "अल्लाहुम्म बिस्मि-क अह्या व बिस्मि-क अमूतु (ऐ अल्लाह मैं तेरे ही नाम के साथ जीता हूँ और तेरे ही नाम के साथ मरता हूँ)।" और जब आप (सल्ल०) जागते तो कहते, "अलहम्दुलिल्ला-हिल्लज़ी अह्याना बा-द मा अमातना व इलैहिन्नुशूर (हम्द व शुक्र अल्लाह के लिए है जिसने मुझे मौत देकर जीवित किया और उसी की ओर मरने के बाद दोबारा उठना है।)" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस में नींद की हालत को मौत से अभिहित किया गया है। नींद और मौत में बड़ी समरूपता पाई जाती है। मौत में बदन से आदमी का सम्बन्ध टूट जाता है। नींद में भी आदमी अपने आसपास और अपने शरीर से बड़ी हद तक विलग हो जाता है। सांसारिक जीवन में अगर उसने सत्कर्मों के द्वारा अपने व्यक्तित्त्व का निर्माण किया है तो यह व्यक्तित्त्व शेष रहता है और ख़ुदा की उसपर रहमत होती है। लेकिन अगर वह दुनिया में बेपरवाह और ख़ुदा का अवज्ञाकारी बनकर रहा तो फिर उसकी आत्मा असुरक्षित होकर रहेगी। विस्तार सही हदीसों में मौजूद हैं।

कहा, "मैं तेरे ही नाम के साथ जीता और तेरे ही नाम के साथ मरता हूँ।" अर्थात् हम किसी भी दशा में तुझसे बेपरवाह नहीं हो सकते। सोचिए, जिस किसी के जागरण का आरम्भ और अन्त ख़ुदा के नाम के साथ होगा उसका समय कितना पवित्र होगा। जो व्यक्ति ख़ुदा के नाम से उठेगा और ख़ुदा ही के नाम के साथ सोएगा, वह ख़ुदा के आदेशों का आत्मिक रूप से ध्यान रखेगा, यह एक स्वाभाविक बात है। हमारा सोना और जागना सब कुछ ख़ुदा के अनुग्रह से होता है। वही हमारे जीवन का मूल स्रोत है। जीवन और मृत्यु का मालिक वही है। उसे याद रखना हमारे लिए ज़रूरी है। यह स्मरण प्रेम और कृतज्ञता की भावना के साथ भी हो और भय से भी और आशा व

कामनाओं के साथ भी। हमारे शरीर के रक्त की हर बूँद हर तीन मिनट के बाद दिल से होकर गुज़रती है ताकि वह शरीर में संचारित होने की शक्ति वहाँ से प्राप्त कर सके। ठीक इसी तरह हमें बार-बार अपने को ख़ुदा से जोड़े रखना चाहिए ताकि जीवन को शक्ति और पवित्रता प्राप्त होती रहे।

आप (सल्ल०) की दुआ के ये शब्द कि "प्रशंसा अल्लाह ही के लिए है जिसने मुझे मौत देकर ज़िन्दा किया, और उसी की तरफ़ मरने के बाद दोबारा उठना है।" प्रशंसा के शब्द बताते हैं कि बिस्तर से उठना और जागना एक नेमत और ईश-अनुग्रह है। इसी लिए ईश-स्तुति के शब्द ज़बान पर आए। यह उठना उस उठने की याद दिलाता है जब एक बड़ी नींद से, जिसे मौत कहते हैं, जागकर उठेंगे। इसी लिए इस अवसर पर उस दिन को याद किया गया जब क़ियामत में लोग दोबारा ज़िन्दा करके उठाए जाएँगे। आज तो हम नींद से कर्मभूमि में कर्म के लिए उठते हैं, लेकिन उस दिन का जागरण प्रतापवान ईश्वर के समक्ष उपस्थित होने के लिए होगा। कितने भाग्यशाली हैं वे लोग जिन्हें हर नीन्द मौत की याद दिलाती है और जिनकी हर सुबह क़ियामत के दिन इकट्ठा होने की याद ताज़ा कर जाती है।

सोना और जागना मनुष्य का दैनिक कर्म है। आप देखते हैं कि इसका सम्बन्ध जीवन के उच्चतम तथ्यों के साथ किस प्रकार स्थापित किया गया है। यही विशिष्टता इस्लाम की समस्त शिक्षाओं में पाई जाती है।

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति ऐसी करवट लेटे जिसमें वह अल्लाह को याद न करे तो निश्चय ही वह उसके लिए क़ियामत के दिन घाटे और पछतावे का कारण बनेगा, और जो व्यक्ति ऐसी जगह बैठे जहाँ प्रतापवान अल्लाह को याद न करे तो निश्चय ही वह उसके लिए घाटे और पश्चाताप का कारण बनेगा।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : आदमी का प्रत्येक कर्म उसके पारलौकिक जीवन पर प्रभाव डालता है। यह हदीस बताती है कि जो चीज़ हमेशा अपने समक्ष रखने की है वह पारलौकिक जीवन है। दुनिया में हर काम का मूल उत्प्रेरक अल्लाह की याद (Consciousness of God) है तो समझिए कि यह चीज़ परलोक में सुखद परिणामों के रूप में प्रकट होगी। और अगर ऐसा नहीं है तो हम दुनिया

में मात्र घाटे का सौदा करने में लगे हुए हैं। विचार एवं कर्म स्वस्थता के लिए आवश्यक है कि हमारा कोई कर्म और कोई गतिविधि अल्लाह की याद से वंचित न हो। इसके विपरीत हम जहाँ और जितना भी अपने प्रभु को भुलाए रखेंगे अन्ततोगत्वा वह हमारे लिए सन्ताप, लज्जा और घाटे के सिवा कुछ और सिद्ध नहीं हो सकता।

सभा और मजलिस के आदाब

(1) हज़रत जाबिर-बिन-समुरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि हम जब नबी (सल्ल०) के पास आते तो जहाँ जगह मिलती वहीं बैठ जाते थे।

व्याख्या : अर्थात् लोगों को लाँघते और फाँदते हुए अन्दर घुसने की कोशिश नहीं करते थे।

(2) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब (रज़ि०) अपने पिता से और वे अपने दादा (अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस रज़ि०) से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "दो आदमियों के मध्य बिना उनकी अनुमति के न बैठो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अबू-दाऊद और तिर्मिज़ी की एक रिवायत में ये शब्द आए हैं, "किसी व्यक्ति के लिए यह बात जायज़ नहीं कि (परस्पर क़रीब बैठे हुए) दो आदमियों के बीच में उनकी इजाज़त के बिना बैठकर उन्हें एक-दूसरे से अलग कर दे।" आदमी का यह व्यवहार दो आदमियों को जो परस्पर मिलकर बैठे थे अलग कर दे, शिष्टता और मानवता के सर्वथा प्रतिकूल है। इस्लाम कभी भी इसे पसन्द नहीं कर सकता। हाँ, अगर दोनों की इजाज़त से कोई उनके बीच आकर बैठता है तो फिर इसमें कोई दोष नहीं है।

(3) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "कोई आदमी किसी दूसरे आदमी को उसके स्थान से उठाकर स्वयं उसके स्थान पर न बैठ जाए। बल्कि कुशादगी और गुंजाइश पैदा करो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् यह अनाधिकारिक बात है कि कोई किसी को उठाकर उसकी जगह पर अपना क़ब्ज़ा जमाए। अलबत्ता सभावालों का कर्त्तव्य है कि कुशादगी पैदा करके आनेवालों के लिए जगह निकालें ताकि वे भी सभा में

सम्मिलित हो सकें।

(4) हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुम तीन व्यक्ति हो तो दो व्यक्ति तीसरे को छोड़कर चुपके-चुपके बातें न करें, यहाँ तक कि दूसरे लोग तुमसे मिलें, इसलिए कि इससे उस तीसरे को रंज होगा।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : तीन में अगर दो व्यक्ति तीसरे को छोड़कर परस्पर गुप्त रूप से बातें करते हैं तो इससे तीसरे व्यक्ति को रंज होगा कि उसे उपेक्षित कर दिया गया। इसके अलावा उसे यह भी सन्देह हो सकता है कि कहीं उसके विरुद्ध वे आपस में कोई बात न कर रहे हों।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुममें से कोई खड़ा हो" अबू-अवाना (रज़ि०) की हदीस में है कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुममें से कोई अपनी जगह से जहाँ वह बैठा था (किसी ज़रूरत से) खड़ा हो (और ज़रूरत पूरी करने को बाहर जाए) और फिर वह लौटकर आए तो वह उस जगह का ज़्यादा हक़दार है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् उसको यह हक़ पहुँचता है कि उसको उसके स्थान पर पुनः बैठने दिया जाए। अच्छा यह है कि ज़रूरत से उठनेवाला अपनी जगह पर रूमाल या बैग आदि कोई चीज़ छोड़कर उठे ताकि लोग यह जान सकें कि वह दोबारा लौटकर अपनी जगह आने का इरादा रखता है और वे उस जगह को उसके लिए आरक्षित रखें।

(6) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो लोग किसी ऐसी मजलिस से उठें जिसमें उन्होंने अल्लाह को याद नहीं किया तो मानो बस वे गधे का शव छूकर उठे हैं और यह उनके लिए क़ियामत के दिन पश्चाताप बनेगा।"(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मतलब यह है कि हमारी कोई मजलिस या सभा ईश्वर के स्मरण से वंचित नहीं रहनी चाहिए। इस्लाम से अनभिज्ञ लोग अपनी मजलिसों की शोभा बढ़ाने के लिए नृत्य-गान की व्यवस्था करते हैं। मुसलमान की दृष्टि में ईश-स्मरण और उसकी याद का स्थान दुनिया की कोई भी सुन्दर से सुन्दर और आकर्षक वस्तु नहीं ले सकती। ईश्वर का स्मरण ही है जिससे वास्तव में

घरों और सभाओं को शोभा मिल सकती है और ईश्वर का स्मरण ही है जिसके द्वारा मानवों के दिल प्रकाशमान होते हैं। ईश्वर के स्मरण और उससे सम्पर्क के बिना प्रत्येक वस्तु निष्प्राण और असुन्दर ही रहती है। अगर ईश्वर को याद किए बिना सभा समाप्त हो गई तो मानो आदमी किसी अशुभ और भयावह स्थान से उठा है और उसने वहाँ बैठकर निराशा और मुसीबत के सिवा कोई दूसरी चीज़ नहीं समेटी है। इसका अगर उसे आज एहसास नहीं होता तो कल क़ियामत के दिन अनिवार्यतः उसे इसका एहसास होकर रहेगा।

(7) हज़रत अबू-बरज़ा असलमी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) अन्त में जब मजलिस से उठने का इरादा करते तो कहते, "सुब्हा-न-क अल्लाहुम-म व बिहमदि-क अश्हदु अल्-ला इला-ह इल्ला अन-त अस्तग़्फ़िरु-क व अतूबु इलैक" (महान है ऐ अल्लाह तू! और तेरी ही प्रशंसा है। मैं गवाही देता हूँ कि तेरे सिवा कोई पूज्य नहीं, मैं तुझसे क्षमादान का याचक हूँ और तेरी ओर उन्मुख होता हूँ)।" एक व्यक्ति ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, पहले तो आप यह नहीं कहते थे। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह प्रायश्चित है उन कामों का जो मजलिस में हुए।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मतलब यह है कि मजलिसों में जो काम किया जाता है उसमें मालूम नहीं क्या-क्या कोताही हो जाती है और मालूम नहीं मजलिस में कोई कब और कितना ग़ाफ़िल रहता है। इन शब्दों से क्षतिपूर्ति हो जाती है। क्षमामय ईश्वर कोताही करने पर बन्दे के गुनाह क्षमा कर दिया करता है।

(8) हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मजलिसें अमानतदारी की अपेक्षा करती हैं सिवाय तीन मजलिसों के। एक जहाँ अकारण ख़ून बहाया जाए, दूसरी जहाँ अकारण आघात पहुँचाया जाए या व्यभिचार किया जाए, तीसरी जहाँ अनाधिकृत रूप से माल लूट लिया जाए।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मजलिस में बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं जो ऐसी नहीं होतीं कि उनको विज्ञप्त किया जाए। मजलिस में शामिल होनेवाले व्यक्तियों का कर्तव्य है कि वे उन बातों को अपने तक सीमित रखें, दूसरे लोगों तक उनको न पहुँचने दें। मजलिस की यह एक अमानत है, जिसका उन्हें ध्यान रखना

चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य से वहाँ अगर ज़ुल्म और अत्याचार किया जा रहा हो तो ज़रूरी हो जाता है कि लोगों को और विशेष रूप से अधिकारी वर्ग को उससे सूचित किया जाए, ताकि ज़ुल्म और बुराई की रोक-थाम हो सके, और ताकि हक़दार का हक़ सुरक्षित रह सके और पीड़ित के आँसू पोंछे जा सकें।

यात्रा के नियम

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जब यात्रा पर बाहर जाते और अपने ऊँट पर सवार होते तो तीन बार 'अल्लाहु अकबर' (अल्लाह सबसे बड़ा है) कहते, फिर यह दुआ पढ़ते, "सुब्हानल्लज़ी सख़्ख़-र लना हाज़ा व मा कुन्ना लहू मुक़्रिनी-न व इन्ना-इला रब्बिना ल-मुन्क़लिबून। अल्लाहुम्म नसउ-ल-क फ़ी सफ़रना हाज़ल बिर्र वत्तक़्वा व मिनल अमलि मा तरज़ा। अल्लाहुम्म हव्विन अलैना सफ़रना हाज़ा व अतवि अन्ना बोहूदहु। अल्लाहुम्मा अन्तस्साहिबु फ़िस्सफ़रि वल् ख़लीफ़ तौ फ़िल् अहलि। अल्ला हुम्मा इन्नी अउज़ुबि-क मिन व साइस्सफ़रि व काबतिल्ल मंज़रि व सूइल् मुन् क़ल्बै फ़िल मालि वल् अह्ल।" [क्या ही महानता का अधिकारी है वह ज़िसने इसे (सवारी को) हमारे लिए वशीभूत कर दिया, वरना हम तो ऐसे न थे कि इसे क़ाबू में कर सकते, और निश्चय ही हम अपने रब की ओर लौटनेवाले हैं। ऐ अल्लाह, हम तुझसे अपनी इस यात्रा में नेकी और ईशपरायणता के याचक हैं और ऐसे कर्म के याचक हैं जिसको तू पसन्द करे। ऐ अल्लाह, इस यात्रा को हमपर आसान कर दे और इसकी दूरी को हमारे लिए लपेट दे (यानी संक्षिप्त कर दे)। ऐ अल्लाह, तू यात्रा में साथी है और ख़लीफ़ा (अर्थात् मेरे पीछे निरीक्षक) है घरवालों में। ऐ अल्लाह, मैं पनाह माँगता हूँ तुझसे सफ़र की कठिनाइयों से (बचने के लिए) और भयावह दृश्य से और बुरे हाल में अपने माल और घरवालों में लौटकर आने से]" और जब आप (सल्ल०) वापस होते तब भी यही पढ़ते, अलबत्ता उसमें ये शब्द बढ़ा लेते : "आइबू-न ताइबू-न आबिदू-न लि रब्बिना हामिदून" [हम पलटते हैं (ख़ुदा की ओर), तौबा करते और बन्दगी करते हैं और अपने रब की प्रशंसा करते हैं।"] (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस से एक स्पष्ट चित्र हमारे सामने आ जाता है कि

ईमानवाले जब यात्रा करते हैं तो उनकी यात्रा का ढंग कैसा होता है और जब वे सफ़र से लौटते हैं तो उनकी मनोदशा और भावनाएँ कैसी होती हैं। वे प्रत्येक दशा में अपने को अल्लाह का ग़ुलाम और उसी पर अपने को आश्रित समझते हैं। उसी से वे सहायता की याचना करते हैं। नेकी, सत्कर्म, ईशपरायणता और अल्लाह की प्रसन्नता को वे अपनी वास्तविक जीवन–सामग्री समझते हैं। इसलिए वे उसकी प्राप्ति के लिए अपने रब से प्रार्थना करते हैं। घरवालों की सुरक्षा के लिए और दुर्दशा और कठिनाइयों से बचने के लिए वे अपने रब को पुकारते हैं। वे सफ़र करते हुए उस बड़े सफ़र अर्थात् आख़िरत (परलोक) के सफ़र को भी याद करते हैं कि एक दिन हमें अपने रब की ओर कूच करना है। और घर ही को नहीं, इस दुनिया को भी छोड़ देना है। और सफ़र से घर की ओर वापसी उन्हें ज़िन्दगी के एक महत्त्पूर्ण पहलू की ओर ध्यान आकृष्ट करा जाती है कि उनकी असल मंज़िल और ठिकाना उनका रब है। उसी के पास उनका वास्तविक ठिकाना है। इसलिए उन्हें हर हाल में उसी की ओर उन्मुख होना चाहिए। उसके समक्ष तौबा करनी, उसकी बन्दगी को अपने लिए गौरव समझना और उसकी स्तुति को अपना जीवन–व्यापार मानना वास्तव में होशपूर्णता और जीवन चेतना है।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह अल–ख़ुतमी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) जब सेना को विदा करने का इरादा करते तो कहते, "मैं तुम्हारे दीन, तुम्हारी अमानत और तुम्हारे कर्मों के अंजाम को अल्लाह की सुरक्षा में देता हूँ।" (अबू–दाऊद)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि मोमिन के लिए और विशेष रूप से उस व्यक्ति के लिए जो नेतृत्त्व और नायक–पद पर आसीन हो, ज़रूरी है कि वह अपने साथियों के दीन व ईमान की सुरक्षा की ओर से असावधान न हो। उसे यह चिन्ता रहनी चाहिए कि उसके सहकर्मी साथी विश्वसनीय हों और उनमें चरित्र और आचरण की वह शक्ति पाई जाए कि उनपर पूरा भरोसा किया जा सके। और उनकी इस विशिष्टता में कभी कमी न आने पाए, बल्कि उसमें अभिवृद्धि ही होती रहे। और वे जीवन के अन्तिम क्षण तक सतकर्म पर क़ायम रह सकें। जब हम अपने साथियों से किसी कारणवश दूर हो रहे हों तो ख़ुदा से केवल उनके शरीर और प्राण की कुशलता के लिए ही दुआ न करें,

बल्कि यह दुआ भी करें कि ऐ ख़ुदा वे हम से दूर जा रहे हैं, अब वे तेरे ही सुपुर्द हैं। वे अपने ईमानपरक चरित्र और आचरण की अपेक्षाओं की कभी और कहीं भी उपेक्षा न करें। इस सम्बन्ध में तू उनका सहायक व मददगार हो।

(3) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब यात्रा में तीन व्यक्ति निकलें तो अपने में से एक व्यक्ति को अपना अमीर (नायक) नियुक्त कर लें।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् उनकी यात्रा एक अमीर की निगरानी में तय हो और सामूहिकता व इज्तिमाइयत के जो आदाब व नियम हैं वे उनका पालन करें। इससे यह सफ़र पूरी गरिमा और कुशलता के साथ तय होगा और यात्रा में सहचर पारस्परिक मतभेदों और बिखराव की सारी ख़राबियों से सुरक्षित रह सकेंगे।

(4) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने शत्रु के भू-भाग में क़ुरआन लेकर यात्रा करने से रोका है। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् यदि इस बात की आशंका है कि शत्रु उनपर क़ाबू पा सकते हैं तो वे अल्लाह की किताब लेकर यात्रा न करें। इसलिए कि ऐसी हालत में इसकी सम्भावना रहती है कि क़ुरआन की प्रति दुश्मनों के हाथ आ जाए और वे उसका अपमान करें। इमाम अबू-हनीफ़ा के मतानुसार मुसलमानों की सेना अगर बड़ी है तो वे अपने साथ क़ुरआन की प्रति रख सकते हैं।

(5) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर लोगों को मालूम हो कि तनहाई में क्या ख़राबी है जो मैं जानता हूँ तो फिर कोई भी रात में अकेला यात्रा न करे।"(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अकेले यात्रा करने में तरह-तरह की आशंकाएँ रहती हैं। विशेष रूप से रात की यात्रा तो अत्यन्त आशंका की होती है। लेकिन अगर आदमी अकेला नहीं है तो वह आनेवाली आपदा का सामना सहज ही कर सकता है।

(6) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "यात्रा अज़ाब का एक टुकड़ा है जो तुममें से किसी को सोने और खाने-पीने से रोके रखती है। अतः जब तुममें कोई अपनी ज़रूरत पूरी कर ले तो उसे अपने घरवालों की तरफ़ लौटने में

जल्दी करनी चाहिए।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : सफ़र में आदमी को वह सुविधा और आराम नहीं मिल सकता जो उसे अपने घर में प्राप्त होता है। सफ़र में अधिकतर खाने-पीने और आराम करने का अवसर भी अपने समय पर नहीं मिलता और आदमी को विविध कठिनाइयों और दिक़्क़तों का सामना करना पड़ता है। इसलिए जहाँ तक सम्भव हो घर की ओर लौटने में जल्दी करनी चाहिए। अकारण अपने आपको परेशानियों में डाले रखना कोई नेकी नहीं है।

(7) हज़रत जाबिर बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैं एक यात्रा में नबी (सल्ल०) के साथ था तो जब हम मदीना पहुँचे तो आप (सल्ल०) ने मुझसे कहा, "मस्जिद में जाकर दो रक्अत नमाज़ अदा करो।"
(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) की स्वयं यही रीति थी कि आप (सल्ल०) सफ़र से वापस आते तो बैठने से पहले मस्जिद में जाकर दो रक्अत नमाज़ अदा करते थे, (बुख़ारी)। सफ़र से वापसी पर मोमिन के लिए ज़रूरी है कि वह अल्लाह के आगे सज्दा करके उसके प्रति आभार व्यक्त करे कि उसका अनुग्रह और उसकी कृपा न होती तो यह सफ़र सम्भव न होता और न वह सकुशल वापस हो सकता था।

(8) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुममें से कोई रात को आए तो अचानक अपने घर में प्रवेश न करे (बल्कि ठहरे), यहाँ तक कि वह स्त्री नाभि के नीचे के बालों को साफ़ कर ले जिसका पति उससे दूर रहा है। और वह स्त्री कंघी कर ले जिसके बाल बिखरे हुए हों।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अचानक घर में प्रवेश करने से स्त्री के लिए इसका अवसर नहीं रहता कि वह बन-सँवरकर पति के सामने आए। अगर वह मैले-कुचैले वस्त्र में पति के सामने आती है तो इसकी सम्भावना रहती है कि पति को उससे नफ़रत हो जाए और उनका जीवन कटु हो जाए। शरीअत में अभीष्ट यह है कि पति और पत्नी के मध्य प्रेम और आसक्ति बनी रहे।

भेंट

(1) हज़रत वासिला-बिन-ख़त्ताब (रज़ि०) से उल्लिखिति है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) मस्जिद में उपस्थित थे, एक व्यक्ति आपके पास आए तो आप (सल्ल०) उनके लिए अपनी जगह से खिसक गए। उन्होंने कहा कि जगह की काफ़ी गुंजाइश है (अपनी जगह से हटने की कोई आवश्यकता नहीं)। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मुसलमान का यह हक़ है कि जब उसका कोई भाई उसे (अपने पास आता) देखे तो उसके लिए अपनी जगह से कुछ हटे (और उसे अपने क़रीब बिठाए)।" (हदीस : बैहक़ी, फ़ी-शोबुल-ईमान)

व्याख्या : अर्थात् पर्याप्त जगह रहने पर भी अपने भाई के लिए अपनी जगह से कुछ हटे और इस प्रकार यह प्रकट करे कि भाई के आने पर उसे ख़ुशी हुई है। इसके अतिरिक्त इससे अभीष्ट भाई का आदर-सत्कार भी है।

(2) हज़रत रिबई-बिन-हिराश (ताबई) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने नबी (सल्ल०) से आपकी सेवा में उपस्थित होने की अनुमति चाही और कहा कि क्या मैं भीतर आ सकता हूँ? नबी (सल्ल०) ने अपने सेवक से कहा, "उस व्यक्ति के पास जाओ और उसे अनुमति लेने की विधि बताओ।" उससे कहो कि वह कहे, "अस्सलामु अलैकुम, अ-अद्ख़ुलु? (आप पर सलामती हो, क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ?)।" उस व्यक्ति ने आपकी बात सुन ली और कहा : अस्सलामु अलैकुम, अ-अद्ख़ुलु? अतः नबी (सल्ल०) ने उसे अनुमति दे दी और वह अन्दर आ गया। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस रिवायत से मालूम हुआ कि किसी के पास जाने से पहले उससे मिलने की अनुमति लेनी चाहिए। सम्भव है अपनी व्यस्तता या किसी असमर्थता के कारण वह उस समय मुलाक़ात करने की स्थिति में न हो। इस हदीस से यह भी मालूम हुआ कि आनेवाले को अनुमति लेने से पहले सलाम करना चाहिए। सलाम के बाद फिर अनुमति की याचना करनी चाहिए।

सलाम

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा कि कौन-सा इस्लाम उत्तम है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तेरा खाना खिलाना और परिचित व

अपरिचित सभी को सलाम करना।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : वैसे तो हर क़ौम और जाति में सलाम करने और अभिवादन का कोई न कोई तरीक़ा प्रचलित है। लेकिन इस्लामी सभ्यता में सलाम को विशेष महत्त्व दिया गया है। इस्लाम ने सलाम करने का जो तरीक़ा सिखाया है, उससे उत्तम किसी तरीक़े की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सलाम के द्वारा परस्पर एक-दूसरे से जिस हार्दिक सम्बन्ध, प्रेम और शुभकामना का प्रदर्शन किया जाता है वह अपनी मिसाल आप है। फिर सलाम करने में परिचित और अपरिचित के भेद को भी बाक़ी नहीं रखा गया ताकि प्रेम-लाभ सार्वजनिक हो।

सलाम की तरह एक-दूसरे को खाना खिलाकर उसकी प्रतिष्ठा करने को भी एक उत्तम कर्म कहा गया है। इस्लाम की शिक्षा उदारता और दानशीलता की है। कृपणता, स्वार्थपरता और आत्मश्लाघा की इस्लाम में कोई गुंजाइश नहीं पाई जाती।

इस रिवायत में 'सलाम करने' के लिए 'तक़्र-उ' शब्द आया है जिसकी उत्पत्ति 'क़रात' से हुई है, जिसका अर्थ होता है 'पढ़ना'। यह शब्द तक़र-उ के अतिरिक्त 'तुक़रिउ' के रूप में भी आया है, जिसकी उत्पत्ति 'इक़रा' से है, जिसका अर्थ 'पढ़वाना' है। सलाम करनेवाला इसका कारण बनता है कि दूसरा सलाम का जवाब दे। इस तरह मानो वह उसके मुख से सलाम के उत्तर का वाक्य पढ़वाता है।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "तुम जन्नत में प्रवेश नहीं कर सकोगे जब तक ईमान न लाओ। और तुम ईमानवाले नहीं हो सकते जब तक कि तुम आपस में प्रेम न करो। और क्या मैं तुम्हें ऐसी बात न बताऊँ कि जब तुम उसको व्यवहार में लाओ तो तुम्हारे बीच प्रेम बढ़े? वह बात यह है कि तुम आपस में सलाम का चलन आम करो।" (मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस को मौलिक हैसियत प्राप्त है। इसमें बताया गया है कि जन्नत में (जिसे प्राप्त करना जीवन का मूल उद्देश्य है) किसी का प्रवेश ईमान के बिना सम्भव न होगा। अल्लाह की जन्नत उन लोगों के लिए नहीं है जिनके दिल में ईमान और विश्वास न पाया जाता हो। ईमान रखनेवाले परस्पर

एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। यह उनके ईमान की पहचान है। ईमान की अपेक्षा यह होती है कि ईमानवालों में परस्पर आत्मीयता और प्रेम का सम्बन्ध स्थापित हो। वे एक-दूसरे को प्रिय हों। उनके दिलों में एक-दूसरे के प्रति द्वेष, ईर्ष्या और दुर्भाव कदापि न हो। पारस्परिक प्रेम जितना अधिक बढ़ा हुआ होगा, ईमान भी उतना ही अधिक सुदृढ़ होगा।

इस हदीस में प्रेम बढ़ाने का जो उपाय बताया गया है, वह स्वाभाविक है। कहा, "आपस में सलाम का चलन आम करो।" अर्थात् आपस में सलाम को ख़ूब फैलाओ। इससे परस्पर प्रेम बढ़ेगा। इसलिए कि सलाम का अस्ल प्रेरक तत्त्व प्रेम ही है। सलाम को जितना अधिक उसकी मूल आत्मा के साथ रिवाज दिया जाएगा, वह प्रेम में अभिवृद्धि का कारण सिद्ध होगा।

(3) हज़रत उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "लोगों में अल्लाह का सबसे अधिक निकटवर्ती व्यक्ति वह है जो सलाम करने में पहल करे।" (हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी)

व्याख्या : एक हदीस में आया है कि सलाम में पहल करनेवाला अभिमान से मुक्त होता है, (हदीस : बैहक़ी)। जो व्यक्ति इसकी प्रतीक्षा में रहता है कि दूसरा उसे सलाम करे, उसे यह समझ लेना चाहिए कि उसके दिल को विशालता प्राप्त नहीं है जो इस्लाम में अभीष्ट है। दिल की इस संकीर्णता के साथ न तो वह दीन के स्वभाव और उसके मिज़ाज को जान सकता है और न उसका हक़ अदा करने की उसमें कभी शक्ति और क्षमता ही पैदा हो सकती है और न ख़ुदा की दृष्टि में उसका कोई ऊँचा स्थान हो सकता है।

(4) हज़रत इमरान-बिन-हुसैन (रज़ि०) से रिवायत है कि एक व्यक्ति नबी (सल्ल०) की सेवा में आया, कहा : अस्सालामु अलैकुम (आपपर सलामती हो)। आप (सल्ल०) ने उसके सलाम का उत्तर दिया। फिर वह व्यक्ति बैठ गया। आप (सल्ल०) ने कहा, "इसके लिए दस नेकियाँ लिखी गईं।" फिर एक दूसरा व्यक्ति आया और उसने कहा : 'अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि' (आपपर सलामती हो और अल्लाह की रहमत)। आप (सल्ल०) ने उसके सलाम का भी उत्तर दिया। फिर वह व्यक्ति बैठ गया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इसके लिए बीस नेकियाँ लिखी गईं।" फिर एक और व्यक्ति आया और कहा : अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व

बरकातुहू (आपपर सलामती हो और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकतें हों)। आप (सल्ल०) ने उसके सलाम का भी उत्तर दिया। फिर वह व्यक्ति भी बैठ गया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इसके लिए तीस नेकियाँ लिखी गईं।" (हदीस : तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् सलाम में जितने शब्द बढ़ाते जाएँगे उतने ही पुण्य और फल में भी अभिवृद्धि होती चली जाएगी। एक रिवायत में यह भी है कि एक और व्यक्ति ने आकर कहा : अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू व मग़फ़ि-रतुहू (आपपर सलामती हो और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकतें हों और उसकी क्षमा)। आप (सल्ल०) ने (उसके सलाम का जवाब दिया और) फ़रमाया, "इसके लिए चालीस नेकियाँ लिखी गईं।"

सलाम का जवाब देने में इसका ख़याल रखना चाहिए कि अच्छे से अच्छा उत्तम जवाब दिया जाए। अगर सलाम करनेवाले ने 'अस्सलामु अलैकुम' कहा है तो जवाब में 'व अलैकुमस्सलामु व रहमतुल्लाहि' कहें। सलाम करनेवाला यदि "अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि" कहता है तो जवाब में 'व अलैकुमस्सलाम व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू' कहें। क़ुरआन में है, "और तुम्हें जब सलामती की कोई दुआ दी जाए तो तुम उससे अच्छी दुआ दो या (कम से कम) उसी को लौटा दो।" (4:86)

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुममें से कोई अपने भाई से मिले तो चाहिए कि उसे सलाम करे, फिर इसके बाद यदि दोनों के बीच कोई पेड़ या दीवार या (बड़ा) पत्थर आ जाए और फिर उससे मुलाक़ात हो तो उसे (दोबारा) सलाम करे।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मतलब यह है कि थोड़े अन्तराल की जुदाई के बाद भी सलाम कर लेना अच्छा है। इससे सलाम के मूल्य को महसूस किया जा सकता है और इससे इस बात का भी अनुमान किया जा सकता है कि लोगों के पारस्परिक सम्बन्धों में निकटता और हृदयदाह कितना अभीष्ट है।

(6) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "सवार पैदल चलनेवाले को सलाम करे और पैदल चलनेवाला बैठे हुए को और थोड़े आदमी अधिसंख्यावालों को सलाम

करें।''   (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस में सलाम के कुछ नियम बताए गए हैं। उदाहरणार्थ कहा गया, ''सवार पैदल चलनेवाले को सलाम करे।'' यह आदेश इसलिए दिया गया ताकि सवार पर स्पष्ट हो कि यद्यपि पैदल चलनेवाले के मुक़ाबले में वह ऊँचाई पर होता है, लेकिन बन्दे को प्रत्येक दशा में जो चीज़ शोभा देती है वह विनम्रता का गुण है और यही चीज़ उसके लिए गौरव की बात है।

(7) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, ''जब तुममें से कोई किसी मजलिस में पहुँचे तो सलाम करे। फिर यदि बैठना चाहे तो बैठ जाए। फिर जब (चलने के लिए) खड़ा हो तो फिर सलाम करे, क्योंकि पहला सलाम दूसरे सलाम से ज़्यादा उत्तम नहीं है।''

(हदीस : तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : किसी मजलिस में पहुँचने पर पहले सलाम करना चाहिए। इसके बाद अगर बैठना हो तो बैठें, और अगर वापस हो जाना चाहें तो मजलिसवालों को सलाम करके वापस हों। पहले सलाम के मुक़ाबले में इस दूसरे सलाम को, जो वापसी के समय करेंगे, कम महत्त्वपूर्ण न समझें।

(8) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, ''मेरे बेटे, जब तुम अपने घर में प्रवेश करो तो सलाम करो। यह तुम्हारे और तुम्हारे घरवालों के लिए बरकत का कारण बनेगा।''

(हदीस : तिरमिज़ी)

व्याख्या : एक हदीस में आया है कि, ''जब तुम अपने घर में प्रवेश करो तो अपने घरवालों को सलाम किया करो और जब घर से निकलो तो अपने घरवालों को सलाम ही के द्वारा विदा करो'', (बैहक़ी)। इस हदीस में 'फ़औदिऊ अहलहू बिस्सलामि' के शब्द आए हैं। इसका एक मतलब तो यही है कि घरवालों को सलाम के द्वारा विदा करो। अर्थात् विदा होते समय उन्हें सलाम करो। कुछ विद्वानों ने कहा है कि 'औदऊ' शब्द 'ईदाअ' से है। इसके अनुसार अर्थ यह होगा कि जब घर से निकलो तो सलाम को अपने घरवालों के पास वदीअत अर्थात् अमानत रखो। मतलब यह कि सलाम को शुभ-शकुन का पर्याय ठहराओ कि आगे फिर घर की ओर वापसी सलामती

ही के साथ होगी और पुनः इसका अवसर प्राप्त होगा कि घरवालों को सलाम कर सको।

प्रत्येक दशा में दोनों ही हदीसें बताती हैं कि अपने घरवालों को अपने सलाम से वंचित नहीं रखना चाहिए। जब घर में प्रवेश करें उस समय भी उन्हें सलाम करें और जब घर से निकलकर बाहर कहीं जाने को हों उस समय भी उन्हें सलाम करें। यही इस्लाम की शिक्षा और इस्लामी सभ्यता है।

(9) हज़रत उसामा-बिन-ज़ैद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) एक ऐसे जन-समूह के पास से गुज़रे जिसमें मुसलमान और बहुदेववादी मूर्तिपूजक भी थे और यहूदी भी थे। आपने समूह को सलाम किया।''
(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि जन-समूह में यद्यपि मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम हर तरह के लोग हों, लेकिन सलाम करने में कृपणता से काम न लें। लोगों के पास से गुज़रने के जो शिष्ट नियम इस्लाम ने सिखाए हैं उनको न भूलें। यद्यपि यह सलाम वास्तव में उन्हीं लोगों के हक़ में होगा जो ईमानवाले होंगे। इसलिए कि अल्लाह की रहमतों और वास्तविक सलामती के पात्र ग़ैर-मोमिन नहीं हो सकते। सभा में अगर कोई मोमिन व्यक्ति मौजूद न हो तो ऐसी स्थिति में सलाम के लिए 'अस्सलामु अला मनित्तबअल-हुदा' (सलामती हो उनपर जो हिदायत की पैरवी इख़तियार करें) कहना चाहिए।

(10) हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, ''जब किताबवाले (यहूदी और ईसाई) तुम्हें सलाम करें तो तुम जवाब में कहो 'व अलैकुम' (तुम पर भी)।''(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् उनके सलाम का जवाब सिरे से न देना तो पुरुषार्थ और मानवता के विपरीत है। उनके सलाम का जवाब दो। लेकिन यह ख़याल रहे कि अभी वे ख़ुदा की रहमतों के पात्र नहीं हैं। तुम्हें इच्छा इसी बात की करनी चाहिए कि वे ईमान की दौलत से सम्पन्न होकर वास्तविक सलामती और अल्लाह की रहमतों के पात्र बन जाएं।

(11) हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) कुछ लड़कों के पास से गुज़रे तो आप (सल्ल०) ने उन्हें सलाम किया।

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : आप (सल्ल०) के इस व्यवहार से स्पष्ट होता है कि आप में विनम्रता और शालीनता का गुण पूर्ण रूप से पाया जाता था। आपका महान् व्यक्तित्त्व वास्तव में प्रेम और करुणा का प्रतीक था। आपके इस व्यवहार में मुस्लिम समुदाय के लिए बड़ा मार्गदर्शन पाया जाता है। क़ौम के बच्चों की उपेक्षा किसी भी तरह ठीक नहीं है। उनसे हमें पूरी दिलचस्पी होनी चाहिए। उनका दिल रखना और उनको प्रोत्साहित करना यह बड़ों का कर्तव्य है। उनकी शिक्षा-दीक्षा और प्रशिक्षण की ओर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है।

(12) हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद (रज़ि०) बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) हम स्त्रियों के पास से होकर गुज़रे तो आप (सल्ल०) ने हम (स्त्रियों) को सलाम किया। (अबू-दाऊद, इब्ने-माजा, दारमी)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) का दयामय सन्देश जिस तरह पुरुषों के लिए था, उसी तरह आप स्त्रियों के मार्गदर्शन के लिए भी नबी बनाकर भेजे गए थे। स्त्रियाँ भी इसका हक़ रखती थीं कि वे आपके सलाम और आपकी दुआओं से लाभान्वित हों।

(13) हज़रत ग़ालिब (रह०) कहते है कि हम हसन बसरी (रह०) के दरवाज़े पर बैठे हुए थे कि एक व्यक्ति आया और कहा कि मुझसे मेरे पिता ने और उनसे मेरे दादा (अर्थात् उनके बाप) ने बयान किया कि मुझे मेरे पिता ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में भेजा और कहा कि तुम नबी (सल्ल०) की सेवा में जाओ और नबी (सल्ल०) को मेरा सलाम पहुँचाओ। वे कहते हैं कि मैं आप (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ और कहा कि मेरे पिता ने आपको सलाम कहा है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुमपर और तुम्हारें पिता पर सलामती हो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि किसी के द्वारा दूसरे व्यक्ति को अपना सलाम पहुँचाया जा सकता है। इस सलाम का परोक्ष रूप से जवाब भी देना चाहिए। जिसकी ओर से सलाम पहुँचाया जाए उसपर सलाम भेजे और सलाम पहुँचानेवाले व्यक्ति पर भी सलाम भेजे, बल्कि पहले सलाम पहुँचानेवाले व्यक्ति पर ही सलाम भेजना चाहिए, क्योंकि वह सामने मौजूद

होता है, इसलिए उसका हक़ पहले है। जब कोई किसी की तरफ़ से सलाम पहुँचाए तो जवाब में इस तरह कहे : अलै-क व अला फ़ुलानिस-सलामु (तुमपर और अमुक व्यक्ति पर सलामती हो)। यह भी कह सकते हैं, 'अलै-क व अलैहिस्सलामु' (तुमपर और उसपर सलामती हो)।

इसतिक़बाल (स्वागत)

(1) हज़रत साइब-बिन-यज़ीद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि जब नबी (सल्ल०) तबूक के अभियान से मदीना लौटकर आए तो लोगों ने आपका स्वागत किया। मैं भी बच्चों के सन्यतुल-विदा में आपसे मिला।

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मालूम हुआ कि दूर से आनेवाले का विशेष रूप से किसी बड़े अभियान से सफल होकर लौटनेवाले के आगमन पर अपनी प्रसन्नता और हर्ष व्यक्त करने के लिए उसका स्वागत करना एक स्वाभाविक चीज़ है। इस्लाम में यह कोई अप्रिय बात कदापि नहीं है।

मरहबा (स्वागतम्) कहना

(1) हज़रत इकरिमा-बिन-अबू-जहल कहते हैं कि (मक्का की विजय के पश्चात्) जब मैं (इस्लाम क़बूल करने के लिए) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ तो आपने फ़रमाया : "हिजरत करनेवाले सवार को मरहबा।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : अर्थात् अल्लाह और रसूल की ओर या दारुल-हर्ब (रणक्षेत्र) से दारुस्लाम (शान्तिगृह) की ओर हिजरत करनेवाले का हम स्वागत करते हैं। एक रिवायत में है कि जब नबी (सल्ल०) ने उन्हें अपनी ओर आते देखा तो आप (सल्ल०) खड़े हो गए और चलकर उनके पास पहुँचे और उन्हें गले लगा लिया और फ़रमाया, "हिजरत करनेवाले सवार को मरहबा।" (जमउल जमअ्—मुसअब बिन-अब्दुल्लाह से)

हज़रत इकरिमा (रज़ि०) बिन-अबू-जह्ल इस्लाम क़बूल करने से पहले नबी (सल्ल०) से अत्यन्त वैर-भाव रखते थे। हज़रत इकरिमा (रज़ि०) का विशिष्ट गुण घुड़सवारी में निपुणता था। नबी (सल्ल०) के हाथ पर ईमान

लाने के बाद इस्लाम की बरकत से उनके व्यक्तित्व में निखार आ गया। अल्लाह के दीन की स्थापना के लिए उन्होंने अपनी जान तक क़ुरबान कर दी। वे यरमूक की लड़ाई में शहीद हुए।

मुसाफ़ह (हाथ मिलाना)

(1) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-मसऊद (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "सलाम परिपूर्ण होता है हाथ मिलाने से।"

(हदीस : तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : ईमानवाले जब आपस में मिलें तो उनके लिए आवश्यक है कि वे एक-दूसरे के प्रति प्रेम, प्रसन्नता और आदर व प्रतिष्ठा का प्रदर्शन करें। इस प्रदर्शन का सभ्य तरीक़ा सलाम है। मुसाफ़ह से वास्तव में इसी उद्देश्य की पूर्ति होती है।

मुसाफ़ह एक-दूसरे से हाथ मिलाने को कहते हैं। मुसाफ़ह दोनों हाथों से भी कर सकते हैं और एक हाथ से भी। मर्दों का औरतों से और औरतों का मर्दों (ना महरमों) से मुसाफ़ह करना उचित नहीं।

(2) हज़रत अबू-ख़त्ताब क़तादा (रह०) कहते हैं कि मैंने अनस (रज़ि०) से पूछा कि क्या अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के सहाबा में मुसाफ़ह का रिवाज था? उन्होंने कहा, "हाँ।"

(3) हज़रत बरा-बिन-आज़िब (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "जब दो मुसलमान मिलें, परस्पर मुसाफ़ह करें और इसके साथ अल्लाह की प्रशंसा करें और उससे क्षमा-याचना करें तो उन्हें क्षमा कर दिया जाता है। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : एक रिवायत में ये शब्द आए हैं — "दो मुसलमान मिलें और वे आपस में मुसाफ़ह करें तो दोनों के विलग होने से पूर्व ही अनिवार्यतः उन्हें क्षमा कर दिया जाता है।" (हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी, इब्ने-माजा)

मुसाफ़ह इस बात का प्रतीक है कि मुसाफ़ह करनेवाले एक-दूसरे के हक़ को पहचानते हैं और अल्लाह की प्रशंसा और स्तुति इस बात का प्रमाण है कि अल्लाह के हक़ों और अधिकारों को भी वे किसी हालत में विस्मृत नहीं करते। इसलिए उनका यह परस्पर मिलना और सलाम और मुसाफ़ह एक तरह

से उनकी क्षमा प्राप्ति और उनकी सफलता की उद्घोषणा है। अलबत्ता इसके लिए ज़रूरी है कि यह मुलाक़ात और सलाम और मुसाफ़ह निष्प्राण न हो बल्कि इसके पीछे पूर्णतः मोमिन का चेतना-भाव और एहसास काम कर रहा हो।

(4) हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि जब यमन के लोग आए तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "तुम्हारे पास यमन के लोग आए हैं।" ये वे लोग हैं जिन्होंने सबसे पहले मुसाफ़ह शुरू किया। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मालूम हुआ कि उत्तम रीति कोई भी प्रचलित करे उसकी प्रशंसा की जाएगी। हदीस का यह भाग कि "ये वे लोग हैं जिन्होंने सबसे पहले मुसाफ़ह शुरू किया" हज़रत अनस (रज़ि०) का अपना कथन है। जैसा कि मुसनद अहमद की एक रिवायत में इसका स्पष्टीकरण पाया जाता है। (अहमद, 3:251)

आलिंगन (गले लगाना)

(1) इमाम शाबी (ताबिई) से मुर्सलन रिवायत है कि नबी (सल्ल०) जाफ़र-बिन-अबी-तालिब (रज़ि०) से मिले तो उनको गले लगाया (अर्थात् आलिंगन किया) और उनकी आँखों के मध्य में (अर्थात् माथे को) चूमा।

(हदीस : बैहक़ी फ़ी शोबुल-ईमान, अबू-दाऊद)

व्याख्या : दो आदमियों का परस्पर एक-दूसरे के गले में हाथ डालना या परस्पर एक-दूसरे को सीने से लगाना मुआनक़ा कहलाता है। मुआनक़ा से वास्तव में घनिष्टता, सम्बन्ध, प्रेम और आदर का प्रदर्शन होता है। मानवीय भावनाओं का शरीअत ने पूरा ध्यान रखा है। लेकिन शरीअत यह भी नहीं चाहती कि कोई कर्म प्राणहीन मात्र रीति बनकर रह जाए या उसमें ग़लत क़िस्म की भावनाएँ सम्मलित हो जाएँ।

(2) हज़रत अनस (रज़ि०) बयान करते हैं कि एक व्यक्ति ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, हममें से जब कोई व्यक्ति अपने भाई या अपने मित्र से मिले तो क्या वह उसके लिए (सम्मान के लिए) झुक जाए ?[1] आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नहीं।" उसने कहा कि तो उससे गले मिले और उसका चुम्बन ले ? आप (सल्ल०) ने कहा, "नहीं।" उसने कहा कि तो क्या वह उसके

हाथ को अपने हाथ में लेकर उससे मुसाफ़ह करे? आप (सल्ल०) ने कहा, "हाँ।" (हदीस : तिरमिज़ी)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम होता है कि मुलाक़ात या सलाम के समय झुकना या नत-मस्तक होना वैध नहीं है। इसी तरह यह वैध नहीं है कि आदमी किसी के समक्ष बिछ जाए। यह केवल अल्लाह का हक़ है कि बन्दा उसके समक्ष नतमस्तक और समर्पित हो और उसके आगे सजदे में गिर जाए।

सामान्य मुलाक़ात के अवसर पर अपने भाई या मित्र से हाथ मिलाना पर्याप्त है। मुलाक़ात के समय बनावटी औपचारिकता अपनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मुलाक़ात के समय आलिंगन और चुम्बन को अनिवार्य कर देने में बड़ी ख़राबियाँ हैं जिनको आसानी से समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ मुलाक़ात के समय आवश्यक नहीं कि आदमी के अन्दर भावनाओं की वह तीव्रता पाई जाती हो जिसका प्रदर्शन आलिंगन और चुम्बन के द्वारा होता है। ऐसे आलिंगन और चुम्बन के अप्रिय होने में तो किसी सन्देह की गुंजाइश नहीं है जिसके पीछे चाटुकारिता, चापलूसी और स्वार्थपरता काम कर रही हो या अन्य कोई ग़लत क़िस्म की भावना क्रियाशील हो, अन्यथा स्वयं आलिंगन और चुम्बन में कोई बुराई नहीं पाई जाती। आप अपने किसी प्रिय को विदा कर रहे हों या किसी प्रिय से लम्बे अन्तराल के बाद मुलाक़ात हो रही हो या किसी व्यक्ति से अल्लाह के लिए आपको आत्यन्तिक प्रेम और श्रद्धा हो तो इस रूप में आलिंगन या चुम्बन में उलमा कोई ख़राबी महसूस नहीं करते।

चुम्बन

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हसन-बिन-अली (रज़ि०) का चुम्बन लिया। आपके पास अक़रा-बिन-हाबिस तमीमी बैठे हुए थे। अक़रा ने कहा कि मेरे दस बच्चे हैं। मैंने उनमें से कभी किसी का चुम्बन नहीं लिया। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उनकी ओर देखा, फिर कहा, "जो व्यक्ति रहम नहीं करता उसपर भी रहम नहीं किया जाता।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् यह कोई अच्छी बात नहीं है कि आदमी अपने बच्चों

से बेपरवाह हो कि वह न तो अपने बच्चों को प्यार करे और न उनपर अपने प्रेम और वात्सल्य का प्रदर्शन करे। हृदय की कठोरता गुण नहीं बल्कि अवगुण है। जो व्यक्ति कठोर हृदय हो वह इसका पात्र कैसे हो सकता है कि उसके साथ दयालुता का व्यवहार किया जाए। अल्लाह की रहमत उन्हीं लोगों के लिए है जो उसके बन्दों पर दया करते हैं। अबोध बच्चे तो सबसे अधिक इसका हक़ रखते हैं कि उनसे प्यार किया जाए और उनके साथ हमारा व्यवहार दया और प्रेम का हो।

(2) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि एक बदवी (ग्रामीण) नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थिति हुआ और कहा कि आप लोग बच्चों का चुम्बन लेते हैं, हम तो नहीं चूमते। इसपर नबी (सल्ल०) ने कहा, "यदि अल्लाह ने तुम्हारे दिल से रहमत (दयाभाव) खींच ली तो मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : बच्चों का चुम्बन न लेना इस बात का प्रमाण है कि दिल दया-भाव से रिक्त है। जिस दिल में दया-भाव न हो उसे दिल नहीं कहा जा सकता। दिल की मुख्य विशेषता आर्द्रता, विनम्रता, कोमलता और दया ही है। दिल की इस विशेषता की सुरक्षा बहुत ज़रूरी है।

(3) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है, वे कहती हैं कि मैंने किसी को नहीं देखा कि वह डील-डौल, व्यवहार और सुशीलता में — एक रिवायत में है कि वाणी और वक्तृता में — फ़ातिमा (रज़ि०) से बढ़कर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से मिलता-जुलता हो। फ़ातिमा (रज़ि०) जब आपकी सेवा में उपस्थित होतीं तो आप (सल्ल०) खड़े होकर उनकी ओर बढ़ते। उनका हाथ अपने हाथ में ले लेते। उनको चूमते और फिर उन्हें अपनी जगह बिठाते। इसी तरह जब नबी (सल्ल०) फ़ातिमा (रज़ि०) के यहाँ पदार्पण करते तो वे आपके लिए खड़ी हो जातीं, आपका हाथ अपने हाथ में ले लेतीं, फिर आपको चूमतीं और अपनी जगह बिठातीं। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) रंग-रूप और स्वभाव व आचरण में सबसे अधिक अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से मिलती-जुलती थीं।

नबी (सल्ल०) अपनी बेटी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के हाथों या

उनकी ललाट को चूमते। इस हदीस से उन लोगों को शिक्षा लेनी चाहिए जिनके दिलों में बेटी के प्रति कोई सम्मान और प्रतिष्ठा नहीं पाई जाती।

(4) हज़रत बरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि किसी ग़जवा (युद्ध) से अबू-बक्र (रज़ि०) के मदीना आते ही मैं उनके घर गया तो देखता हूँ कि उनकी बेटी आइशा (रज़ि०) लेटी हुई हैं और बुख़ार से पीड़ित हैं। अबू-बक्र (रज़ि०) उनके पास गए और पूछा कि "मेरी बेटी, तुम्हारी तबीअत कैसी है?" और उन्होंने उनके गाल को चूमा। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) भी अपनी बेटी हज़रत आइशा (रज़ि०) से अत्यन्त प्रेम करते थे और दया और प्रेम को व्यक्त भी करते थे। जिस समय की घटना का उल्लेख इस रिवायत में किया गया है, उस समय हज़रत आइशा (रज़ि०) कोई छोटी बच्ची नहीं थीं।

गुफ़्तगू (वार्त्तालाप)

(1) हज़रत बिलाल-बिन-हारिस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "आदमी के मुख से कभी भलाई की कोई ऐसी बात निकल जाती है जिसके पूरे महत्त्व को वह ख़ुद भी नहीं जानता, किन्तु अल्लाह उसके कारण से अपने मिलन-दिवस तक उसके लिए अपनी प्रसन्नता का निर्णय कर देता है। और इसके विपरीत कभी आदमी के मुख से बुराई की कोई ऐसी बात निकल जाती है कि जिसकी भीषणंता की सीमा को वह स्वयं भी नहीं जानता किन्तु अल्लाह उसके कारण अपनी मुलाक़ात के दिन तक उसपर अपनी नाराज़ी और क्रोध का फ़ैसला कर देता है।"

(हदीस : शरहुस्सुन्ना, मालिक, तिर्मिज़ी, इब्ने-माजा)

व्याख्या : इसी तरह की एक रिवायत सहीह बुख़ारी में हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "बन्दे के मुख से कभी ऐसी बात निकल जाती है जिसमें ईश्वर की प्रसन्नता होती है, तो यद्यपि बन्दा उसके महत्त्व से परिचित नहीं होता किन्तु अल्लाह उसके कारण उसके पद ऊँचे कर देता है। इसी तरह एक बन्दा कभी ऐसी बात कहता है जो अल्लाह को अप्रसन्न करनेवाली होती है। तो यद्यपि बन्दा उसकी

गम्भीरता को नहीं जानता लेकिन उसके कारण वह जहन्नम में गिर पड़ता है।" एक रिवायत में है कि उसके कारण वह (नरक की) आग में इतनी दूर से गिरता है जो पूरब और पश्चिम के मध्य की दूरी से भी अधिक है।"

आदमी की ज़बान से जो बात भी निकलती है उससे इस बात का पता चलता है कि वह आदमी कैसा है। वह ख़ुदा का प्रिय है या वह ख़ुदा के प्रकोप का भागी है। इसलिए आदमी को अपनी बातचीत में इसका पूरा ध्यान रखना चाहिए कि उसकी ज़बान पर कभी कोई ऐसी बात न आए जिससे उसकी गिरावट और चरित्रहीनता प्रकट हो। यहाँ यह बात भी ध्यान में रहे कि ज़बान की रक्षा या ज़बान की पवित्रता उस समय तक सम्भव नहीं जब तक कि आदमी उच्च चरित्र और स्वभाववाला न हो। इसलिए मनुष्य को नैतिकता और चरित्र की उच्चता की चिन्ता करनी चाहिए। यदि वह नैतिकता और चरित्र की दृष्टि से उच्च होगा तो हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि उसकी ज़बान पर ग़लत और कोई असत्य बात नहीं आ सकती।

(2) हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने नबी (सल्ल०) के सामने एक व्यक्ति की उपस्थिति में उसकी प्रशंसा की। आप (सल्ल०) ने कहा, "अफ़सोस है तुमपर, तुमने अपने भाई की गरदन काट दी।" यह बात आपने तीन बार कही। फिर कहा, "तुममें से जो कोई किसी की प्रशंसा करनी ज़रूरी समझे तो इस प्रकार कहे कि मैं अमुक व्यक्ति के बारे में ऐसा समझता हूँ और इसका हिसाब करनेवाला अल्लाह है। और यह भी उस रूप में कहे जबकि वह उसके विषय में ऐसा विचार रखता हो। ऐसा न हो कि वह अल्लाह की ओर से निश्चिय रूप से किसी के पूर्ण होने की घोषणा कर दे। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : "तुमने अपने भाई की गरदन काट दी" अर्थात् अपने भाई की प्रशंसा करके विशेष रूप से जबकि प्रशंसा में अतिशयोक्ति से काम लिया हो, तुमने उसे एक बड़े संकट में डाल दिया। इसलिए कि यह चीज़ उसके लिए तबाही का कारण बन सकती है। सम्भव है तुम्हारे प्रशंसा के शब्दों से उसके मन में घमण्ड और गर्व पैदा हो जाए जो मनुष्य के लिए किसी तबाही और विनाश से कम नहीं है।

यह हदीस बताती है कि किसी कारण से यदि किसी की प्रशंसा करनी ही

पड़े तो अपने गुमान और समझ की सीमा तक ही उसकी प्रशंसा करनी चाहिए। किसी के विषय में निश्चयपूर्वक और पूर्ण विश्वास के साथ हरगिज़ कोई फ़ैसला न करो। वास्तविकता क्या है इसे अल्लाह पर छोड़ दो। ठीक-ठीक वही जानता है कि कौन कैसा है। और वही सबका हिसाब लेनेवाला है। जिन व्यक्तियों के बारे में सिद्ध है कि वे अल्लाह के प्रिय बन्दे थे जैसे जन्नत की ख़ुशख़बरी पानेवाले दस सहाबा (रज़ि०) आदि, इनके अलावा किसी के विषय में निश्चयपूर्वक और पूर्ण विश्वास के साथ यह न कहा जाए कि वह ख़ुदा के यहाँ अनिवार्य रूप से स्वीकृत व्यक्ति है। जो व्यक्ति प्रशंसा के योग्य दिखाई दे उसके विषय में भी सावधानी से काम लेना उचित होगा।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "जो व्यक्ति अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो उसे चाहिए कि वह भलाई के लिए ज़बान खोले या फिर चुप रहे।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) से एक रिवायत में है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जो चुप रहा उसने छुटकारा पा लिया।" (हदीस : अहमद, तिरमिज़ी) अर्थात् वह बहुत-सारी आफ़तों से सुरक्षित रहा। नबी (सल्ल०) का यह आदेश कि : "अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखनेवाला बोले तो भलाई के लिए बोले अन्यथा चुप रहे" मौलिक महत्त्व रखता है। आदमी जब भी ज़बान खोले तो यह देख ले कि उसकी ज़बान भलाई के लिए खुल रही है या बुराई के लिए या वह यूँ ही अनावश्यक बोलना चाहता है। जब भी वह बोले भलाई के लिए बोले, वरना चुप रहे। नबी (सल्ल०) के इसी एक आदेश का अगर लोग पालन करने लगें तो समाज में क्रान्ति आ जाए और कितनी ही बुराइयों से हमारा समाज छुटकारा पा ले।

(4) हज़रत उक़बा-बिन-आमिर (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मुक्ति क्या है? आप (सल्ल०) ने कहा, "अपनी ज़बान को अपने नियंत्रण में रखो, तुम्हारा घर तुम्हारे लिए पर्याप्त हो और अपने गुनाहों पर रोओ।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : अर्थात् यदि मुक्ति चाहते हो तो ईशपरायणता का जीवन

व्यतीत करो। हमेशा सावधान रहो। विशेष रूप से अपनी ज़बान को अपने क़ाबू में रखो। यह चीज़ तुम्हें तमाम बुराइयों से दूर रखेगी। "तुम्हारा घर तुम्हारे लिए पर्याप्त हो" का मतलब यह है कि अपने घर को अपना पनाहगार और शरण-स्थल समझो। बुरी सभाओं और बुरे लोगों की संगति से बचो। बिना ज़रूरत घर छोड़कर इधर-उधर न फिरो।

"अपने गुनाहों पर रोओ" का अर्थ यह है कि अपनी ग़लतियों और अपनी कोताहियों पर लज्जित हो और ईश्वर के आगे गिड़गिड़ाओ। विनम्रता और विनीत का भाव अपनाओ। अपने रब से क्षमा की प्रार्थना करते रहो। यह चीज़ तुम्हें नजात और मुक्ति के योग्य बना देगी।

(5) हज़रत सुफ़यान-बिन-अब्दुल्लाह सक़फ़ी (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने कहा कि ऐ अलाह के रसूल! आप मेरे बारे में जिन चीज़ों से डरते हैं उनमें सबसे अधिक भयावह चीज़ क्या है? हज़रत सुफ़यान कहते हैं कि आप (सल्ल०) ने अपनी ज़बान को पकड़ा और कहा, "यह चीज़।"

(हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) ने ज़बान को सबसे अधिक भयावह चीज़ ठहराया है। अधिकांश गुनाह ज़बान को नियंत्रित न रखने के कारण होते हैं। अपनी बातचीत में हमेशा सावधान रहने की ज़रूरत है। जिस किसी ने अपनी ज़बान पर क़ाबू हासिल कर लिया वह हर चीज़ पर क़ाबू हासिल कर सकता है। वह कभी भी दायित्वहीन और ग़ैर-ज़िम्मेदाराना ज़िन्दगी नहीं गुज़ार सकता।

(6) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "मोमिन ज़्यादा लानत करनेवाला नहीं होता।" एक रिवायत के शब्द ये हैं, "मोमिन को यह शोभा नहीं देता कि वह बहुत लानत करनेवाला हो।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : मोमिन व्यक्ति तो दुनियावालों के लिए सर्वथा रहमत और करुणापूर्ण होता है। उसकी कामना तो यह होती है कि काश! लोग ख़ुदा की रहमत में दाख़िल हों और उसकी यातना से छुटकारा पा लें। इसलिए उसकी आदत लानत करने की नहीं होती और न यह उसकी मर्यादा के अनुकूल है कि वह लोगों पर लानत करता रहे।

(7) हज़रत सह्ल-बिन-साद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति मुझे इस बात की ज़मानत दे कि वह उसकी रक्षा करेगा जो उसके दोनों जबड़ों के मध्य और जो उसके दोनों पैरों के मध्य है, तो मैं उसके लिए जन्नत की ज़मानत देता हूँ।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : दोनों जबड़ों के मध्य की चीज़ से अभिप्रेत ज़बान (जीभ) है और दोनों पाँवों के मध्य की चीज़ से संकेत गुप्तांग अर्थात् शर्मगाह की ओर है। ज़बान और शर्मगाह की रक्षा आदमी को जन्नत का पात्र बनाती है। जो व्यक्ति ज़बान के इस्तेमाल में सावधान हो, हराम खाने-पीने से दूर रहे और जो व्यभिचार और बदकारी के क़रीब भी न जाए, उसका जीवन पवित्रता और ईश-परायणता का नमूना होगा। और जन्नत वास्तव में अल्लाह का भय रखनेवाले पवित्र आत्मा लोगों ही के लिए बनाई गई है।

उपहार

(1) हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि नबी (सल्ल०) उपहार स्वीकार करते थे और उसके बदले में स्वयं भी उपहार दिया करते थे।(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् नबी (सल्ल०) उपहार स्वीकार करते थे और स्वयं भी प्रत्युत्तर स्वरूप उपहार दिया करते थे। उपहार किसी के मन को प्रसन्न करने और उससे हार्दिक सम्बन्ध प्रकट करने का महत्त्वपूर्ण साधन है। इससे सम्बन्धों में मधुरता पैदा होती है। प्रेम में अभिवृद्धि होती है। किसी आदरणीय व्यक्तित्व को उपहार देने से उस व्यक्ति का सम्मान करना भी अभीष्ट होता है। अपने से छोटों को उपहार देकर हम उनके प्रति स्नेह और वात्सल्य-भाव प्रकट करते हैं।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जिसको उपहार में सुगंधित फूल या नाज़बू (एक प्रकार का सुगन्धित पौधा) दिया जाए तो वह उसको वापस न करे क्योंकि वह किसी पर बोझ नहीं और ख़ुशबू उत्तम है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : फूल या सुगन्धित चीज़ के स्वीकार न करने से एक तो सुगन्ध जैसी आनन्द-दायक चीज़ का अपमान होता है दूसरे जो चीज़ अधिक मूल्यवान न हो कि उसको देने में किसी पर बड़ा बोझ पड़ता हो, उसे वापस नहीं करना

चाहिए। रिवायतों से मालूम होता है कि नबी (सल्ल०) स्वयं भी सुगन्ध का उपहार वापस नहीं करते थे।

सस्ता उपहार लौटाने में इस बात का भी सन्देह रहता है कि तोहफ़ा देनेवाला यह ख़्याल कर सकता है कि मेरी चीज़ सस्ती होने के कारण वापस कर दी गई। इससे उसका दिल टूटेगा।

(3) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिस किसी को उपहार दिया जाए तो अगर उसके पास बदले में देने को कुछ हो तो वह भी उसको दे। और जिसके पास देने को कुछ न हो तो वह उसकी प्रशंसा करे। जिसने प्रशंसा की उसने आभार प्रकट कर दिया और जिसने (ऐसा न किया और) सुकृति को छुपाया तो उसने कृतघ्नता दिखाई।"

(हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम होता है कि तोहफ़ा देनेवाले व्यक्ति के प्रति आभार प्रकट करना हमारा नैतिक कर्त्तव्य होता है। उसका वास्तविक धन्यवाद तो यह है कि हम भी उसे कोई उपहार दें। किन्तु यदि उपहार के बदले में कुछ देने को उपलब्ध न हो तो मुख से ही प्रशंसा करनी चाहिए ताकि मालूम हो कि उपहार की क़द्र की गई। लेकिन जो व्यक्ति ज़बान से भी उसकी सराहना नहीं करता वह सत्य को छिपाता है और वास्तव में वह एक अकृतज्ञ व्यक्ति है। एक हदीस में है कि आप (सल्ल०) ने कहा, " जब किसी व्यक्ति के साथ कोई भलाई की गई और उसने भलाई करनेवाले के लिए यह दुआ की कि "जज़ा कल्लाहु ख़ैरन" (अर्थात्,अल्लाह तुम्हें इसका अच्छा बदला दे) तो उसने पूरी प्रशंसा कर दी। दुआ के इस वाक्य से भलाई करनेवाले की प्रशंसा और उसकी ओर से की गई भलाई की गुणग्राहकता दोनों ही चीज़ों का प्रदर्शन होता है।

(4) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "परस्पर एक-दूसरे को उपहार भेजा करो, उपहार मन के दुर्भाव को विनष्ट कर देते हैं।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : उपहार पारस्परिक सम्बन्ध और प्रेम को प्रकट करता है। और प्रेम यदि वास्तविक प्रेम है तो उससे हर चीज़ की क्षतिपूर्ति हो जाती है और कितनी ही शिकायतें और मलिनताएँ उपहार के लेन-देन से दूर हो जाती हैं।

(5) हज़रत अबू-उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जिसने किसी व्यक्ति के लिए सिफ़ारिश की तो यदि सिफ़ारिश करनेवाले को उसने कोई उपहार दिया और उसने उसे स्वीकार कर लिया तो उसने ब्याज के द्वारों में से एक बहुत बड़े द्वार में प्रवेश किया।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : सिफ़ारिश करने के कारण से किसी को तोहफ़ा देना घूस है। सिफ़ारिश करनेवाला अगर यह तोहफ़ा स्वीकार कर लेता है तो उसने ब्याज के एक बड़े दरवाज़े में प्रवेश किया। इसे ब्याज से अभिहित करने का मूल कारण यह है कि इस्लाम चाहता है कि आदमी के पास जो धन आए वह उस धन का वास्तविक अर्थ में अधिकारी हो। सूद में आदमी किसी की मात्र मजबूरी को आय का साधन बनाता है, हालाँकि मजबूर व्यक्ति हमारी हमदर्दी और सहानुभूति का हक़दार होता है।

ज़रूरतमन्द को क़र्ज़ देना पुण्य का कार्य है। क़र्ज़ देनेवाला मूल धन लेने का हक़दार है। मूल रक़म जो उसने क़र्ज़ के तौर पर दी है, उससे अधिक वुसूल करना ब्याज है, और ब्याज को इस्लाम ने पूर्णतः हराम ठहराया है। ऋण लेनेवाले ने ऋण लेकर मात्र अपनी आवश्यकता पूरी की है। यह धन उसने किसी समझौते के तहत किसी व्यापार या कारोबार में नहीं लगाया कि लाभ में धन जुटानेवाले को भी साझीदार बनाया जाए। यहाँ यह बात भी सामने रहे कि कारोबार में हानि और घाटे की भी सम्भावना रहती है। धन जुटानेवाला व्यक्ति यदि लाभ में साझी बनता है तो उसे घाटे में भी साझीदार बनना होगा।

हास्य-विनोद

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) कहते है कि सहाबा (रज़ि०) ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, आप हमसे विनोदपूर्ण बात करते हैं? आप (सल्ल०) ने कहा, "मैं (विनोद में भी) सत्य बात ही कहता हूँ।"

व्याख्या : अर्थात् विनोदपूर्ण बात तो करता हूँ लेकिन मेरे विनोद में कोई बात सत्य के विरुद्ध नहीं होती। इसलिए तुम्हें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। नीरसता इस्लाम में कोई प्रिय चीज़ नहीं है। हास्य-विनोद यदि मर्यादित हो तो यह जीवन्त हृदय का लक्षण है और इससे जीवन में सुन्दर वातावरण निर्मित

होता है। किसी प्रकार की घुटन शेष नहीं रहती । नबी (सल्ल०) अपने प्राण निछावर करनेवाले मोमिनों के साथ कभी-कभी विनोदपूर्ण बातें करते ताकि परस्पर एक प्रकार का सहज वातावरण पैदा हो जिसमें निकटता और स्नेह अधिक निखरता है। किन्तु इस सहज स्वभाव और सरल रहन-सहन में शिष्टता का दामन हाथ से कभी छूटता न था। आदरणीय सहाबा आप (सल्ल०) के सामने सदैव आपके आदर का ध्यान रखते थे। आपके सम्मान का ख़याल उनके दिल से कभी जुदा नहीं होता था।

(2) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने एक बूढ़ी स्त्री से कहा, "बूढ़ी स्त्री जन्नत में प्रवेश न पा सकेगी।" उसने कहा कि उनमें (बूढ़ी स्त्रियों में) ऐसी क्या बात है कि वे जन्नत में प्रवेश न पा सकेंगी? वह स्त्री क़ुरआन पढ़ती थी। आप (सल्ल०) ने उससे कहा, "क्या तुमने क़ुरआन में यह नहीं पढ़ा है : निश्चय ही उन्हें हमने एक विशेष उठान पर उठाया और हमने उन्हें कुँवारियाँ बनाया।" (हदीस : रज़ीन, शरहुस्सुन्नह)

व्याख्या : अर्थात् तुमने तो वे आयतें पढ़ी होंगी जिनमें बताया गया है कि जन्नत की स्त्रियाँ बूढ़ी नहीं होंगी वे नवयौवना होंगी। जो स्त्रियाँ दुनिया में बूढ़ी होकर मरी होंगी, जब जन्नत में प्रवेश करेंगी तो बूढ़ी नहीं रहेंगी। ख़ुदा उन्हें शाश्वत यौवन प्रदान करेगा। किसी प्रकार की जीर्णता और पुरातनता का कोई चिह्न शेष न रहेगा।

इस रिवायत में नबी (सल्ल०) की प्रसन्नचित्तता की जो मिसाल पेश की गई है उससे पता चलता है कि आप (सल्ल०) के हास्य-विनोद में तथ्य के प्रतिकूल कोई बात नहीं होती थी। आप (सल्ल०) वही बात कहते जो सत्य होती, लेकिन उसे कुछ इस तरह से प्रस्तुत करते कि मन खिल उठते और वातावरण मुस्करा उठता था।

मुसकान

(1) हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) को इतना ज़्यादा हँसते हुए कभी नहीं देखा कि आपका मुँह खुल गया हो और मुझे आपका तालू और कण्ठ का कौआ नज़र आया हो। आप (सल्ल०) का

हँसना बस मुस्कराने की सीमा तक रहता था।"   (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् मुस्कुराना ही वास्तव में नबी (सल्ल०) का हँसना था। आप (सल्ल०) न ठहाका लगाते थे और न इस तरह हँसते थे कि मुँह के अन्दर का भाग दिखाई पड़ने लग जाए। अलबत्ता यदा-कदा ऐसी भी हँसी आपको आ जाती कि आप (सल्ल०) इस तरह मुस्करा उठते कि मुँह थोड़ा-सा खुल जाता।

आप (सल्ल०) के सहाबा (रज़ि०) भी शुष्क और नीरस स्वभाव के कदापि न थे। वे हास्य-विनोद भी करते, कविताएँ भी सुनते-सुनाते और अज्ञानकाल की ऐसी कथाएँ भी छेड़ते कि अनायास लोगों को हँसी आ जाती। नबी (सल्ल०) यह सब सुनते और केवल मुस्कुराते थे। नबी (सल्ल०) का व्यवहार यदि सहजता का न होता तो आप (सल्ल०) का लोगों पर ऐसा रोब छाया रहता कि आप (सल्ल०) से ज्ञान-लाभ करना मुश्किल हो जाता। यह बात याद रहे कि सहाबा (रज़ि०) की हँसी वह न थी जिससे दिल मुर्दा हो जाते हैं। वे परस्पर दौड़ भी लगाते और परस्पर हँसते-हँसाते किन्तु उनका ईमान पहाड़ों से बढ़कर भारी था और वे रातों में संत नज़र आते थे।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-हारिस-बिन-जज़्अ (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से अधिक किसी और व्यक्ति को मुस्कुराते नहीं देखा।   (हदीस : तिरमिज़ी)

व्याख्या : इसमें सन्देह नहीं कि आप (सल्ल०) का मन आख़िरत की चिन्ता में डूबा रहता था और ख़ुदा के बन्दों को सत्यमार्ग पर लाने की चिन्ता से किसी क्षण आप निवृत्त न थे। लेकिन इसके बावजूद आप (सल्ल०) ऐसे न थे कि आपको देखकर दिल की ख़ुशियाँ जाती रहें, जीवन की उमंगें और साहस दब जाएँ, चित्त के आकाश पर निराशा के बादल छा जाएँ। आपकी हैसियत यदि सतर्क कर्ता (बुराई के परिणाम से डरानेवाले) की थी तो इसी के साथ ख़ुदा ने आप (सल्ल०) को शुभ-सूचक बनाकर भेजा था। बल्कि सच्ची बात तो यह है कि आपकी वास्तविक हैसियत शुभ-सूचक ही की थी।

इसके अलावा यह पहलू भी सामने रहे कि लोगों के प्रति विरक्ति और उदासीनता की भावना आपके यहाँ कदापि न पाई जाती थी। लोगों को देखकर

प्रसन्नता प्रकट करते थे। इसमें सन्देह नहीं कि दुनिया के लिए आप (सल्ल०) सवर्था रहमत बनकर आए थे।

औपचारिकता या कृत्रिम व्यवहार

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) कहते हैं कि हमें तकल्लुफ़ (कत्रिम-व्यवहार) करने से रोका गया है। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : तकल्लुफ़ या कृत्रिम व्यवहार कोई अच्छी चीज़ नहीं है। मूल्यवान चीज़ सादगी और स्वभाव की पवित्रता है। सादगी को हमेशा अच्छी निगाह से देखा गया है। तकल्लुफ़ (कृत्रिम व्यवहार) से समाज में परेशानियाँ भी होती हैं और एक को दूसरे पर वह विश्वास और भरोसा नहीं हो पाता जो विश्वास सादा और सहजतापूर्ण समाज में परस्पर एक-दूसरे के बीच पाया जाता है।

(2) हज़रत मसरूक़ बयान करते हैं कि हम हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) के पास गए तो आपने कहा कि ऐ लोगो! जिस व्यक्ति को किसी चीज़ का ज्ञान हो तो वह उसके विषय में बात करे और जिस किसी को ज्ञान न हो तो वह यह कहे कि "अल्लाह सबसे बढ़कर जाननेवाला है।" क्योंकि यह बात भी ज्ञान ही है कि आदमी जिस चीज़ के विषय में न जानता हो उसके विषय में यह कहे कि "अल्लाह ही सबसे बढ़कर जाननेवाला है।"[1] अल्लाह ने अपने नबी (सल्ल०) से फ़रमाया है कि (ऐ नबी,) तुम कह दो कि मैं इसपर तुमसे कोई बदला नहीं माँगता और न मैं बनावट करनेवालों में से हूँ।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के मिज़ाज से परिचित थे। उनके उपदेश का सार यह है कि आदमी को अपनी ज़िम्मेदारी का पूरा-पूरा एहसास होना चाहिए। आदमी केवल उसी चीज़ के विषय में अपनी ज़बान खोले जिसका उसे ज्ञान हो। जिस चीज़ के विषय में उसे ज्ञान न हो, स्पष्ट रूप से कह दे कि अल्लाह ही सबसे बढ़कर जानता है। मुझे इसके विषय में कोई ज्ञान नहीं है। उसका अपने ज्ञान और अल्लाह के सर्वज्ञ और ख़बर रखनेवाला होने को स्वीकार करना स्वयं एक

बड़ा ज्ञान है।

अल्लाह ने अपने नबी (सल्ल०) को यह आदेश दिया कि वे कह दें कि "मैं इसपर तुमसे कोई बदला नहीं माँगता और न मैं बनावट करनेवालों में से हूँ।" अर्थात् तकल्लुफ़ और बनावट मेरा काम नहीं है। मैं ऐसा व्यक्ति नहीं हूँ कि ख़ुद को वह हैसियत देने लगूँ जो हैसियत वास्तव में मुझे प्राप्त न हो। मैं निःस्वार्थ भाव से लोगों को सत्य की ओर आमंत्रित कर रहा हूँ, मुझे जो कुछ लेना है अपने प्रभु से लेना है। लोगों से किसी बदले तथा पारिश्रमिक की मेरी कोई माँग नहीं है। फिर मुझे क्या ज़रूरत है कि मैं किसी तकल्लुफ़ और बनावट से काम लूँ? किसी प्रकार का ढोंग तो वे लोग रचते हैं जिनको किसी सांसारिक और भौतिक लाभ का लोभ होता है। यह सत्य है कि मैं अल्लाह का भेजा हुआ नबी हूँ। न यह अल्लाह पर कोई झूठा आरोप है और न इसमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति से काम लिया गया है।

छींक

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, " जब तुममें से किसी व्यक्ति को छींक आए तो उसे चाहिए कि अलहम्दुलिल्लाह (समस्त प्रशंसा अल्लाह ही के लिए है) कहे। और उसके भाई या साथी को चाहिए कि इसके उत्तर में 'यर्‌हमुकल्लाह' (अल्लाह तुमपर रहमत करे) कहे और जब वह उसके लिए यर्‌हमुकल्लाह कहे तो छींकनेवाले को चाहिए कि कहे : 'यहदीकुमुल्लाहु व युसलिहु बालकुम' (अल्लाह तुम्हारा मार्गदर्शन करे और तुम्हारे हालात को ठीक रखे)।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : छींक आने से मानसिक तनाव दूर हो जाता है। दिमाग़ का बोझ हट जाता है और मन में एक ताज़गी पैदा हो जाती है। इसी लिए छींक आने पर अल्लाह की प्रशंसा करके उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की शिक्षा दी गई। जिसको छींक आए और वह अल्लाह की प्रशंसा करे तो इस अवसर पर उसके दोस्त या साथी को उससे असम्बद्ध होकर नहीं रहना चाहिए। जब वह अल्लाह की प्रशंसा करे तो वह उसके हक़ में यह कहे 'यर्‌हमुकल्लाह'

अर्थात् तुमपर अल्लाह की रहमत हो। अर्थात् तुम हमेशा उसकी रहमत के पात्र बने रहो। अपने भाई या दोस्त और साथी की ओर से अपने लिए प्रार्थना का यह वाक्य सुनकर छींकनेवाले व्यक्ति का यह कर्त्तव्य होता है कि वह चुप न रहे, बल्कि अपने भाई या दोस्त का शुक्रिया अदा करे और यह शुक्रिया इस तरह अदा करे कि वह भी भाई या दोस्त के हक़ में भलाई की प्रार्थना करे कि अल्लाह का मार्गदर्शन और हिदायत तुम्हें प्राप्त रहे और वह हमेशा तुम्हारी हालत को दुरुस्त रखे।

कुछ अन्य रिवायतों से मालूम होता है कि नज़ला और ज़ुकाम के कारण बार-बार छींक आने पर हर बार यर्‌हमुकल्लाह कहना ज़रूरी नहीं है।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) जब छींकते तो आप अपने चेहरे को अपने हाथ या अपने किसी कपड़े से ढँक लेते थे और छींक की आवाज़ को पस्त कर लेते थे। (हदीस : तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : छींक आने पर मुँह को हाथ या कपड़े से ढक लें और यथासम्भव आवाज़ को पस्त या धीमी रखें। यह एक उत्तम और शिष्ट तरीक़ा है।

जँभाई

(1) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब किसी को जँभाई आए तो वह अपना हाथ अपने मुँह पर रख ले, क्योंकि शैतान (मुँह को खुला पाता है तो) उसमें घुस जाता है।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : जँभाई सुस्ती, काहिली और आलस्य की पहचान होती है। शैतान मोमिन को कभी होशपूर्ण और सतर्क नहीं देखना चाहता। वह तो यही चाहेगा कि ईमानवाले बिलकुल ढीले और अकर्मण्य होकर रहें, ताकि दुनिया में वे कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने में असमर्थ रहें और बुराइयों को फलने-फूलने का पूरा अवसर मिल सके। शैतान हर ऐसी चीज़ से ख़ुश होता है जो आदमी को आलसी बनाती हो। जँमाई को भी शैतान का हथियार समझना चाहिए और उसको रोकने की पूरी कोशिश करनी चाहिए।

जँमाई आने पर चेहरा विकृत हो जाता है। मुँह से अप्रिय आवाज़

निकलती है जो सुस्ती का प्रतीक होती है। मुँह में शैतान के घुसने का अर्थ यह है कि शैतान को अपना प्रभाव डालने का पूरा अवसर मिल जाता है। और इसकी भी संभावना है कि वह मक्खी या मच्छर को उड़ाकर लाए और जँमाई लेनेवाले के मुँह में दाख़िल कर दे जिससे मन मलिन होकर रह जाए।

खाने की दावत (निमंत्रण)

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुममें से किसी को उसका भाई निमन्त्रण दे तो चाहिए कि उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया जाए, चाहे वलीमा हो या उसके जैसा कोई और उत्सव हो (इस शर्त के साथ कि कोई काम शरीअत के विरुद्ध न हो)।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् भाई यदि खाने पर बुलाए तो बिना किसी मजबूरी के उसके निमन्त्रण को कदापि अस्वीकृत न किया जाए। परस्पर एक-दूसरे के आमंत्रित करने से पारस्परिक प्रेमभाव और निकटता में वृद्धि होती है। आपस के सम्बन्ध मधुर और सुदृढ़ होते हैं सामाजिकता की दृष्टि से यह चीज़ कितनी महत्त्वपूर्ण है इसको हर व्यक्ति भली-भाँति महसूस कर सकता है।

(2) हज़रत हुमैद-बिन-अब्दुर्रहमान हुमैरी नबी (सल्ल०) के एक सहाबी के माध्यम से रिवायत करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब दो व्यक्ति एक ही साथ निमन्त्रण करें तो दोनों में से जिसका दरवाज़ा (मकान) अधिक निकट हो उसका निमन्त्रण स्वीकार करो क्योंकि जिसका मकान अधिक निकट है वह पड़ोसी की दृष्टि से ज़्यादा क़रीब है। और यदि उन दोनों में से किसी एक ने पहले निमन्त्रण दिया हो तो जिसने पहले निमन्त्रण दिया उसका निमन्त्रण स्वीकार किया जाए।" (अबू-दाऊद)

व्याख्या : पड़ोसी के हक़ को प्राथमिकता प्राप्त है। इसलिए दोनों में से जिसका मकान ज़्यादा निकट हो उसके निमन्त्रण को प्राथमिकता देनी चाहिए। यह इस स्थिति में है जबकि दोनों ने खाने के लिए एक ही साथ निमन्त्रण दिया हो। लेकिन अगर दोनों ने निमन्त्रण एक साथ नहीं दिया है तो इस स्थिति में जिस व्यक्ति ने निमन्त्रण पहले दिया हो उसकी दावत क़बूल करनी चाहिए।

इसमें दूसरे के लिए शिकायत का कोई अवसर नहीं है।

(3) हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक दरज़ी ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को खाने के लिए निमन्त्रन दिया। उसने कुछ खाना पकाया। हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) कहते हैं कि मैं भी उस खाने के निमन्त्रण पर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ गया था।''

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि खाने का निमन्त्रण स्वीकार करना नबी (सल्ल०) का तरीक़ा है। नबी (सल्ल०) स्वयं भी खाने के ऐसे निमन्त्रण को स्वीकार करते थे जिसमें शरीअत की दृष्टि से कोई आपत्ति न होती थी।

उपकारकर्ता को धन्यवाद देना

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, ''जिस किसी ने मनुष्य के प्रति कृतज्ञता न दिखाई वह अल्लाह का भी कृतज्ञ न हुआ।'' (हदीस : अहमद, तिर्मिज़ी)

व्याख्या : आदमी का कर्त्तव्य है कि अगर कोई व्यक्ति उसपर उपकार करता है तो वह उसके प्रति कृतज्ञता दिखाए। एहसान का बदला एहसान के द्वारा दे। और कुछ नहीं तो कम से कम उसके हक़ में भलाई की दुआ ही करे। जो व्यक्ति ऐसा नहीं करता वह अल्लाह की आज्ञा का उल्लंघन करता है। और अल्लाह की आज्ञा का उल्लंघन एक अकृतज्ञ व्यक्ति ही को शोभा दे सकता है।

अनुग्रहकर्ता के प्रति अनुग्रहीत होना, उपकार को स्वीकार करना और कृतज्ञता की भावना का उत्पन्न होना एक स्वाभाविक चीज़ है। और यही वास्तव में हमारे ईमान का भी आधार है। अगर किसी आदमी के दिल में यह भाव जीवित और जागृत है तो इसका मतलब यह है कि उसमें यह क्षमता मौजूद है कि किसी के उपकार के मूल्य को पहचाने और अपने उपकारी के प्रति कृतज्ञ हो। यदि किसी व्यक्ति के मन में अपने उपकारकर्ता के प्रति अनुग्रहीत होने का कोई भाव न उभरा हो तो फिर यह उससे कैसे आशा की जा सकती है कि वह ख़ुदा का कृतज्ञ बन्दा बनेगा। फिर एक बात यह भी है कि चरित्र का विभाजन नहीं किया जा सकता। व्यक्ति यदि चरित्र की दृष्टि से

अकृतज्ञ है तो वह कहीं भी कृतज्ञ नहीं हो सकता। वह ख़ुदा का भी कृतज्ञ नहीं हो सकता। वह अगर कहीं कृतज्ञता का प्रदर्शन करता है तो यह मात्र दिखावा और नाटक ही हो सकता है। उसे वास्तविक कृतज्ञता के प्रकाशन का नाम नहीं दिया जा सकता।

पत्राचार

(1) हज़रत ज़ैद-बिन-साबित (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मुझे आदेश दिया कि मैं सुरयानी भाषा सीख लूँ। और एक अन्य रिवायत में है कि आप (सल्ल०) ने मुझे आदेश दिया कि मैं यहूदियों से पत्र व्यवहार करना सीख लूँ। तथा आपने कहा कि "पत्राचार के मामले में मुझे यहूदियों पर इत्मीनान नहीं होता।" हज़रत ज़ैद (रज़ि०) कहते हैं कि आधा महीना भी न बीता था कि मैंने (यहूदियों की भाषा और उनसे पत्राचार करना) सीख लिया। अतएव जब नबी (सल्ल०) यहूदियों को कोई पत्र भेजने का इरादा करते तो उसको मैं ही लिखता और जब यहूदी आप (सल्ल०) को पत्र लिखते तो उसको पढ़कर आपको मैं ही सुनाता था। (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : सुरयानी प्राचीन भाषा है। यह भाषा इबरानी से मिलती-जुलती है। यहूदी इसी भाषा को पत्राचार आदि में प्रयोग करते थे। मुसलमान यहूदियों की भाषा से परिचित न थे। इसलिए यहूदियों के साथ पत्राचार के लिए नबी (सल्ल०) को किसी यहूदी का सहारा लेना पड़ता था और आप (सल्ल०) को इसका सन्देह रहता था कि कहीं उसने पत्र लिखने में कोई कमी-बेशी न कर दी हो। इसी प्रकार यहूद के जो पत्र आपके पास आते थे, आप उनको किसी न किसी यहूदी से ही पढ़वाकर सुनते थे। यहाँ भी आपको भय लगा रहता था कि कहीं वह अपनी ओर से कुछ कम या अधिक करके न पढ़े। ज़रूरत थी कि यहूद से पत्राचार की सेवा किसी मुसलमान व्यक्ति से ली जाए, जिसपर पूरा भरोसा किया जा सके। इसी लिए आप (सल्ल०) ने हज़रत ज़ैद (रज़ि०) को आदेश दिया कि वे यहूदियों की भाषा सीख लें और इस भाषा में पत्र व्यवहार करने की योग्यता अपने अन्दर पैदा कर लें।

इस हदीस से मालूम हुआ कि आवश्यकता के अन्तर्गत और विशेष रूप से धार्मिक उद्देश्यों के लिए दूसरी क़ौमों की भाषा सीखने में कोई दोष नहीं है।

आधुनिक युग में भी दुनिया की विविध जातियों तक अल्लाह का सन्देश पहुँचाने के लिए उन जातियों और क़ौमों की भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है। किसी क़ौम को जब तक उसकी अपनी भाषा में आमन्त्रण न दिया जाए, आमंत्रण प्रभावी नहीं होते।

त्योहार

(1) हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) जब मदीना आए तो उस समय मदीनावालों के दो दिन थे जिनमें वे खेलते और ख़ुशियाँ मनाते थे। आप (सल्ल०) ने (यह देखकर) पूछा, "ये दो दिन कैसे हैं?" सहाबा (रज़ि०) ने कहा कि इन दोनों दिनों में हम अज्ञानकाल में खेला-कूदा करते थे। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह ने तुम्हारे लिए इन दोनों दिनों के बदले इनसे उत्तम दो दिन नियत कर दिए हैं और वे 'यौमुल-अज़हा' और 'यौमुल-फ़ित्र' हैं।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अज्ञानकाल में मदीनावालों के लिए दो दिन ख़ुशियों के थे। उनमें वे खेलते-कूदते और ख़ुशियाँ मनाते थे। ये मानो उनके विशेष त्योहार थे। ये दोनों ही दिन ऐसे अवसर पर आते जब रात और दिन बराबर होते हैं और मौसम सन्तुलित होता है। इन दिनों को ख़ुशी मनाने के लिए निश्चित कर लिया गया था। यह रीति प्राचीन काल से चली आ रही थी। नबी (सल्ल०) जब मदीना पहुँचे तो आपने इनके बारे में पूछा तो कहा गया कि यह रीति अज्ञानकाल से चली आ रही है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि ख़ुदा ने तुम्हें उनसे बेहतर ईद के दो दिन प्रदान किए हैं और वह यौमुल-अज़हा और यौमुल-फ़ित्र हैं।

त्योहार का सामाजिक जीवन के साथ चोली-दामन का साथ पाया जाता है। त्योहार की विशिष्टता यह है कि उसकी ख़ुशी ज़्यादा से ज़्यादा लोगों की सामूहिक ख़ुशी होती है। त्योहार सब लोग मिलकर मनाते हैं। इस्लाम एक व्यापक तथा स्वाभाविक धर्म है। इसलिए अन्य आदेशों की तरह उसके त्योहारों में भी सार्वभौमिकता की शान पाई जाती है। इस्लामी त्योहारों के पीछे न किसी महापुरुष की श्रद्धा काम करती है; न किसी विशेष देश या ऋतु से इनका सम्बन्ध है, और न ही इनमें लेशमात्र को अन्धविश्वास पाया जाता है।

ईदुल-फ़ित्र का त्योहार रमज़ान के समाप्त होने पर मनाया जाता है।

रमज़ान हमारे प्रशिक्षण का विशिष्ट महीना होता है, जिसमें हमें रोज़ा रखने का हुक्म दिया गया है। इस महीने में इबादत और क़ुरआन के पाठ और एतिकाफ़ आदि का आयोजन किया जाता है। रोज़े का मूल उद्देश्य यह है कि मनुष्य में ख़ुदा का भय और उसकी बड़ाई का एहसास पैदा हो। और वह हर प्रकार की बुराइयों से बचकर ईश-भक्ति का जीवन व्यतीत कर सके। रमज़ान में लोगों के प्रशिक्षण की जो व्यवस्था की जाती है और उससे व्यक्तित्त्व का जो निर्माण होता है और इनसान की नैतिकता और चरित्र को उससे जो शक्ति प्राप्त होती है वह ऐसी बड़ी चीज़ है कि उसके उपलब्ध होने के पश्चात् जितना भी अधिक प्रसन्नता को प्रकट किया जाए थोड़ा है।

यौमुल-अज़हा या क़ुरबानी का त्योहार एक महान क़ुरबानी की याद में मनाया जाता है। ख़ुदा के विशिष्ट पैग़म्बर हज़रत इबराहीम (अलैहि०) ने ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने इकलौते बेटे हज़रत इसमाईल की क़ुरबानी ईश्वर के समक्ष पेश की थी। बेटे के ज़िबह होने की नौबत नहीं आई। यह क़ुरबानी ईश्वर के यहाँ स्वीकृत हो गई और ख़ुदा ने फ़रमाया कि ऐ इबराहीम, तूने अपने स्वप्न को सच कर दिखाया। अर्थात् स्वप्न में जो तुमने देखा था कि अपने प्रिय बेटे को क़ुरबान कर रहे हो, वह सपना पूरा हो गया। बेटे का प्राण लेना अभीष्ट न था, अभीष्ट तुम्हारी परीक्षा थी। अपने बेटे को ज़िबह करने की ज़रूरत नहीं। उसका जीवन ईश-भक्ति, एकेश्वरवाद के केन्द्र अर्थात् काबा की सेवा के लिए समर्पित होगा। ख़ुदा ने इसे स्वीकार कर लिया। मुसलमान क़ुरबानी के त्योहार के अवसर पर जानवर की क़ुरबानी करके उस प्रण की पुनर्वृत्ति करते हैं कि उनके प्राण ईश्वर के लिए अर्पित हैं। जब भी आवश्यकता होगी वे अपनी जान क़ुरबान करने से भागेंगे नहीं। ये प्राण तो ईश्वर-प्रदत्त हैं जिनकी हैसियत केवल अमानत की है। इस प्रकार दोनों ही इस्लामी त्योहारों की मूल आत्मा और स्प्रिट ईश-भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इन त्योहारों के मनाने की रीति भी सभ्य और शिष्ट है। मुसलमान ईद के दिन स्नान करते हैं, अच्छे वस्त्र धारण करते हैं। ख़ुशबू लगाते और सदक़ा करते हैं ताकि मुहताज और दीन-दुखी इस ख़ुशी के अवसर पर भूखे न रहें। क़ुरबानी के त्योहार पर क़ुरबानी का गोश्त ख़ुद भी खाते हैं और अपने प्रियजन और नातेदारों, मित्रों आदि में भी बाँटते हैं और दीन-दुखियों और

मुहताजों का भी उसमें हिस्सा होता है।

प्रसन्नता और ख़ुशी का प्रदर्शन पूर्ण रूप उस वक़्त धारण करता है जब मुसलमान इन दोनों त्योहारों के अवसर पर ईदगाह पहुँचकर अपने रब के आगे सज्दे में बिछ जाते हैं। क़ियाम, रुकूअ् और सज्दा, और इनमें विशेष रूप से सजदा वह मुद्रा है जिससे वास्तव में उस सम्बन्ध और नाते का प्रदर्शन होता है जो अल्लाह और बन्दे के मध्य पाया जाता है। यह सम्बन्ध ऐसा है कि इससे बढ़कर किसी भाव-विभोर करनेवाली और आनन्ददायक चीज़ की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिस मुद्रा, भाव-भंगिमा और जीवन-शैली के द्वारा वह सम्बन्ध अभिव्यक्त हो जो ख़ुदा और उसके बन्दों के मध्य पाया जाता है, वही इस्लामी सभ्यता और संस्कृति की मूल आत्मा है।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) जब ईद के दिन किसी रास्ते से (ईदगाह जाने के लिए) निकलते तो वापस दूसरे रास्ते से होते थे। (हदीस : तिर्मिज़ी, दारमी)

व्याख्या : ताकि बस्ती का हर कोना ईश-स्मरण के प्रकाश से आलोकित हो जाए। और ईश्वर की प्रत्येक महानता का प्रदर्शन अधिक से अधिक प्रत्येक स्थान पर हो सके।

बीमारपुरसी

(1) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जब किसी बीमार की बीमारपुर्सी करते तो फ़रमाते : "अज़हिबिल बअ्-स रब्बन्नासि वशफ़ि अन्तश्शाफ़ी ला शिफ़ा-अ इल्ला शिफ़ाउ-क शिफ़ाअन् ला युग़ादिरु सक़मन" अर्थात तकलीफ़ को दूर कर ऐ लोगों के रब, तू ही आरोग्य प्रदान करनेवाला है। आरोग्य तो बस तेरा ही (प्रदत्त) आरोग्य है। ऐसा आरोग्य प्रदान कर जो रोग को छोड़े नहीं।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : बुख़ारी और नसई की रिवायत से मालूम होता है कि बीमारपुर्सी के मौक़े पर नबी (सल्ल०) कहते थे, "ला-बअ्-स तहूरुन इंशाअल्लाहु ला बअ्-स इंशाअल्लाह" कोई भय और निराश की बात नहीं। यह बीमारी अगर-अल्लाह ने चाहा तो (गुनाहों से) पाक करनेवाली है। कोई भय और निराशा की बात नहीं। यह बीमारी अगर अल्लाह ने चाहा तो पाक करनेवाली

है।

मालूम हुआ कि बीमारपुरसी के मौक़े पर बीमार को तसल्ली देनी चाहिए कि बीमारी भी मोमिन के लिए लाभदायक होती है। इससे उसके गुनाह माफ़ होते हैं। बीमारी या तकलीफ़ मोमिन के लिए उसके गुनाहों का प्रायश्चित् है। बीमारपुर्सी के मौक़े पर बीमार के स्वास्थ्य के लिए दुआ भी करनी चाहिए।

शोक व्यक्त करना

(1) हज़रत मआज़-बिन-जबल (रज़ि०) से रिवायत है कि उनके एक बेटे का देहान्त हो गया तो नबी (सल्ल०) ने यह शोक-पत्र लिखवाया—

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम। अल्लाह के रसूल मुहम्मद की ओर से मआज़-बिन-जबल को— मैं तुम्हारे समक्ष उस अल्लाह की प्रशंसा करता हूँ जिसके सिवा कोई पूज्य नहीं। तत्पश्चात् मेरी दुआ है कि अल्लाह तुम्हें इस दुख पर बड़ा फल प्रदान करे और तुम्हारे दिल को सब्र (धैर्य) प्रदान करे। और हमें और तुम्हें (अपने अनुग्रहों पर) शुक्र अदा करने का सौभाग्य प्रदान करे। निश्चय ही हमारे प्राण और हमारे धन और हमारे घर के लोग सब अल्लाह की शुभ-देन हैं और उसकी सौंपी हुई अमानतें हैं। (तुम्हारा बेटा भी उसकी अमानत था) अल्लाह ने ख़ुशहाली और ख़ुशी के साथ उससे लाभ उठाने और जी बहलाने का अवसर दिया और जब चाहा अपनी अमानत अपने क़ब्ज़े में ले ली, इसपर तुम्हारे लिए बड़ा फल है। उसके विशेष अनुग्रह, दयालुता और मार्गदर्शन (की तुमको शुभ-सूचना है) अगर तुमने कर्म फल और अल्लाह की प्रसन्नता के लिए धैर्य से काम लिया। अतः (ऐ मआज़) धैर्य से काम लो, ऐसा न हो कि तुम्हारा विलाप उस फल को विनष्ट कर दे जो तुम्हें मिलनेवाला है और फिर तुम पश्चाताप करो। और जान लो कि विलाप करने से कोई मरनेवाला लौटकर नहीं आता और न इससे दिल का ग़म दूर होता है, और अल्लाह की ओर से जो आदेश उतरता है वह होकर रहता है, बल्कि वह निश्चय ही हो चुका होता है।" वस्सलाम

व्याख्या : नबी (सल्ल०) ने यह जो कहा कि "उसके विशेष अनुग्रह,

दयालुता और मार्गदर्शन (की तुमको शुभ–सूचना) है, यदि तुमने अच्छा फल और अल्लाह की प्रसन्नता के लिए धैर्य से काम लिया," इसमें संकेत क़ुरआन की इस आयत की ओर किया गया है, "यही लोग हैं जिनपर उनके रब की विशिष्ट कृपाएँ हैं और दयालुता भी, और यही लोग हैं जो सीधे मार्ग पर हैं," (अल–बक़रा, आयत 157)। मतलब यह है कि अगर तुम अच्छे फल और अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने की नीयत से इस दुख पर धैर्य से काम लेते हो तो तुम्हारे लिए विशेष अनुग्रह और मार्गदर्शन की शुभ–सूचना है।

नबी (सल्ल०) के इस शोकपत्र में प्रत्येक मोमिन व्यक्ति के लिए शोक–सान्त्वना, उपदेश और शान्ति और तसल्ली की ख़ुशख़बरी का सामान मौजूद है जिसको कोई दुख पहुँचा हो। ज़रूरत इस बात की है कि हम रंज और ग़म के अवसर पर नबी (सल्ल०) की इस नसीहत से शान्ति प्राप्त करें, और जीवन में धैर्य और कृतज्ञ–भाव ही को अपनी पहचान बनाएँ।

मौत की कामना न करें

(1) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "तुममें से कोई व्यक्ति किसी मुसीबत के कारण जो उसपर आई हो मौत की कामना न करे। अगर ऐसी ही इच्छा हो तो उसे यूँ कहना चाहिए : ऐ अल्लाह, मुझे ज़िन्दा रख जब तक जीना मेरे लिए अच्छा हो और मुझे मौत दे जब मरना मेरे लिए अच्छा हो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : सहीह मुस्लिम की रिवायत में है, " तुममें से कोई मौत की कामना न करे और न मौत के आने से पहले मौत के लिए दुआ करे क्योंकि जो कोई तुममें से मर जाता है उसके कर्म का क्रम टूट जाता है, और मोमिन की उम्र उसकी भलाई में अभिवृद्धि का कारण बनती है।" मोमिन को इसी उद्देश्य को सामने रखते हुए ख़ुदा से मौत की प्रार्थना नहीं करनी चाहिए ताकि वह अधिक से अधिक नेकियाँ कर सके और सत्य–धर्म की सेवा का अधिक से अधिक अवसर उसे उपलब्ध हो सके। अन्यथा मोमिन को तो अपने रब से मिलने का बड़ा शौक़ होता है और अल्लाह भी ऐसे ही व्यक्ति से मिलना पसन्द करता है जो उससे मिलने की लालसा रखता हो। अतएव हदीस में है,

''जो व्यक्ति अल्लाह से मिलने की चाहत रखता है तो अल्लाह भी उससे मिलना पसन्द करता है, और जिस किसी को अल्लाह से मिलना अप्रिय है के अल्लाह को भी उससे मिलना अप्रिय होता है।'' (हदीस : मुस्लिम)

आत्महत्या

(1) हज़रत जुन्दुब-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, ''तुमसे पहले के लोगों में एक व्यक्ति था। उसे घाव लग गया था जिसके कारण विकल होकर उसने एक छुरी ली और अपना हाथ काट डाला। फिर ख़ून बन्द न हुआ यहाँ तक कि वह मर गया। अल्लाह तआला ने कहा : मेरे बन्दे ने अपनी जान देने में जल्दबाज़ी से काम लिया, इसलिए मैंने जन्नत उसपर हराम कर दी।'' (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस्लाम में आत्महत्या हराम है। जान ख़ुदा की दी हुई है। यह उसी का हक़ है कि जब चाहे वह उसको वापस ले ले। हमें आत्म-हत्या करने का कदापि हक़ नहीं है। तकलीफ़ों और मुसीबतों से घबराकर जो लोग आत्महत्या कर लेते हैं वे मुसीबतों से छुटकारा भी नहीं पा सकते। ऐसे लोग ख़ुदा की दृष्टि में अपराधी ठहरते हैं और वे कठोर दण्ड के भागी बन जाते हैं। एक रिवायत में है : ''जो व्यक्ति गला घोंटकर अपनी जान देता है, वह दोज़ख़ (नरक) में गला घोंटकर अपनी जान देता रहेगा। और जो ख़ुद को घायल करके मारता है, दोज़ख़ में वह ख़ुद को घायल करके मारता रहेगा। मतलब यह है कि ऐसा व्यक्ति निरन्तर यातना में ग्रस्त रहेगा। उसका अन्तिम कर्म उसका परिणाम बन जाएगा।

शोक

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "वह व्यक्ति हममें से नहीं है जो (मुसीबत में) अपने गालों को पीटे और गरेबान फाड़े और अज्ञान काल के दिनों की तरह चीख़-पुकार करे।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यह रिवायत मुस्नद अहमद, तिर्मिज़ी और इब्ने माजा में भी आई है। इस हदीस से मालूम हुआ कि किसी मौत पर या किसी दुखद घटना पर इस प्रकार चीख़ना-चिल्लाना कि आदमी अपने गालों को पीटने लगे या गरेबान फाड़ डाले या अज्ञान-काल की तरह चीख़-पुकार करे या ऐसी बातें मुख से निकाले जो तौहीद की धारणा के विपरीत हो, हरगिज़ जायज़ नहीं।

(2) हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "किसी स्त्री के लिए, जो अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखती हो, यह वैध नहीं है कि सिवाय पति के किसी पर तीन दिन से अधिक शोक मनाए, न वह सुरमा लगाए, न रंगा हुआ कपड़ा पहने सिवाय उस कपड़े के जो बुनने से पहले रंगा गया हो।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : दुनिया से किसी के विलग होने का शोक स्वाभाविक है। विशेष रूप से स्त्री के लिए उसके पति की मौत हृदयविदारक होती है। इसलिए इस्लाम ने उसे तीन दिन तक शोक करने की अनुमति दी है। तीन दिन में इसकी आशा की जाती है कि ख़ुदा उसे धैर्य और शान्ति प्रदान करेगा, किन्तु इन तीन दिनों में भी इसकी अनुमति नहीं है कि वह चीख़-पुकार और बयान करके अपने शोक को बढ़ाए यहाँ तक कि उसका शोक मात्र शोक न होकर ख़ुदा से शिकायत बन जाए।

पति की मौत पर स्त्री का शोकाकुल न होना कोई गुण नहीं, बल्कि दोष है। इसी लिए इस्लाम ने शोक करने से रोका नहीं बल्कि उसके आदाब सिखाए हैं कि उसे चाहिए कि सज्जा और शृंगार न करे; न सुरमा और काजल लगाए और न रंगीन कपड़े पहने। क्योंकि ये चीज़ें ख़ुशी और साज-सज्जा के लिए होती हैं। एक रिवायत में ये शब्द भी आए हैं : "और न ख़ुशबू मले मगर मासिक-धर्म की समाप्ति के अवसर पर जब वह पाक हो जाए तो थोड़ा-सा क़ुस्त और अज़फ़ार की धूनी ले सकती है," (हदीस : बुख़ारी)। यह ख़ुशबू

की धूनी लेने की अनुमति इसलिए दी गई कि इसका सम्बन्ध वास्तव में शृंगार से नहीं बल्कि स्वच्छता और मन की पवित्रता और पाकीज़गी से है।

मुर्दों का हक़

(1) हज़त आइशा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मुर्दों को बुरा न कहो, इसलिए कि वे उस (अच्छे-बुरे फल) को पहुँच चुके जो उन्होंने किया था।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् अब वे इस दुनिया से जा चुके हैं। वे अपनी प्रतिरक्षा भी नहीं कर सकते। इसलिए यह पुरुषत्व और सज्जनता के विपरीत है कि तुम उनके विरुद्ध कोई बात कहो। अगर वे बुरे भी रहे हों तो अब वे ऐसी दुनिया में पहुँच चुके हैं जहाँ वे स्वयं इसका निरीक्षण भली-भाँति कर लेंगे कि वे कैसे थे और उनके कर्म अच्छे थे या बुरे। मरने के पश्चात् मनुष्य वहाँ पहुँच जाता है जहाँ किसी का मान और प्रतिष्ठा उसके कर्मों और चरित्र के अनुसार निश्चित होती है। कोई दूसरी चीज़ वहाँ काम आने की नहीं है। यहाँ से जानेवाला अगर वास्तव में बुरा था तो वह अपने बुरे परिणाम को पहुँच चुका। उसके लिए वही काफ़ी है जिसका उसे सामना करना होगा। उसे बुरा कहने की कोई ज़रूरत नहीं।

(2) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अपने मरे हुए लोगों की अच्छाइयाँ बयान करो और उनकी बुराइयों की चर्चा करने से बचो।" (हदीस : अबू-दाऊद, तिर्मिज़ी)

व्याख्या : किसी के सद्‌गुणों को स्वीकार करना और उनकी चर्चा करना और वह भी उसकी अनुपस्थिति में, अत्यन्त प्रशंसनीय है। तुम्हारा हृदय ऐसा ही व्यापक और विशाल होना चाहिए कि तुम्हें दूसरों के गुणों की चर्चा करने में आनन्द आए। तुम्हारी दृष्टि किसी के दुर्गुणों की टोह में कदापि न रहे। और यदि तुम किसी के दुर्गुणों से अवगत भी हो तब भी तुम अपनी ज़बान को उन दुर्गुणों और बुराइयों के बयान से रोके रखो। किसी के दुर्गुणों और बुराइयों के प्रचार को कोई प्रिय और अच्छा कार्य नहीं कहा जा सकता। और वह भी ऐसे व्यक्ति के दुर्गुणों का प्रचार जिसे अब अपनी प्रतिरक्षा की सामर्थ्य भी प्राप्त न हो।

कुछ सांस्कृतिक और सामाजिक मामले

काव्य और साहित्य

(1) हज़रत उबैय-बिन-काब (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "कुछ पद्य सर्वथा हिकमत होते हैं।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मूल में पद्य के लिए शे'र शब्द प्रयुक्त हुआ है। शे'र का अर्थ—जानना, प्रज्ञा और समझ बयान किया जाता है, किन्तु परिभाषा में शायरी या काव्य वास्तव में विशुद्ध, बहुमूल्य अनुभवों की पूर्ण, सुन्दर लयबद्ध अभिव्यक्ति है। कवि अपने अनुभवों और अनुभूतियों को प्रकट करने के लिए शब्दों, बिम्बों और धुन्यात्मक सन्योजन का प्रयोग करता है। कवि में यदि कला की कमी नहीं है तो निश्चय ही वह अपनी अनुभूतियों को सुन्दरतम् और उचित से उचित शब्दों के रूप में प्रकट करेगा। काव्य का सबसे महत्वपूर्ण अंग कल्पना है। काव्य में भावों की अभिव्यक्ति के लिए कल्पना का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। इसी लिए कहा जाता है कि काव्य की दुनिया स्वप्न देखने की दशा-भाव से बहुत अधिक सम्बन्ध रखती है। काव्य का वास्तव में हमारी आत्मा से नाता है। काव्य में प्रयास यह होता है कि व्यक्ति जिन मूल्यों का केन्द्र-बिन्दु और वाहक है वह उनका अनावरण कर सके। शायरी में जिन चीज़ों को व्यक्त किया जाता है उनके पार्श्व में ऐसी चीज़ें भी होती हैं जो प्रदर्शन से परे होती हैं और काव्य की मूलात्मा वही हुआ करती हैं।

इसके अतिरिक्त काव्य के काव्य होने के लिए उसमें सच्चाई का होना आवश्यक है। सच्चाई के बिना केवल सुन्दर और लयबद्ध शब्दों को एकत्र कर देने से काव्य का आविर्भाव नहीं होता। काव्य मात्र सुन्दर और लयदबद्ध शब्दों को जोड़ देने का नाम कदापि नहीं है। अच्छे काव्य के लिए अनिवार्य है कि कवि जिन अनुभूतियों और अनुभवों को अपने काव्य में प्रकट कर रहा है

उनको उसने पूरी तरह महसूस किया हो। जिन भावनाओं और अनुभूतियों का प्रदर्शन काव्य में किया जाए वह कवि की अपनी वास्तविक भावनाएँ और अनुभूतियाँ बन चुकी हों।

जगत् और जीवन वास्तव में ईश्वर की छवि और सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब मात्र है। यही कवि को जीवन-रहस्य के समझने के योग्य बनाती है। ब्रह्म ज्योति (रब्बानी तजल्ली) अगर दृष्टि से ओझल हो तो कवि विचार के व्यक्त करने की सामर्थ्य रखने के बावजूद मनुष्य के असुन्दर भावों ही को व्यक्त करने में अपनी योग्यताओं को खपाएगा। यह सत्य है कि काव्य कभी विचार से रिक्त नहीं होता और न हो सकता है। अलबत्ता विचार काव्य में काव्यात्मक बनकर सम्मिलित होता है। सही और उच्च विचार कवि को घटिया और साधारण भावनाओं से बचाता है।

यहाँ काव्य के विषय में हमने जिन बुनियादी बातों का वर्णन किया है उनकी रौशनी में किसी भी काव्य के बारे में आसानी से निर्णय लिया जा सकता है कि वह काव्य किस कोटि का है। अर्थात् वह काव्य सच्चा और उच्च कोटि का है या उसे निम्न और पथभ्रष्टक काव्य की श्रेणी में रखा जाए।

इस हदीस में नबी (सल्ल०) ने काव्य के विषय में उसके वैचारिक पहलू से अपना मत प्रकट किया है। आपकी दृष्टि में सर्वोत्तम काव्य वह है जिसमें अन्तर्दृष्टि, समझ, सौजन्य और पवित्रता का पूरा ध्यान रखा गया हो।

स्पष्ट है कि यह बात आप (सल्ल०) काव्य के वैचारिक पहलू ही से कह रहे हैं। और सच्ची बात यह है कि विचार और अनुभूति के पहलू से अगर कोई काव्य निष्प्राण या पथभ्रष्ट करनेवाला है तो फिर वह किसी काम का नहीं हो सकता।

आप (सल्ल०) ने यह कहा कि "कुछ पद्य सर्वथा हिकमत होते हैं," जिनमें गहरी समझ और तत्वदर्शिता पाई जाती है, जो हमारी आत्मा को जगाने की सामर्थ्य रखते हैं और जिनके द्वारा हमारी बेहोशी टूट जाती है और हमारे मन में प्रकाशना की लहर दौड़ जाती है और ऐसा लगता है कि कवि ने हमें सत्य का साक्षात्कार करा दिया है।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "सबसे सच्ची बात जो किसी कवि ने कही वह

लबीद का यह कलाम है : जान लो, अल्लाह के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु मिथ्या है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : लबीद (रज़ि०) से अभिप्रेत लबीद-बिन-रबीआ अल-आमिरी हैं। हज़रत लबीद (रज़ि०) अरब के प्रसिद्ध कवि थे। अरबी में उनके काव्य को सनद का दर्जा प्राप्त है। उनका 'क़सीदा' मुअल्लक़ात (वे क़सीदे जो अपनी विशिष्टता के कारण काबा की दीवार पर टाँगे गए थे।) में शामिल है। लबीद को इस्लाम लाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे नबी (सल्ल०) पर ईमान ले आए और काव्य-रचना त्याग दी। वे कहा करते थे : "यकफ़ीनिल-क़ुरआन।" (अब क़ुरआन मेरे लिए काफ़ी है।) वे कूफ़ा चले गए और वहीं बस गए। उन्हें लम्बी उम्र प्राप्त हुई। सन् 41 हिजरी में 157 साल की उम्र में उनका देहान्त हुआ।

नबी (सल्ल०) ने हज़रत लबीद (रज़ि०) के जिस शेर की प्रशंसा की वह पूरा शेर इस प्रकार है :

"अला कुल्लि शैइन मा ख़-लल्ला-ह बातिलुन।
व कुल्लु नईमिन ला मुहाल-त ज़ाइलुन॥
(याद रखो, अल्लाह के सिवा हर चीज़ मिथ्य है।
और (दुनिया का) प्रत्येक स्वाद व सुख मिटनहार है।)

दुनिया की प्रत्येक चीज़ मिथ्या है। अर्थात् कोई चीज़ भी ऐसी नहीं है जिसपर भरोसा किया जा सके। अल्लाह के अतिरिक्त कोई भी चीज़ नित्य और स्थायी नहीं है। दुनिया की चीज़ों को जो कुछ स्थायित्व और विश्वसनीयता प्राप्त है वह मात्र ईश्वर प्रदत्त है। दुनिया की चीज़ों में जो भी आकर्षण और सौन्दर्य पाया जाता है वह उन चीज़ों का कोई निजी चमत्कार नहीं है, वह मात्र ईश्वरीय चमत्कार है। मूल आधार ईश्वरीय सत्ता है। इसलिए उसी को अपना जीवनोद्देश्य समझना चाहिए। अल्लाह के सिवा दूसरों के पीछे पड़कर अपनी आख़िरत को ख़राब करना अत्यन्त मूर्खता और नासमझी की बात है।

(3) हज़रत अम्र-बिन-शरीद अपने पिता के माध्यम से उल्लेख करते हैं कि उन्होंने कहा कि एक दिन मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पीछे सवारी पर बैठा हुआ था कि आप (सल्ल०) ने कहा, "क्या तुम्हें उमैया-बिन-अबिस्सल्त के कुछ अशआर याद हैं?" मैंने कहा कि हाँ! आपने

फ़रमाया, "अच्छा, सुनाओ!" मैंने आप (सल्ल०) को एक पद सुनाया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "और सुनाओ।" मैंने आपको फिर एक पद और सुनाया। आपने फ़रमाया, "और सुनाओ।" (इसी तरह आप और सुनाने की इच्छा व्यक्त करते रहे।) यहाँ तक कि मैंने आपको एक सौ अशआर सुनाए। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : उमैया-बिन-अबिस्सल्त अरब का एक उच्चकोटि का कवि हुआ है। उसका सम्बन्ध क़बीला सक़ीफ़ से था। कहा जाता है कि अज्ञानकाल में उसने किताबवालों (यहूदियों, ईसाइयों) से बहुत-सी धार्मिक बातें सीखी थीं। क़ियामत के दिन पर और मृत्यु के पश्चात् पुनः जीवित करके उठाए जाने पर भी उसका विश्वास था। उसके पदों में अधिकतर ज्ञान, तत्त्वदर्शिता और हितोपदेश की बातें होती थीं। उसके काव्य का अधिकांशत भाग ईश-भक्ति से सम्बद्ध था। इसी लिए नबी (सल्ल०) को उसके काव्य से दिलचस्पी थी। उसके विषय में आप (सल्ल०) का कथन है कि "वह अपने काव्य में इस्लाम से बहुत निकट हो गया था।" इसी कवि के विषय में नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है, "उसका शे'र मोमिन किन्तु उसका दिल काफ़िर है।"

इब्ने-जौज़ी (रह०) ने लिखा है कि उसे आख़िरी नबी के आगमन की प्रतीक्षा थी, किन्तु जब नबी (सल्ल०) ने नुबूवत की घोषणा की तो वह द्वेष और शत्रुता के भाव से भर गया, ईमान लाने से वंचित रहा।

यह हदीस इस बात का प्रमाण है कि इस्लाम अपने अनुयायियों को संकीर्णता की शिक्षा नहीं देता। अच्छे शे'र जो ज्ञान और तत्त्वदर्शिता से परिपूर्ण हों और जिनमें हितोपदेश पाया जाता हो, उनके सुनने और पढ़ने में कोई बुराई नहीं है। यद्यपि वे शे'र काफ़िर और फ़ासिक़ व्यक्ति ही की रचना क्यों न हों।

(4) हज़रत बराअ् (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ख़न्दक़ (खोदे जाने) के दिन ख़ुद ही मिट्टी उठा-उठाकर फेंकते थे, यहाँ तक कि आप (सल्ल०) का पेट धूल-धूसरित हो गया, और आप यह पद पढ़ते जाते थे :

"अल्लाह की सौगन्ध, यदि अल्लाह हमारा मार्गदर्शन न करता तो हम मार्ग न पाते, न हम दान देते और न नमाज़ अदा करते। अतः (ऐ अल्लाह!) हमपर शान्ति अवतरित कर और जब शत्रु से हमारी मुठभेड़ हो तो हमें उनके

मुक़ाबले में जमाए रख। उन्होंने हमपर अत्याचार इसलिए किया है कि जब वे हमें फ़ितने में डालने (अर्थात् कुफ़्र की ओर लौटाने) का इरादा करते हैं तो हम इनकार कर देते हैं।''

इन पदों को आप (सल्ल०) उच्च स्वर में पढ़ते थे। 'अबैना-अबैना' (हम इनकार कर देते हैं, हम इनकार कर देते हैं) के शब्द का उच्चारण विशेष रूप से उच्च स्वर में करते थे। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : यह वीर रस का काव्य हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-रवाहा (रज़ि०) का है। आवाज़ ऊँची करने और किसी शब्द को दोहराने से शे'र का अर्थ और भाव और अधिक परिपुष्ट हो जाता है और कभी शे'र से आनन्दित होने के लिए भी ऐसा करते हैं।

मुस्लिम और बुख़ारी की रिवायत है कि मुहाजिरीन व अनसार जब ख़न्दक़ खोदने और मिट्टी उठा-उठाकर फेंकने लगे तो उनकी ज़बान पर यह वीरपरक अशआर थे (जिनके अनुवाद प्रस्तुत हैं) : ''हम वे लोग हैं कि अपने जीवन के अन्त तक जिहाद करते रहने के लिए मुहम्मद के हाथ पर प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके हैं।''

नबी (सल्ल०) उनके इस शे'र के उत्तर में यह (दुआ) करते जाते थे, ''ऐ अल्लाह! जीवन तो बस पारलौकिक जीवन ही है, अतः तू अनसार और मुहाजिरीन को क्षमा करना।''

सहीह मुस्लिम की एक रिवायत में है कि आप (सल्ल०) कहते थे, ''ऐ अल्लाह! जीवन तो बस पारलौकिक जीवन है। अतः तू अनसार व मुहाजिरीन पर दया कर।''

मुस्लिम की एक रिवायत है कि आप (सल्ल०) कहते थे, ''ऐ अल्लाह! जीवन तो बस पारलौकिक जीवन है। अतः तू अनसार और मुहाजिरीन का सहायक हो।''

मुस्लिम ही की एक रिवायत में है कि आप (सल्ल०) कहते थे, ''ऐ अल्लाह! भलाई तो बस आख़िरत की भलाई है। तू अनसार और मुहाजिरीन को बख़्श दे।''

मस्जिदे-नबवी (मदीना में नबी (सल्ल०) की मस्जिद) का जब निर्माण हो रहा था तो उस अवसर पर सहाबा के साथ आप (सल्ल०) भी ईंटें उठा-

उठाकर लाते थे और फ़रमाते थे, "ऐ अल्लाह! पुण्य-फल तो वास्तव मे आख़िरत का पुण्य-फल है। तू अनसार और मुहाजिरीन पर दया कर।"

युद्ध के अवसर पर यह शेर भी आपकी ज़बान पर आया है : "मैं नबी हूँ यह झूठ नहीं। मैं अब्दुल-मुत्तलिब का पुत्र हूँ।" (हदीस : मुस्लिम)

अब्दुल-मुत्तलिब सुप्रसिद्ध व्यक्ति थे और अरब आप (सल्ल०) को उनका बेटा कहते थे। इमाम बुख़ारी ने हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) का भी एक शे'र उद्धृत किया है। यह पद उन्होंने उस समय कहा था जब वे ईमान लाने के लिए नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए थे। शेर का अर्थ यह है:

"रात की दीर्घता और उसकी कठिनाइयों से शिकायत है,
किन्तु शुभ है कि इसने कुफ्र-क्षेत्र से मुक्त किया।"

(5) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के सामने शे'र की बात आई तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "शे'र भी एक वाणी है, अतः उसमें जो अच्छा है वह अच्छा है और जो बुरा है वह बुरा है।" (हदीस : दार-क़ुतनी)

व्याख्या : अर्थात् किसी शेर को मात्र उसके शेर होने के कारण बुरा नहीं ठहराया जा सकता। किसी शेर या वाणी की अच्छाई या बुराई इसपर निर्भर करती है कि वह विषय और विचार कैसा है जो उस शेर में व्यक्त किया गया है। सम्भव है कोई शेर अपने शब्द और दूसरे काव्यगुणों की दृष्टि से अच्छा हो, लेकिन अगर अपने अर्थ की दृष्टि से वह सत्य के विरुद्ध है तो फिर दूसरे सारे गुणों के बावजूद उस शेर की गणना अच्छे काव्य में नहीं की जा सकती। जिस प्रकार आत्मा को इनसान के भौतिक शरीर पर श्रेष्ठता प्राप्त है, उसी प्रकार किसी कलाम में मौलिक महत्त्व उसके अर्थ का है। अक्षर और शब्द का दर्जा उसके बाद का है।

(6) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "पीप (मवाद) से किसी व्यक्ति के पेट का भरना जो उसके पेट को ख़राब कर दे उससे अच्छा है कि वह काव्य से भरे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अरब का काव्य इश्क़बाज़ी, वासना और मद्यपान के विषय पर केन्द्रित होता था। या फिर वे काव्य से क़बीलों के मध्य द्वेष, घृणा और युद्ध या वांशिक गर्व को भड़काने का काम लेते थे। बहुदेववादी अन्धविश्वास, झूठ, अतिशयोक्ति, झूठे आरोप, निन्दात्मक व्यंग, डींगें मारना और इसी प्रकार की ख़ुराफ़ात को काव्य का मूल तत्त्व समझते थे। इसी प्रकार के काव्य के विषय में कहा जा रहा है कि किसी व्यक्ति का पेट पीप से भरे यह उससे ज़्यादा अच्छा है कि वह काव्य से भरे। अच्छे शेर की आपने प्रशंसा की है।

(7) हज़रत जुन्दुब (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) एक युद्ध (उहुद की लड़ाई) में शरीक थे। आप (सल्ल०) की उँगली (घायल होकर) लहू-लुहान हो गई। आप (सल्ल०) ने एक शेर फ़रमाया : "तू बस एक उँगली है, लहू-लुहान हो गई है। और तुझे जो कुछ पेश आया, अल्लाह की राह में पेश आया।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : यह मानो आप (सल्ल०) ने अपने अनुयायियों को ताकीद की है कि किसी को अगर ख़ुदा के रास्ते में कोई हानि और तकलीफ़ पहुँचे तो उसे जानना चाहिए कि वह घाटे और नुक़सान में नहीं है। यह बड़े ही सौभाग्य और प्रतिष्ठा की बात है कि ख़ुदा की राह में कोई सताया जाए और ख़ुदा की राह में किसी को हानि पहुँचे। ऐसा व्यक्ति ख़ुदा के यहाँ वंचित एवं अभावग्रस्त लोगों में शामिल न होगा।

(8) हज़रत बरा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने क़ुरैज़ा के दिन हज़रत हस्सान-बिन-साबित (रज़ि०) से फ़रमाया, "तुम काव्य में मुश्रिकों पर व्यंग करो, जिबरील (अलैहि०) तुम्हारे साथ हैं।" और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) (जब काफ़िरों से अपने प्रति निन्दात्मक काव्य सुनते तो) हस्सान (रज़ि०) से फ़रमाते, "तुम मेरी तरफ़ से उन्हें उत्तर दो।" (फिर यह फ़रमाते) "ऐ अल्लाह, रूहुल-क़ुदुस के द्वारा हस्सान का सहायक होकर उसे शक्ति दे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : बनू-क़ुरैज़ा यहूदियों का एक क़बीला था। उसने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ किए हुए अनुबन्ध को त्यागकर मुसलमानों के विरुद्ध षड्यंत्र रचा तथा इस्लाम के शत्रुओं की सहायता की। ख़न्दक़ की

लड़ाई के बाद नबी (सल्ल०) ने इस क़बीले की घेराबन्दी की और वह अपनी करनी को पहुँचा। इस अवसर को 'क़ुरैज़ा के दिन' से अभिहित किया गया है।

हज़रत हस्सान-बिन-साबित-बिन-मुनज़िर प्रसिद्ध अनसारी सहाबी हैं। अच्छे कवि थे। उन्हें 'रसूल के कवि' की उपाधि से याद किया जाता है। एक सौ बीस वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ। साठ वर्ष की अवस्था तक कुफ़्र में रहे और उनके साठ साल इस्लाम में व्यतीत हुए। हज़रत हस्सान (रज़ि०) अपने पद्यों के द्वारा काफ़िरों का मुक़ाबला करते और उनके व्यंगात्मक काव्यों का उत्तर देते थे।

आप (सल्ल०) ने हज़रत हस्सान से यह जो कहा कि जिबरील तुम्हारे साथ हैं, इसका अर्थ यह है कि काव्य-रचना में आत्मिक प्रेरणा के माध्यम से वे तुम्हारी सहायता करते हैं।

भाषण और वाक्पटुता

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) कहते हैं कि (एक दिन) पूर्व से दो व्यक्ति आए और उन्होंने ऐसा वार्तालाप किया कि लोग उनका वक्तव्य सुनकर आश्चर्यचकित रह गए। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इसमें सन्देह नहीं, कुछ वक्तव्य जादू होते हैं।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् कुछ वक्तव्य और भाषणों का प्रभाव जादू जैसा होता है। उनके प्रभाव से मनुष्य की दशा में बड़ा बदलाव आ जाता है। आदमी के सोचने का ढंग और उनका दृष्टिकोण तक बदल जाता है। यदि यह वार्तालाप और भाषण सत्य के लिए है तो उसे शुभ और प्रशंसनीय ही कहा जाएगा। लेकिन अगर इसका सम्बन्ध असत्य और ग़लत बातों से है तो इसके अशुभ और निन्दनीय होने में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "विनष्ट हुए बात में अतिशयोक्ति करनेवाले।" यह बात आपने तीन बार कही। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि बातचीत और भाषण में (और इसी प्रकार लेखन में भी) अनुचित अतिशयोक्ति और बनावट का प्रयास अत्यन्त अप्रिय

और दोषपूर्ण है। ऐसा साधारणतया लोग मात्र अपनी योग्यता का प्रदर्शन और कला प्रवीणता दिखाने के लिए करते हैं। या फिर उनका उद्देश्य किसी की चाटुकारी और उसके ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करना होता है। ऐसे लोगों की बौद्धिक गिरावट से कौन इनकार कर सकता है। अपनी प्रतिष्ठा और भावनाओं की पवित्रता खो देने के बाद आदमी के पास बचता ही क्या है कि उसकी तबाही व बरबादी में सन्देह किया जाए।

यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि प्रभावकारी भाषण हमेशा सरल, सादा और कृत्रिमता आदि से मुक्त होता है। और अच्छी रुचि के लोग कभी भी बनावट और अतिशयोक्ति को पसन्द नहीं कर सकते।

(3) हज़रत अबू-सालबा ख़ुशनी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क़ियामत के दिन मुझे सबसे अधिक प्रिय और मुझसे निकटतम लोग वे होंगे जो शील-स्वभाव में तुममें सबसे अच्छे होंगे, और सबसे बढ़कर मुझे अप्रिय और सबसे अधिक मुझसे दूर वे लोग होंगे जो शील-स्वभाव की दृष्टि से तुममें बुरे होंगे जो अधिक बातें करते हैं, बात को सावधानी और सतर्कता के बिना तूल देते हैं और घमण्ड करते हैं।"

(हदीस : बैहक़ी, शोबुल-ईमान)

व्याख्या : इससे पता चलता है कि व्यर्थ वार्ता और अतिशयोक्ति और अनावश्यक बातों को तूल देना अत्यन्त अप्रिय है। विशेष रूप से अगर इसका उद्देश्य अपनी बड़ाई दिखाना और स्रोताओं पर अपना रोब जमाना हो। जो शील-स्वभाव के होते हैं उनके भाषण और बातचीत में निश्चित रूप से इस प्रकार के दोष नहीं पाए जाएँगे। आख़िरत में नबी (सल्ल०) का सान्निध्य उन्हीं लोगों को प्राप्त होगा और वही लोग नबी (सल्ल०) के प्रिय होंगे जो शील-स्वभाव में सबसे अच्छे होंगे। दुराचारी व्यक्ति के हिस्से में अभाव के सिवा और कुछ नहीं आ सकता। वह ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) की निगाह में अप्रिय होगा। आप (सल्ल०) से सबसे दूर भी वही होगा। जीवन में हमारी सुशीलता या कुशीलता का प्रदर्शन हमारी बातचीत के द्वारा निरन्तर होता रहता है। इसलिए बातचीत करने में सदैव सतर्क रहने की आवश्यकता है।

(4) हज़रत अम्र-बिन-अल-आस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक दिन उन्होंने उस समय यह बात कही जबकि एक व्यक्ति ने खड़े होकर बड़ा

लम्बा भाषण दिया। अतः हज़रत अम्र (रज़ि०) ने कहा कि अगर वह अपने भाषण में मध्यम-मार्ग अपनाता तो यह उसके पक्ष में अच्छा होता। मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना है कि, "मैंने समझ लिया है," या यह कि, "मुझे आदेश हुआ है कि मैं भाषण और बातचीत में संक्षेप से काम लूँ। इसलिए कि भाषण में संक्षेपण अच्छा होता है।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् हज़रत अम्र (रज़ि०) ने उस व्यक्ति से कहा कि लम्बे भाषण की अपेक्षा यदि तुम संक्षिप्त भाषण देते तो यह तुम्हारे और तुम्हारे सुननेवालों के लिए भी अच्छा होता। मैंने स्वयं नबी (सल्ल०) को कहते हुए सुना है कि, "मैंने (इस भेद को) जान लिया है— या आपने यह फ़रमाया कि, "मुझे इसी का आदेश हुआ है कि मेरा भाषण संक्षिप्त होना चाहिए क्योंकि भाषण और सम्बोधन में संक्षेपण ही अच्छा होता है।" लम्बे भाषण की अपेक्षा संक्षिप्त भाषण अधिक सफल होता है। बात जितनी अधिक संक्षिप्त रूप में बयान की जाएगी उसे याद रखना और उसपर ध्यान देना भी आसान होगा। और इस प्रकार भाषणकर्ता या सम्बोधक व्यर्थ और अनावश्यक बातों के बयान करने से भी बच जाता है। संक्षिप्त भाषण अधिक प्रभावकारी भी होता है। लम्बे भाषण से लोग उकता जाते हैं या ऊँघने लग जाते हैं।

प्रभावशाली साहित्यिक शैली

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना, "नीले आकाश ने कभी किसी ऐसे व्यक्ति पर छाया नहीं डाली और न धूल-धूसरित ज़मीन ने कभी किसी ऐसे व्यक्ति को उठाया जो अबू-ज़र से बढ़कर सच्चा हो।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : मतलब यह है कि इस आकाश के नीचे और इस धरती पर अबू-ज़र (रज़ि०) से बढ़कर सत्यवान और सच्चा व्यक्ति और कोई नहीं है। आप (सल्ल०) ने अत्यन्त साहित्यिक शब्द प्रयोग किए जिसको प्रत्येक रुचिवान व्यक्ति महसूस कर सकता है। आपने यह जो फ़रमाया कि अबू-ज़र (रज़ि०) से बढ़कर सत्यवान और सच्चा कोई नहीं तो इससे अभिप्रेत सुपुष्टि और अतिशयोक्ति है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि अबू-ज़र के समान

दूसरा कोई सत्यवान और सच्चा सिरे से था ही नहीं और सच्चाई और खरेपन में वही सबसे बढ़कर थे। बल्कि आपका अभिप्राय यह था कि अबू-ज़र (रज़ि०) सच्चाई और खरेपन में एक स्पष्ट शान रखते हैं और उन विशिष्ट लोगों में से हैं जो अपनी सच्चाई में अनुपम हैं। हज़रत अबू-ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि०) को विराग, परितोष और निस्पृहता में विशिष्टता प्राप्त थी। यह गुण उन्हें यक़ीन और विश्वास में सच्चे होने के कारण प्राप्त हुआ था।

(2) हज़रत अली (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अम्मार (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित होने की अनुमति माँगी तो आप (सल्ल०) ने कहा, "उसे अनुमति दे दो, पाक और पवित्र व्यक्ति का स्वागत है।"

(हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) ने यहाँ हज़रत अम्मार (रज़ि०) के मूल व्यक्तित्त्व की पवित्रता के लिए अत्यन्त सारगर्भित और प्रभावकारी शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे किसी छाया को अतिशयोक्ति के साथ बयान करने के लिए ज़िल्ला ज़लीलुन (घनघोर छाया) के शब्द प्रयोग किए जाते हैं।

(3) हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) सब लोगों से अधिक सुन्दर और सब लोगों से अधिक दानशील और सब लोगों से अधिक वीर थे। एक रात मदीनावालों को (दुश्मन के आने की) आशंका हुई। आवाज़ की तरफ़ लोग चल पड़े। रास्ते में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) वापस आते हुए मिले। (ख़बर लेने के लिए) सबसे पहले आप (सल्ल०) आवाज़ की ओर गए थे। आप (सल्ल०) अबू-तलहा (रज़ि०) के घोड़े पर सवार थे जो नंगी पीठ था। आपके गले में तलवार लटकी हुई थी और आप (सल्ल०) कह रहे थे, "भय की कोई बात नहीं, भय की कोई बात नहीं।" आप (सल्ल०) ने कहा, "हमने इसे दरिया पाया" या फ़रमाया, "निस्सन्देह यह दरिया है।" उल्लेखकर्ता का बयान है कि वह घोड़ा वास्तव में मन्दगति था। (आपकी बरकत से उसकी गति में तीव्रता आ गई)।

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस में कई बातें बयान हुई हैं। नबी (सल्ल०) वीरता में सबसे बढ़े हुए थे। इस सम्बन्ध में एक घटना का वर्णन किया गया है कि किस प्रकार एक रात मदीनावालों पर भय छा गया था। रात में कोई ऐसी

आवाज़ सुनाई दी जिससे लोगों को दुश्मन के आ जाने की आशंका हुई। लोग जब बाहर पता लगाने के लिए निकले तो क्या देखते हैं कि नबी (सल्ल०) सबसे पहले उस मौक़े का निरीक्षण करके और ख़ूब देख-भालकर वापस आ रहे हैं। आप (सल्ल०) ने लोगों का भय दूर करते हुए कहा कि डरने की कोई बात नहीं है। आप (सल्ल०) हज़रत अबू-तलहा के बे-ज़ीन घोड़े पर सवार थे और गले में तलवार लटकाए हुए थे। आप (सल्ल०) ने घोड़े के लिए 'दरिया' अछूता रूपक का प्रयोग किया। आप (सल्ल०) ने कहा कि हमने इस घोड़े को दरिया के प्रवाह की तरह तीव्रगति पाया। या आप (सल्ल०) के शब्द ये थे : "बेशक यह घोड़ा (अपनी तेज़ गति में) दरिया है।"

(4) हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) से उल्लिखित है वे बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) का एक ग़ुलाम हुदी पढ़कर ऊँट को हाँक रहा था। उसका नाम अंजश था और उसकी आवाज़ अच्छी थी। नबी (सल्ल०) ने उससे फ़रमाया, "ऐ अंजशाह! आहिस्ता-आहिस्ता चल, इन शीशों को न तोड़।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : हुदी ऊँट हाँकनेवालों के गीत को कहते हैं। इस गीत से मस्त होकर ऊँट अपनी रफ़्तार तेज़ कर देते हैं। अच्छी आवाज़ और लय व गीत से जानवर भी प्रभावित होते हैं। आप (सल्ल०) के कथन का अर्थ यह था कि ऐ अंजशा, तेरे सुस्वर और हुदी पढ़ने से ऊँट चलने में बहुत तेज़ी दिखा रहे हैं। तू उनको आहिस्ता-आहिस्ता ले चल। तुझे कोमलांगनियों (अर्थात महिलाओं) का ध्यान रखना चाहिए कि कहीं वे ऊँट से गिर न पड़ें और उन्हें चोट आ जाए। आप (सल्ल०) ने स्त्रियों के लिए शीशे का रूपक प्रयोग किया जो अत्यन्त सार्थक है। शीशे नाज़ुक भी होते हैं और उनमें कोमलता और निर्मलता भी अधिक होती है। यही विशेषता स्त्रियों में भी पाई जाती है।

दृष्टान्त और उपमाएँ

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ज़न्नत में ऐसी कितनी ही क़ौमें प्रवेश करेंगी कि उन लोगों के दिल पक्षियों के दिल के सदृश होंगे।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह एक अनुठी और अद्भुत उपमा है। नबी (सल्ल०) का

प्रकृति–अध्ययन और निरीक्षण कितना निकट का था। पक्षियों की विशेषताएँ कई होती हैं। पक्षियों के दिल अत्यन्त सरल और बहुत ही कोमल होते हैं। उनके दिल ईर्ष्या के रोग से मुक्त होते हैं। डर और संतोष उनकी प्रमुख विशेषता है। वे दुनिया भर के ख़ज़ाने जमा करने की चिन्ता में नहीं रहते। जीवों में सबसे अधिक डरनेवाला पक्षी ही होता है। वह हर समय चौकन्ना रहता है। थोड़ी–सी आहट मिलते ही वह उड़ जाता है। आप उसे ग़ाफ़िल और असावधान नहीं देखेंगे। जन्नतवालों के गुण भी ऐसे ही होते हैं। उनके दिलों में आर्द्रता और नर्मी होती है। वे करुणा से भरे हुए और दयावान होते हैं। स्वच्छता और सरलता उनकी प्रकृति होती है। द्वेष–रहित और ईर्ष्या–मुक्त होने में उनके दिल पक्षियों के दिल के सदृश होते हैं। वे ग़ाफ़िल नहीं होते। उनके दिल पर हमेशा अल्लाह का भय और आख़िरत का डर छाया रहता है। अल्लाह पर भरोसा उनकी पहचान होती है। भरोसा उनका अपने प्रभु पर होता है। उनके मुख से कभी शिकायत की बात नहीं निकलती।

(2) हज़रत क़ासिम शैबानी (रज़ि०) से रिवायत है कि हज़रत ज़ैद–बिन–अरक़म (रज़ि०) ने लोगों को दिन चढ़े की नमाज़ (चाश्त की नमाज़) पढ़ते हुए देखा (अभी दिन ख़ूब नहीं चढ़ा था) तो उन्होंने कहा कि लोग अच्छी तरह जान चुके हैं कि यह नमाज़ इस घड़ी से हटकर पढ़नी उत्तम है; इसलिए कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का इरशाद है, "अव्वाबीन की नमाज़ का समय उस वक़्त होता है जब ऊँट के बच्चों के पैर गर्म हो जाएँ।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस में भी अत्यन्त अछूती उपमा उल्लिखित हुई है। कहा जा रहा है कि अव्वाबीन की नमाज़ का समय वह होता है जब ऊँट के बच्चों के पैर गर्म हो जाएँ। अर्थात् जब धूप से रेत गर्म हो जाए और ऊँट के बच्चों के पैर जलने लगें। ऊँट के बच्चों के पैर धूप में तेज़ी आते ही गर्म हो जाते हैं। इसलिए कि उनके पैर कोमल और नर्म होते हैं। यही अव्वाबीन अर्थात् ख़ुदा की तरफ़ रुजू करनेवालों (की चाश्त) की नमाज़ का बेहतरीन वक़्त होता है।

(3) हज़रत अब्दुल्लाह–बिन–यज़ीद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अनसार शिआर हैं और बाक़ी लोग दिसार हैं।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : शिआर से अभिप्रेत वह कपड़ा है जो शरीर से लगा हुआ होता है। दिसार ऊपर के कपड़े को कहते हैं जो शरीर से लगा हुआ नहीं होता। यह शिआर और दिसार की उपमा के द्वारा नबी (सल्ल०) ने मदीना के अनसार से अपने जिस गहरे सम्बन्ध को प्रकट किया है उसे हर व्यक्ति भली-भाँति समझ सकता है।

(4) हज़रत वकीअ-बिन-अदस के चचा अबू-रज़ीन (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "स्वप्न पक्षियों के पैर पर होता है, जब तक कि उसका अर्थ निश्चित न किया जाए। जब स्वप्न-फल बता दिया गया तो वही होगा।" उल्लेखकर्ता बयान करते हैं कि मैं समझता हूँ कि आप (सल्ल०) ने यह भी कहा, "उसको (अर्थात् स्वप्न को) मित्र या बुद्धिमान व्यक्ति के सिवा किसी दूसरे से बयान न करो।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस हदीस में नबी (सल्ल०) ने स्वप्न की जो मिसाल दी है वह अनुपम है। कहा, "स्वप्न पक्षियों के पाँव पर होता है। अर्थात् जिस प्रकार पक्षियों के पाँव में अधिकतर जमाव और स्थिरता नहीं होती। वे चौकन्ने और बराबर अपनी जगह बदलते रहते हैं। यही हाल अधिकतर स्वप्नों का भी होता है। वे अपने अर्थ की प्रतीक्षा (ताबीर) में होते हैं। ऐसी स्थिति में इसकी बड़ी आशंका और सम्भावना रहती है कि अगर उसका कोई बुरा अर्थ ले लिया गया तो वही घटित न हो जाए।

यह जो फ़रमाया कि सपना हर एक से बयान नहीं करना चाहिए, बयान करो तो मित्र या उस व्यक्ति से जो समझदार और बुद्धिमान हो, इसलिए कि कोई दोस्त अपने दोस्त के विषय में बुरी बात नहीं कहेगा। और आदमी अगर बुद्धिमान है तो निश्चय ही वह दूसरे की भलाई का ध्यान रखेगा और वह उसे हानि पहुँचाने से बचेगा।

इस हदीस से यह भी पता चलता है कि आदमी जो कुछ कह देता है और फ़ैसला सुना देता है, वह बेअसर नहीं होता। इसकी सम्भावना रहती है कि उसका प्रभाव प्रकट हो। यह और बात है कि कोई शक्ति जिसकी हमें ख़बर भी न हो उसके बुरे प्रभाव को मिटा दे।

स्वप्न कई प्रकार के होते हैं। ऐसा नहीं है कि प्रत्येक स्वप्न का स्वप्न-

फल निश्चित नहीं होता। किन्तु अधिकतर स्वप्न पक्षियों के पैर ही की तरह होते हैं जिनका अर्थ अनिश्चित ही होता है।

(5) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-अल-आस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना कि "उस सत्ता की सौगन्ध जिसके हाथ में मुहम्मद के प्राण हैं! मोमिन की मिसाल सोने की उस डली की-सी है जिसको उसके मालिक ने तपाया फिर भी न तो उसके रंग में अन्तर आया और न उसके वज़न में कोई कमी आई। उस सत्ता की सौगन्ध जिसके हाथ में मुहम्मद के प्राण हैं! मोमिन की मिसाल बिल्कुल उस मधुमक्खी जैसी है जिसने फूल का उत्तम रस चूसा और मधु भी अच्छा बनाया। और जिस शाखा पर बैठी उसे न तो (अपने भार से) तोड़ा और न ख़राब किया।" (हदीस : अहमद)

व्याख्या : इस हदीस में मोमिन के लिए दो मिसालें बयान की गई हैं एक मिसाल से ज्ञात होता है कि मोमिन हर हाल में खरा साबित होता है। किसी खोट का उसके यहाँ गुज़र नहीं हो सकता। जिस तरह भट्टी में तपाने से सोने के गुणों में कोई कमी नहीं होती, न उसकी चमक जाती है और न उसका वज़न घटता है, ठीक इसी तरह सामान्य स्थिति हो या कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा हो, मोमिन के चरित्र और उसके आचरण की उच्चता में कोई अन्तर नहीं आता।

मोमिन के लिए नबी (सल्ल०) ने दूसरी मिसाल मधुमक्खी की दी है। जिस प्रकार मधुमक्खी का आहार भी उत्तम और स्वच्छ होता है कि वह पुष्प-रस को अपना आहार बनाती है, फिर उसके बाद जो चीज़ वह प्रस्तुत करती है वह भी उत्तम और स्वच्छ होती है। अर्थात् शहद जिसकी उत्तमता और स्वच्छता से किसी को भी इनकार नहीं है। ठीक यही हालत मोमिन व्यक्ति की होती है। वह पाक और स्वच्छ आहार को छोड़कर हराम और नापाक चीज़ों के निकट भी नहीं जाता। फिर उसकी बातें मधु से भी अधिक मधुर और लाभदायक होती हैं और उसके चरित्र और कर्म से सम्पूर्ण मानवता को लाभ पहुँचता है। उससे किसी अनिष्ट की आशंका नहीं की जा सकती। उसका अस्तित्त्व फ़साद और बिगाड़ का नहीं बल्कि शान्ति का सन्देश होता है।

उद्धरण और हवाला

(1) हज़रत सलमा-बिन-अकविअ् (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ऐ सलमा, तेरी वह बड़ी ढाल या छोटी ढाल कहाँ है जो मैंने तुझे दी थी?" मैंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, मेरे चचा आमिर मुझे मिले थे, वे निहत्थे थे, मैंने वह ढाल उन्हें दे दी। उल्लेखकर्ता का बयान है कि इसपर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) हँस पड़े और फ़रमाया, "तेरी मिसाल उस अगले समय के व्यक्ति की-सी है जिसने कहा था कि ऐ अल्लाह! मुझे ऐसा मित्र दे दे जिसे मैं अपने प्राण से अधिक प्रेम करूँ।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि किसी अवसर पर किसी के कथन को उद्धृत करना भी सुन्नत है। अच्छे कथनों से बड़ा मार्गदर्शन प्राप्त होता है और उनसे विचार और धारणा को बल मिलता है। आप (सल्ल०) ने विगत समय के किसी व्यक्ति की प्रार्थना उद्धृत की कि "ऐ अल्लाह! तू मुझे एक ऐसा मित्र दे दे जो मुझे अपने प्राण से भी अधिक प्रिय हो।" मित्र भी आदमी की एक बड़ी आवश्यकता है। जिसका कोई मित्र न हो उससे बढ़कर अभावग्रस्त कौन हो सकता है। आदमी चाहता है कि कोई तो हो जिसको वह अपना कह सके, जिससे वह प्रेम करे, जिसको कुछ देने में उसे कोई संकोच न हो बल्कि ख़ुशी हो, जिससे अपने दिल की बात बेझिझक कह सके, जो उसका ग़म बाँटनेवाला संगी-साथी हो।

अबू-दाऊद में भी एक कथन का उल्लेख है जिसको एक विशेष अवसर पर नबी (सल्ल०) ने उद्धृत किया था। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, क़ालल-क़ाइलु अख़ूकल बिकरिय्यु फ़ला तअ्-मन-हू "कहनेवाले ने कहा है : अपने पहलौठे भाई से भी निर्भय नहीं रहना चाहिए।" अर्थात् उससे भी सावधान और सतर्क रहना चाहिए। उसे यह न भूलना चाहिए कि अपने भाई से भी बड़ी हानि पहुँच सकती है। इसलिए उससे भी होशियार रहने की ज़रूरत है।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "सबसे सच्ची बात जो किसी कवि ने कही है

वह लबीद का यह पद है : अला कुल्लु शैइनमा ख़लल्ला-ह बातिलुन (सुन लो, अल्लाह के सिवा जो कुछ है, मिथ्या है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) ने हज़रत लबीद (रज़ि०) के छन्द की एक पंक्ति उद्धृत की और कहा कि यह सबसे सच्ची बात किसी कवि के मुख से निकली है कि अल्लाह के सिवा जो कुछ है, मिथ्या है। जिसपर भरोसा किया जा सके वह ईश्वर ही की पवित्र सत्ता है। वही आकाशों और धरती का प्रकाश है। संसार की सम्पूर्ण आबादी, शोभा, मनोरमता और आकर्षण का कारण वही है। हज़रत लबीद (रज़ि०) का पूरा छन्द हम इससे पहले उद्धृत कर चुके हैं। (दे० उपशीर्षक 'काव्य' के अन्तर्गत, हदीस नं० 2 की व्याख्या)

अन्य भाषा का प्रयोग

(1) बिन्ते-ख़ालिद-बिन-सईद (रज़ि०) से रिवायत है। वे कहती हैं कि मैं अपने बाप के साथ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुई। उस समय मैं पीले रंग का क़मीस पहने हुए थी। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "सनह-सनह (बहुत ख़ूब, बहुत ख़ूब)।" अब्दुल्लाह कहते हैं कि यह सनह हबशी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है सुन्दर। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस हदीस से ज्ञात हुआ कि दूसरी भाषा के शब्द भी नबी (सल्ल०) के शुभ-मुख से उच्चारित हुए हैं। प्रत्येक भाषा अल्लाह की एक निशानी है। इसलिए किसी भाषा से नफ़रत नहीं करनी चाहिए। क़ुरआन में है, "और उसकी (अल्लाह की) निशानियों में से है आकाशों और धरती की संरचना, और तुम्हारी भाषाएँ और तुम्हारे रंगों की विविधता भी।"

(क़ुरआन, 30:22)

आवश्यकता हो तो अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं के सीखने में कोई दोष नहीं है। ख़ुद नबी (सल्ल०) ने हज़रत ज़ैद-बिन साबित को इबरानी भाषा (जो यहूदियों की भाषा थी) सीखने का आदेश दिया था ताकि यहूदियों से पत्रव्यवहार करने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि हज़रत हसन-बिन-अली (रज़ि०) ने सदक़े के छुहारों में से एक छुहारा ले लिया और उसे अपने

मुँह में डाल लिया। नबी (सल्ल०) ने फ़ारसी भाषा में फ़रमाया, "कख़-कख़। (और फ़रमाया) क्या तुम्हें नहीं मालूम कि हम सदक़ा (दान) नहीं खाया करते।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : 'कख़-कख़' फ़ारसी भाषा का शब्द है। यह शब्द नफ़रत और किसी चीज़ से रोकने के लिए बोला जाता है। जैसे— ऐसे अवसर पर हमारे यहाँ कहते हैं "थू-थू"।

(3) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उस फ़रिश्ते की चर्चा की जो सूर (नरसिंहा) लिए खड़ा है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उस फ़रिश्ते के दाहिनी तरफ़ जिबरील हैं और बाईं तरफ़ मीकाईल हैं।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : जिबरील और मीकाईल ये दोनों ही अरबी भाषा के शब्द नहीं हैं। जिब्र और मीक का अर्थ है 'बन्दा' या 'दास'। 'ईल' या 'इल' अल्लाह को कहते हैं। इस तरह जिबरील और मीकाईल का अर्थ होता है 'अल्लाह के बन्दे'।

कहावतें

(1) हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "विगत नुबूवत की वाणी में से लोगों ने जो कुछ प्राप्त किया है उसमें से एक यह है : 'जब तुममें लज्जा न हो तो फिर जो चाहो करो'।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् विगत नबियों की शिक्षाएँ आज पूर्ण रूप से सुरक्षित नहीं हैं। उनकी जो शिक्षाएँ हम तक पहुँची भी हैं तो उनमें बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका है। वे आज अपने वास्तविक रूप में बहुत कम सुरक्षित रह सकी हैं। उन सुरक्षित शिक्षाओं में से एक यह भी है जो कहावत के रूप में लोगों की ज़बान पर चढ़ी हुई है : "जब तुममें लज्जा न हो तो फिर जो चाहो करो।" फ़ारसी कहावत भी है—"बेहया बाश हरचे ख़ाहि कुन" अर्थात् बस निर्लज्ज हो जाओ फिर जो चाहो करो। फिर अनुचित से अनुचित हरकत करने में क्या रुकावट हो सकती है!

(2) हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने

कहा : "धनी होने का सम्बन्ध धन-सम्पत्ति और साधनों की अधिकता से कदापि नहीं है। बल्कि धनवान होना तो वास्तव में हृदय का धनवान होना है।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) के इस कथन को कि "वास्तविक मालदारी तो दिल की मालदारी है" कहावत की हैसियत प्राप्त है। इसी तरह आप (सल्ल०) के कितने ही कथन 'कहावत' बन चुके हैं। 'कहावत' वह संक्षिप्त वाक्य या कथन होता है जो अपनी विशेषता और खरेपन के कारण शीघ्र ही प्रसिद्ध हो जाता है और लोग उसे दृष्टांत के रूप में उद्धृत करने लग जाते हैं। कहावत तर्कयुक्त कथन की तरह बल्कि उससे भी अधिक दिल पर प्रभाव डालती है।

यह एक तथ्य है कि मालदारी तो वास्तव में दिल की मालदारी है। कितने ही लोग होते हैं जिनको सांसारिक धन-दौलत तो प्राप्त है लेकिन इसके बावजूद वे निर्धन ही दीख पड़ते हैं। उनकी निर्धनता समाप्त होती दिखाई नहीं देती। इसके विपरीत ख़ुदा के ऐसे बन्दे भी होते हैं जिन्हें ख़ुदा की ओर से ऐसा बेनियाज़ और धनी दिल मिला होता है कि वे हर हाल में ख़ुश रहते हैं। माल व दौलत उनके पास न भी हो तो इससे कोई अन्तर नहीं आता। उनके परितोष का कारण वास्तव में दुनिया की सम्पत्ति नहीं होती, बल्कि कोई और चीज़ होती है। उन्हें वह दिल हासिल होता है जो लोभ-लालच से सर्वथा मुक्त होता है, जिसमें सांसारिक अन्धकार के लिए कोई स्थान नहीं होता।

आख्यायिका या कहानी

(1) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि एक रात अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपनी स्त्रियों (पत्नियों) को एक कहानी सुनाई। उनमें से एक स्त्री ने कहा कि यह तो (आश्चर्यजनक होने में) ख़ुराफ़ा की कहानी जैसी है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क्या तुम जानती हो कि ख़ुराफ़ा की वास्तविक कथा क्या थी? ख़ुराफ़ा बनू-उज़रा का एक व्यक्ति था। अज्ञान-काल में जिन्न उसे पकड़कर ले गए थे। वह उनके बीच एक समय तक रहा। फिर वे उसको लोगों में लौटा गए। उनके यहाँ उसने जो आश्चर्यजनक चीज़ें

देखी थीं उनको वह लोगों से बयान करता था (लोग सुनकर चकित होते थे)। फिर लोग प्रत्येक आश्चर्यजनक कहानी को ख़ुराफ़ा की कथा कहने लगे।"

(हदीस : शमाइले-तिर्मिज़ी)

व्याख्या : सम्भव है उस व्यक्ति का नाम कुछ और रहा हो। उसकी कथा को लोग मनघड़त समझते थे इसलिए वह व्यक्ति ख़ुराफ़ा के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

हदीस की किताबों में बहुत-सी आख्याएँ मिलती हैं। सामाजिक जीवन में क़िस्से-कहानियों का बड़ा महत्त्व है। कहानियाँ और कथाएँ साधारणतः मनोरंजन के लिए होती हैं। लेकिन बहुत-सी कहानियों और कथाओं में बड़े ज्ञान और तत्त्वदर्शिता की बातें भी मिलती हैं। लुक़मान की आख्याएँ और पंचतन्त्र की कहानियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इसी तरह मुल्ला नसरुद्दीन की कहानियों को भी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त है। वर्तमान युग में नवीन कहानियों को भी साहित्य में बड़ा महत्त्व प्राप्त है। कहानियाँ रचनात्मक भी होती हैं। लेकिन बहुत-सी कहानियाँ ऐसी लिखी गई हैं जिनके चरित्र-विनाशक होने में सन्देह नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार की कहानियों को इस्लाम में कभी भी प्रशंसनीय नहीं ठहराया जा सकता।

पहेलियाँ

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वृक्षों में एक वृक्ष ऐसा है जिसके पत्ते कभी नहीं झड़ते और वही वृक्ष मुस्लिम की मिसाल है। अच्छा बताओ वह पेड़ कौन-सा है?" लोगों का ध्यान तो जंगल के पेड़ों की ओर चला गया। हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने-उमर (रज़ि०) कहते हैं कि मेरे दिल में आया कि वह खजूर का वृक्ष होगा। लेकिन कहते हुए लज्जा आई (कि बड़ों के बीच में कैसे ज़बान खोलूँ)। फिर लोगों ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! आप ही हमें बताएँ कि वह वृक्ष कौन-सा है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वह खजूर का वृक्ष है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : कहानियों की तरह पहेलियों का भी सामाजिक जीवन में बड़ा महत्त्व है। पहेलियों को बूझने की कोशिश से सोच-विचार करने का

अभ्यास होता है। इससे बौद्धिक योग्यता भी बढ़ती है। पहेलियाँ विस्मय का पहलू लिए हुए होती हैं। इस तरह वह मनोरंजन का साधन भी होती हैं। इसके अतिरिक्त पहेलियों के द्वारा जिस चीज़ का उद्घाटन किया जाता है वह हृदयंगम होकर रहती है।

अरब के भूभाग में खजूर का वृक्ष अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होता है। यह पेड़ हमेशा हरा-भरा रहता है। इसमें पतझड़ का प्रभाव नहीं पड़ता। यह हमेशा फल देता रहता है। इसके तने को छत की कड़ियों या दूसरे कामों में लाते रहे हैं। पत्तों से पंखे, चटाइयाँ, झाड़ू और रस्सियाँ बनती हैं। मोमिन और मुस्लिम बन्दे में भी यही विशेषताएँ पाई जाती हैं। उसका ईमान सदैव नया और जीवन्त रहता है। वह कभी पुरातन नहीं होता। इसका जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। जगत् की प्रत्येक वस्तु यहाँ तक कि दिन-रात के परिवर्तन भी उसके सत्य पर होने क़ी गवाही देते हैं। जीवन-यात्रा में पूरा जगत् उसका सहगामी होता है। फिर मोमिन का अस्तित्त्व दुनियावालों के लिए सर्वथा कृपा और दयालुता होता है। वह सिर्फ़ अपने लिए नहीं जीता, उसी के अस्तित्त्व से यह दुनिया क़ायम है। हदीस मे आता है— जब दुनिया में ईश्वर का स्मरण करनेवाला कोई नहीं रह जाएगा तो यह जगत्-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाएगी और क़ियामत आ जाएगी। मोमिन सारी मानवता का हितैषी होता है। उसकी योजनाएँ सम्पूर्ण मानवता के हित के लिए होती हैं। उसके धन में अपनों का ही नहीं दूसरों का भी हिस्सा होता है। वह अपना यह दायित्व समझता है कि समस्त मानवों को वह मार्ग दिखाए जो भलाई और क़ल्याण का मार्ग है, जिसपर चलकर मनुष्य लोक-परलोक दोनों में सफलता प्राप्त कर सकता है।

कारीगरी और कला

(1) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) अपने घर में किसी चीज़ को जिसमें सलीब का चित्र बना हुआ हो बिना काटे और तोड़े न छोड़ते। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस्लाम कला और आर्ट का शत्रु नहीं है। लेकिन उससे इस्लाम-विरुद्ध धारणाओं और विचारों को फैलाने और उन्हें शक्ति पहुँचाने

का काम लेना दुरुस्त नहीं है। निर्माण–कला और सौंदर्य–प्रेरित कला में मुसलमानों द्वारा जो असाधारण कार्य सम्पन्न हुए हैं, इतिहास उनका साक्षी है। अपवादों को छोड़कर अगर देखा जाए तो प्रत्येक ज्ञान–विज्ञान और कला में मुसलमानों ने इस्लामी प्रवृत्ति का ध्यान रखने का पूरा प्रयास किया है।

कोई मूर्ति या चित्र जिससे बहुदेववाद या अधर्म का प्रतिनिधित्त्व होता हो, पैग़म्बर उसे अपने घर में कैसे शेष रहने दे सकता है। इस रिवायत में हमारे लिए यह शिक्षा है कि हमारे लिए भी बहुदेववाद से संबद्ध या इस्लाम–विरुद्ध चीज़ें सदैव असहनीय हों।

चित्र के सम्बन्ध में

तस्वीर के सम्बन्ध में साधारणतया अति से काम लिया जाता है, और जीवधारियों के चित्र बनाने और उन्हें रखने को पूर्णतः हराम ठहराया जाता है। इसलिए इस सिलसिले की हदीसों के अध्ययन से पहले कुछ मौलिक और बुनियादी बातें समझ लेने की हैं। इस्लाम की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसने लोगों को मात्र बिगाड़ और बुराइयों ही से नहीं रोका बल्कि बुराइयों के साधन और उनके उत्प्रेरकों से भी बचने की व्यवस्था की है। इस्लाम ने उन सभी द्वारों को बन्द करने पर भी बल दिया है जिनसे बुराइयों के प्रवेश की सम्भावनाएँ पैदा होती हैं। उदाहरणस्वरूप उसने अगर शिर्क और स्पष्ट मूर्तिपूजा से बचने का आदेश दिया है तो इसके साथ ही उसने निश्चित रूप से उन सभी सूराख़ों और छिद्रों को भी बन्द कर दिया है जिनसे शिर्क को उभरने के अवसर मिल सकते थे। इस्लाम ने ऐसे विचारों और कर्मों को भी, यद्यपि उनमें मूलतः कोई ख़राबी न थी, गुनाह ठहराकर उनसे बचने की ताकीद की है जो शिर्क के साधन और उत्प्रेरक सिद्ध हो सकते थे। महापुरुषों और बड़ों का सम्मान करने में कोई बुराई न होने के बावजूद उनकी महानता प्रकट करने के लिए खड़ा होने और साष्टांग प्रणाम और सज्दा करने पर उसने रोक लगाई। नबी (सल्ल०) का सभी क़ौमों के नायक होने और मार्गदर्शक होने में कोई सन्देह नहीं, लेकिन जब बनी-आमिर का प्रतिनिधिमण्डल आपकी सेवा में उपस्थित हुआ और उसके लोगों ने आपको "अन्-त सैयिदुना" (आप हमारे सरदार हैं) कहकर सम्बोधित किया तो आप (सल्ल०) ने कहा, "अस-सैयिदुल्लाह" (मालिक और सरदार तो अल्लाह है)। आप (सल्ल०) के सर्वश्रेष्ठ रसूल होने में कोई सन्देह नहीं। लेकिन फिर भी आपने कहा, "किसी बन्दे को यह हक़ नहीं कि वह मेरे सम्बन्ध में यह कहे कि मैं यूनुस बिन-मत्ता से उत्तम हूँ," (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)। इन बातों का मुख्य उद्देश्य यह था कि लोगों को अतिवाद की ओर बढ़ने से पहले क़दम पर ही रोक दिया जाए, क्योंकि ये चीज़ें शिर्क और फ़साद (बहुदेववाद और बिगाड़) का कारण बन सकती थीं। पूर्वकालिक क़ौमों का इतिहास भी यही बताता है कि प्रशंसा और सम्मान में अत्योक्ति

अपनाने के कारण उन्होंने अपने नबियों को ख़ुदा के पद पर ला खड़ा किया।

अल्लाह के सिवा दूसरों की क़सम खाने से रोकने का कारण यही है कि लोगों को शिर्क व फ़साद में पड़ने से दूर रखा जाए। हदीस में है कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह मत कहा करो कि जो अल्लाह ने चाहा और अमुक व्यक्ति ने चाहा, बल्कि कहो जो अल्लाह ने चाहा, फिर अमुक व्यक्ति ने जो चाहा।" अर्थात् अल्लाह की इच्छा को बन्दे के इरादे से अलग रखो। अल्लाह और बन्दे में जो अन्तर है उसका ध्यान रखना आवश्यक है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुममें से कोई (अपने ग़ुलाम और लौण्डी को) मेरा ग़ुलाम और मेरी लौण्डी न कहे। तुम सब अल्लाह के बन्दे (ग़ुलाम) हो और सभी स्त्रियाँ अल्लाह की बान्दियाँ हैं। बल्कि यूँ कहे कि मेरा सेवक, मेरी सेविका, और मेरा लड़का और मेरी लड़की।" (हदीस : मुस्लिम)

इन सबका उद्देश्य तौहीद की स्थापना और शिर्क व फ़साद की रोक-थाम थी। चित्र और मूर्तियों की समस्या पर विचार करें तो वह भी इसी में सम्मिलित दिखेगा। चित्रकारी और मूर्तिकला को मूर्तिपूजा ही के कारण विकसित होने का मौक़ा मिला। बाबिल आदि में मूर्तिपूजा ही के कारण इस कला की उन्नति हुई। यूनान और रूम में जिस चीज़ ने मूर्तिकला को विकास की पराकाष्ठा तक पहुँचाया वह मूर्तिपूजा ही की भावना थी। ईरान के खण्डहरों, मिस्र और भारत के प्राचीन अवशेषों से पता चलता है कि प्रतिमा-निर्माण और मूर्तिकला का मूर्तिपूजा से गहरा सम्बन्ध रहा है। महात्मा बुद्ध और महावीर की प्रतिमाएँ और हिन्दुओं के देवी-देवताओं की मूर्तियाँ इसी बात की साक्षी हैं। ईसाइयों ने हज़रत मरयम (अलैहि०) और हज़रत मसीह (अलैहि०) की प्रतिमाओं और चित्रों से अपने गिरजाघरों को सजाया। अज्ञानकाल में अरबों ने भी हज़रत इबराहीम (अलैहि०) और हज़रत इसमाईल (अलैहि०) के साथ इससे कुछ भिन्न व्यवहार नहीं किया बल्कि उन्होंने इनके चित्र भी काबा में रखे।

सत्य यह है कि इस्लाम से पूर्व चित्रकला से साधारणतः मूर्तिपूजा का ही काम लिया जाता रहा है। ऐसी स्थिति में अगर चित्रों और चित्रकारों की कड़ी निन्दा की गई और उनको लानत और क्रोध का पात्र ठहराया गया और उन घरों को सौभाग्य और बरकत से वंचित ठहराया गया जिनमें चित्र या मूर्तियाँ

गौजूद हों तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। मूर्तिपूजा से घृणा पैदा करने के लिए आवश्यक था कि लोगों को इसके संसाधनों आदि से भी दूर रखा जाए।

चित्र में अपने आप में कोई ख़राबी न होने के बावजूद चूँकि यह चीज़ साधारणतया मूर्तिपूजा का साधन रही है, इसलिए आरम्भ में आवश्यक था कि इस सम्बन्ध में सख़्ती से काम लिया जाए। शाह वलीयुल्लाह साहब भी जानवरों के चित्र के निषेध का मूल उद्देश्य शिर्क और बुतपरस्ती की रोक-थाम बताते हैं।[1]

(हुज्जतुल्लाहिल-बालिग़ा, शीर्षक : वस्त्र, साज-सज्जा और बर्तन आदि।)

शरीअत के किसी आदेश के मूल कारण के दूर हो जाने के बाद वह आदेश भी बदल जाता है। नबी (सल्ल०) का तरीक़ा भी इस सम्बन्ध में यही रहा है। इसके कितने ही उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

आरम्भ में जब शराब के हराम होने की घोषणा की गई तो उन बर्तनों के प्रयोग से भी रोक दिया गया जिनमें शराब बनाई और रखी जाती थी। किन्तु जब मदिरापान से लोग रुक गए और उनमें मदिरापान की आदत शेष न रही तो उन बर्तनों के इस्तेमाल की इजाज़त दे दी गई। रेशमी कपड़े का प्रयोग आरम्भ में पुरुषों और स्त्रियों दोनों ही के लिए अवैध था। किन्तु तत्पश्चात स्त्रियों के लिए इसे वैध कर दिया गया।

हज़रत उमर (रज़ि०) ने तौरात के किसी पृष्ठ को पेश किया तो नबी (सल्ल०) के मुख पर बड़ी अप्रसन्नता के लक्षण व्यक्त हुए और आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "आज यदि मूसा (अलैहि०) भी जीवित होते (जिनपर तौरात अवतरित हुई थी) तो उनके लिए भी मेरे अनुसरण के अतिरिक्त और उपाय न था।" लेकिन बाद में जब आप (सल्ल०) ने महसूस कर लिया कि आपके अनुयायियों के दिल में क़ुरआन की महत्ता बैठ गई है और वे समझ गए कि वे अपने नबी के आज्ञापालन से किसी हाल में भी हट नहीं सकते तो आप (सल्ल०) ने तौरात पढ़ने की इजाज़त दे दी।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि एक प्रवक्ता ने जब अपने भाषण में यह कहा कि "जो अल्लाह और उसके रसूल का अनुसरण करेगा वह सीधे मार्ग

पर रहा और जिसने इन दोनों की अवज्ञा की........" तो नबी (सल्ल०) अत्यंत क्रुद्ध हुए और फ़रमाया कि तू बहुत ही बुरा भाषण कर्ता है। मतलब यह था कि भाषणकर्ता को ख़ुदा और रसूल के अनुसरण की तरह ख़ुदा और उसके रसूल की अवज्ञा का उल्लेख भी अलग-अलग (ख़ुदा और रसूल कहकर) करना चाहिए था लेकिन जब ख़ुदा की महानता दिल में बैठ गई तब सर्वनाम के इस प्रकार के सम्मलित प्रयोग की छूट दे दी गई।

एक हदीस में है कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जो इस बात को पसन्द करे कि लोग उसके लिए खड़े हों तो वह अपना ठिकाना जहन्नम में बना ले। लेकिन दूसरी ओर बनी-क़ुरैज़ा की घटना के अवसर पर आप (सल्ल०) ने यह भी फ़रमाया, "अपने सरदार के लिए खड़े हो।"

इस्लाम के आरम्भिक काल में आपने क़ब्रों पर दर्शनार्थ जाने से रोक दिया था। लेकिन बाद में आपने इसकी इजाज़त दे दी और फ़रमाया, "क़ब्रों पर दर्शनार्थ जाओ क्योंकि उनसे तुम्हें मौत की याद आएगी।"

एक ओर तो आप (सल्ल०) ने झाड़-फूँक और तावीज़ के बारे में फ़रमाया, "मन्तर, तावीज़ और तवला (जादू) शिर्क हैं" (हदीस : अबू-दाऊद, अहमद)। लेकिन इसके साथ मुस्लिम में है कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अपने मन्तरों को मेरे सामने पेश करो। मन्तरों में कोई ख़राबी नहीं यदि उनमें शिर्क की बातें न हों।"

एक तरफ़ तिर्मिज़ी में है कि एक व्यक्ति ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! हममें से कोई व्यक्ति अपने दोस्त या भाई से मिलता है तो क्या वह उसके लिए झुके? फ़रमाया, "नहीं।" उसने कहा कि उसे गले लगाए और चुम्बन ले? फ़रमाया, "नहीं।" उसने कहा कि उसका हाथ थामे और मुसाफ़हा करे? फ़रमाया, "हाँ।" लेकिन दूसरी तरफ़ तिर्मिज़ी और अबू-दाऊद में है कि ज़राअ (रज़ि०), जो अब्दुल-क़ैस के प्रतिनिधिमण्डल में शामिल थे, बयान करते हैं कि जब हम मदीना आए तो ऊँटों से जल्दी-जल्दी उतरने लगे और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के हाथों और पाँवों को चूमने लगे।

इन उदाहरणों से देखने में तो आदेशों में विरोधाभास और अन्तर दिखाई देता है, किन्तु वास्तव में उनमें कोई पारस्परिक विरोध और विभेद नहीं पाया जाता। आदेश के अन्तर का मूल कारण स्थितियों का अन्तर है। निषेध के मूल

कारण होने या न होने के कारण आदेश में अन्तर पैदा हो गया है। तस्वीर और चित्र के सम्बन्ध में भी आरम्भ में सख़्ती की गई। इसका मूल कारण शिर्क और मूर्तिपूजा था। लेकिन जैसे-जैसे शिर्क के ख़तरों पर रोक और मुशरिकाना बुराइयों का उन्मूलन होता गया यह सख़्ती बाक़ी न रही। अब अगर तस्वीर की निषेधाज्ञा का मूल कारण शेष न रहे तो उसे हराम कैसे ठहराया जा सकता है। तस्वीर से आज कितने ही काम लिए जाते हैं। इनके द्वारा घटनाओं और युद्धों आदि की वास्तविक वस्तुस्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। विभिन्न जातियों की सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति के चित्र हमारे सामने आते हैं। अपराधियों, लापता व्यक्तियों और राष्ट्रों व सरकारों के राजदूतों की इनसे पहचान होती है। जीव विज्ञान और शब्दकोषों में जानवरों की पहचान कराने में चित्र सहायक सिद्ध होते हैं। मानव शरीर के अंगों और पशुओं के अंगों का विश्लेषण इनके द्वारा सरल हो जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान युग में तस्वीरों से बहुत-से फ़ितनों और ख़राबियों के फैलने का अवसर मिल रहा है। फ़िल्मी पत्रिकाओं के नग्न और अर्द्धनग्न चित्रों से कामवासना को उत्तेजित करने का काम लिया जाता है। इस प्रकार के चित्रों से मन में जो विकार और समाज में जो बिगाड़ पैदा होता है उसे कौन नहीं जानता। स्पष्ट है कि ऐसे चित्रों की और उन्हें फैलाने की इस्लाम कदापि इजाज़त नहीं दे सकता। लेकिन इस प्रकार के चित्रों के निषेध का कारण यह नहीं है कि वे चित्र हैं, बल्कि इसका वास्तविक कारण यह है कि उनसे अश्लीलता और मर्यादाहीनता को प्रोत्साहन मिलता है। ऐसे चित्र तुच्छ भावनाओं को उभारते और उन्हें उत्तेजित करते हैं और निर्लज्जता व अश्लीलता को उनके द्वारा बढ़ावा मिलता है, जो न व्यक्ति के लिए लाभकारी है और न किसी समाज के लिए उसे लाभकारी कहा जा सकता है। कोई भी स्वस्थ समाज अपने यहाँ अश्लीलता और निर्लज्जता के कामों को पसन्द नहीं कर सकता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं होता कि चित्रों से जाइज़ और ज़रूरी काम भी न लिया जाए। कामुकता फैलाने, नफ़रत और शत्रुता के बीज बोने, उत्तेजना पैदा करने और फ़साद डलवाने का काम चित्रों से ही नहीं, चित्रों से कहीं अधिक लेखनी से लिया जाता है तो क्या इसके कारण लेखन-कार्य को हराम ठहराया जा सकता है ?

इस सिलसिले में सहाबा (रज़ि०), ताबिईन और पूर्वजों को देखते हैं तो पता चलता है कि चित्र के मामले में उनका दृष्टिकोण कट्टरता का कदापि नहीं था। हज़रत अब्दुल्लाह बिन-अब्बास (रज़ि०) के बारे में आता है कि उनकी चादर पर चित्र बने हुए थे। (मुस्नद, अबू-दाऊद, तयालसी)। हज़रत क़ासिम-बिन-मुहम्मद-बिन-अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) के घर में कुछ विचित्र प्रकार के प्राणियों के चित्र थे। (फ़तहुल-बारी, खण्ड-1, पृष्ठ 326)। हज़रत क़ासिम की गणना उन सात फ़क़ीहों (धार्मिक विद्वान-शास्त्रियों) में होती है जिनसे मदीना में प्रचलित धर्म-विधान संकलित हुआ है।

हज़रत आइशा (रज़ि०) के भाँजे हज़रत उरवा जो इमामुल-मुहद्दिसीन (हदीस ज्ञाताओं के नायक) हैं, उनके तकियों पर पक्षियों और पुरुषों के चित्र बने हुए थे जिनपर वे टेक लगाकर बैठते थे। इब्ने-साद ने सनद के साथ रिवायत किया है कि हज़रत उरवा के बटन में आदमियों के चेहरों की तस्वीरें थीं। (तबकात इब्ने-साद, खण्ड ताबिईन मदीना, पृ० 126)

हज़रत अनस बिन-मालिक (रज़ि०) की अँगूठी के नगीने पर एक दहाड़ते सिंह (शेर) की तस्वीर थी। (असदुलग़ाबा ले० इब्ने-असीर)। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) की अंगूठी के नगीने में दो मक्खियों की तस्वीरें थीं।

(अल्लामा ऐनी की शरह हिदाया)

हज़रत उमर (रज़ि०) के समय में एक अंगूठी मिली जिसके नगीने में एक चित्र था। दो सिंह दाएँ-बाएँ खड़े थे। मध्य में एक लड़का था। हज़रत उमर (रज़ि०) ने यह अंगूठी हज़रत मूसा अशअरी (रज़ि०) को प्रदान की।

(अल्लामा ऐनी की शरह हिदाया)

हज़रत उमर (रज़ि०) के समय में जब किसरा की राजधानी पर विजय प्राप्त हुई और सहाबा (रज़ि०) शाही भवन में दाख़िल हुए तो उसमें जगह-जगह सवारों और पैदल चलनेवालों की मूर्तियाँ और तस्वीरें थीं। सहाबा ने उनको उसी तरह छोड़ दिया और वहीं ईश्वर के प्रति आभार प्रकट करने के लिए नमाज़ अदा की।

इसके विपरीत हम देखते हैं कि जब शाम (सीरिया) के ईसाइयों ने अपने गिरजाघर में हज़रत उमर (रज़ि०) को मुस्लिम पदाधिकारियों के साथ निमंत्रित दिया तो उन्होंने कहा कि हम तुम्हारे गिरजाघरों में इन चित्रों की उपस्थिति में

प्रवेश नहीं कर सकते (किताबुल-उम्म, मुस्नद शाफ़ई)। इस व्यवहार और नीति के अन्तर का कारण इसके सिवा और क्या है कि किसरा के महलों की मूर्तियाँ और चित्र बहुदेववाद के प्रतीक नहीं थे, लेकिन ईसाइयों के गिरजाघरों की मूर्तियाँ और चित्र बहुदेववाद के प्रतीक थे।

हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) के नवासे मुस्अब-बिन-ज़ुबैर जब अपने भाई अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर की तरफ़ से साधिकार निकले और इराक़ के गवर्नर मुख़्तार सक़फ़ी का क़त्ल करने में सफल हुए तो उस समय यह समस्या उत्पन्न हुई कि ज़ुबैरी सल्तनत में उमवी सिक्का चलना चाहिए या उसके बदले कोई नया सिक्का चलाया जाए। सल्तनत के अधिकारियों के परामर्श से तय हुआ कि पहले के सिक्के के स्थान पर नवीन सिक्का चलाया जाए। इस उद्देश्य से उन्होंने अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर को सिक्का ढालने का आदेश दिया, और यह आदेश सहाबा और ताबिईन की उपस्थिति में दिया गया। उन्होंने सिक्के के एक तरफ़ प्रतिनिधि की हैसियत से ख़ुद अपनी तस्वीर भी ढलवाई। आपकी गरदन में तलवार लटक रही थी और आप खड़े दिखाई देते थे।

(फ़ुतूहुल बुलदान, पृ० 7-9, अश्शुजूरुल-उक़ूद, मक़रीज़ी पृ०-6, इब्ने-ख़ल्दून)

इब्ने-साद और सियर एलामुन्नबला में है कि मौता की लड़ाई में हज़रत अक़ील-बिन-अबू-तालिब ने एक ऐसी अंगूठी प्राप्त की जिसमें मूर्तियाँ ढली हुई थीं। युद्ध के समाप्त पर जब लड़ाई में मिला धन आदि बाँटा जाने लगा तो नबी (सल्ल०) ने उस अंगूठी को पुरस्कार स्वरूप अक़ील-बिन-अबू-तालिब ही को दे दिया और वह उस अंगूठी को जीवन भर पहने रहे। क़ैस-बिन-रबीअ असदी का बयान है कि उन्हें भी इस अंगूठी के देखने का श्रेय प्राप्त हुआ है।

अब्दुर्रज़्ज़ाक़ ने अपने 'मुसन्नफ़' में मामर से, और मामर ने अब्दुल्लाह बिन-मुहम्मद-बिन-अक़ील से रिवायत की है कि अब्दुल्लाह ने लोगों को एक ऐसी अंगूठी दिखाई जिसपर शेर की मूर्ति ढली हुई थी और जिसको नबी (सल्ल०) ने इस्तेमाल किया था। मामर का बयान है कि उस अंगूठी को बरकत के लिए धोकर उसका पानी हमारे मित्रों ने पिया है।

(फ़तहुल-बारी 327/10)

अल्लामा मक़रीज़ी ने शोध करके लिखा है कि मुआविया-बिन-अबू सुफ़यान (रज़ि०) ने जब दीनार ढलवाए तो उसके एक रुख़ पर अपनी मूर्ति ढलवाई, इस तरह कि आप खड़े हुए और तलवार लटकाए हुए हैं।

(शुज़ूरुल उक़ूद, पृ०-6)

इमाम मकहूल का बयान है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की एक ढाल थी जिसपर मेंढे की तस्वीर अंकित थी। (इब्ने साद, खण्ड-1, पृ० 489)

हिजाज़ में नबी (सल्ल०) के समय में हिरक़्ल के दीनार चल रहे थे और उनको क़ानूनी हैसियत हासिल थी। ख़ुद क़ुरआन में इसकी ओर संकेत किया गया है (आले इमरान, आयत 75)। इतिहासकारों का बयान है कि इन दीनारों पर शासकों, कुछ शहज़ादों और गवर्नरों तक के चित्र बने हुए होते थे। अरब उनसे अच्छी तरह परिचित ही नहीं बल्कि ये दीनार परस्पर लेन-देन और क्रय-विक्रय का माध्यम भी थे। लगभग 309 ई० से सन् 696 ई० तक ये सचित्र दीनार अरब में व्यवहार में लाए जाते रहे हैं।

हिरक़्ल रूमी (610-640 ई०) ने जब यह महसूस किया कि अरब बड़ी तेज़ी के साथ नबी (सल्ल०) के झण्डे तले एकत्र हो रहे हैं तो उसने मुसलमानों का दिल रखने और उनकी मानसिकता को ध्यान में रखते हुए पहले के रूमी दीनार में कुछ सुधार और संशोधन भी कर दिया ताकि सरकार को आर्थिक क्षति की सम्भावना से बचाया जा सके। हिरक़्ल नबी (सल्ल०) के देहान्त के नौ वर्ष के बाद तक जीवित रहा है। उसने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की प्रसन्नता और अरब प्रायद्वीप में अपने व्यापारिक हितों के अन्तर्गत दीनार के एक तरफ़ सलीब का निशान समाप्त करके उसकी जगह नबी (सल्ल०) के शुभ नाम को ढलवाया। इस दीनार के एक रुख़ पर उसके अपने दो बेटों की खड़ी तस्वीरें हैं। उनके हाथ में गुर्ज़ है और उन गुर्ज़ों के सिरों पर गेन्द है। यह गेन्द सलीब के स्थान पर लाई गई। सिक्के के दूसरे रुख़ पर चार सीढ़ियाँ हैं जिनपर एक स्तम्भ है। उस स्तम्भ पर भी सलीब की जगह गेन्द दिखाई गई है। बाहर के दायरे में अरबी लिपि में 'बिस्मिल्लाह', 'ला इला-ह इल्लल्लाह, मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' की पंक्ति अंकित है। ये दीनार आज भी दुनिया के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

ऐतिहासिक तथ्यों और इन स्पष्ट खोजों और शोधों के बाद हम यह कैसे

कह सकते हैं कि नबी (सल्ल०) ने जीवधारियों की हर प्रकार के चित्रों को सदैव के लिए पूर्णतः हराम ठहरा दिया है?

जहाँ तक निर्जीव और बेजान चीज़ों की तस्वीरों का सम्बन्ध है, जैसे पर्वत, नदी, वृक्ष आदि या प्राकृतिक दृश्य तो इनके चित्रों को बनाने या इनको सुरक्षित रखने में किसी के मतानुसार भी कोई गुनाह नहीं है। शर्त यह है कि वह न तो विलासप्रियता का कारण बने और न वह आदमी को अल्लाह से ग़ाफ़िल और विरक्त करे।

जानदार चीज़ों के चित्र

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना है कि : "अल्लाह के यहाँ कठोरतम यातना पानेवाले चित्रकार होंगे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : हदीसों में चित्रों और चित्रकारों के सम्बन्ध में जो यातना की सूचना दी गई है, वास्तव में उसका एक विशिष्ट परिप्रेक्ष्य है। अरबी भाषा में 'तस्वीर' शब्द साधारणतया मूर्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अरब के इलाक़े में वुद्द, सुवाअ, यग़ूस, यऊक़, नस्र, लात और उज़्ज़ा की मूर्तियाँ मौजूद थीं। उनकी पूजा की जाती थी। यातना की चेतावनी वास्तव में ऐसे ही मूर्तिकारों के लिए है।

इमाम शौकानी ने कहा कि सैद्धान्तिक विचारकों की दृष्टि में सबसे मज़बूत और शरीअत की दृष्टि में विश्वसनीय आदेश वही है जिसकी 'इल्लत' (निहित कारण) भी उसके साथ उल्लिखित हो। इमाम जाहिज़ ने एक बड़े पते की बात कही है। वे कहते हैं कि अगर हदीस-वेत्ताओं (मुहद्दिसीन) ने नबी (सल्ल०) के कथनों को उल्लेख करते समय उन कारणों का भी उल्लेख कर दिया होता जिनके अन्तर्गत नबी (सल्ल०) ने फ़ैसले दिए हैं तो इस सिलसिले की उलझनें और कठिनाइयाँ दूर हो सकती थीं, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। अधिकतर रिवायतें ऐसी हैं जिनके साथ कारण, इल्लत और प्रमाण का उल्लेख नहीं किया गया है।

यह हदीस जो इस समय हमारे सामने है, इसमें भी रावी ने यह स्पष्ट नहीं किया कि चित्रकारों को कठोरतम यातना क्यों दी जाएगी। इमाम बुख़ारी ने इस हदीस को लिबास से सम्बन्धित अध्याय में उद्धृत किया है। मानो वे यह कहना चाहते हैं कि चित्रों और मूर्तियों को आप (सल्ल०) ने साज-सज्जा की चीज़ों में सम्मिलित किया है। हालाँकि श्रृंगार और साज-सज्जा इस्लाम में हराम नहीं है। (क़ुरआन 7, 31)

हाफ़िज़-इब्ने-हजर ने इस हदीस को सहीह मुस्लिम की एक दूसरी हदीस के द्वारा पूर्ण किया है। वह हदीस यह है : मुस्लिम बिन-सुबैह कहते हैं कि मैं मसरूक़ के साथ एक घर में था जिसमें तस्वीरें थीं। मसरूक़ ने कहा कि ये

किसरा (ईरान के बादशाह) की तस्वीरें हैं। मैंने कहा कि नहीं, ये मरयम की तस्वीरें हैं। इसपर मसरूक़ ने कहा कि मैंने अब्दुल्लाह बिन-मसऊद (रज़ि०) से सुना है कि वे कहते थे कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : "कठोरतम यातना क़ियामत के दिन चित्रकारों को होगी।" (हदीस : मुस्लिम)

इसके बाद हाफ़िज़ इब्ने-हजर लिखते हैं कि मुस्लिम बिन-सुबैह और मसरूक़ की बातचीत से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यसारवाले घर के चित्र किसी ईसाई चित्रकार के बनाए हुए थे। क्योंकि यही लोग मरयम और मसीह और अन्य लोगों के चित्र बनाकर उनकी पूजा किया करते हैं।

(फ़त्हुल-बारी)

इससे मालूम होता है कि उन्हीं चित्रों पर यातना और अज़ाब की चेतावनी दी गई है जो पूजा और आराधना के लिए बनाए जाते थे। 'अल-मुसवविरून' (चित्रकार) के 'अलिफ़-लाम' से भी व्यक्त होता है कि यह 'अलिफ़-लाम' अहद के लिए है। अर्थात् 'अल-मुसवविरून' से अभिप्रेत ऐसे चित्रकार हैं जो अपने आराध्यों और पवित्र आत्माओं और अन्य चीज़ों के चित्र बनाकर कुफ़्र-शिर्क (अधर्म और बहुदेववाद) का मार्ग प्रशस्त करते और लोगों को ग़लत राह पर लगाते हैं। ऐसे चित्रकार निश्चित रूप से कठोर यातना के पात्र होंगे।

इमाम मुहम्मद बिन-जरीर तबरी (रह०) फ़रमाते हैं : फ़िरऔन के लिए जो कठोर यातना निश्चित है वह हर चित्रकार को नहीं दी जाएगी, बल्कि जो चित्रकार जान-बूझकर झूठे पूज्य पात्रों के चित्र बनाते थे, उन्हीं के लिए यह यातना विशिष्ट होगी।

इमाम ख़त्ताबी ने भी यही बात कही है कि चित्रकार को इतनी कठोर यातना इसलिए दी जाएगी कि वे उन व्यक्तियों के चित्र बनाते थे जिनकी अल्लाह को छोड़कर पूजा की जाती थी। कमज़ोर दिल के लोग उन बनाए हुए भयावह चित्रों को देखकर धर्म-संकट में पड़ जाते थे। और आम लोग बिना समझे-बूझे उनके आगे झुक पड़ते थे। (फ़त्हुल-बारी)

हदीस के हनफ़ी व्याख्याकार अल्लामा बदरुद्दीन ऐनी चित्रकारी के निषेध में वर्णित हदीसों के स्पष्टीकरण में कहते हैं कि यह एक तथ्य है कि नबी (सल्ल०) ने प्रथम चरण में हर प्रकार के चित्रों से रोक दिया था। और यह रोकना अकारण न था बल्कि इसमें यह रहस्य निहित था कि उस समय के

नवोदित समाज (मुस्लिम समाज) ने अभी जल्द ही चित्रकारी और पथभ्रष्ट मूर्तिपूजा को त्यागा था। या कहिए कि मूर्तिपूजा का त्याग किए हुए उसे अभी थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था। अतः स्थिति को देखते हुए नबी (सल्ल०) ने इस कला के प्रोत्साहन पर पूर्णतः रोक लगा दी थी। लेकिन जब निषेध के आदेश से हर एक व्यक्ति परिचित हो गया और उसके परिणामस्वरूप चित्रों में रुचि लेनेवाले भी कम होते गए तो आप (सल्ल०) ने आर्थिक आवश्यकताओं को सामने रखकर प्रिंटेड चित्रोंवाले कपड़ों के प्रयोग की अनुमति दे दी। और ऐसे चित्रों के प्रयोग से भी पाबन्दी उठा दी जिनके सम्मान की सम्भावनाएँ कम ही थीं। उदाहरणस्परूप चित्रोंवाली चादरें, बिछौने के कपड़े आदि।

क़ुरआन के टीकाकार क़ुरतुबी का बयान है कि नबी (सल्ल०) का पदार्पण उस समय हुआ था जब ईश्वर को छोड़कर अन्यों की पूजा का एकमात्र दृश्य साधन चित्र ही थे। अतः आप (सल्ल०) ने यही उचित समझा कि इस ख़राबी पर रोक लगाने के बजाय इसका उन्मूलन ही किया जाए। (तफ़सीर अल-जामिउल अहकामिल क़ुरआन)। इसी से मिलता-जुलता मत इमाम तहावी का भी है।

इन विवरणों से स्पष्ट होता है कि चित्रों के निषेध का मूल कारण बहुदेववाद और मूर्तिपूजा से मुस्लिम समुदाय को दूर रखना था। किन्तु परिस्थितियाँ बदल गईं तो चित्र के सम्बन्ध में आदेश भी बदल जाएगा।

(2) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना है कि, "चित्रकार नरक में डाला जाएगा और उसके बनाए हुए चित्र के बदले एक व्यक्ति पैदा किया जाएगा जो उसे (चित्रकार को) जहन्नम में यातना देगा।" हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि अगर तुम्हारे लिए चित्र बनाना आवश्यक ही हो तो वृक्ष और किसी ऐसी चीज़ का चित्र बना लो जो निष्प्राण हो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् ऐसी निष्प्राण चीज़ों का चित्र बनाओ जिनके पूज्य होने का दिल में ख़्याल भी पैदा न हो सके। (दे० पहली हदीस की व्याख्या)

(3) हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि उन्होंने अपनी बैठक पर एक ऐसा परदा डाल दिया जिसपर चित्र बने हुए थे। नबी (सल्ल०) ने उसे फाड़ डाला। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने उस फटे हुए परदे का यह उपयोग

किया कि उसके दो गद्दे बना लिए जो घर में रहते थे और उनपर आप (सल्ल०) बैठते थे।'' (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् इस प्रकार वे चित्र अपने असल रूप पर नहीं या उन्हें विशिष्ट स्थान पर नहीं रहने दिया गया जिससे उनकी महानता, आदर और सम्मान आदि का विचार मन में आ सके। इस हदीस में तस्वीरों के लिए शब्द 'तमासील' आया है। तमासील, तिमसाल का बहुवचन है। रूप अंकित करने के सभी ढंग पर इसका प्रयोग होता है। प्रतिमा (Statue) और चित्र (Picture) को भी तिमसाल कहते हैं। इसी प्रकार दीवारों आदि पर रूप अंकन (Fresco Paiting) आदि भी तिमसाल के अन्तर्गत आते हैं।

(4) हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं कि नबी (सल्ल०) किसी लड़ाई में गए। मैंने एक कपड़ा लिया और उसे परदा बनाकर द्वार पर लटका दिया। जब आप (सल्ल०) (लड़ाई से लौटकर) आए और उस परदे को देखा तो उसे खींचकर फाड़ डाला। फिर कहा : ''अल्लाह ने हमें इसका आदेश नहीं दिया है कि हम पत्थर और मिट्टी को कपड़ों से सजाएँ।''

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अबू दाऊद की रिवायत में 'मिट्टी' के बदले 'कच्ची ईंटें' आया है। संभवतः उस कपड़े को हज़रत आइशा (रज़ि०) ने दरवाज़े पर सजावट के लिए लटकाया था। परदे के उद्देश्य से उसके लटकाने में क्या बुराई हो सकती थी। नबी (सल्ल०) की बात से इसी बात का प्रमाण मिलता है। सजावट के परदे को आप (सल्ल०) ने पसन्द नहीं किया और विशेष रूप से अपने घरवालों के लिए इसे अनुचित ही समझा कि वे दीवार और दरवाज़े को कपड़ों और तस्वीरों से सजाने लगें। इमाम नववी के मतानुसार इस हदीस में ऐसी कोई बात नहीं है जो हराम होने का कारण हो। ''अल्लाह ने हमें इसका आदेश नहीं दिया है'' से न 'वाजिब' होना साबित होता है, न 'मन्दूब' और न ही इसका हराम होना ही सिद्ध होता है।

पत्थर और मिट्टी अर्थात् दरवाज़े और दीवार को कपड़े पहनाना मूर्खता है। कपड़े तो इसलिए होते हैं कि उनसे मनुष्य अपना तन ढक सके या उनसे और कोई ज़रूरी काम ले सके। व्यर्थ और बेकार कामों से बचना ज़रूरी है।

विशेष रूप से उन व्यक्तियों को तो और भी अधिक इसका ध्यान रखना चाहिए जिनको उम्मत में विशिष्ट स्थान प्राप्त हो।

(5) हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं कि हमारे पास एक परदा था, उसमें पक्षी का चित्र बना हुआ था। जब कोई, प्रवेश करनेवाला, प्रवेश करता तो चित्र उसके सामने होता। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इसे निकाल दो। जब भी मैं अन्दर प्रवेश करता हूँ तो मेरी दृष्टि इसपर पड़ती है और मुझे दुनिया याद आती है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् याद रखने की चीज़ तो आख़िरत है। यह चित्र हमें आख़िरत के बदले दुनिया की याद दिलाता है। आख़िरत के मुक़ाबले में दुनिया को एक उजाड़-स्थल से अधिक महत्त्व प्राप्त नहीं है। यह चित्र यह विश्वास जगाता है कि दुनिया भी आकर्षक है इसकी ओर भी ध्यान देना चाहिए। इसका भी कुछ हक़ है। हालाँकि मनुष्य के लिए आख़िरत की चिन्ता ही पर्याप्त है। इसके साथ दुनिया को भी महत्त्व देने लग जाना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं हो सकती।

इस हदीस में चित्र को हटाने का कारण यह नहीं बताया गया कि चित्र हराम है इसलिए उसे हटा देना ज़रूरी है। बल्कि पहले उसे हटाने का आदेश भी नहीं दिया, बल्कि कई बार के अनुभव से मालूम हुआ कि उसके कारण ध्यान की एकाग्रता में अन्तर आ जाता है और आख़िरत के ध्यान के बीच दुनिया भी सिर उठाने लगती है। इसलिए कहा कि इसे हटा ही दो।

(6) हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "फ़रिश्ते उस घर में प्रवेश नहीं करते जिसमें चित्र हों।" बुस्र कहते हैं कि फिर ज़ैद-बिन-ख़ालिद बीमार हुए (जो इस हदीस के उल्लेखकर्ता हैं)। हम उनकी बीमारपुर्सी के लिए गए। हम उनके घर में ही थे। उसमें एक परदा लटकता था जिसमें चित्र बने हुए थे। मैंने उबैदुल्लाह ख़ौलानी से कहा कि क्या इन्होंने चित्रों (के हराम होने) के विषय में हदीस नहीं रिवायत की है? उन्होंने कहा : मगर यह भी तो रिवायत किया था "सिवाय उस चित्र के जो कपड़े पर हो।" क्या आपने उसे सुना नहीं? मैंने कहा कि मैंने नहीं सुना। उन्होंने कहा कि ज़ैद ने यह कहा था। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् जिस समय उन्होंने चित्र के हराम होने की बात कही थी उस समय इस अपवाद का भी उल्लेख किया था कि "सिवाय इसके कि चित्र कपड़े पर अंकित हो।" तिर्मिज़ी की एक हदीस में, जो इमाम तिरमिज़ी के निकट 'हसन सहीह' का दरजा रखती है, आया है कि जब हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) से पूछा गया कि "क्या अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने (चित्र की निषेधाज्ञा के साथ) यह भी नहीं फ़रमाया था कि सिवाय इसके कि चित्र कपड़े पर अंकित हो?" हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) ने फ़रमाया, "क्यों नहीं, सत्य है, आप (सल्ल०) ने फ़रमाया था। ये हदीसें इस बात का प्रमाण हैं कि ऐसे चित्रों की शरीअत में गुंजाइश है। उन्हें हराम नहीं ठहराया जा सकता जो किसी कपड़े, फ़र्श, काग़ज़ आदि पर अंकित हों और वे देवी-देवता के चित्र न हों। न वे मूर्तियों और प्रतिमाओं की शक्ल में हों।

(7) हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "फ़रिश्ते उस घर में प्रवेश नहीं करते जिसके अन्दर कुत्ता या मूर्ति हो।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् रहमत के फ़रिश्ते ऐसे घरों से दूर रहते हैं। ऐसे घर दृष्टिवानों की निगाह में भय-गृह होते हैं। उनमें वह रौनक़ कहाँ जो ख़ुदा से डरनेवालों के घरों में पाई जाती है। जो घर विलासियों और दुनियादारों के घरों के सदृश हों, उनमें ईश्वर की पवित्र आत्माएँ (फ़रिश्ते) कैसे क़दम रख सकती हैं। उन्हें ऐसे घरों से क्या लगाव हो सकता है।

अलबत्ता कुत्ता अगर शिकार के लिए या जानवरों और खेत या खलिहान आदि की रक्षा और रखवाली के लिए पाला गया हो और चित्र ऐसे हों जिनमें शरीअत की दृष्टि से कोई बुराई न हो तो फिर यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसे घरों में फ़रिश्ते प्रवेश नहीं करते।

(8) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया "जो लोग मूर्तियाँ बनाते हैं क़ियामत के दिन वे यातनाग्रस्त होंगे। उनसे कहा जाएगा कि जिनको तुमने बनाया है उनमें प्राण-संचारित करो।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : चित्रकारों से तात्पर्य वास्तव में ऐसे चित्रकार हैं जो पूजा के लिए प्रतिमाएँ और चित्र बनाते थे। इसलिए धिक्कारने के लिए उनसे कहा

जाएगा कि अगर ये प्रतिमाएँ और मूर्तियाँ तुम्हारी सुनतीं और तुम्हारी ज़रूरतें पूरी करती थीं और ये तुम्हारी कठिनाइयों को दूर करती थीं और ये तुम्हारी दृष्टि में ईश्वरत्व के गुणों से युक्त, इरादा व शक्ति रखनेवाली थी तो जहाँ तुमने उनके शरीर बनाए हैं वहाँ उनमें प्राण–संचार करके भी दिखाओ और इसका प्रमाण भी प्रस्तुत करो कि ये चैतन्य संकल्प और कर्म के अधिकारी भी हो सकती हैं। और अगर तुम इनमें प्राण नहीं डाल सकते और इनमें जीवन के लक्षण नहीं पाए जाते तो फिर एक निष्प्राण आकृति पूज्य कैसे हो सकती थी। तुमने ख़ुदा के कितने ही बन्दों को ख़ुदा से दूर रखने में पूरा भाग लिया है। अब उसके बदले में तुम्हें हमसे यातना के सिवा किसी और चीज़ की आशा नहीं करनी चाहिए।

(9) हज़रत अनस (रज़ि०) बयान करते हैं कि हज़रत आइशा (रज़ि०) के घर के एक तरफ़ एक परदा था जो उन्होंने लटका रखा था। नबी (सल्ल०) ने उनसे फ़रमाया, "इसको मुझसे दूर कर दो क्योंकि ये चित्र मेरी नमाज़ में मेरे सामने होते हैं।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मालूम हुआ कि उस परदे के कारण नमाज़ की एकाग्रता में अन्तर आता था। इसलिए उसे हटा देने का आदेश दिया। अगर जानवरों के चित्र वर्जित होते तो उसको पहले ही उतार देने का आदेश देते। इस हदीस के आधार पर फ़ुक़हा (इस्लामी विधान के विद्वानों) ने ऐसे कपड़ों को जाइज़ ठहराया है जिनपर जानदार चीज़ों के चित्र हों। शर्त यह है कि उनको लटकाया न जाए। यह और इस प्रकार की अन्य हदीसों के प्रकाश में पहले के विद्वान सिर्फ़ उन चित्रों को वर्जित ठहराते हैं जिनकी छाया पड़ती है अर्थात् जो प्रतिमा के रूप में हों।

(10) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान फ़रमाती हैं कि जिबरील (अलैहि०) हरे रंग के एक रेशमी रूमाल में उनका (आइशा का) चित्र लपेटकर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास लाए और कहा कि ये दुनिया और आख़िरत में आपकी पत्नी हैं। (हदीस : तिरमिज़ी)

(11) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मुझसे फ़रमाया, "तीन रात निरन्तर तुम्हें मेरे सपने में लाया गया। एक फ़रिश्ता शानदार रेशमी कपड़े में तुम्हारा चित्र मेरे पास लाता और मुझसे

कहता कि यह आपकी पत्नी है। मैं तुम्हारे चेहरे से कपड़ा हटाता तो क्या देखता कि वह तुम हो। फिर मैं कहता कि यह अल्लाह की ओर से है तो वह इसे पूरा करेगा।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि स्वप्न में नबी (सल्ल०) के सामने हज़रत आइशा (रज़ि०) का चित्र प्रस्तुत करनेवाली घटना तीन बार घटित हुई थी। विद्वानों ने इस पुनरावृत्ति का रहस्य यह बताया है कि इस प्रकार नबी (सल्ल०) अपनी होनेवाली पत्नी के रूप-रंग आदि को अच्छी तरह देख लें और सही फ़ैसले तक पहुँच सकें और उम्मत के लिए भी इस सम्बन्ध में एक नमूना क़ायम हो जाए।

यह बात सही नहीं कि चूँकि यह बात स्वप्न की है इसलिए इसका सम्बन्ध सामान्य जीवन से नहीं हो सकता। अल्लामा बदरुद्दीन ऐनी ने लिखा है कि नबियों की अकलुषता और निर्दोषता स्वप्न की दशा में भी ठीक उसी तरह क़ायम रहती है जिस तरह वह जागरण की स्थिति में क़ायम रहती है। नबियों के लिए स्वप्न में भी वह चीज़ वैध नहीं हो सकती जो उनके लिए जागने की स्थिति में वैध न हो।

इस रिवायत के बाद तस्वीर के वैध होने में क्या सन्देह किया जा सकता है। यह अलग बात है कि वैध चित्रों से भी अनावश्यक लगाव और इस क्रिया में ऐसी लीनता कि आदमी जीवन सम्बन्धी दायित्व को भुला बैठे, कभी भी दुरुस्त नहीं हो सकता। तस्वीर ही नहीं अनिवार्य नमाज़ों के अतिरिक्त अन्य नमाज़ों का आधिक्य भी ऐसी स्थिति में वैध नहीं हो सकता जबकि वह अनिवार्य कर्मों के करने में बाधक हो।

गुड़िया (Doll)

(1) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने (दरीचे में उनकी गुड़ियों को देखकर) कहा, "ऐ आइशा, यह क्या है ? उन्होंने कहा कि ये मेरी गुड़िया हैं। उन गुड़ियों में नबी (सल्ल०) ने एक घोड़ा भी देखा जिसके कपड़े या काग़ज़ के दो पंख थे। आप (सल्ल०) ने पूछा, "यह क्या है जो मैं इन गुड़ियों के बीच देख रहा हूँ ?" हज़रत आइशा (रज़ि०) ने कहा कि घोड़ा है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "और यह इसके ऊपर क्या चीज़ है ?" कहा कि

दो पंख हैं। फ़रमाया, "घोड़ा और उसके पंख ?" हज़रत आइशा (रज़ि०) ने कहा कि आपने सुना नहीं है कि सुलैमान (बिन-दाऊद पैग़म्बर) के जो घोड़े थे वे पंख वाले थे। हज़रत आइशा (रज़ि०) का बयान है कि इसपर आप (सल्ल०) हँस पड़े यहाँ तक कि मुझे आप (सल्ल०) के पिछले दाँत (दाढ़) तक नज़र आ गए। (हदीस : अबू दाऊद)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) की पत्नियों में हज़रत आइशा (रज़ि०) सबसे ज़्यादा कम उम्र की थीं। आप (सल्ल०) उनके शौक़ का पूरा ध्यान रखते थे। इस हदीस से मालूम हुआ कि ऐसे खिलौने और गुड़िया, बिल्ली आदि जो जानदारों के रूप में बनाए जाते हैं, जिनका न सम्मान करना अपेक्षित होता है और न वे विलासिता की सामग्री में शामिल होते हैं और न उनसे मूर्तिपूजा और बहुदेववाद के प्रोत्साहन की आशंका हो सकती है। उनके बारे में इस्लाम ने तंगी नहीं दिखाई है बल्कि उन्हें जायज़ ठहराया है। उनमें मिठाई के वे खिलौने भी शामिल हैं जिनसे बच्चे खेलते और फिर उनको खा लेते हैं।

व्यर्थ और निस्सार व्यस्तताएँ

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक व्यक्ति को देखा जो कबूतरों के पीछे पड़ा हुआ था। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह शैतान है, शैतान के पीछे पड़ा हुआ है।"
(हदीस : अहमद, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा, बैहक़ी, फ़ी शोबिलईमान)

व्याख्या : यह शैतान है अर्थात् शैतान की तरह अपने को ग़फ़लत में डाल रखा है। बेकार और फ़ुज़ूल काम में व्यस्त है। हालाँकि जीवन में कितने ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण काम करने को होते हैं जिनकी उसे कुछ भी चिन्ता नहीं है।

कबूतरों को लक्षणात्मक रूप में से शैतान कहा है कि उन्होंने उस व्यक्ति को खेल-तमाशे में व्यस्त कर रखा है जिसकी वजह से यह ग़फ़लत में पड़ गया है और इसे दीन-दुनिया के दूसरे आवश्यक कामों की कोई चिन्ता नहीं है। अन्यथा व्यर्थ और अनावश्यक काम के लिए इसको समय ही न मिलता।

इस हदीस से कबूतरबाज़ी का निषेध स्पष्टतः प्रकट होता है। लेकिन अगर कोई अण्डे-बच्चे प्राप्त करने के लिए या पत्रवाहक का काम लेने के उद्देश्य से कबूतरों को पालता है तो इमाम नववी के मतानुसार इसमें कोई बुराई नहीं है।

गीत और संगीत

ईश्वर ने जगत् की रचना की तो उसमें साज–सज्जा और सौन्दर्य की भी व्यवस्था की। सुन्दर आँखें दीं तो आँखों के लिए सुन्दर से अतिसुन्दर दृश्य भी दिए। सुन्दर और रूपवान चेहरे, चमकते सितारे, मनोरम फूल उसी ने पैदा किए। ज़बान दी तो स्वाद हेतु मीठे फल और भाँति–भाँति की वस्तुएँ पैदा कीं। हमें सूंघने की क्षमता प्रदान की तो इसके साथ ही सुगंधित फूल और पौधे भी पैदा किए। इसी प्रकार उसने अगर हमको श्रवण–शक्ति प्रदान की है तो उसने कितने ही पक्षियों को मधुरिम स्वर भी प्रदान किए हैं। अल्लामा जौहरी तनतावी ने तो यहाँ तक कहा है कि "पूरा जगत् संगीतमय है।" भारत का ऋषि भी कहता है कि "जगत् की संरचना तरन्नुम के ज़ेरोबम (संगीत के उतार–चढ़ाव) से हुई है।"

यह तथ्य है कि ईश्वर ने प्रत्येक वस्तु को सौन्दर्य से सज्जित किया है। आवाज़ में अच्छी आवाज़ वही है जो कानों को भली मालूम हो। क़ुरआन में गधे की आवाज़ को 'सबसे बुरी आवाज़' इसी लिए कहा कि वह कानों को अत्यन्त अप्रिय लगती है। अच्छी आवाज़ वही है, दिल पर जिसके अच्छे प्रभाव पड़ते हों, उसमें आकर्षण और हृदयग्राहिता पाई जाती हो। क़ुरआन में जो स्वर–सौन्दर्य और गेयता पाई जाती है, उसे कौन नहीं जानता। हम देखते हैं कि क़ुरआन की आयतों के प्रत्येक क्रम में जो माधुर्य है, शब्दों के द्वारा उसे क़ायम रखा गया है। क़ुरआन की आयतों में छन्द–योजना की कोई क़ैद नहीं है तथापि हर सूरा या आयतों के क्रम के लिए एक विशिष्ट ध्वनि–विन्यास या विशिष्ट ध्वनि–वातावरण संचित किया गया है। क़ुरआन ने उपयुक्त ध्वनि सायुज्य को पूर्णतः निभाया है। नबी (सल्ल०) को क़ुरआन के स्वर–सौन्दर्य या उसमें पाई जानेवाली गेयता का कितना ध्यान था कि आप (सल्ल०) ने कहा, "अपनी आवाज़ों से क़ुरआन को सुसज्जित करो।" अर्थात् क़ुरआन के पाठ का ऐसा अन्दाज़ अपनाओ कि उसमें हृदयग्राहिता और ध्वनि–सौन्दर्य का पूरा सम्मान किया जाए। एक रिवायत में है कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वह हममें से नहीं जो क़ुरआन पढ़ने में गेयता का ध्यान न रखे।" मतलब यह है कि वह हमारे तरीक़े पर नहीं है जो क़ुरआन के पाठ में गेयता का ध्यान

नहीं रखता। पाठ बिल्कुल सपाट न हो। उसका स्वर ऐसा हो कि उसमें ध्वनि-सामंजस्य पाया जाए। स्वयं क़ुरआन के शब्दों और आयतों में सुसंगति और गेयता का ध्यान रखा गया है। आयतों के तुकांत और शब्द-विन्यास इसकी पुष्टि के लिए पर्याप्त हैं।

हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि०) की तिलावत सुनकर आप (सल्ल०) ने फ़रमाया था कि, "तुम्हें दाऊद के मज़ामीर में से एक मिज़मार प्रदान किया गया है।" अर्थात् दाऊद का स्वर-माधुर्य तुम्हें प्राप्त है। मज़मूर वास्तव में उन गानों को कहते हैं जो साज़ पर गाए जाएँ और मिज़मार उस साज़ को कहते हैं जिसके साथ कोई गाना गाया जाए। मज़ामीर दोनों का बहुवचन है मज़मूर का भी और मिज़मार का भी। मज़ामीर गीत को भी कहते हैं और साज़ को भी। दोनों एक-दूसरे के लिए अनिवार्य हैं।

जिस ईश्वर ने सौन्दर्य-प्रियता की दृष्टि से हर वस्तु को सुन्दर बनाया है उसकी बनाई हुई वस्तुओं में निगाह को नवाज़ देने की शान पाई जाती है। जिस ईश्वर ने फलों में पौष्टिकता ही नहीं रखी है बल्कि उनमें सुस्वाद भी रखा है, जिस ख़ुदा ने हमारे सूँघने को उपलक्ष्य करके तरह-तरह की सुगंगें बिखेरी हैं, कैसे सम्भव था कि वह हमारे कानों को नवाज़ने से रह जाता। यह गाती हुई बुलबुल और ये भौंरों की गुनगुनाहट आख़िर किस बात का सुबूत हैं। इसलिए यह समझना कभी भी ठीक नहीं हो सकता कि इस्लाम स्वर-माधुर्य का शत्रु है। निषिद्ध वस्तुओं में वे वस्तुएँ सम्मिलित हैं जो हानिकारक और चरित्र को बिगाड़नेवाली हैं।

आवाज़ की मधुरता और उसकी गेयता में ख़ुदा ने विचित्र प्रभाव रखा है। अच्छी आवाज़ सुनकर रोता हुआ बच्चा भी चुप हो जाता है। हुदी-ख़ानी (ऊँटवालों का विशेष गीत) से ऊँट असाधारण रूप से प्रभावित होते हैं और मस्त होकर लम्बी दूरी से भी नहीं घबराते, बल्कि उनकी गति तीव्र से तीव्र हो जाती है। इमाम ग़ज़ाली ने लिखा है कि गीतों को आत्मा से जो सम्बन्ध है उसमें प्रकृति का एक रहस्य निहित है। सुस्वर का प्रभाव असाधारण होता है। इसका कारण इमाम ग़ज़ाली के मतानुसार यह है कि लयबद्ध गीतों का आत्मा से गहरा सम्बन्ध है। इसलिए आत्मा पर उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। शब्द और अर्थ से हटकर अपने आप में स्वयं मधुर स्वर गेयता में प्रकृति का रहस्य

छुपा हुआ है, जिसके कारण आत्मा उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। अच्छे स्वर और मनोरम आवाज़ किसी भाषा और शब्दों में सीमित नहीं होते। उनमें बड़ी व्यापकता पाई जाती है। किसी भाषा के शब्दों से तो सीमित अर्थ व्यक्त हो जाते हैं जिसके कारण आवाज़ में असाधारण विस्तार और गहराइयों के पैदा होने में बाधा उत्पन्न होती है। शब्द और उनके अर्थ तो एहसास और अर्थ के असीम सागर के कुछ बूँद ही होते हैं। भले ही ये बूँद बहुमूल्य हों, लेकिन उनकी दुनिया सीमित ही होती है। ज़बूर की आयतों के बाद जगह-जगह "सिलाह" लिखा हुआ है। इसका अभिप्राय यह है कि यहाँ पहुँचकर स्वयं गायक मौन हो जाए, मगर साज़ बजता रहे। इस तर्ज़ के अपनाने में एक रहस्य है। गीत या मज़मूर असीम सत्य का केवल एक सीमित अंश है। उसका क्रम तो थम जाता है लेकिन सत्य का असीम सागर तो शेष ही रहता है। गायक के रुक जाने से मूल अनहद नाद न थम सकता है और न समाप्त हो सकता है। "सिलाह" में इसी बात की ओर संकेत पाया जाता है। काव्य और छन्द में अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए अक्षर और शब्द का प्रयोग होता है लेकिन इसके विपरीत गीत अपने अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए स्वर और रागों का भेस धारण करता है। यद्यपि यह अभिव्यक्ति अस्पष्ट रहती है, लेकिन इसी अस्पष्टता के कारण अर्थों और आशयों की दुनिया की दुनिया आबाद होने की संभावना उसके अन्दर पैदा हो जाती है।

गीत और संगीत को आयुर्विज्ञान का भी एक अंग ठहराया गया है। अफ़लातून (Plato) और इब्ने-सीना आदि ने इसे बहुत-से शारीरिक और आत्मिक रोगों का इलाज बताया है। आत्मा में आनन्द पैदा करना, उसे संतुलन में लाना और शक्ति प्रदान करना इसके द्वारा सम्भव होता है। जानवरों और पेड़-पौधों पर भी संगीत के अच्छे और सकारात्मक प्रभावों का प्रयोग किया जा चुका है। पौधों के विकास पर संगीत के अत्यन्त अच्छे प्रभाव पड़े हैं। दूध देनेवाली गाएँ भी अधिक दूध देने लगीं।

शाह वलीयुल्लाह साहब अपनी किताब "लमआत" में लिखते हैं : मन में मधुर और सूक्ष्म भाव जगाने के लिए मन्द बुद्धि और जड़ स्वभाववाले व्यक्ति को गाना सुनने की आवश्यकता है। ....इस सिलसिले में इसके लिए रबाब और तम्बूरे का संगीत भी लाभप्रद है। ("लमआत"; अनुवाद : प्रोफ़ेसर सरवर, पृष्ठ 168)

गीत और संगीत के सम्बन्ध में कुछ धर्मवेत्ताओं ने अगर सख़्ती से काम लिया है, तो इसका कारण है। मुस्लिम समुदाय की भलाइयों के हेतु और परिस्थिति को देखते हुए किसी वैध चीज़ को अवैध और अवैध चीज़ को वैध भी कर सकते हैं। किन्तु मूल समस्या अपनी जगह एक अलग चीज़ है। परिस्थिति को देखते हुए संगीत पर विभिन्न आदेश लगाना एक अलग बात है। लेकिन उसे पूर्णतः हराम ठहरा दिया जाए तो कितनी ही मौखिक और कितनी ही व्यावहारिक हदीसों का स्पष्टीकरण सम्भव नहीं है। स्वयं नबी (सल्ल०), सहाबा (रज़ि०), ताबिईन और उलमा व मुहद्दिसीन (विद्वानों और हदीस के ज्ञाताओं) ने संगीत सुना है। सम-सामयिक अपेक्षाओं के कारण हज़रत उमर (रज़ि०) ने उन पद्यों को पढ़ने से रोक दिया था जिनसे पुराने वैमनस्य के ताज़ा हो जाने की सम्भावना थी। इसी प्रकार हज़रत उमर ने किसी स्त्री का नाम लेकर काव्य में प्रेमालाप करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। हालाँकि नबी (सल्ल०) के समय तक में इसका चलन था। दुनिया की प्रत्येक चीज़ में भलाई और बुराई के दोनों ही पहलू होते हैं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक देश-काल के लिए एक ही धर्मादेश (फ़तवा) नहीं दिया जा सकता।

गीत के हराम होने के सिलसिले में जो हदीसें प्रस्तुत की जाती हैं, वे या तो कमज़ोर (ज़ईफ़) हैं या मनघड़त (मौज़ूअ) हैं। उदाहरणार्थ एक हदीस यह पेश की जाती है "संगीत दिलों में कपट पैदा करता है।" सैयिद मुर्तज़ा ज़ुबैदी कहते हैं कि यह हदीस जितने भी माध्यमों से आई है वे सभी कमज़ोर हैं। इमाम बैहक़ी का कहना है कि वास्तव में यह इब्ने-मसऊद (रज़ि०) का कथन है, न कि नबी (सल्ल०) का। इसके अलावा जिन माध्यमों से यह हदीस पहुँची है उनमें कुछ अज्ञान रावी मौजूद हैं। इमाम नववी कहते हैं कि इसके रावी के कमज़ोर होने पर सब एकमत है। (शरह अह्या, भाग-6, पृ० 466) अबू-तालिब मक्की लिखते हैं कि इब्ने-हजर असक़लानी ने 'अत-तख़लीसुल-अबीर, पृष्ठ 408 पर लिखा है कि इब्ने-ताहिर का कथन है कि सबसे ज़्यादा सहीह सनद से जो बात साबित हुई है वह यही है कि यह इब्राहीम का कथन है (न इब्ने-मसऊद का और न नबी सल्ल० का)।

एक और रिवायत पेश की जाती है कि नबी (सल्ल०) का कथन है कि

"अल्लाह ने मुझे सारे संसार के लिए रहमत व हिदायत बनाकर भेजा है और मुझे हुक्म दिया है कि मैं साज़ों, कफ़्फ़ारात अर्थात् बरबतों और बाजों और उन मूर्तियों को, अज्ञानकाल में जिनकी पूजा की जाती थी, मिटा दूँ" (हदीस : मुस्नद अहमद)। मुस्नद की इस रिवायत में एक रावी अली बिन-यज़ीद अलहानी हैं। इब्ने-हजर उसे कमज़ोर क़रार देते हैं। यहया-बिन-मुईन ने अली-बिन-यज़ीद को अविश्वसनीय बताया है। इमाम बुख़ारी उसे मुनकिरुल-हदीस और ज़ईफ़ कहते हैं। इमाम तिर्मिज़ी का बयान है कि यह हदीस ज़ईफ़ है। इमाम नसई के मतानुसार भी यह विश्वसनीय नहीं है। एक रावी ख़रज-बिन-फ़ुज़ाला हम्सी भी है। यहया-बिन-मुईन उसे ज़ईफ़ुल-हदीस कहते हैं। इमाम बुख़ारी और इमाम मुस्लिम ने उसे मुनकिरुल हदीस ठहराया है। नसई ने उसे ज़ईफ़ कहा है। (तहज़ीबुत-तहज़ीब)

एक और रिवायत पेश की जाती है कि बुख़ारी में है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मेरी उम्मत में कुछ लोग रेशम, हरीर, शराब और मज़ामीर को हलाल कर लेंगे।" यह हदीस मुनक़तअ है अर्थात् सदक़ा-बिन-ख़ालिद और बुख़ारी के मध्य सनद शृंखला टूटी हुई है। अब आप ख़ुद फ़ैसला कर सकते हैं कि इस प्रकार की रिवायतों से गीत और मज़ामीर का हराम होना कहाँ तक दुरुस्त हो सकता है।

अल्लामा इब्ने-हज़्म ने कहा है कि जब अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की ओर से इन चीज़ों के हराम होने का कोई स्पष्टीकरण नहीं हुआ है तो सिद्ध होता है कि ये सभी चीज़ें वैध (हलाल) हैं।

अल्लामा अब्दुल ग़नी नाबलुसी लिखते हैं कि हमने हनफ़ी और ग़ैर हनफ़ी धर्मशास्त्रियों के जितने लिखित वर्णनों का अध्ययन किया है उनमें सिमाए-मज़ामीर (बाजा या साज़ को सुनने) के अवैध के साथ लह्व (खेल-तमाशे और ग़ाफ़िल हो जाने) की क़ैद और शर्त लगी हुई है। अगर कहीं संयोगवश इस क़ैद के बिना हराम होने का उल्लेख मिलता भी हो तो यही कहा जाएगा कि कहनेवाले का उद्देश्य वही बाजे हैं जो लह्व के उद्देश्य से हों। (लह्व से तात्पर्य ऐसे काम हैं जो अल्लाह की ओर से ग़ाफ़िल कर देनेवाले और बेसुध कर देनेवाले हैं। विस्तार के लिए देखें : इज़ाहुद्दलालात फ़ी सिमाइल-आलात, पृ० 23, 25।) अर्थात् संगीत और बाजे उस समय हराम हैं

जबकि गिरी हुई भावनाएँ उसकी उत्प्रेरक हों। खेल-तमाशे और लह्व से तात्पर्य यहाँ धर्म में अनिवार्य और आवश्यक आदेशों के पालन से ग़फ़लत या बुराइयों और नापसन्द बातों में पड़ना है। अगर यह न हो तो दिल बहलाने या शोक या दुख को भुलाने के लिए या निकाह और विवाद आदि की घोषणा के लिए गाना, बजाना लह्व नहीं है। इमाम शौकानी ने नैलुल-औतार में इस सिलसिले में बड़ा संग्राहक विश्लेषण किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि गाना और मज़ामीर को हराम ठहरानेवाली सारी रिवायतें स्वीकार करने योग्य नहीं हैं। अल्लामा शामी ने लिखा है कि लह्व के उपकरण अपने आप में हराम नहीं, बल्कि लह्व के इरादे के कारण हराम हैं और यह एक सापेक्षिक चीज़ है। इमाम शौकानी ने अपनी किताब "इब्तालु दावल इजमाअ फ़ी तहरीमि मुतलक़स्सिमाअ" में लिखा है कि ज़ाहिरिया, मालिकिया, हनाबला, शाफ़िइया हर एक में से एक जमाअत ने उन हदीसों को जईफ़ (कमज़ोर) बताया है जो ग़िना (गायन) को हराम करने के बारे में आई हैं। उन हदीसों को न चारों प्रसिद्ध इमामों ने हुज्जत (प्रमाण) माना है और न दाऊद ज़ाहिरी ने, न सुफ़यान सौरी ने............अबू-बक्र इब्नुल-अरबी ने भी अपनी किताब अहकामुल-अहादीस में उन हदीसों को ज़ईफ़ ठहराया है। अबू-बक्र इब्नुल-अरबी कहते हैं कि गाना और लह्व के उपकरण (मज़ामीर) के हराम होने के विषय में जितनी भी हदीसें आई हैं उनमें से एक भी सहीह नहीं है। अल्लामा इब्ने-हज़्म कहते हैं कि सिमाअ (गाना सुनने) के हराम होने के विषय में एक हदीस भी सहीह मौजूद नहीं है। इस विषय में जो कुछ है वह सब मौज़ूअ (मन-घड़त) है। (ईज़ाहुद्दलालात फ़ी सिमाइल-आलात, पृष्ठ 40-41)

इस्लाम एक जीवन्त आन्दोलन और आह्वान है। उसके समक्ष एक महान क्रान्ति है। उसके सामने जो योजना और कार्यक्रम है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। वह कार्यक्रम है दुनियावालों तक हक़ का पैग़ाम पहुँचाना और उनको हिसाब के दिन (क़ियामत) से अवगत करना। इस्लाम के अनुयायियों को इस्लाम का सच्चा अनुसरण करनेवाला बनाना, उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करना, और उनके अन्दर दावती जज़्बे (प्रचार-भाव) को उभारना कि वह सच्चाई का आह्वान करनेवाला बनकर दुनिया में अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरी करने के लिए प्रयत्नशील हों। अब अगर कोई व्यक्ति संगीत और गीत

सुनने का ऐसा रसिया हो और उसमें उसकी लीनता इस दर्जा बढ़ जाए कि दीन के महत्त्वपूर्ण दीयित्त्वों का उसे तनिक भी ध्यान न रहे, वह यह भूल ही जाए कि उसके रब की भी कुछ अपेक्षाएँ हैं जिनका ध्यान रखना हर मोमिन व्यक्ति के लिए आवश्यक है, तो यह स्थिति निश्चय ही सुधार के योग्य है। मोमिन के जीवन में संतुलन ज़रूरी है, और यह सन्तुलन उसी स्थिति में क़ायम रह सकता है जबकि वह नबी (सल्ल०) के तरीक़े को अपने लिए मार्गदर्शक समझे। नबी (सल्ल०) ने न तो जीवन को इतना शुष्क और नीरस बनाने की ताकीद की कि आदमी के लिए ख़ुशियों और आनन्द का कोई अवसर ही बाक़ी न रहे और न आप (सल्ल०) ऐसे शुष्क स्वभाव और कट्टरतावादी थे कि आप (सल्ल०) ने लोगों को इसके लिए बाध्य किया हो कि वह हराम ही नहीं जाइज़ चीज़ों को भी अपने ऊपर पूर्णतः हराम कर लें कि दुनिया यह कहने पर विवश हो कि इस्लाम आसानी के बदले कठिनाई और उदारता के बदले संकीर्णता की शिक्षा देता है। पहले के विद्वानों में से कुछ ने यदि मुबाह (वैध) से भी परहेज़ किया है तो उनका यह व्यवहार एहतियात और सावधानी की दृष्टि से था। उन्होंने अच्छे और नर्म कपड़ों को भी त्याग दिया। उत्तम भोजन भी उन्होंने छोड़े हैं, जबकि ये सारी चीज़ें हलाल और वैध हैं। किसी के व्यक्तिगत और वैयक्तिक रुचि को धर्म-निर्धारित आदेश का दर्जा नहीं दिया जा सकता। किन्तु गायन और संगीत के नाम से अश्लीलता के प्रचार और वातावरण को अभद्र और अप्रिय आवाज़ों के प्रदूषण (Noise Pollution) से भर देने का समर्थन इस्लाम कदापि नहीं कर सकता।

गाना या संगीत

(1) हज़रत रुबैअ-बिन्ते-मुअव्विज़-बिन-अफ़रा (रज़ि०) बयान करती हैं कि जब मैं अपने पति के यहाँ निकाह के बाद आई थी, नबी (सल्ल०) हमारे यहाँ आए और मेरे बिस्तर पर उसी तरह बैठ गए जिस तरह तुम (ख़ालिद-बिन-ज़कवान) मेरे बिस्तर पर बैठे हो। घर में जो लड़कियाँ मौजूद थीं वे दफ़ बजाने लगीं और हमारे बाप-दादा में से जो लोग बद्र की लड़ाई में शहीद हुए थे उनकी प्रशंसा और ग़म ज़ाहिर करने लगीं। उनमें से एक लड़की ने यह भी कहा कि हमारे बीच वे नबी मौजूद हैं जो कल होनेवाली बात को

जानते हैं। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इस बात को छोड़ दो और वही कहो जो पहले कह रही थीं।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यह हदीस तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद और इब्ने-माजा में भी उद्धृत की गई है। इब्ने-माजा की रिवायत से मालूम होता है कि इस अवसर पर नबी (सल्ल०) ने यह भी फ़रमाया था, "कल होनेवाली बात को ख़ुदा के सिवा कोई नहीं जानता।"

(2) हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) मदीना की एक गली से गुज़रे तो देखा कि कुछ लड़कियाँ अपने दफ़ बजा-बजाकर यह गा रही हैं :

"बनी-नज्जार की हम बेटियाँ हैं क्या कहना!
बड़े नसीब कि मुहम्मद हमारे हमसाया!!"

यह सुनकर नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह भली-भाँति जानता है कि मैं तुमसे प्रेम रखता हूँ।" (हदीस : इब्ने-माजा)

व्याख्या : इससे मालूम होता है कि नबी (सल्ल०) ने बनी-नज्जार की लड़कियों के गाने-बजाने को पसंद किया। लड़कियाँ जो अपने गाने में नबी (सल्ल०) के पड़ोसी होने पर नाज़ कर रही थीं और उसपर अपने सौभाग्य का प्रदर्शन कर रही थीं, आपने इसके उत्तर में फ़रमाया कि मुझे भी तुमसे प्रेम है और अल्लाह इसे अच्छी तरह जानता है कि तुम मुझे बहुत ही प्रिय हो।

(3) हज़रत अब्दुल्लाह-इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से रिवायत है कि हज़रत आइशा (रज़ि०) ने अपनी किसी नातेदार अनसारिया का निकाह करा दिया। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) आए तो पूछा, "क्या तुमने उस लड़की को विदा कर दिया?" कहा कि हाँ। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क्या उसके साथ किसी ऐसे को भेजा जो गाता है?" कहा कि नहीं। आपने कहा, "अनसार तो ऐसे लोग हैं जो प्रेम भरे गीत से लगाव रखते हैं। क्या ही अच्छा होता कि तुमने उसके साथ किसी ऐसे को भेजा होता जो यह गाता हुआ जाता!

आए तुम्हारे पास हम, आए तुम्हारे पास!
ईश्वर हमें जीवन दे और तुम्हें भी! (हदीस : इब्ने-माजा)

व्याख्या : हज़रत आयशा ने जिस लड़की का निकाह कराया था,

उसका नाम फ़ारआ-बिन्ते-असअद था और उसका निकाह नबीत-बिन-जाबिर अनसारी से हुआ था।

एक रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ऐ ज़ैनब जल्दी रवाना होकर दुल्हन के साथ हो जाओ।" यह मदीना की एक गानेवाली स्त्री थी। इसे अबू-ज़ुबैर मुहम्मद-बिन-मुस्लिम मक्की ने हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत किया है। हाफ़िज़ मुहम्मद-बिन-ताहिर मक़दिसी भी इसे अपनी सनद से रिवायत करते हैं। इस रिवायत से इसका भली-भाँति अन्दाज़ा किया जा सकता है कि नबी (सल्ल०) को अनसार का मान और दिलदारी इतनी प्रिय थी कि गानेवाली को दौड़ाया कि वह गाती-बजाती दुल्हन के साथ उसके ससुराल जाए। इस रिवायत में यह भी है कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अनसार गाने को पसन्द करते हैं।" आप (सल्ल०) ने अनसार की इस पसन्द का ध्यान रखा। यह 'गाने' के वैध होने का एक स्पष्ट प्रमाण है।

(4) हज़रत साइब-बिन-यज़ीद (रज़ि०) से रिवायत है कि एक स्त्री अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास आई। आप (सल्ल०) ने पूछा, "ऐ आइशा, तुम इसे पहचानती हो? कहा कि नहीं, ऐ अल्लाह के नबी, आप हमें बताएँ। आप (सल्ल०) ने कहा, "यह गानेवाली अमुक क़बीले की है। क्या तुम पसन्द करोगी कि यह तुम्हारे लिए कुछ गाए?" इसके बाद उसने हज़रत आइशा को गाना सुनाया। नबी (सल्ल०) ने सुनकर कहा, "यह तो बला की गानेवाली है।"

(हदीस : नसई)

व्याख्या : इस हदीस के जिस अंश का अनुवाद बला की गानेवाली किया है उस अंश का कुछ लोग अनुवाद यह करते हैं कि "उसके नथुनों में शैतान ने फूँक मारी है।" हालाँकि यह एक अरबी मुहावरा है। इसका अर्थ यही होगा कि 'यह तो बला की गानेवाली है।' मात्र शैतान शब्द से इसके निन्दनीय होने का प्रमाण मानना सही न होगा। उस गायिका के गाने को आपने स्वयं सुना और उम्मुल-मुमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) को सुनवाया, फिर उसे शैतान से कैसे सम्बद्ध कर सकते हैं।

(5) हज़रत आइशा (रज़ि०) से रिवायत है कि जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मदीना में पदार्पण किया तो स्त्रियाँ और बच्चे (आपके स्वागत में) यह गीत गा रहे थे :

"आज हमपर चन्द्र उदित हुआ है, वदाअ की घाटियों से

हमपर अनिवार्य आभार ईश्वर का जब तक क़ोई पुकारनेवाला ईश्वर को पुकारे!

आप तो ऐसी जीवन प्रणाली लेकर आए हैं, जिसका पालन करना हमारे लिए आवश्यक है, ऐ हमारे बीच नबी के रूप में आनेवाले!'(हदीस : बैहक़ी)

व्याख्या : इस गीत का अन्तिम पद बैहक़ी की रिवायत में नहीं है। लेकिन दूसरी रिवायतों में यह पद मिलता है (अल-बदाया वन-नहाया, खण्ड-3, पृ०-197)। दूसरी रिवायतों से यह भी मालूम होता है कि स्त्रियाँ दफ़ पर गा रही थीं और गीत को गानेवाली केवल कम उम्र की लड़कियाँ ही न थीं बल्कि परदानशीन स्त्रियाँ भी इस अवसर पर झरोखों पर चढ़ गईं और आप (सल्ल०) के आगमन की ख़ुशी में "आज हमपर चंद्र उदित हुआ है" गाने लगीं।

(6) हज़रत बुरैदा-बिन-हसीब (रज़ि०) से रिवायत है कि एक बार जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) किसी ग़ज़वे (युद्ध) से वापस तशरीफ़ लाए तो एक काली-सी लड़की आप (सल्ल०) के पास आकर कहने लगी कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने मन्नत मानी थी कि अगर अल्लाह आप को सुरक्षित वापस ले आया तो मैं आपके सामने दफ़ बजा-बजाकर गाऊँगी। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर मन्नत मानी थी तो गा-बजा ले, अन्यथा रहने दे। इसके बाद वह गाने-बजाने लगी। इतने में हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) आए और वह बजाती रही। फिर हज़रत उसमान (रज़ि०) आए और वह बजाती ही रही। फिर हज़रत उमर (रज़ि०) आए तो उसने दफ़ को अपने कूल्हे के नीचे रख लिया और उसपर बैठ गई। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : "ऐ उमर, तुमसे शैतान भी डरता है।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : अर्थात् उमर (रज़ि०) से जब शैतान डर जाता है तो यह स्त्री क्यों न डरकर चुप हो जाती। इसका यह मतलब हरगिज़ नहीं है कि उस स्त्री का गाना-बजाना कोई शैतानी कर्म था। अगर यह बात होती तो नबी (सल्ल०) उसे कदापि न सुनते और न हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) और हज़रत उसमान (रज़ि०) को उसके सुनने की इजाज़त देते। हज़रत उमर (रज़ि०) स्वभाव के

लिहाज़ से सख़्त थे और उनकी इस सख़्ती से छोटे–बड़े सभी परिचित थे। उस स्त्री को डर हुआ कि कहीं उसे उनकी डाँट न सुननी पड़े। हज़रत अबू–बक्र (रज़ि०) और हज़रत उसमान (रज़ि०) अपने स्वभाव के लिहाज़ से बहुत ही नर्म थे। इसलिए उनके आने पर स्त्री को कोई भय न हुआ और वह यथापूर्वक गाती–बजाती रही।

(7) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक स्त्री नबी (सल्ल०) के पास गा रही थी। इतने में हज़रत उमर (रज़ि०) ने हाज़िर होने की इजाज़त चाही। उस गानेवाली ने दफ़ को नीचे डाल दिया और खड़ी हो गई। जब हज़रत उमर (रज़ि०) अन्दर आए तो नबी (सल्ल०) हँस रहे थे। हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा कि मेरे माँ–बाप आप पर क़ुरबान हों, आप क्यों हँसे? आप (सल्ल०) ने वस्तुस्थिति का वर्णन किया। इसपर हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा कि मैं तो यहाँ से टलने का नहीं जब तक वही न सुन लूँ जिसको अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने सुना है। आख़िर हज़रत उमर (रज़ि०) ने भी सुना।

(......... ?)

व्याख्या : यह हदीस मुहम्मद–बिन–ताहिर मुहद्दिस ने अपनी सनद से रिवायत की है। इस रिवायत को एक–दूसरी सनद से मुहम्मद–बिन–इसहाक़ फ़ाकिही मुहद्दिस ने तारीख़े–मक्का में नक़्ल किया है। अल्लामा नूरुल्लाह इब्ने–इसहाक़ की सनद को सबसे ज़्यादा सही सनद क़रार देते हैं। हज़रत उमर (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की उपस्थिति में आग्रह करके गानेवाली का गाना–बजाना सुना। अगर उसके सुनने में हराम होने की तनिक भी सम्भावना होती तो हज़रत उमर (रज़ि०) कदापि उसके सुनने के लिए आग्रह न करते। और न ख़ुद नबी (सल्ल०) ही एक हराम चीज़ के सुनने की इजाज़त उन्हें दे सकते थे। यहाँ यह भी स्पष्ट रहे कि यह किसी ईद या शादी के अवसर की बात नहीं है वैध होने के लिए जिसकी फ़ुक़हा (धर्मशास्त्री) शर्त लगाते हैं।

(8) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) बैठे हुए थे कि हमने शोर और लड़कों की आवाज़ सुनी। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) खड़े हो गए। देखते हैं कि एक हबशी स्त्री थिरक–थिरककर गा रही है और बच्चे उसे घेरे हुए हैं। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ऐ आइशा, आओ देखो!" मैं आई और मैंने अपनी ठोड़ी अल्लाह के रसूल

(सल्ल०) के काँधे पर रख दी और देखने लग गई। आप (सल्ल०) ने कई बार पूछा, "क्या अभी जी नहीं भरा? क्या अभी जी नहीं भरा?" मैं इस ख़याल से कि देखूँ आप (सल्ल०) को मेरा कितना ख़याल है, यही कहती कि अभी नहीं। (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : यह और इस तरह की दूसरी रिवायतें इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि नबी (सल्ल०) में किसी प्रकार की अनुचित कठोरता बिल्कुल न थी। दूसरों के लिए आप (सल्ल०) अत्यन्त उदार थे। मोमिनों की माँ हज़रत आइशा (रज़ि०) का आप कितना दिल रखते थे। ज़रूरत के मुताबिक़ मनोरंजन की चीज़, गाना आदि सुन लेते थे। लेकिन यह बस यहीं तक था कि उसके कारण दीन और उसकी मूल अपेक्षाओं की ओर से असावधान न हों। ऐसे खेल-तमाशे के हराम होने में किसी को भी मतभेद नहीं हो सकता जिसका उद्देश्य आदमी को ग़ाफ़िल कर देना और सत्य मार्ग से हटा देना हो।

आज के युग में विज्ञान और तकनीक की उन्नति से सिनेमा, टेलीविज़न और इन्टरनेट आदि ने जन्म लिया है जिनकी पूर्णतः उपेक्षा नहीं की जा सकती। ज़रूरत इस बात की है कि इज्तिहादी (मीमांसिक) दृष्टि से काम लें और सोच-विचार करें कि इन नवीन आविष्कारों और चित्र और आवाज़ के मधुर मिश्रण से धार्मिक परम्पराओं के पुनरुत्थान और धर्म के प्रसार-प्रचार का काम किस प्रकार लिया जा सकता है और इन अत्यन्त प्रभावकारी साधनों का विध्वंस के बदले निर्माणात्मक कार्यों में किस प्रकार उपयोग कर सकते हैं।

कुत्ता-पालना

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जिस किसी ने कुत्ता पाला तो हर दिन उसके कर्म से एक क़ीरात सवाब (पुण्य और शुभफल) की कमी होती रहती है, सिवाय इसके कि कुत्ता खेती या जानवरों की सुरक्षा के लिए पाला जाए।"
(बुख़ारी)

व्याख्या : बुख़ारी की एक रिवायत में है, "सिवाय इसके कि वह कुत्ता बकरियों और खेती की सुरक्षा के लिए या शिकार के लिए हो।" यह हदीस बताती है कि कुत्ता पालने का शौक़ इस्लामी प्रवृत्ति के प्रतिकूल है। कुत्ता

पालने का शौक़ उसी व्यक्ति को हो सकता है जिसे अपने समय के मूल्य का कुछ भी एहसास न हो। निरर्थक कामों से दिलचस्पी उसी को होगी जो जीवन के मूल उद्देश्य से बेख़बर रहकर जीवन व्यतीत कर रहा हो। अलबत्ता ज़रूरत हो तो कुत्ता पालने की इजाज़त है। उदाहरणार्थ खेत या जानवरों की सुरक्षा या शिकार आदि के लिए कुत्ता पाला जा सकता है।

(2) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिस किसी ने कोई कुत्ता पाला सिवाय उस कुत्ते के जो जानवरों की सुरक्षा के लिए हो या शिकारी हो तो उसका सवाब (कर्मफल) प्रत्येक दिन दो क़ीरात के बराबर घटता रहेगा।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : कुत्ता एक नापाक (अपवित्र) जानवर है। यह लोगों के लिए तकलीफ़ का कारण भी होता है। कभी किसी बर्तन में मुँह डाल दे तो बर्तन नापाक हो जाए। कभी उसके कारण कपड़े नापाक हो जाते हैं। आने-जानेवाले लोगों पर बिना ज़रूरत के भी भौंकने लगता है और उन्हें काटने को दौड़ता है। इसलिए यदि ज़रूरत हो तभी उसे पाला जा सकता है। केवल शौक़ पूरा करने के लिए उसे पालना नादानी की बात है।

कुत्ता पालने के कारण किसी रिवायत में एक क़ीरात सवाब कम होने का वर्णन है और किसी रिवायत में दो क़ीरात सवाब के घटने का उल्लेख किया गया है। यह अन्तर कुत्तों की जाति के आधार पर भी हो सकता है। जो कुत्ता अधिक घातक और कष्टदायक हो उसके कारण दो क़ीरात शुभफल घटेगा, नहीं तो एक क़ीरात का घाटा तो होगा ही। यह भी सम्भव है कि यह अन्तर स्थान-भेद के आधार पर हो। पाक और प्रतिष्ठित स्थानों पर कुत्ता पालना, उस स्थान की अपेक्षा में जो पवित्र नगर से बाहर हो, अधिक बुरा है।

शिकार

(1) हज़रत अदी-बिन-हातिम (रज़ि०) से रिवायत है, वे कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा कि हमारा सम्बन्ध ऐसी क़ौम से है जिसके लोग इन कुत्तों के द्वारा शिकार करते हैं। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुमने सधाए हुए (प्रशिक्षित) कुत्ते को छोड़ते हुए अल्लाह का नाम लिया हो तो जो तुम्हारे लिए रख छोड़े उसमें से खाओ। अलबत्ता अगर वह

ख़ुद खा ले तो तुम न खाओ क्योंकि मुझे आशंका है कि उसने वास्तव में शिकार को अपने लिए पकड़ा है। और अगर उसके साथ दूसरे कुत्ते भी शरीक हो गए हों तो न खाओ।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस हदीस से शिकार के वैध होने का प्रमाण मिलता है। यदि सधाए हुए शिकारी जानवर के द्वारा शिकार किया जाए तो यह ज़रूरी है कि शिकारी जानवर (कुत्ते) को शिकार पर छोड़ते हुए अल्लाह का नाम ले लिया जाए। इसके बाद अगर शिकार जीवित मिले तो उसे ख़ुदा का नाम लेकर ज़िब्ह कर लिया जाए और अगर वह जीवित न मिले तो इसके बिना भी वह हलाल होगा। आरम्भ में शिकारी जानवर को उसपर छोड़ते समय अल्लाह का नाम लेना पर्याप्त समझा जाएगा। तीर का आदेश भी यही है, और अगर शिकारी जानवर अर्थात् कुत्ते ने शिकार करके कुछ खा लिया तो फिर उसे खाना वैध न होगा क्योंकि उसने शिकार को अपने लिए पकड़ा। शिकार करने के बाद अगर शिकार के पास छोड़े हुए कुत्ते के अलावा दूसरे कुत्ते भी मौजूद हों तो फिर उस शिकार का खाना हलाल न होगा, क्योंकि अल्लाह का नाम लेकर उन दूसरे कुत्तों को तो छोड़ा नहीं गया था।

मोमिन व्यक्ति के लिए यह वैध नहीं कि वह तौहीद की अपेक्षाओं की किसी समय भी उपेक्षा करे। तौहीद का ध्यान रखना जीवन का प्रथम कर्तव्य है। तौहीद केवल कोई शुष्क धारणा नहीं है बल्कि मोमिन के लिए इसकी हैसियत एक कोमल और सूक्ष्म एहसास की होती है। ऐसा कोमल एहसास जो साधारण-से-साधारण आघात भी सहन नहीं कर सकता।

पुरातत्त्व

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि लोग अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ हिज्र अर्थात् समूद के भू-भाग में उतरे। लोगों ने वहाँ के कुँओं का पानी पीने के लिए लिया और उससे आटा गूँधा। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उन्हें आदेश दिया कि जो पीने का पानी लिया है उसे बहा दें और आटा ऊँट को खिला दें (ख़ुद न खाएँ)। और आप (सल्ल०) ने उन्हें आदेश दिया कि पीने का पानी उस कुएँ से लें जिसपर (हज़रत सालेह अलैहि० की) ऊँटनी (पानी पीने के लिए) आती थी। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि पुरातत्त्व और शिक्षाप्रद स्थानों से हमें क्या शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। विनष्ट होनेवाली बस्तियाँ और खण्डहर सैर-सपाटे के लिए नहीं हैं, बल्कि वे हमारी शिक्षा के लिए हैं। उनको पर्यटन स्थल कदापि नहीं बनाना चाहिए। ऐसे स्थलों से होकर जाना पड़े तो इतना भय उत्पन्न होना चाहिए कि हम रो पड़ें। बेहतर है कि वहाँ से जल्द से जल्द निकल जाएँ। न वहाँ का पानी इस्तेमाल करें और न अन्य कोई चीज़ काम में लाएँ। और अगर भूल से वहाँ के पानी से आटा आदि गूँध लिया हो तो उसे जानवरों को खिला दें, ख़ुद उसकी रोटी कदापि न खाएँ। कहीं ऐसा न हो कि विनष्ट और यातना ग्रस्त बस्तियों को देखने के बाद हमारा खाना-पीना और सैर-सपाटा हमारी ग़फ़लत और लापरवाही का द्योतक हो और हम भी ख़ुदा की यातना की लपेट में आ जाएँ।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) बयान करते हैं कि हम लोग अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ हिज्र की घाटी से गुज़रे। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उन लोगों के घरों में प्रवेश न करना जिन्होंने अपने आप पर ज़ुल्म किया, सिवाय इसके कि रोते और क्षमा माँगते हुए प्रवेश करो। बचो, कहीं ऐसा न हो कि तुमपर उसी प्रकार का अज़ाब आ जाए जो उनपर आया था।" फिर आप (सल्ल०) ने सवारी को डाँटा और उसे बहुत तेज़ी से हाँका यहाँ तक कि हिज्र पीछे रह गया। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अल्लाह के प्रकोप और उसकी नाराज़ी के ख़्याल से तो हमें हमेशा और हर हाल में भयभीत रहना चाहिए। ऐसे स्थान पर पहुँचकर अल्लाह का भय हमें और अधिक होना चाहिए जो कभी अल्लाह के अज़ाब का निशाना बन चुका हो। पिकनिक (Picnic) और मनोरंजन के लिए ऐसे स्थलों का चयन हरगिज़ नहीं करना चाहिए जिनपर अतीत में कभी ख़ुदा का अज़ाब उतर चुका हो।

स्वप्न

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नुबूवत के लक्षणों में से अब कुछ शेष नहीं रहा सिवाय मुबश्शिरात (शुभ-सूचना) के।" पूछा कि मुबश्शिरात से अभिप्रेत क्या है? आप (सल्ल०) ने कहा, "अच्छे स्वप्न।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : नुबूवत के द्वारा इनसान को उन बातों की सूचना मिल सकती है जिनके जानने का कोई दूसरा साधन हमारे पास नहीं। परोक्ष से सम्बन्धित बातों के बारे में जब सत्यज्ञान प्राप्त न हो, मनुष्य के लिए कोई जीवन-दर्शन निर्धारित नहीं किया जा सकता। मनुष्य के जीवन का बड़ा भाग परोक्ष से सम्बन्ध रखता है, उदाहरणार्थ, उसका स्रष्टा कौन है ? इनसान के दुनिया में पैदा किए जाने का मूल उद्देश्य क्या है ? इनसान की जीवन-यात्रा की अन्तिम मंज़िल क्या है ? इत्यादि। इन बातों के विषय में सम्यक ज्ञान प्राप्त करने का साधन मात्र नुबूवत है। जीवन के उन पहलुओं को जिनका सम्बन्ध परोक्ष से है, हम नज़रअन्दाज़ भी नहीं कर सकते। उनके बारे में कोई न कोई तो मत निश्चित करना होगा। अगर कोई व्यक्ति उनके बारे में मौन धारण करता और वर्तमान में कोई निर्णय नहीं लेता तब भी व्यावहारिक रूप से वह अपना जीवन उस प्रकार व्यतीत करने पर बाध्य होगा जैसे सांसारिक जीवन ही उसके लिए सब कुछ है। मौत के बाद के मरहलों और चरणों के सिलसिले में अगर वह अनभिज्ञ है तो फिर उन मरहलों से सफलता के साथ सुरक्षापूर्वक गुज़रने के लिए वह पहले से कोई तैयारी कैसे कर सकता है। वह तो दुनिया में इस प्रकार जीवन व्यतीत करने पर विवश होगा जैसे आगे कुछ भी होनेवाला नहीं है।

नुबूवत के द्वारा हमें सत्य धारणाओं और सम्यक दृष्टिकोण का ज्ञान प्राप्त होता है और सम्यक जीवन-प्रणाली से हम परिचित होते हैं। उन दृष्टिकोणों और धारणाओं के विषय में जिनका सम्बन्ध परोक्ष की बातों से है, नुबूवत ही हमारा मार्गदर्शन कर सकती है।

नबी (सल्ल०) के बाद चूँकि नुबूवत का सिलसिला समाप्त हो चुका है, इसलिए आप (सल्ल०) के कथन का अर्थ यह है कि आप (सल्ल०) के बाद दुनिया में नुबूवत और नुबूवत की कोई चीज़ बाक़ी न रहेगी। परोक्ष लोक से प्रकाशना (Revelation) का सिलसिला टूट चुका होगा। अलबत्ता नुबूवत से मिलती-जुलती यदि कोई चीज़ शेष रहेगी तो वे अच्छे स्वप्न हैं। ऐसी ख़बर और सूचना जिसके प्राप्त करने का कोई भौतिक साधन नहीं हो सकता। ऐसी सूचना या ख़बर ईमानवालों को स्वप्न के द्वारा मिल सकेगी। यहाँ यह बात ध्यान में रहे कि अच्छे-से-अच्छा स्वप्न या अलौकिक दर्शन किसी को नबी नहीं बना सकता। नुबूवत या पैग़म्बरी-चीज़-ही और है। नुबूवत वास्तव में

अर्जित की हुई वस्तु नहीं, एक ईश-प्रदत्त अनुग्रह है। अल्लाह ने जिसे चाहा प्रदान किया। सच्चे स्वप्न की हैसियत शुभ-सूचनाओं की है, इनसे हमें परितोष प्राप्त हो सकता है। इनके द्वारा जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं, मानव-इतिहास में उनसे लाभ उठाया गया है।

(2) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अच्छा स्वप्न नुबूवत के छियालीस हिस्सों में से एक हिस्सा है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : समरूपता के कारण अच्छे स्वप्न को नुबूवत का छियालीसवाँ हिस्सा ठहराया गया है। छियालीसवाँ हिस्सा कहने से किसी विशेष संख्या को निश्चित करना अभीष्ट नहीं है, बल्कि अभीष्ट केवल आधिक्य है। अर्थात् अच्छा स्वप्न नुबूवत का हिस्सा (अंश) है। चाहे यह हिस्सा बहुत थोड़ा ही क्यों न हो। अतएव छियालीस के बदले एक रिवायत में छिहत्तर और एक रिवायत में चौबीस की संख्या का उल्लेख हुआ है। स्वप्न को नुबूवत का छियालीसवाँ हिस्सा कहना बिल्कुल ऐसा ही है जैसे एक हदीस में कहा गया है कि नेक चलन, सहनशीलता और मध्यम मार्ग का अनुसरण नुबूवत में से है। अर्थात् इसे साधारण चीज़ न समझो, इसका सम्बन्ध तो नुबूवत से है। यह वह नैतिक गुण है जो नबियों को प्रदान किया गया।

(3) हज़रत अबू-क़तादा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अच्छा ख़ाब ख़ुदा की तरफ़ से होता है और बुरा ख़ाब शैतान की तरफ़ से। अतः जब तुममें से कोई व्यक्ति अच्छा ख़ाब देखे तो उसे सिर्फ़ उस व्यक्ति से बयान करे जिससे उसे प्रेम हो और जब वह कोई ऐसा ख़ाब देखे जो उसे पसन्द नहीं, तो उसे चाहिए कि वह उस ख़ाब और शैतान की अनिष्टता से अल्लाह की पनाह माँगे और तीन बार थुथकार दे। और किसी से उस ख़ाब को बयान न करे। इसलिए कि उस ख़ाब से उसका कदापि अनिष्ट न होगा।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि अच्छे ख़ाब को बयान करे तो सिर्फ़ उस व्यक्ति से बयान करे जो अपना दोस्त और शुभ-चिन्तक हो। जिसको हमारे प्रति कोई सहानुभूति नहीं उसके मन में इससे ईर्ष्या पैदा हो सकती है और यह

चीज़ अपने लिए और ख़ुद उसके लिए भी घातक है। क़ुरआन में भी है कि हज़रत याक़ूब (अलैहि०) ने अपने बेटे हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) से कहा था कि तुम अपना ख़ाब अपने भाइयों से बयान न करना। वे समझते थे कि इससे उनकी ईर्ष्या बढ़ेगी और वे हज़रत यूसुफ़ को हानि पहुँचाने की कोशिश करेंगे। शैतान मनुष्य का खुला दुश्मन है, वह अपनी चालों से बाज़ आनेवाला नहीं है। वह उन्हें बुराई ही पर उभारेगा। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) ने बचपन में एक अच्छा ख़ाब देखा था जिसमें इस बात की ओर संकेत पाया जाता था कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) को ख़ुदा जीवन में सम्मानित एवं प्रतिष्ठित पद प्रदान करनेवाला है। जब हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) ने अपना ख़ाब अपने आदरणीय पिता से बयान किया तो उन्होंने फ़रमाया कि तुम अपना यह ख़ाब अपने भाइयों से कदापि बयान न करना। (देखिए, क़ुरआन, सूरा यूसुफ़, आयत 4-6)

ख़ाब बुरा हो तो किसी से बयान नहीं करना चाहिए। बुरा ख़ाब शैतानी प्रभाव से रिक्त नहीं होता। शैतान चाहता है कि मोमिन बन्दे को परेशानी में डाल दे। यहाँ तक कि वह ख़ुदा से बदगुमान और उसकी रहमत से निराश हो जाए। सहीह मुस्लिम में है कि जब कोई बुरा ख़ाब देखे तो बाईं तरफ़ तीन बार थुथकार दे। और तीन बार शैतान की बुराई से बचने के लिए ख़ुदा से पनाह माँगे। और अपनी करवट बदल दे जिसपर वह ख़ाब देखने के समय सोया हुआ था। यह चीज़ बुरे ख़ाब के प्रभावों को दूर करने में बहुत अधिक सहायक होगी। मनोविज्ञान की दृष्टि से भी इसका बड़ा महत्त्व है।

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब क़ियामत निकट होगी तो मोमिन का ख़ाब झूठा न होगा। और मोमिन का ख़ाब नुबूवत के छियालीस हिस्सों में से एक हिस्सा है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : क़ियामत का दिन वह है जब सारी सच्चाइयाँ बिल्कुल खुलकर सामने आ जाएँगी। सत्य मनुष्य की दृष्टि से छिपा न रहेगा। क़ियामत के निकट आ जाने का एक प्रभाव यह होगा कि मोमिन का ख़ाब स्पष्ट रूप से सच्चा सिद्ध होगा, उसका ख़ाब झूठा न होगा। जिस प्रकार सुबह के क़रीब होने पर उसके लक्षण प्रकट होने लगते हैं, ठीक उसी प्रकार क़ियामत का समय

क़रीब आ जाने पर उसके लक्षण और प्रभाव भी प्रकट होने लगेंगे। उसके अच्छे प्रभाव मोमिन के जीवन से प्रकट होंगे। इसलिए कि मोमिन के जीवन का निर्माण क़ियामत के तथ्य के समरूप होता है। उसके विरुद्ध नहीं।

(5) हज़रत अबू-मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मैंने ख़ाब में देखा कि मैंने तलवार को हिलाया तो वह बीच से टूट गई। यह वह मुसीबत थी जो उहुद के दिन मोमिनीन की तरफ़ से पहुँची। फिर मैंने दूसरी बार उसे हिलाया तो वह पहले से कहीं ज़्यादा अच्छी हो गई। यह वह चीज़ थी जो ख़ुदा ने विजय और मोमिनों के समागम के रूप में प्रकट की।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस हदीस में नबी (सल्ल०) ने अपने एक ख़ाब और उसके फल की चर्चा की है। आगे घटित होनेवाली घटनाएँ ख़ाब में साधारणतया रूपक के रूप में हमारे सामने आती हैं। इसकी पुष्टि इस हदीस से भी होती है। हदीसों में बहुत-से ख़ाबों और उनके स्वप्न-फल का उल्लेख मिलता है। मनुष्य के जीवन में ख़ाब के महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता। हमारे ख़ाब हमारे चरित्र और हमारी आन्तरिक दशा को प्रतिबिम्बित करते हैं। यह बात भी ध्यान देने की है कि अच्छे और सच्चे ख़ाब के लिए आचरण की पवित्रता ही नहीं योग्यता की भी आवश्यकता होती है।

सच्चे ख़ाब वास्तव में ख़ुदा की निशानी होते हैं। वे इस बात का प्रमाण होते हैं कि यहाँ केवल भौतिकता ही का क्रिया-कलाप नहीं पाया जाता। ज़िन्दगी में भौतिकता के अतिरिक्त भी कुछ है। तथ्य सिर्फ़ भौतिकता तक ही सीमित नहीं है। ख़ाब में इनसान की दबी हुई इच्छाओं और वासनाओं ही का प्रस्फुटन नहीं होता है जैसा कि कुछ लोग फ़्रायड (Freud) के दृष्टिकोण से प्रभावित होकर समझने लगे हैं। भविष्य में घटित होनेवाली उन असंभावित घटनाओं की दबी हुई इच्छाएँ लेकर कौन सोता है जो स्वप्न के ठीक अनुरूप घटित होते देखी जाती हैं।

शुभ-शकुन

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) को यह फ़रमाते हुए सुना, "अपशकुन कोई चीज़ नहीं, अच्छा तो शुभ-शकुन

है।" लोगों ने कहा कि शुभ-शकुन क्या है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अच्छी बात जो तुममें से कोई सुने।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मुस्लिम की एक रिवायत में है कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मुझे शुभ-शकुन पसन्द है।"

शकुन जैसे कि बिल्ली ने रास्ता काट दिया तो यह समझना कि इस यात्रा में ख़तरा है या जिस उद्देश्य के लिए यात्रा कर रहे हैं उसमें असफलता होगी, इसका इस्लाम में कोई महत्त्व नहीं है। यह मात्र भ्रम है जिसको दिल से दूर कर देना चाहिए। सब कुछ अल्लाह के इरादे के अधीन है। ख़ुदा की इच्छा में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। अलबत्ता कोई अच्छी और आशापूर्ण बात कोई सुने तो यह एक नेक फ़ाल या शुभ-शकुन है। इससे स्वाभाविक रूप से जी प्रसन्न होता है और आदमी के अन्दर हौसला पैदा होता है। उदाहरणस्वरूप बीमार व्यक्ति किसी से स्वास्थ्य की बातें सुने या परेशान व्यक्ति किसी से ख़ुशी के शब्द सुने तो यह एक प्रसन्नता-परक बात है। इससे बीमार के अच्छे होने और परेशान व्यक्ति की परेशानी के दूर हो जाने की आशा को बल मिलता है। इस्लाम अपने अनुयायियों को निराशावादी देखना नहीं चाहता। उदासी, निराशा और असन्तोष तो कुफ़्र करनेवालों का लक्षण है।

(2) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) नेक फ़ाल (शुभ-शकुन) लेते थे, अप-शकुन नहीं। इसी तरह आप अच्छे नाम पसन्द करते थे। (हदीस : शरहुस्सुन्नह)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) लोगों के अच्छे नामों और जगहों को शुभ-शकुन समझते थे। नेक फ़ाल से दिल को ख़ुशी और इत्मीनान हासिल होता है और इससे अच्छी आशाओं की तरफ़ ध्यान जाता है। यह प्रिय बात है यद्यपि इच्छा पूरी न हो सके। अपशकुन निन्दनीय और निषिद्ध है, क्योंकि इससे आदमी अकारण दुविधा और क्षोभ में पड़ जाता है और बहुत दूर की आशंकाओं में ग्रस्त हो जाता है। हालाँकि होगा वही जो ख़ुदा की इच्छा होगी।

सामुद्रक विद्या (क़ियाफ़ा)

(1) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि एक दिन अल्लाह के

रसूल (सल्ल०) बहुत ख़ुश-ख़ुश मेरे पास आए और फ़रमाया, "क्या तुम्हें मालूम नहीं कि मुजज़्ज़िज़ मुद्लिजी (एक सामुद्रक विद्या के ज्ञाता का नाम) आया और जब उसने उसामा और ज़ैद को देखा जो इस तरह चादर ओढ़े सो रहे थे कि उनके सिर छुपे हुए थे और उनके पैर खुले हुए थे तो उसने कहा कि इन (दोनों के) पैरों में पारस्परिक सम्बन्ध वंश का है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : हज़रत ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि०) गोरे और सुन्दर थे जबकि उनके बेटे उसामा (रज़ि०) का रंग गोरा न था। इस अन्तर के कारण मुनाफ़िक़ हज़रत उसामा (रज़ि०) को ऐब लगाते थे और कहते थे कि वे ज़ैद के बेटे नहीं हो सकते। नबी (सल्ल०) मुनाफ़िक़ों की इस बात से दुखी होते थे। उसी बीच यह घटना घटी जिसका उल्लेख इस रिवायत में है। मुजज़्ज़िज़ मुद्लिजी अरब का प्रसिद्ध सामुद्रक विद्या का ज्ञाता था। वह लोगों का रंग-रूप देखकर उनके वृत्तांत और गुण एवं विशिष्टताएँ जान लिया करता था। उसने हज़रत ज़ैद (रज़ि०) और हज़रत उसामा (रज़ि०) के पाँव को देखकर क़ियाफ़ा (सामुद्रक विद्या) के अनुसार यह फ़ैसला किया कि ये दोनों आदमी जो चादर ओढ़े सो रहे हैं, इनके पैर गवाही देते हैं कि ये बाप-बेटे हैं। नबी (सल्ल०) को इससे बेहद ख़ुशी हुई कि अब मुनाफ़िक़ों की ज़बानें बन्द हो जाएँगी और वे उसामा (रज़ि०) की वंशावली पर चोट न कर सकेंगे। क्योंकि अरबों में सामुद्रक विद्या के ज्ञाता का कथन विश्वसनीय समझा जाता था और उनके फ़ैसले को अरबवाले प्रमाण मानते थे।

इस रिवायत से मालूम हुआ कि सामुद्रक विद्या को निराधार नहीं ठहराया जा सकता, अलबत्ता इसमें दक्षता और कुशलता शर्त है। पामिस्ट्री (हस्तरेखा-ज्ञान) भी वास्तव में सामुद्रक विद्या की ही एक शाखा है।

ज्योतिष

(1) हज़रब अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह आसमान से कोई बरकत उतारता है तो मनुष्यों का एक गरोह अनिवार्यतः उसके द्वारा कुफ़्र में पड़ जाता है। अल्लाह वर्षा करता है तो कुछ लोग कहते हैं कि अमुक सितारे के प्रभाव से यह वर्षा हुई।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : वर्षा होने पर कुछ ऐसे लोग अवश्य होते हैं जो इसे ईश्वर की कृपा और अनुकम्पा न समझकर उसे दूसरों, उदाहरणार्थ नक्षत्रों या देवी-देवताओं का चमत्कार या उनकी कृपा समझते हैं। इस तरह ख़ुदा का आभार स्वीकार न करके अपने अधर्म और अकृतज्ञता का प्रदर्शन करते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि नक्षत्रों और तारों से भी मनुष्य लाभ उठा सकता है और उठाता भी है। क़ुरआन में है, "और सितारों के द्वारा भी वे राह पाते हैं" (अन-नह्ल, 16)। "और वही है जिसने तुम्हारे लिए तारे बनाए, ताकि तुम उनसे जल-थल के अन्धेरों में मार्ग प्राप्त कर सको" (अल-अनआम, 98)। लेकिन यह समझना कि तारे और नक्षत्र अपने आप ही प्रभावकारी हैं, उनमें जो प्रभावक गुण पाया जाता है वह किसी का प्रदत्त नहीं है और ईश्वर की कृपा और अनुग्रह की उपेक्षा करना एकेश्वरवाद के सर्वथा प्रतिकूल है। अल्लाह हम सबको इससे बचाए।

(2) हज़रत अबू-सईद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर अल्लाह पाँच वर्ष तक वर्षा से अपने बन्दों को वंचित रखे, फिर वर्षा करे तो लोगों का एक गरोह इस स्थिति में भी कुफ़्र में पड़कर यही कहेगा कि नौए-मिजदह के कारण हमपर वर्षा हुई।" (हदीस : नसई)

व्याख्या : नौए-मिजदह एक तारा और चाँद की मंज़िलों में से एक मंज़िल का नाम है। अज्ञानकाल में अरबवाले नौए-मिजदह को वर्षा का कारण मानते थे। वर्षा तो वास्तव में ख़ुदा के आदेश और उसकी अनुकम्पा ही से होती है, सितारों का निकलना और डूबना, नक्षत्र और नौअ आदि को वर्षा का लक्षण समझने में भले ही कोई बुराई न हो लेकिन सितारों या किसी नौअ के विषय में यह समझना कि उन्हें स्वयं ही प्रभावशक्ति प्राप्त है और वर्षा आदि का वास्तविक कारण वही है, यह एकेश्वरवादी धारणा के विपरीत है।

कहानत

(1) हज़रत मुआविया-बिन-हकम सलमी (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, कुछ कार्य हम अज्ञानकाल में किया करते थे, हम काहिनों के पास जाते थे। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अब काहिनों के पास मत जाओ।" मैंने कहा कि हम बुरा शकुन लिया करते थे। आप (सल्ल०) ने

फ़रमाया, "यह वह ख़याल है जो तुममें से किसी के दिल में गुज़रता है, लेकिन इसके कारण तुम अपना कोई काम न छोड़ो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : कहानत के कई प्रकार हैं। एक यह कि जिन्न और शैतानों के माध्यम से चतुर्दिक की ख़बरें ज्ञात करके बताए। दूसरे ज्योतिष के द्वारा भविष्य में घटित होनेवाली घटनाओं के विषय में ख़बर दे, हालाँकि अधिकतर उनकी बातें झूठी सिद्ध होती हैं। इसी प्रकार में एक एराफ़त भी है। अर्राफ़ उसे कहते हैं जो कार्य-कारणों और लक्षणों से भविष्य में होनेवाली घटनाओं के बारे में भविष्यवाणी करे। ये सारी चीज़ें कहानत के अन्तर्गत आती हैं। शरीअत ने इन सबसे रोका है और अल्लाह पर भरोसा करने की शिक्षा दी है। अतः एक हदीस में है : "जो व्यक्ति अर्राफ़ के पास जाए और उससे कोई बात पूछे तो उसकी चालीस दिन की नमाज़ स्वीकार न होगी।" (हदीस : मुस्लिम)

बुरे शकुन के सम्बन्ध में नबी (सल्ल०) कहते हैं कि कोई अप्रिय चीज़ सामने आ जाने से दिल में स्वाभाविक रूप से एक दुविधा तो अवश्य पैदा होती है। उदाहरणार्थ आप किसी ज़रूरी काम के इरादे से निकले कि पैर में ठोकर लग गई या किसी ने टोक दिया कि कहाँ चले? इससे दिल में यह ख़याल पैदा हो सकता है कि शायद वह काम जिसके लिए घर से निकले थे पूरा न हो सकेगा। मगर आदमी को दिल में इस तरह के ख़याल के आने के कारण से नेक काम से रुकना नहीं चाहिए। बल्कि हदीस में है कि "जब तुममें से कोई ऐसी चीज़ देखे जिसे वह नापसन्द करता है (अर्थात् जिससे अपशकुन लिया जाता है, जिससे मन में भ्रम और खटक पैदा होता है) तो चाहिए कि यह दुआ पढ़े : "ऐ अल्लाह, अच्छाइयों का लानेवाला केवल तू है और तू ही बुराइयों और ख़राबियों को दूर करनेवाला है और एक दशा को दूसरी दशा में बदलना और शक्ति का उपलब्ध होना अल्लाह की सहायता के बिना सम्भव नहीं।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

नहूसत (अशुभ होना)

(1) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, हम एक मकान में रहते थे जिसमें हमारे लोगों की संख्या भी अधिक थी और हमारे पास धन भी बहुत था। फिर हम एक-दूसरे

मकान में चले गए तो उसमें हमारी संख्या में भी कमी हो गई और हमारे धन भी थोड़े से रह गए। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उस मकान को छोड़ दो, जो बुरा है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् जब तुम्हें वह मकान तुम्हारे अनुकूल नहीं पड़ रहा है तो उसे छोड़ ही दो। यह बात जो दिल में बैठ गई है कि सारी हानि का कारण वह है, इस ख़याल से छुटकारा भी इसी रूप में मिल सकता है कि तुम उस घर को छोड़कर कहीं और रहने की व्यवस्था कर लो।

यह एक तथ्य है, विभिन्न ज्ञात और अज्ञात कारणों से विभिन्न स्थानों की विशिष्टताएँ अलग-अलग होती हैं। जिस जगह किसी क़ौम पर अज़ाब उतरा हुआ हो उस स्थान से शीघ्र निकल जाने का आदेश स्वयं नबी (सल्ल०) ने दिया है। इसके विपरीत जिस स्थान पर अल्लाह के नेक बन्दों का निवास रहा हो और जहाँ उनपर अल्लाह की ख़ास अनुकम्पाएँ हुई हों, उस स्थान से अच्छे प्रभावों और बरकतों की आशा बाद के समयों में भी की जा सकती है।

(2) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यदि नहूसत किसी चीज़ में हो तो वह घोड़े, स्त्री और घर में होगी।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : स्त्री और घर के महत्त्व से किसी को इनकार नहीं हो सकता। घोड़े को भी अरबवालों में विशेष महत्त्व प्राप्त था। इसलिए स्त्री और घर के साथ घोड़े का भी उल्लेख किया गया कि इन तीनों के सम्बन्ध में आदमी को सावधान रहने की ज़रूरत है। साधारण चीज़ों के बारे में चाहे आदमी को ज़्यादा परवाह न हो लेकिन इन तीन चीज़ों के सम्बन्ध में उसकी लापरवाही हानि और परेशानी का कारण बन सकती है। घोड़ा, स्त्री और घर परेशानी का कारण सिद्ध हुए तो जीवन अजीर्ण हो जाएगा। इसलिए घोड़ा ख़रीदते समय यह देख लेना ज़रूरी है कि उसमें कोई ऐब तो नहीं है। ऐसा न हो कि सवारी या जिस उद्देश्य के लिए उसे ख़रीदा है वह उसके योग्य न हो। यही बात स्त्री के विषय में भी कही जा सकती है। विवाह से पूर्व मनुष्य को यह हक़ है कि वह स्त्री के विषय में यह जान ले कि उसका स्वभाव कैसा है, और इस ओर से वह निश्चिन्त हो जाए। अपने दीन-धर्म की दृष्टि से वह कैसी है? इसी तरह उसके स्वास्थ्य के बारे में भी आश्वस्त हो जाना चाहिए। और स्त्री यदि

मुँहफट या बाँझ है तो वह पुरुष के लिए परेशानी पैदा कर सकती है। घर के बारे में भी यह देख लेना चाहिए कि वह तंग न हो और पड़ोसी भी बुरे न हों।

जादू-टोना

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "विनष्ट कर देनेवाली चीज़ों से बचो अर्थात् ईश्वर का साझी ठहराने और जादू से।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि सत्य और सच्चाई की शिक्षा के विपरीत जितनी भी चीज़ें हैं, इस्लाम उनको मिटाना चाहता है। वह अज्ञान के बदले ज्ञान, बुद्धिहीनता और अधमता के बदले सूझबूझ, धोखाधड़ी के बदले यथार्थप्रियता, अन्याय के बदले न्याय और अन्धकार के बदले प्रकाश को पसन्द करता है। वह चाहता है कि उसके अनुयायियों का चित् विशुद्ध ज्ञानपरक और वैज्ञानिक हो, वे अन्धविश्वासों के अन्धकारों में पड़े हुए न हों। उनके जीवन में विशुद्ध एकेश्वरवाद और ईशपरायणता का रंग हो।

इस हदीस में बहुदेववाद और जादू की गणना विनाशकारी चीज़ों में की गई है। बहुदेववाद में पड़कर आदमी अपनी मूल प्रकृति और अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ का गला घोंट देता है। इस तरह वह तबाही और विनाश के ऐसे गहरे गड्ढे में जा गिरता है जहाँ उसके लिए स्थायी यातना निश्चित है जिससे छुटकारा पाना उसके लिए सम्भव न होगा। बहुदेववाद से मनुष्य की प्रकृति विकृत हो जाती है और उसकी नैतिक व आध्यात्मिक प्रगति के समस्त द्वार बन्द हो जाते हैं। ईश्वर पर मिथ्यारोपण और निकृष्ट असत्य के सिवा शिर्क का और कोई अस्तित्व नहीं है। शिर्क सबसे बड़ा अन्याय है। इसी लिए महापापों में इसका उल्लेख सर्वप्रथम किया जाता है।

शिर्क या बहुदेववाद ईश्वर की सत्ता और गुणों तथा उसके अधिकारों में दूसरों को साझीदार बनाने का नाम है। जो गुण केवल ईश्वर के लिए विशिष्ट हैं उनसे किसी दूसरे को विभूषित करना, ख़ुदा के सिवा किसी दूसरे को वास्तविक रूप में ज़रूरतों को पूरा करनेवाला और कठिनाइयों को दूर करनेवाला मानना, ख़ुदा के अलावा दूसरों की पूजा करना और जीवन में उनको वह स्थान देना जो केवल ईश्वर को प्राप्त है, शिर्क है। इसी तरह ख़ुदा की सत्ता और

उसके अस्तित्व में किसी को सम्मिलित समझना भी शिर्क है, जैसे किसी को ईश्वर का पुत्र और औलाद ठहराना आदि। ख़ुदा के न तो व्यक्तित्त्व में कोई शरीक हो सकता है और न उसके गुणों में कोई उसका प्रतिद्वन्द्वी हो सकता है। वास्तविक पात्र वही है जिसकी आज्ञा का पालन किया जाए और वास्तविक शासक भी वही है। इसके विपरीत दूसरों के मार्गदर्शन को अपने लिए मोक्ष और कल्याण का साधन समझना भी शिर्क का एक घृणित रूप है।

शिर्क के अलावा दूसरी चीज़ जिसे इस हदीस में मनुष्य के लिए विनाशक घोषित किया है वह जादू है। जादू को रिवाज देना या किसी पर जादू करना पूर्णतः हराम है। जादू में धोखा और फ़रेबकारी से काम लिया जाता है और कभी ऐसे मंत्र पढ़े जाते हैं जिनमें दुष्ट आत्माओं से मदद ली जाती है। जादू में दक्षता प्राप्त करने के लिए कभी ऐसे कर्म भी किए जाते हैं कि जो दीन व ईमान के प्रतिकूल होते हैं। अतीत में जादू के द्वारा साधारणतया लोगों के प्राण लेने की चेष्टा की जाती थी। पति-पत्नी के मध्य इसके द्वारा विलगाव पैदा करना तो सामान्य बात थी।

वैसे तो अरबी भाषा में हर आश्चर्यजनक चीज़ को सिह्र या जादू कहते हैं जिसकी विस्मयकारिता के कारण निगाहों से छुपे हुए हों। यह भी एक प्रकार का जादू है कि दवाओं और पदार्थों के गुप्त प्रभावों और विशेषताओं के द्वारा अद्भुत चमत्कार दिखाते हैं। लोग चूँकि वास्तविक रहस्य से अनभिज्ञ होते हैं, इसलिए वे आश्चर्यचकित होकर रह जाते हैं। कभी हाथ की सफ़ाई से काम लेकर लोगों को आश्चर्य में डाला जाता है। जादू का एक प्रकार यह भी है कि आदमी ध्यान और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की शक्तियों को मस्तिष्क में एकत्रत करके और एकाग्रता की पराकाष्ठा की स्थिति उत्पन्न करके कुछ ऐसी शक्ति प्राप्त करता है कि उसके द्वारा जो उसके ख़याल में होता है उसे मूर्तमान करके सामने लाता हैं। ऐसे कर्म या सिद्धियाँ जिनमें शिर्क या कुफ़्र न पाया जाता हो, उसे पूर्णतः हराम नहीं कह सकते, अलबत्ता उसके दुरुपयोग को नाजायज़ और हराम ही कहा जाएगा।

नज़र लगना (दीठ)

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के

रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नज़र सत्य है।" (मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् किसी की नज़र किसी को लग सकती है। और जिसको नज़र लगी हुई हो वह उसके कारण बीमार हो सकता है। इससे मालूम हुआ कि आदमी के मन और उसकी निगाह में प्रभाव का पाया जाना असम्भव नहीं है। जिस प्रकार किसी नज़र से ईर्ष्या और बुरी प्रकृति के कारण हानि पहुँचती है इसी प्रकार इसके विपरीत पवित्र आत्मावाले और ईश्वर के प्रियजनों की नज़र कल्याणकारी होती है। उनकी निगाह के प्रभाव से कितने ही लोगों के जीवन में क्रान्ति आ जाती है और वे ग़लत रास्ते को छोड़कर नेक और सच्चरित्र बन जाते हैं। कुछ लोग अपना ध्यान दूसरों पर डालते हैं तो इसका उनपर प्रभाव पड़ता है। अगर आदमी की ध्यान-शक्ति अधिक बढ़ी हुई हो तो वह दूरस्थ स्थानों पर रहनेवाले व्यक्ति पर भी अपना प्रभाव डाल सकता है। टेलीपैथी में यही सिद्धान्त काम करता है। ध्यान के द्वारा कुछ रोगों का इलाज भी किया जाता है। इच्छा-शक्ति और चेतना-शक्ति का चमत्कार हिपनटिज़्म और मिस्मेरिज़्म या वशीकरण-शक्ति भी है। इसमें आदमी की इच्छा-शक्ति जितनी बढ़ी होगी उतना ही अधिक वह इसमें सफल होगा। इस शक्ति को अभ्यास और साधना के द्वारा बढ़ाया जाता है।

जिसको नज़र लग जाए उसको यह दुआ पढ़कर झाड़ना चाहिए—

बिस्मिल्लाह! अल्लाहुम्-मज़हब हर्रहा व बरदहा व स-बहा।

(हदीस : नसई, तबरानी)

"अल्लाह के नाम से, ऐ अल्लाह! तू इस (नज़र) के गर्म और सर्द और दुख-दर्द को दूर कर दे।"

क़ुम-बि-इज़्निल्लाह

"अल्लाह के हुक्म से खड़ा हो जा।"

झाड़-फूँक

(1) हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हज़्म के लोगों को साँप के झाड़-फूँक की इजाज़त दी और असमा-बिन्ते-उमैस से फ़रमाया कि "क्या कारण है कि मैं अपने भाई के बच्चों को दुबला देख रहा हूँ, क्या वे भूखे रहते हैं?" असमा

(रज़ि०) ने कहा कि नहीं, बल्कि उन्हें नज़र लग जाती है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "कोई झाड़-फूँक करो।" हज़रत असमा (रज़ि०) कहती हैं कि मैंने आपके सामने झाड़-फूँक का एक मंत्र पेश किया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "झाड़-फूँक करो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह जो कहा कि मैं अपने भाई के बच्चों को दुबला देख रहा हूँ तो भाई के बच्चों से तात्पर्य हज़रत ज़ाफ़र तय्यार (रज़ि०) के बच्चे हैं।

इस हदीस से मालूम होता है कि झाड़-फूँक और इस सम्बन्ध में जो मंत्र पढ़े जाते हैं वे प्रभाव से ख़ाली नहीं होते। अनुभवों से पता चलता है कि झाड़-फूँक और झाड़-फूँक के शब्द अपना विशेष प्रभाव रखते हैं। विषैले साँप के डसने से कितने ही लोग मरते रहते हैं। साँप के विष को उतारने की एक दुआ मुझे मालूम थी। मैंने उसे अपने एक नातेदार को सिखा दिया। कुछ ही वर्षों में उसने उसके द्वारा दो सौ से अधिक साँप काटे लोगों की जान बचाई। बहुत-से लोग हैरान होकर रह गए और वे यह स्वीकार करने पर बाध्य हुए कि विशिष्ट शब्दों (ख़ास कलिमात) में अल्लाह ने आश्चर्य जनक प्रभाव रखे हैं। इसकी भौतिक व्याख्या चाहे न की जा सके लेकिन इस तथ्य से इन्कार सम्भव नहीं कि उनके आश्चर्यजनक प्रभाव सामने आते हैं।

(2) हज़रत औफ़-बिन-मालिक अश्जई (रज़ि०) बयान करते हैं कि हम अज्ञान-काल में झाड़-फूँक किया करते थे। हमने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! इसके विषय में आप क्या कहते हैं? आप (सल्ल०) ने कहा, "अपने मंत्रों को मेरे सामने पेश करो। झाड़-फूँक के मंत्रों में कोई ख़राबी नहीं है, अगर उसमें शिर्क की कोई बात न हो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : झाड़-फूँक और उसमें पढ़े जानेवाले शब्दों में अगर कोई शिर्क (बहुदेववाद) की बात है तो फिर वह मोमिन के लिए हराम है। स्वास्थ्य के लिए अपने ईमान को किसी रूप में भी गँवाया नहीं जा सकता।

(3) हज़रत शिफ़ा-बिन्ते-अब्दुल्लाह (रज़ि०) बयान करती हैं कि मैं हज़रत हफ़सा (रज़ि०) के पास बैठी थी कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) आए और कहा कि तुम इन्हें (अर्थात् हज़रत हफ़सा को) नमला का अफ़सूँ (मंत्र) नहीं सिखा देतीं जिस तरह तुमने इन्हें लिखना सिखाया है।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : शिफ़ा उपाधि है। असल नाम उनका लैला था। आप अब्दुल्लाह-बिन-शम्स की बेटी थीं। नबी (सल्ल०) दोपहर में क़ैलूला (आराम) के लिए उनके यहाँ तशरीफ़ ले जाते थे।

नमला उन फुंसियों को कहते हैं जो पिसलियों पर निकलती हैं जिनसे आदमी को बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ती है। उनके कारण ऐसा लगता है जैसे उन फुंसियों की जगह चींटियाँ रेंग रही हों। सम्भवतः इसी समता के कारण उन फुंसियों को नमला (चींटी) कहने लगे।

इस हदीस से यह भी मालूम होता है कि किसी लाभदायक और उपयोगी ज्ञान के सीखने-सिखाने में कोई बुराई नहीं है। पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी आवश्यक ज्ञान-विज्ञान से सुशोभित होने का पूरा अधिकार रखती हैं। लिखने की आवश्यकता और उसके महत्त्व को कौन नहीं जानता। आज के युग में तो लेखन-कला ही नहीं कम्प्यूटर आदि ने भी इतना महत्त्व प्राप्त कर लिया है कि उनमें दक्षता प्राप्त करना समय की एक बड़ी आवश्यकता है।

चिकित्सा एवं उपचार

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह तआला ने कोई ऐसी बीमारी पैदा नहीं की जिसके लिए शिफ़ा (चिकित्सा) उसने न उतारी हो।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् मनुष्य अगर दुनिया में विविध रोगों में ग्रस्त होता है तो ख़ुदा ने उन रोगों की दवाएँ भी पैदा की हैं। मनुष्य को उन दवाओं से लाभ उठाना चाहिए।

(2) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "प्रत्येक रोग की दवा है। अतः जब दवा रोग के अनुकूल होती है तो अल्लाह के आदेश से बीमार अच्छा हो जाता है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् वास्तव में शिफ़ा देनेवाला तो अल्लाह ही है। दवाओं में बीमारी दूर करने का गुण उसी ने रखा है। किसी रोग में दवा उसी समय अपना प्रभाव दिखाती है जब अल्लाह का आदेश होता है। इसका ध्यान रखना आवश्यक है कि अल्लाह के उपकार और अनुग्रह के एहसास से दिल कभी ख़ाली न रहे।

समाज की सुन्दरता

किसी समाज में केवल न्याय व इनसाफ़ की स्थापना ही पर्याप्त नहीं होती। समाज में सुन्दरता और आकर्षण और सुन्दर वातावरण उस समय पैदा होता है जब उसके व्यक्तियों में पारस्परिक प्रेम और आत्मीयता पाई जाती हो। वे एक–दूसरे से नफ़रत न करते हों, बल्कि वे परस्पर एक–दूसरे के लिए अपने दिलों में अच्छी–से–अच्छी भावनाएँ रखते हों। स्वार्थपरता के स्थान पर त्याग और दानवीरता उनकी पहचान हो। स्वयं खाने की अपेक्षा दूसरों को खिलाने में उनको अधिक स्वाद आता हो। वास्तविक सुख उन्हें लेने में नहीं बल्कि दूसरों को देने में मिलता हो। दुनिया में रहकर उन्हें दुनिया से कहीं अधिक आख़िरत का आभास हो रहा हो। इस स्थिति में स्पष्ट है कि उनका दृष्टिकोण उन लोगों से बिल्कुल भिन्न होगा जो इसी वर्तमान दुनिया में सब कुछ पा लेने के इच्छुक हों। और यहाँ की सफलता उनकी दृष्टि में वास्तविक सफलता और यहाँ का घाटा उनकी निगाह में वास्तविक घाटा हो। इस प्रकार के लोग बिल्कुल अपने शरीर के आसपास जीते हैं। आत्मा भी कोई चीज़ है और उसकी भी कुछ अपेक्षाएँ और माँगें हो सकती हैं। इसके बारे में सोच-विचार करने के लिए उनके पास बिल्कुल ही समय नहीं होता। चूँकि उनका जीवन–विस्तार दुनिया ही तक होता है इसलिए उनसे किसी बड़ी क़ुरबानी की आशा नहीं की जा सकती और न उनसे इसकी आशा की जा सकती है कि वे जीवन के मूल रहस्य और उसके मूल उद्देश्य को समझने में दिलचस्पी ले सकते हैं।

इस तरह के लोगों के जीवन का सार संसार और सांसारिक वस्तुओं के सिवा और कुछ नहीं होता। उनकी सभ्यता का आधार भौतिक लाभ होता है। इसके सिवा उन्हें किसी आध्यात्मिक आवश्यकता का एहसास नहीं होता। जब स्वार्थपरता और उतावलापन ही उनके जीवन का मूल अक्ष होता है तो फिर वे मानवता पर जो ज़ुल्म और अत्याचार भी करें उसपर आश्चर्य नहीं किया जा सकता। उनमें लज्जा, आत्मसम्मान, सहानुभूति और संवेदनशीलता नाम की कोई चीज़ नहीं पाई जाएगी। उनका सम्पूर्ण अस्तित्त्व जड़त्व के आवरण से ढका हुआ होगा। बड़ी–से–बड़ी घटनाएँ और शिक्षाप्रद हादसे भी उन्हें जगाने में असफल रहते हैं।

समाज में इस्लाम व्यक्ति को कैसा देखना चाहता है इसका अन्दाज़ा नबी (सल्ल०) की उन पवित्र शिक्षाओं से किया जा सकता है जो आप (सल्ल०) ने इस सिलसिले में अपने अनुयायियों को दी हैं।

(1) हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने स्त्रियों और बच्चों को सम्भवतः किसी शादी से आते हुए देखा तो खड़े हो गए और तीन बार फ़रमाया, "अल्लाह गवाह है कि तुम मुझे सबसे अधिक प्रिय हो।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) के इस मुबारक कथन से इसका अच्छी तरह अन्दाज़ा किया जा सकता है कि पैग़म्बर को अपने अनुयायियों और उनके घरवालों से कितना अधिक प्रेम का सम्बन्ध होता है। प्रेम और प्यार का यही सम्बन्ध इस्लामी समाज की मूल आत्मा है जिसकी कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती। पैग़म्बर (सल्ल०) ने अपनी भावनाओं को प्रकट करके हमारा मार्गदर्शन किया है कि हमें परस्पर एक-दूसरे के साथ कितना गहरा और प्रेममय सम्बन्ध रखना चाहिए। और यह एक वास्तविकता है कि इस गहरे सम्बन्ध के बिना समाज को ख़ुशियों और आनन्द से आलोकित देखने का सपना कभी भी पूरा नहीं हो सकता।

(2) उम्मे-ख़ालिद-बिन्ते-ख़ालिद (रज़ि०) कहती हैं कि मैं छोटी बच्ची थी जब हबशा भू-भाग से आई। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मुझे एक चादर ओढ़ने के लिए दी जिसमें पेड़ आदि के चित्र थे। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) उन चित्रों पर हाथ फेरकर कह रहे थे, "कैसे अच्छे हैं ये, कैसे अच्छे हैं ये।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यह किसी व्यक्ति की महानता का प्रमाण है कि वह छोटे बच्चों तक के मनोभावों का ध्यान रख सके। और उन्हें ख़ुश करने के लिए उनके अनुभवों और भावनाओं को न केवल यह कि व्यक्त कर सके बल्कि उनकी ख़ुशियों में शरीक होकर वह स्वयं अपनी ख़ुशियाँ बढ़ाए। जो लोग अपने आपको चिन्तन के इतने उच्च शिखर पर आसीन समझने लगते हैं कि उन्हें बच्चों की मासूम दुनिया से कोई सम्बन्ध नहीं होता, वास्तव में वे मानव-जीवन से बहुत दूर और बहुत दूर चले जाते हैं, और इसे कभी भी अच्छा नहीं कहा जा सकता।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मोमिन, मोमिन का दर्पण है। और मोमिन, मोमिन का भाई है। वह उसे हानि और बरबादी से बचाता है और परोक्ष में उसके हक़ में निगाह रखता है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : दर्पण जितना अधिक साफ़-सुथरा हो अच्छा है। अगर वह मैला हो तो उससे दर्पण का काम नहीं लिया जा सकता। जिस तरह दर्पण देखकर लोग अपने को सँवारते हैं, उसी तरह मोमिन अपने भाइयों के सुधार और दुरुस्ती का साधन होता है। दर्पण राज़दार भी होता है। वह किसी के चेहरे का कोई ऐब सिर्फ़ उसी पर प्रकट करता है। दूसरों पर किसी के ऐब प्रकट नहीं करता और न वह किसी के ऐब को अपने अन्दर सुरक्षित रखने की कोशिश करता है। सामने से आदमी के हट जाने के बाद दर्पण में उसका कोई प्रतिबिम्ब व प्रभाव बाक़ी नहीं रहता।

यह हदीस मोमिन का एक विशेष गुण बयान करती है कि मोमिन व्यक्ति अपने भाई की अनुपस्थिति में उसके माल और इज़्ज़त की हिफ़ाज़त करता है और इसे वह अपना कर्तव्य समझता है। अगर भाई की इज़्ज़त पर प्रहार होता है तो वह उसके बचाव की कोशिश करता है। उसे इसकी चिन्ता होती है कि भाई की आबरू को हरगिज़ आघात न पहुँचे।

(4) हज़रत अबू-दरदा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क्या मैं तुम्हें बताऊँ कि रोज़े, नमाज़, सदक़ा (दान) से भी दर्जे में बढ़कर क्या चीज़ है?" लोगों ने कहा कि क्यों नहीं, ऐ अल्लाह के रसूल! आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "आपस में मिलाप कराना, और आपस का बिगाड़ वह चीज़ है जो मूँड देनेवाली है।"

(हदीस : अबू-दाऊद, तिर्मिज़ी)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि लोगों में मिलाप और समझौता कराना और उनके झगड़ों को दूर करना इस्लाम की निगाह में कितनी बड़ी नेकी है। इसे नमाज़ और सदक़ों से भी बढ़कर बताया जा रहा है। आपस के अच्छे और मधुर सम्बन्ध इस बात का प्रमाण होते हैं कि हम वह जीवन प्राप्त कर सके हैं जो इस्लाम में अभीष्ट है। लेकिन अगर हमारा सुधार न हो सका और हमारी ऊर्जा एक-दूसरे को नीचा दिखाने में ख़र्च हो रही है तो इसका

अर्थ इसके सिवा और क्या हो सकता है कि हमारी नमाज़ें और हमारे सदक़े अपनी मूलात्मा से रिक्त हैं। नमाज़ और सदक़ा दोनों ही की मूलात्मा एहसास की सूक्ष्मता है। दोनों में क्रियाशील प्रेम ही होता है। ख़ुदा के प्रेम से अपने दिल को आबाद रखना और उसके बन्दों से प्रेम और सहानुभूति का सम्बन्ध स्थापित करना ही वास्तविक धर्म है। इस भौतिक जगत् में हमारे धर्म का वास्तविक प्रदर्शन हमारे अपने पारस्परिक सम्बन्धों के द्वारा ही होता है। ख़ुदा हमसे कितना राज़ी और ख़ुश है यह जानने का साधन हमारे पास नहीं है। लेकिन उसके बन्दों को हमने कितना आराम पहुँचाया और वे हमसे कितना सन्तुष्ट हैं, इसे आसानी से जाना जा सकता है। इसलिए यह पैमाना ऐसा है जिसके द्वारा हम आसानी से अन्दाज़ा कर सकते हैं कि हमारी धार्मिक स्थिति कितनी दुरुस्त है। अतः आपस के सम्बन्धों के सुधार को जितना भी महत्त्व दिया जाए वह कम है। अब अगर हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति फ़ितना व फ़साद के लिए आतुर है और वह लोगों के पारस्परिक सम्बन्ध बिगाड़ने में लगा हुआ है तो इससे उसकी सारी ही नेकियों पर पानी फिर जाता है और उसके समस्त अच्छे कर्म निरर्थक सिद्ध होते हैं।

(5) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि नबी (सल्ल०) को जब किसी व्यक्ति की किसी बुरी बात की ख़बर पहुँचती तो आप (सल्ल०) यह नहीं कहते थे कि अमुक व्यक्ति को क्या हो गया है कि वह ऐसा कहता है, बल्कि आप (सल्ल०) कहते, "लोगों का क्या हाल हो गया है कि वे ऐसा और ऐसा कहते हैं।"
(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् किसी का नाम लेकर उसकी बुराई की चर्चा नहीं करते थे कि इससे उसकी रुसवाई होगी। आप (सल्ल०) सामान्य रूप से सचेत करते कि वह व्यक्ति अपना सुधार कर ले और रुसवा न हो। यथासंभव आपकी कोशिश यही होती थी कि आदमी की इज़्ज़त और उसकी प्रतिष्ठा को आघात न पहुँचे।

(6) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "निश्चय ही उत्तम नेकी और अत्यन्त सौभाग्य की बात यह है कि आदमी अपने पिता के मित्रों के साथ उसके मरने के पश्चात् अच्छा व्यवहार करे और उनसे नाता बनाए रखे।"
(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : पिता चाहे दुनिया से प्रस्थान कर गया हो या घर पर मौजूद न हो, बेटे का कर्तव्य है कि वह अपने पिता का प्रतिनिधित्व करे और उसके मिलने-जुलनेवाले दोस्तों को यह महसूस न होने दे कि अब उन्हें पहचाननेवाला कोई नहीं है। यह बड़े सौभाग्य और वफ़ादारी की बात है कि पिता के मौजूद न रहने पर भी बेटा उसके हक़ का आदर करता हो।

(7) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम नेकी और अच्छे व्यवहार से सम्बन्ध रखनेवाली किसी भी चीज़ को तुच्छ न समझो, और नेकी का एक रूप यह भी है कि तुम अपने भाई से प्रफुल्लता के साथ मिलो, और यह कि तुम अपने डोल से अपने भाई के बर्तन में पानी डाल दो।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : भाई से प्रफुल्लता के साथ मिलने और भाई के बर्तन में अपने डोल से पानी डालने का उल्लेख उदाहरण स्वरूप किया गया है। तात्पर्य यह है कि नेकी का काम देखने में छोटे-से-छोटा क्यों न हो, फिर भी ऐसा नहीं है कि उसे छोटा कहा जाए। इससे यह भी मालूम हुआ कि नेकी और उपकार दौलत पर निर्भर नहीं करते। निर्धन व्यक्ति को नेकी के अवसर मिलते रहते हैं। भाई से मिलकर ख़ुशी का प्रदर्शन करने या उसके बर्तन में पानी डाल देने में कहाँ किसी धन-सम्पत्ति की आवश्यकता पड़ती है। नबी (सल्ल०) की शिक्षाओं को यदि व्यवहार में लाया जाए तो आप सोच सकते हैं कि हमारे आपस के सम्बन्ध में कितना आकर्षण और सुन्दरता आ जाएगी।

(8) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैं अपने सेवक को कितनी बार क्षमा करूँ? नबी (सल्ल०) ने उसे कोई उत्तर नहीं दिया और चुप रहे। उसने फिर कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! मैं अपने सेवक को कितनी बार क्षमा करूँ? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : "हर दिन सत्तर बार।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : प्रश्नकर्ता के प्रश्न पर आप (सल्ल०) ख़ामोश रहे कि यह भी कोई पूछने की बात है कि किसी को क्षमा करने की क्या सीमा निर्धारित है। क्या अभी वह अभिरुचि पैदा नहीं हुई कि यह प्रश्न करने की आवश्यकता ही न पड़ती।

प्रतिदिन सत्तर बार माफ़ करने का अर्थ है कि नेकी और अच्छे व्यवहार की कोई सीमा नहीं हुआ करती। करुणा और सुशीलता तो यह है कि मनुष्य निरन्तर क्षमा से काम लेता रहे। नौकर या सेवक अगर मान लो दिन में सत्तर बार क़सूर करता है तो भी उसे क्षमा ही किया जाए। अलबत्ता उसके सुधार का मुनासिब तरीक़ा अपनाया जा सकता है।

(9) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) मिम्बर पर चढ़े और आपने ऊँची आवाज़ से पुकारकर कहा, "ऐ वे लोगो जो ज़बान से तो इस्लाम ले आए हो लेकिन अभी ईमान जिनके दिल में पूरी तरह उतरा नहीं है! ईमानवालों को मत सताओ और न उन्हें शर्म दिलाओ, न लज्जित करो और न उनके छिपे हुए ऐबों के पीछे पड़ो, क्योंकि जो कोई अपने मोमिन भाई के छिपे ऐबों के पीछे पड़ेगा तो अल्लाह स्वयं उसके ऐबों के पीछे पड़ जाएगा, और जिस किसी के ऐबों के पीछे अल्लाह पड़ जाए तो उसे रुसवा करके रहेगा, यद्यपि वह अपने घर के भीतर ही रहे।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : यह एक महत्त्वपूर्ण हदीस है। इसमें बताया गया है कि ईमानवालों को सताना, उन्हें बदनाम और अपमानित करने के प्रयास में लगे रहना, उनमें ऐब और बुराइयाँ तलाश करना, उनकी किसी पिछली बुराई की चर्चा करके उन्हें शर्मिन्दा करना और इस कोशिश में रहना कि किसी तरह ईमानवालों को लोगों की नज़र से गिरा दिया जाए, यह काम उन्हीं लोगों का हो सकता है जिनके दिल ईमान से ख़ाली हों और जिनका इस्लाम मात्र मौखिक स्वीकार तक हो। ऐसे लोगों को अपने ईमान की चिन्ता होनी चाहिए। वे मिथ्याचार (Hypocrisy) के रोग में ग्रसित हैं। उन्हें मालूम होना चाहिए कि वे किन लोगों को सता रहे हैं। वे उन्हें सता रहे हैं जो ईश्वर से अपना सम्बन्ध स्थापित कर चुके हैं। जिनकी दृष्टि में ईश्वर की महानता के मुक़ाबले में दुनिया की बड़ी से बड़ी चीज़ का भी कोई मूल्य नहीं। ऐसे ईमानवालों को दुख पहुँचाकर वे ख़ुदा को क्रोधित न करें। अगर ऐसे लोग अपनी घटिया हरकतों को नहीं छोड़ते तो आख़िरत से पहले ईश्वर उन्हें दुनिया में भी रुसवाई का मज़ा चखाकर रहेगा। वे अपमान से बच नहीं सकते चाहे वे उससे बचने के लिए घर में बन्द ही क्यों न हो जाएँ।

(10) हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब कोई व्यक्ति अपनी कोई बात कहकर इधर-उधर देखे तो वह अमानत है।" (हदीस : तिर्मिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : इधर-उधर देखने का मतलब यह है कि वह यह देख रहा है कि कहीं उसकी बात किसी और ने तो नहीं सुन ली। वह अपनी बात को राज़ (गोपनीय) रखना चाहता है। हालाँकि उसने कहा नहीं कि मेरी कही हुई बात जन-सामान्य की जानकारी में न लाई जाए। मगर उसकी बात अमानत ही है। उसे अपनी ही हद तक रखना चाहिए। इस अमानत की रक्षा अवश्य है। अलबत्ता अगर बात ऐसी हो जिससे क़िसी की जान, माल या उसकी इज़्ज़त को ख़तरा हो तो सम्बन्धित व्यक्ति को उससे अवगत करा देना आवश्यक है। अतएव हदीस में है कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "बैठकें अमानतदारी के साथ हों, लेकिन तीन बैठकें इसके अपवाद हैं। एक वह जो किसी निरपराध की हत्या के षड्यंत्र से सम्बन्धित हो, दूसरी वह जो किसी के सतीत्व भंग करने से सम्बन्ध रखती हो जिसे ख़ुदा ने अवैध घोषित किया है और तीसरी वह जिसका सम्बन्ध बिना अधिकार के किसी के माल को छीन लेने के षड्यन्त्र से हो।" (हदीस : अबूदाऊद) ज़ुल्म और गुनाह के किसी योजना को असफल करना आवश्यक है। अत्याचार और अपराध को सहन करना किसी समाज के विनाश का प्रतीक है।

(11) हज़रत अबू-ज़र (रज़ि०) बयान करते हैं कि मुझे मेरे अनन्य मित्र ने सात बातों का आदेश दिया। आप (सल्ल०) ने मुझे आदेश दिया मुंहताजों और ग़रीबों से मुहब्बत रखने का; और आप (सल्ल०) ने मुझे आदेश दिया कि मैं निगाह उन लोगों पर रखूँ जो मुझसे नीचे की श्रेणी में हैं और उन लोगों को न देखूँ जो मुझसे ऊपर की श्रेणी में हैं। और मुझे आदेश दिया कि मैं निकट-सम्बन्धियों के साथ अच्छा बरताव करूँ और निकटता के रिश्तों को जोड़ूँ यद्यपि वे मेरे साथ ऐसा न करें; और मुझे आदेश दिया कि मैं किसी से कोई चीज़ न माँगूँ; और मुझे आदेश दिया कि मैं सत्य बात कहूँ चाहे वह कड़वी ही क्यों न हो; और मुझे आदेश दिया कि मैं अल्लाह के विषय में किसी निन्दक की निन्दा से न डरूँ; और मुझे आदेश दिया कि मैं अक्सर यह पढ़ता रहूँ : "ला हौ-ल व ला क़ुव्व-त इल्ला बिल्लाह" (एक हालत का

दूसरी हालत में बदलना और शक्ति का प्राप्त होना अल्लाह की मदद के बिना सम्भव नहीं), क्योंकि ये सब बातें उस ख़ज़ाने से हैं जो ईश-सिंहासन के नीचे हैं।''

(हदीस : अहमद)

व्याख्या : यह जो कहा कि मैं निगाह उन लोगों पर रखूँ जो मुझसे नीचे की श्रेणी में हैं। इसका मतलब यह होता है कि मेरी निगाह उनपर हो जो सांसारिक धन-सम्पत्ति और संसाधनों की दृष्टि से मुझसे पीछे हैं ताकि मेरे अन्दर सब्र और शुक्र (धैर्य और कृतज्ञता) की भावना पैदा हो।

जिनको जीवन-साधन और धन-सम्पत्ति मुझसे अधिक प्राप्त है उनको न देखूँ क्योंकि सम्भव है उससे दिल में शिकायत पैदा हो कि माल व दौलत में उससे मुझे पीछे रखा गया और ईश्वर के उन अनुग्रहों का आभार प्रकट करने से वंचित रह जाऊँ जो मुझे प्राप्त हैं।

इस हदीस में उल्लिखित छः बातें अत्यन्त मूल्यवान हैं। इनको साधारण समझना नादानी होगी। इनकी हैसियत ईश्वर के ख़ास ख़ज़ाने की बहुमूल्य चीज़ों की है। वह जिसे चाहता है प्रदान करता है। इन तक प्रत्येक व्यक्ति की पहुँच नहीं है। जो छः बातें इस हदीस में बयान की गई हैं, इनमें से प्रत्येक का मौलिक महत्त्व है। आदमी की नज़र अमीरों के धन पर नहीं बल्कि उनपर होनी चाहिए जो धन-सम्पत्ति की दृष्टि से हमसे निचले स्तर पर हैं। इससे सब्र व शुक्र की भावनाओं का विकास होगा। निकट सम्बन्धियों का हक़ प्रत्येक स्थिति में अदा करना चाहिए चाहे उन्हें अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास हो या न हो। अल्लाह के सिवा किसी और से न माँगने के परिणाम बड़े ही अच्छे सामने आते हैं। इस रूप में हमें किसी से कोई शिकायत नहीं हो सकती। और लोग भी हमें अपने लिए एक मुसीबत नहीं समझ सकते। लोग जब हमको अपने से बेनियाज़ और निस्पृह देखेंगे तो निश्चय ही उन्हें हमारी गरिमा का एहसास होगा और वे हमसे प्रेम-सम्बन्ध रखने पर विवश होंगे। ईश्वर भी परोक्ष रूप में हमारी मदद करेगा। सत्य को छिपाना दुरुस्त नहीं है। सत्य और न्याय कुछ लोगों के हित के विरुद्ध हो सकता है इसलिए वह उन्हें कड़वी लगेगी, लेकिन सत्य को प्रकट करना हर हाल में ज़रूरी है। जिस समाज में सत्य बात कहनेवाले नहीं होते और अवसर से लाभ उठाना जिनकी नीति होती है उसे स्वस्थ समाज नहीं कहा जा सकता। ऐसा समाज अन्ततः स्वयं समाजवालों के लिए अजीर्ण बन जाता है।

अल्लाह के मामले में किसी रुकावट की परवाह नहीं करनी चाहिए। चाहे लोगों को कितना ही बुरा क्यों न लगे। अल्लाह के आदेश के मुक़ाबले में किसी चीज़ को प्राथमिकता नहीं दी जा सकती। इसमें मलामत करनेवालों की मलामत की हरगिज़ परवाह नहीं की जा सकती। "ला हौ-ल वला क़ुव्व-त इल्ला बिल्लाह" का कलिमा अधिकता से पढ़ने की ताकीद अकारण नहीं है। ये शब्द यदि समझ के साथ अधिक से अधिक मुख से उच्चारित किए जाएँ तो दिल से ईश्वर के अतिरिक्त दूसरों का भय जाता रहता है और ईश्वर बन्दे का सहायक हो जाता है। ईश्वर की सहायता और साथ जिस किसी को प्राप्त हो जाए, उसके सौभाग्य का क्या कहना।

(12) हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जब तुममें से किसी को घर छोड़े एक लम्बी अवधि गुज़र गई हो तो वह अचानक अपने घर में न आए।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यह आदेश बड़ा ही अर्थपूर्ण है। एक लम्बे समय के बाद अपने घर वापस हों तो पत्नी को इसका अवसर दें कि वह नहा-धोकर अपने कपड़े बदल सके और साज-शृंगार के साथ आपका स्वागत कर सके। इससे पारस्परिक प्रेम और अधिक बढ़ेगा।

(13) हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "आइशा को स्त्रियों में ऐसी श्रेष्ठता प्राप्त है जैसे सरीद को समस्त खानों पर श्रेष्ठता प्राप्त है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : सरीद एक प्रकार का भोज्य पदार्थ है। अरब के लोग इसको बहुत पसन्द करते थे। नबी (सल्ल०) ने हज़रत आइशा (रज़ि०) को सरीद की उपमा देकर उनसे उस सम्बन्ध और प्रेम को प्रकट किया है जो प्रेम और सम्बन्ध आपको हज़रत आइशा (रज़ि०) से था। आप (सल्ल०) के इस कथन का अर्थ यह है कि आइशा (रज़ि०) स्त्रियों में एक आदर्श महिला हैं। उन्होंने अपने पति के दिल में भी एक विशिष्ट स्थान बना लिया है और ईश्वर के आज्ञापालन और ईशपरायणता में भी उन्हें एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इस हदीस से यह भी मालूम हुआ कि पत्नी में अगर अच्छे गुण पाए जाएँ तो उसकी प्रशंसा में कृपणता से काम नहीं लेना चाहिए। इससे पारस्परिक प्रेम में

अभिवृद्धि होती है और पारिवारिक जीवन आनन्दमय हो जाता है। पत्नी के प्रति पति का रूखा स्वभाव होना इस्लामी शिक्षा के बिल्कुल विपरीत है। इससे पति और पत्नी के बीच तनाव और शिकायत का पैदा होना निश्चित है जिसके कारण जीवन फीका और नीरस होकर रह जाता है।

(14) हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि (एक दिन) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मुझसे फ़रमाया, "जब तुम मुझसे ख़ुश होती हो और जब मुझसे ख़फ़ा होती हो तो मैं जान जाता हूँ।" मैंने कहा कि आप यह किस तरह पहचान लेते हैं? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब तुम मुझसे ख़ुश होती हो तो इस तरह कहा करती हो कि 'यह बात नहीं है, मुहम्मद के रब की क़सम' और जब तुम मुझसे ख़फ़ा होती हो तो इस तरह कहती हो कि 'यह बात नहीं है, इबराहीम के रब की क़सम।" (हज़रत आइशा रज़ि० कहती हैं कि) मैंने कहा कि है तो बात यही, लेकिन ख़ुदा की क़सम ऐ अल्लाह के रसूल, मैं सिर्फ़ आपका नाम छोड़ती हूँ (दिल से आपकी मुहब्बत उस समय भी जुदा नहीं होती)। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : पति-पत्नी का सम्बन्ध अत्यन्त मधुर और आनन्दमय होना चाहिए। पत्नी की ओर से नाज़ व नख़रे का प्रदर्शन कोई ऐब कदापि नहीं है बल्कि एक दर्जे में यह अभीष्ट है ताकि जीवन में एक रंग और सपाटपन पैदा न हो सके। किसी के पूर्ण और सिद्ध पुरुष होने का अर्थ यह कदापि नहीं होता कि वह मानव-सुलभ भावनाओं से बिल्कुल रिक्त हो। किसी अवसर पर नाराज़ी की शिष्ट अदा जीवन को रंगीन बनाती है। यहाँ यह बात सामने रहे कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) सिर्फ़ रसूल ही नहीं थे बल्कि वे हज़रत आइशा (रज़ि०) के प्रिय पति भी थे। हज़रत आइशा (रज़ि०) किसी बात पर नाराज़ होतीं तो मुहम्मद के रब के बदले इबराहीम के रब की क़सम खातीं। और आपसे ख़ुश होतीं तो मुहम्मद के रब की क़सम खातीं। नाराज़ी के प्रदर्शन का यह मधुर अन्दाज़ सूक्ष्म एवं पवित्र अभिरुचि को प्रदर्शित करता है। इसमें जो शिष्टता पाई जाती है और इससे जिस सभ्यता की झलक दिखाई देती है उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है। नबी (सल्ल०) की समझ और तीक्ष्ण बोधगम्यता देखिए कि वे समझ जाते थे कि आइशा ख़फ़ा हैं या आपसे ख़ुश हैं। हालाँकि नाराज़ी या ख़ुशी के जाने-पहचाने लक्षण दूर तक दिखाई नहीं देते थे।

हज़रत आयशा के बयान का अभिप्राय यह है कि नाराज़ी मात्र नाम की होती है कि मैं आपका नाम नहीं लेती। मेरे लिए सम्भव नहीं कि हृदय से आपको विलग कर सकूँ।

यह पति-पत्नी की राज़ की बातें हैं। घर का वातावरण कितनी स्वाभाविक पवित्रता लिए हुए है! बातों में कोई बनावट व दिखावा नहीं पाया जाता। हर एक अपना दिल खोलकर दूसरे के सामने रख देता है। यह न हो तो जीवन अपनी समस्त सुन्दरता से वंचित ही रहेगा।

(15) हज़रत आइशा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने (अपनी पत्नियों से) कहा, "तुममें सबसे पहले वह मुझसे मिलेगी जिसके हाथ ज़्यादा लम्बे हैं।" हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि आप (सल्ल०) की पत्नियाँ अपने हाथ नापती थीं कि किसके हाथ ज़्यादा लम्बे हैं। हम सबमें ज़ैनब (रज़ि०) के हाथ ज़्यादा लम्बे थे कि वे अपने हाथ से मेहनत करतीं और सदक़ा देतीं।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : नबी (सल्ल०) और आपकी पवित्र पत्नियों के मध्य जो बातें होती थीं, उनमें हर प्रकार की बातें होती थीं। अल्लाह व आख़िरत और मृत्यु व जीवन हर विषय बातचीत के अन्तर्गत आ सकता था और आता था। न मन में किसी प्रकार का तनाव था और न किसी के दिल में कोई अप्रिय भावना पाई जाती थी। इस हदीस में एक ऐसी बातचीत का उल्लेख किया गया है जो नबी (सल्ल०) और आपकी पत्नियों के मध्य हुई थी। आप अपनी पत्नियों से कहते हैं कि तुममें जिसके हाथ लम्बे हैं वह तुममें सबसे पहले मुझसे मिलेगी। इसमें इस बात की ओर संकेत है कि उन पत्नियों से आप (सल्ल०) सबसे पहले दुनिया से प्रस्थान कर जाएँगे। हुआ भी यही। दूसरी बात जो आप (सल्ल०) ने कही उसमें परदादारी की शान को आपने बाक़ी रखा। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि तुममें जिसके हाथ अधिक लम्बे हैं, वह सबसे पहले मुझसे मिलेगी। अर्थात् मेरे बाद मेरी पत्नियों में से सबसे पहले उसी का निधन होगा। नबी (सल्ल०) की भविष्यवाणी पर आपकी पत्नियों को पूरा-पूरा विश्वास था। वे अपने हाथ को नापकर देखतीं कि किसके हाथ ज़्यादा लम्बे हैं। आपकी पत्नियों में सबसे पहले हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) का देहान्त

हुआ। सन् 20 हिजरी में हज़रत उमर (रज़ि०) के शासनकाल में उनका देहान्त हुआ। तब यह भेद खुला कि हाथ लम्बे होने से नबी (सल्ल०) का अभिप्राय था—दानशीलता। दानशीलता में हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) सबसे बढ़ी हुई थीं। वे अपने हाथ से मेहनत करतीं और दान किया करती थीं। इस प्रकार आप (सल्ल०) की दूसरी भविष्यवाणी भी सत्य सिद्ध हुई। इसे पैग़म्बर का चमत्कार ही कहा जाएगा।

एक ख़ास बात जो इस हदीस से मालूम होती है वह यह कि मरने के पश्चात् आदमी का मिलन अपने उन प्रियजनों से होता है जो उससे पहले दुनिया से प्रस्थान कर गए होते हैं। देहान्त के पश्चात् हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) का आप (सल्ल०) से भेंट होना इस हदीस से सिद्ध होता है। एक दूसरी हदीस में इसी तरह देहान्त के बाद हज़रत फ़ातिमा ज़हरा (रज़ि०) की आप (सल्ल०) से मुलाक़ात का होना भी सिद्ध होता है।

आदर्श समाज

आदर्श समाज वही हो सकता है जिसमें सत्य और न्याय का शासन हो। जिसमें न्याय और इनसाफ़ की उपेक्षा न की जाती हो। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के लिए त्याग से काम लेता हो, और एक-दूसरे से गहरा प्रेम रखते हों। आदर्श समाज उसी को कहा जा सकता है जिसमें हक़ और सच्चाई के अर्थ में किसी प्रकार की सन्दिग्धता न पाई जाती हो। जिसके लोग सत्य से परिचित हों। अर्थात् वे सत्य को सत्य समझते हों और उसे धारण करने की प्रबल आकांक्षा उनमें मौजूद हो और वे अपने व्यावहारिक जीवन में सत्य के अनुवर्ती भी हों। ऐसे समाज में इसके उत्तम परिणाम देखे जा सकते हैं।

मानव-जीवन में अच्छे कर्म वही हो सकते हैं जो जीवन के वास्तविक मूल्यों, सत्यम्-सुन्दरम और वास्तविक आनन्द के प्रतीक हों। जोड (Joad) की दृष्टि में भी उत्तम समाज वही है जिसके लोग जीवन के मूल्यों को अधिक से अधिक महत्त्व देते हों और जिनके व्यवहार में मौलिक रूप से उन्हीं मूल्यों का ध्यान रखा जाता हो।[1] जीवन के मूल्यों का निर्धारण उसी समय सम्भव है जबकि मनुष्य का सम्बन्ध ईश्वर से स्थापित हो, जो स्थायी मूल्यों (Paermanent Values) का मूल स्रोत है। लेकिन अगर समाज में लोग विविध भावनाओं और धारणाओं के साथ जीवन व्यतीत करते हैं और उनकी भावनाओं और धारणाओं में पूर्ण रूप से एकात्मता नहीं पाई जाती हो तो इसका परिणाम अव्यवस्था और बिखराव के सिवा कुछ और नहीं हो सकता। अगर लोगों की भावनाओं में समरसता पैदा हो जाए तो वे एक-दूसरे को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं और स्वाभाविक रूप से लोगों के मध्य मैत्री-भाव और प्रेम का वातावरण उत्पन्न हो सकता है।

आदर्श समाज के लिए यह भी ज़रूरी है कि उसका निर्माण एक उद्देश्य के अन्तर्गत हो और सम्पूर्ण मानवता का विकास उसके समक्ष हो। कान्ट के शब्दों में समाज के लोगों के विचार इतने उच्च हो जाएँ कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के हितों के मूल्य को अपने हितों के मूल्य के बराबर समझने लगे। बाग़ के फूल परस्पर एक-दूसरे के शत्रु नहीं होते। मनुष्य को भी एक-दूसरे का अहित चाहनेवाला नहीं होना चाहिए। इसलिए कि उन्हें एक-दूसरे की प्रगति में सहयोगी और सहायक बनाकर पैदा किया गया है। लेकिन यह उसी समय सम्भव है जब मनुष्य के समक्ष जीवन के वास्तविक मूल्य और जीवन का वास्तविक उद्देश्य हो जिसका ज्ञान ईश-प्रकाशना के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, जिसकी पूर्ण शिक्षा और व्याख्या हमें क़ुरआन और

1. देखें : Guide to the Philosophy of Morals and Politics. P. 467-469.

हदीस में स्पष्ट रूप से मिलती है।

(1) हज़रत अम्र-बिन-अबसा (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! आपके साथ (इस्लाम के प्रारम्भ में) इस कार्य (धर्म) में कौन था? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "एक आज़ाद और एक ग़ुलाम।" मैंने कहा कि इस्लाम (की पहचान) क्या है? आपने कहा, "पवित्र वाणी और (मुहताजों को) खाना खिलाना।" मैंने पूछा कि ईमान (की निशानी) क्या है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "धैर्य और दानशीलता।" रावी कहते हैं कि मैंने पूछा कि सबसे उत्तम इस्लाम किसका है? आपने फ़रमाया, "जिसकी ज़बान और जिसके हाथ से मुसलमान सुरक्षित रहें।" कहते हैं कि मैंने पूछा कि ईमान में सबसे श्रेष्ठ और उत्तम चीज़ कौन-सी है? फ़रमाया, "शीलस्वभाव।"

(हदीस : अहमद)

व्याख्या : 'एक आज़ाद और एक ग़ुलाम' से संकेत हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) और हज़रत बिलाल (रज़ि०) की ओर है। हज़रत अबू-बक्र आज़ाद थे और हज़रत बिलाल ग़ुलाम थे।

इस हदीस में इस्लाम की यह पहचान बताई गई 'पवित्र वाणी और मुहताजों को खाना खिलाना, इस्लाम को ग्रहण करने के पश्चात् मनुष्य आत्मश्लाघा और स्वार्थपरता के संकुचित दायरे में क़ैद नहीं रहता। वह इस दायरे की तंगी से आज़ाद हो जाता है। उसे केवल अपनी ही चिन्ता घेरे नहीं रहती बल्कि उसे दूसरे लोगों, विशेष रूप से मुहताजों और ज़रूरतमन्दों, की चिन्ता भी होती है। उदाहरणार्थ उसे लगाव केवल अपना ही पेट भरने से नहीं होता बल्कि मुहताजों और दीन-दुखियों को खिलाने से भी उसे पूरी दिलचस्पी होती है। उसकी ज़बान पर पवित्रतम बातें ही आती हैं। वह कोई ऐसी बात नहीं कहता जो सत्य के प्रतिकूल या जो दूसरों के लिए दुखदायी हो।

ईमान के विषय में बताया गया कि "वह धैर्य और दानशीलता है।" वास्तव में ईमान का अर्थ यह होता है कि आदमी को ख़ुदा और आख़िरत पर पूरा यक़ीन है। ऐसे व्यक्ति की दृष्टि उन लोगों की अपेक्षा जो न ईश्वर को मानते हैं और न परलोक को स्वीकार करते हैं, बहुत व्यापक होती है। उसकी निगाह आज के मुक़ाबले में आनेवाले कल अर्थात् आख़िरत पर कहीं अधिक होती है। ऐसा व्यक्ति जल्दबाज़ी और उतावलेपन से छुटकारा पा लेता है। बड़ी-से-बड़ी आशंकाएँ, हानि और मुसीबतें उसे सत्य से नहीं हटा सकतीं। वह जानता है कि हमारे लिए वास्तव में निर्णायक दिन आज नहीं, कल है। इसलिए आज के लिए विकल होने की कुछ अधिक आवश्यकता नहीं है। कल के घाटे को आज के लाभ के लिए सहन नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत कल की सफलता के लिए आज की असफलता को स्वीकार किया जाएगा।

अब आप स्वयं सोच सकते हैं कि ईमान के कारण मोमिन के अन्दर सब्र की कितनी शक्ति एकत्र हो जाती है।

सब्र के साथ ईमान का दूसरा गुण समाहत अर्थात् दानशीलता है। मोमिन दिल का तंग और कृपण कैसे हो सकता है जबकि वह देख रहा है कि अक्षय ख़ज़ाने का मालिक वही होगा जो आज लुटाता है। कल पानेवाला वही व्यक्ति होगा जो आज देता है। आख़िरत की अपार संभावनाएँ उसी के हिस्से में आएँगी जिसका हृदय आज की विशाल और असंकुचित है। जो कृपणता और लोभ से सर्वथा मुक्त है।

मुस्लिम वास्तव में वही है जिससे कोई व्यक्ति किसी प्रकार का ख़तरा या भय महसूस न करे। मुस्लिम तो लोगों की जान और माल तथा आबरू का रक्षक होता है। वह दूसरों को हानि नहीं पहुँचा सकता। मोमिन तो सर्वथा सुशीलता की मूर्ति होता है। उससे किसी अनैतिकता की आशा नहीं की जा सकती है।

(2) हज़रत अबू-मूसा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "निस्सन्देह इनका संबंध ईश्वर के सम्मान से है : बूढ़े मुसलमान व्यक्ति का आदर करना, और क़ुरआनवाले का आदर करना जबकि वह क़ुरआन में अतिवादिता से काम न ले और न वह उससे हट जानेवाला हो। और न्यायप्रिय शासक का सम्मान करना।" (हदीस : अबू-दाऊद, बैहक़ी, शोबुल-ईमान)

व्याख्या : इस हदीस से ज्ञात होता है कि ईश्वर के आदर और सम्मान की एक अपेक्षा यह भी है कि आदमी किसी बूढ़े मुस्लिम की शान में गुस्ताख़ी न करे और न उसका निरादर करे। बल्कि जहाँ तक सम्भव हो उसका आदर करे।

क़ुरआनवाले से अभिप्रेत वह व्यक्ति है जिसकी क़ुरआन से अत्यन्त अभिरुचि हो और जिसकी यह कामना हो कि क़ुरआन का प्रचार-प्रसार हो। इसके अन्तर्गत वे लोग भी आते हैं जो क़ुरआन के हाफ़िज़, टीकाकार और क़ुरआन पढ़ने-पढ़ानेवाले हों। ऐसे लोग इसका हक़ रखते हैं कि उनका आदर किया जाए और उनकी प्रतिष्ठा का ध्यान रखा जाए, किन्तु इस आदेश के साथ शर्त भी है कि क़ुरआन के पढ़ने और समझने में अतिवाद से काम न ले। वह न तो क़ुरआन के पढ़ने को त्याग दे और न अपने व्यावहारिक जीवन में क़ुरआन की शिक्षाओं की उपेक्षा करे। यदि वह क़ुरआन के शब्दों का शुद्ध उच्चारण और पाठ में सुन्दरता लाने के लिए मर्यादा का उल्लंघन करे और भ्रष्ट धारणाओं और दृष्टिकोणों के द्वारा क़ुरआन के अर्थ और भाव का निर्धारण करे तो फिर वह किसी भी आदर और प्रतिष्ठा का पात्र नहीं है।

इस हदीस से ज्ञात हुआ कि न्यायप्रिय शासक भी इसका अधिकारी है कि हम उसका सम्मान करें जो अपने राज्य में न्याय की स्थापना करे और किसी प्रकार के अन्याय और अत्याचार को सहन न करे।

इस हदीस से भली-भाँति अनुमान किया जा सकता है कि ईश-प्रतिष्ठा का क्षेत्र कितना विस्तृत है। ईश्वर की प्रतिष्ठा के कारण यदि हम न्यायप्रिय शासक का सम्मान करते हैं और शासक भी ईश-प्रतिष्ठा ही की भावना से न्याय की स्थापना करता है, ईश्वर की प्रतिष्ठा की दृष्टि से अगर क़ुरआन धारक का सम्मान किया जाता हो और क़ुरआन धारक भी ईश-प्रतिष्ठा ही के एहसास से क़ुरआन के हक़ों से ग़ाफ़िल न हो। अर्थात् समाज में अगर हर जगह और हर अवसर पर ख़ुदा का सम्मान और प्रभु के गौरव का ध्यान रखा जाए तो ऐसा समाज एक आदर्श समाज बन जाएगा जो अपनी मिसाल आप होगा।

(3) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा कि कौन-सा इस्लाम सबसे उत्तम है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "खाना खिलाना और प्रत्येक परिचित और अपरिचित को सलाम करना।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् यह इस्लाम की उत्तम शिक्षाओं में से है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के मान-सम्मान का हमें पूरा एहसास हो और यथा सम्भव सभी के अधिकारों का ख़याल रखा जाए। कोई भूखा हो तो उसे खाना खिलाएँ, ज़रूरतमन्दों की ज़रूरतें पूरी करने में हिस्सा लें। नैतिकता का उच्चतम मानदण्ड यह है कि हम दूसरों की आवश्यकताओं को अपनी आवश्यकता समझें और दूसरों की भलाई और प्रगति को अपनी भलाई और प्रगति समझें। जिस प्रकार परिचित व्यक्ति का आदर हमारे मन में पाया जाता है उसी तरह अपरिचित व्यक्ति की भी प्रतिष्ठा का हम ख़याल रखें और बिना किसी भेद-भाव के दोनों को सलाम करके हम यह प्रकट करें कि हमारे मन में प्रत्येक के लिए अच्छी भावनाएँ और अच्छी कामनाएँ हैं।

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इससे वर्जित किया कि शहरी देहाती के लिए सौदा करे और कहा कि "आपस में रंजिश न करो और कोई व्यक्ति अपने भाई के क्रय-विक्रय के मामले पर क्रय-विक्रय का मामला न करे और न अपने भाई के निकाह के पैग़ाम पर पैग़ाम भेजे। और न कोई स्त्री अपनी बहन की तलाक़ की इच्छा करे कि जो कुछ उसका हिस्सा है स्वयं हासिल करे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : यह जो वर्जित किया कि कोई शहरी किसी देहाती के लिए सौदा करे तो वास्तव में इसका ध्येय यह है कि स्थानीय लोगों की आवश्यकता का पहले ख़याल रखें। ऐसा न हो कि स्थानीय लोग तो वंचित रह जाएँ और उनकी उपेक्षा करके आप दूर के लोगों से सौदा करके लाभ प्राप्त करने में लगे हों। यह बात कभी भी विस्मृत नहीं करनी चाहिए कि उत्तम लाभ लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करना है। जो हमसे

ज़ितना निकट होगा उसी अनुपात से वह हमारे ध्यान देने का अधिक पात्र होगा। लेकिन अगर क़रीब रहनेवालों की आवश्यकताएँ पूरी हो चुकी हों तो बाहर के लोगों से क्रय-विक्रय का मामला करने में कोई दोष नहीं।

माल लेने का इरादा न हो तो अकारण क़ीमत न बढ़ाओ। इस तरह तुम अपने भाई को नुक़सान ही पहुँचाओगे। और अगर उसे नुक़सान पहुँचाने ही के उद्देश्य से ऐसा करते हो तो इससे बुरी बात तुम्हारे लिए और क्या हो सकती है।

यह हदीस यह भी बताती है कि यदि किसी ने किसी के यहाँ विवाह का पैग़ाम भेजा है तो तुम कदापि वहाँ पैग़ाम न भेजो। क्योंकि यह भाईचारे और हितैषिता के प्रतिकूल एक स्वार्थपरता की बात होगी। और इस घिनौनी हरकत के बुरी होने में किसी को क्या सन्देह हो सकता है। अलबत्ता अगर किसी का भेजा हुआ पैग़ाम अस्वीकृत हो गया हो तो फिर उसके बाद दूसरा कोई विवाह का पैग़ाम वहाँ भेज सकता है। ठीक इसी तरह अगर किसी का किसी से कोई सौदा हो रहा है तो उसमें हस्तक्षेप करके ख़ुद उससे सौदा करने की कोशिश भी एक अत्यन्त गिरी हुई हरकत है। यह भाईचारे की भावना और सहानुभूति के सर्वथा प्रतिकूल है। इससे हमेशा आपस के सम्बन्ध में बिगाड़ ही पैदा होगा।

यह हरकत भी इस्लाम के बिलकुल विरुद्ध और सामाजिक तथा घरेलू जीवन को तबाह करनेवाली है कि कोई स्त्री यह इच्छा रखे और इसके लिए कोशिश करे कि अमुक स्त्री को उसका पति तलाक़ दे दे ताकि उस स्त्री की जगह ख़ुद वह उससे शादी रचाए, और उसे कुछ भी इसका ख़याल न हो कि इससे उस स्त्री को कितनी हानि पहुँचेगी। हालाँकि वह स्त्री जिसे वह स्वार्थपरता के कारण उसके पति से विलग कर देने की इच्छुक है, दीनी रिश्ते से उसकी अपनी बहन होती है। इसलिए यह किसी तरह भी उसके लिए ठीक नहीं हो सकता कि वह अपने हित के लिए अपनी बहन को नुक़सान पहुँचाए और उसपर सितम करके उसके दिल को दुखी करे।

(5) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) और हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जिब्रील (अलैहि०) हमेशा मुझे पड़ोसी के हक़ का ध्यान रखने की ताकीद करते रहते थे, यहाँ तक कि मैंने यह ख़याल क़ायम कर लिया कि शीघ्र ही पड़ोसियों को एक-दूसरे का वारिस (उत्तराधिकारी) घोषित कर देंगे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि पड़ोसी के साथ हमारा व्यवहार अत्यन्त उत्तम होना चाहिए। पड़ोस में होने के कारण पड़ोसी से अकसर काम पड़ता रहता है। एक को दूसरे की ख़बर होती रहती है। इसलिए पड़ोसी के हक़ भी ग़ैर-पड़ोसी की अपेक्षा अधिक होते हैं।

❑❑❑